ययाति

विष्णु सखाराम खांडेकर



राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट दिल्ली

विष्णु सखाराम खाण्डेकर

ययाति

एक लाख रुपये के ज्ञानपीठ पुरस्कार
और साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित



राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट दिल्ली

विष्णु सखाराम खाण्डेकर

ययाति

एक लाख रुपये के ज्ञानपीठ पुरस्कार
और साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित

अनुवादक
मोरेश्वर तपस्वी

मूल्य तीस रुपये (30 00)

पहला संस्करण 1977
YAYATI (Novel) by V S Khandekar

भूमिका

आज स सत्तावन वप पूव सन् १९१९ म मरा लखन-काय प्रारभ हुआ, तब मैं इस क्षेत्र म अपना स्थान बना चुके साहित्यिका के पदचिह्ना पर चल रहा था। मेरे पूववर्तियो न काव्य विनोद, समीक्षा और नाटक लिखन म प्रसिद्धि प्राप्त की थी। मैं भी साहित्य की इन्ही विधाओ म अपनी कलम की शक्ति आजमा रहा था। तब जान नही पाया था कि (अनुमरण आत्महत्या का ही दूसरा नाम है) कारण यह था कि लेखक की हैसियत स आत्मानुभूति व्यक्त करन के लिए आवश्यक आतरिक जागृति मुझम तब तक सुप्तावस्था म ही थी। फलस्वरूप लगभग छह वप तक मैं कविता, समीक्षा और विनोदी लखन के तीन क्षेत्रा म ही हाथ पाव मारता रहा। उसके बाद के दो एक वर्षों म मेरा एक नाटक भी रगमच पर आ गया।

वह तो मेरे साहित्यिक गुरु श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर की अप्रत्याशित कृपा थी जो मैं अपने भीतर क लेखक को खोज पाया। १९१९ म एक अपूव धुन म मैंने एक कहानी लिख रखी थी। यह समझकर कि कहानी लखन अपना क्षेत्र नही, मैंने उस कहानी को कही पर भी प्रकाशन के लिए नही भेजा था। १९२३ मे एक मासिक पत्रिका क वर्षारभ अक के लिए मेरे पास कुछ भी साहित्य तैयार न था। मैंन डरते-डरते वही कहानी उस सपादक के पास भज दी। सपादक को वह पसद भी आ गई। किंतु फिर भी मुझम आत्मविश्वास नही जागा। सयोग से मेरे साहित्यिक गुरु न कही उस कहानी को पढ लिया। उन्होन उस कहानी के बारे म इतना अच्छा अभिमत दिया कि अपने भीतर के लेखक की मुझे एकदम नई पहचान हो गई।

१९२५ म पाठका ने मुझे कहानीकार के रूप म स्वीकार कर लिया और कविता समीक्षा नाटक और विनोदी लेखन से मुझे जो सफलता नही मिली थी, वह सफलता आगामी पाच वप ने मुझे दे दी। मैं कहानीकार न हुआ होता तो उपन्यास-

लखन का पहाडा म मुन्दर गुफा शिल्प तराशने जमा विकट काय जानकर कभी उसकी राह नही जाता।

कहानी और उपन्यास किन्ही दृष्टियो स अभिव्यक्ति के भिन्न माध्यम अवश्य है किन्तु फिर भी उनम एक आतरिक नाता है। हर कहानीकार उपन्यासकार नही बनता। किन्तु अभिव्यक्ति क अन्य माध्यमो की अपक्षा उसे उपन्यास लिखना अधिक आसान प्रतीत होता है। नदी म तरनेवाले को समुद्र म तरना आसान लगता है न, बस ही!

मेरा पहला उपन्यास सन १९३० म प्रकाशित हुआ। उसके बाद प्रति वष एक के हिसाब से आगामी बारह वर्षों म १९४२ तक मेरे बारह उपन्यास प्रकाशित हो गए। किन्तु सबकी कथावस्तु सामाजिक थी। वस तो समाज के सुख-दुखो की—सुखो स अधिक दुखो की—अभिव्यक्ति ही मेरे सपूण साहित्य-सजन की मूल प्रेरणा रही है। यही कारण है कि इन उपन्यासो म आसपास के जीवन की अनेक सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याओ को मैं स्पश कर सका। उन दिनो राज नीतिक स्वतत्रता और सामाजिक परिवतन क दो ध्यय क्षितिज पर प्रकाशमान थ। अत मरे इन उपन्यासो का उनक चितन स घनिष्ठ सबध था। साथ ही इन उपन्यासो का सबध स्त्री पुरुष-आकषण का स्वरूप अमीर और गरीब के बीच फली भयानक खाई गाधीवाद और समाजवाद के समाज मन पर हो रहे सस्कार आदि के चितन के साथ भी था। उस समय कोई भविष्यवाणी करता कि आगे चलकर ययाति जसी पौराणिक कथा मैं किसी निराले ही ढग स प्रस्तुत करने वाला हू तो उसपर मैं तनिक भी विश्वास नही करता।

इसका अथ यह कदापि नही कि पौराणिक कथाओ के प्रति मुझे अरुचि या अप्रीति थी। बल्कि समसामयिक लखको की अपेक्षा पुराण-कथाओ म मेरा आक पण अधिक था। गाधीजी क नमक-सत्याग्रह आन्दोलन का स्वरूप मैंने सागरा अगस्ति आला (सागर देखो अगस्त आया) जसी रूपक-कथा म चित्रित किया था। मरे पहले बारह उपन्यासो म स काचनमृग और क्रौचवध विशुद्ध रूप से सामा जिक है पर उनके शीषक पौराणिक कथाओ के प्रतीको क रूप म ही दिए गए हैं। मेरी रचनाओ म और बातो म पौराणिक सदभ इतने हुआ करते थ कि नव साहित्य स सबधित पाठको को लगता कि अवश्य मैं किसी खानदानी पुरोहित क घर म ही पदा हुआ हू।

मैंने कभी नही माना कि पुराण कथाए (myth) बडे-बूढो द्वारा छोटा छोरियो को सुनाने की चीज है। लोककथा की भाति पुराणकथा भी समाजपुरुष क रक्त म बीसियो पीढियो स घुलती आई है। वीणा क तारो से जब तक वादक कलाकार की उगलियो का स्पश नही होता तब तक उनकी मधुर झकार जिस तरह मुखरित नही होती उसी तरह पुराण कथाओ म भी समाजपुरुष क पीढियो क अनुभव छिप होते हैं। १९३० स लेकर १९४२ तक के बारह वर्षों म आसपास का जीवन इतने सघर्षों और नित्य नूतन अनुभूतियो स भरा पड़ा था कि अपनी पसन्द की किसी

पुराण व था की ओर मुड़ने का विचार मेरे मन म कभी नही आया। किन्तु इतनी बूझ मुझम अवश्य थी कि अद्भुत रम्यता के बाह्य कवच के भीतर पुराण कथाओ म जो सत्य छिपा होता है वह जीवन के सनातन सुख-दुखो का परिचायक होता है।

१९४२ तक सारा भारतीय समाज एक ही धुन म मदहोश होकर स्वप्नो की जिस दुनिया म विचरता था, उस दुनिया मे धीरे धीरे दरारे पडने लगी थी। सन् १९४७ म राजनीतिक स्वतत्रता मिली अवश्य, किन्तु उसस पहले ही विश्वयुद्ध के कारण उत्पन्न परिस्थिति न सामाजिक जीवन म कालेबाजार के विष-बीज बो दिए थे और व अब अकुरित भी होने लगे थे। यह सच है कि स्वराज्य आने के कारण साधारण आदमी का मन इस आशा स पुलकित हो गया था कि अब धीरे धीरे उसके सारे सपन पूरे हो जाएग। किन्तु उसी जमाने मे साथ साथ इसके आसार भी धीरे धीरे प्रकट होने लगे थे कि भारतीय सस्कृति म जिन नैतिक मूल्यो का अधिष्ठान है उन मूल्यो की ओर समाज पीठ फेर रहा है।

सत्ता से लेकर सपदा तक सवत्र यही स्थिति साफ दिखाई दन लगी थी कि जिसकी लाठी उसीकी भस। जिसक लिए सम्भव था वही व्यक्ति भोगवाद का शिकार बनता जा रहा था। जिन अधिकाश लोगो क लिए यह सम्भव नही था, उनकी वासनाए य दृश्य देखकर उद्दीपित होने लगी थी।

यद्यपि सामाजिक जीवन म आ रहे इस परिवतन म भौतिक दृष्टि से अनेक स्वागताह बातें था फिर भी समाजजीवन की रीढ रहे नतिक मूल्य परो तले रौंदे जाने लगे थ। भ्रष्टाचार, कालाबाजार, रिश्वतखोरी के बोलबाले के साथ ही पारिवारिक जीवन का स्थिरता प्रदान करन वाल अनेक बधन भी शिथिल होते जा रह थे। अत्यधिक मद्यपान से लकर अनिबन्ध व्यभिचार तक—ऐसी ऐसी बातें धीरे धीरे बढती जा रही थी जिन्ह सामाजिक दृष्टि स पहल पाप माना जाता था। समाज चेतना भुलाने लगी थी कि खाओ पियो मजा करो के अलावा भी जीवन को गतिमान रखने वाले अनक उद्देश्य है। नतिक मूल्यो पर चलने वालो की दुगति और उन्ह ठुकराकर चलन वालो की मनमानी होती देखकर युवा पीढी का पारपरिक मूल्यो म विश्वास ढहता जा रहा था। एक तरफ यह अनुभव हो रहा था, और दूसरी तरफ अश्रु जैस सामाजिक उपयास द्वारा मैं इस भयानक परिवतन की झलक दिखान का प्रयास कर रहा था।

हर बीतत वष के साथ सामाजिक जीवन की स्वस्थता की दृष्टि से अत्यत अनुचित दुगुण समाजपुरुष के रक्त म अधिकाधिक घुलते जा रहे थे। भावुक मन के लिए यह देखत रहना कि समाज म पाच-दस प्रतिशत अमीर लोग मनमानी मौज उडा रहे ह और अस्सी पचासी प्रतिशत गरीब लोग महगाई म झुलसने स बचने क लिए दयनीय छटपटाहट कर रह हैं कठिन हो चला था। पारपरिक भारतीय समाज न परलोक परमात्मा आदि कल्पनाओ म पूण श्रद्धा रखकर ही अनक नतिक बधन स्वीकार किए थे। श्रद्धा से हो, अथवा भय स, इन सभी बधनो का

पालन उसने यथाशक्ति किया था। किन्तु परलोक या परमात्मा के बारे में परंपरा से चली आई श्रद्धा विज्ञान के चौंधिया देने वाले प्रकाश में विचरने वाले तथा बीसवीं सदी के मध्य खड़े समाज का नियमन करने में असमर्थ होती जा रही थी। पुराने मूल्य सत्त्वशून्य लगने लग थे। नये मूल्य खोजने की कोशिश समाज मन नहीं कर रहा था। स्वतंत्रता के पूर्व के जमाने में त्याग, सेवा, समर्पण की भावना आदि मूल्यों का अपना बहुत महत्त्व था। देशभक्ति के मूल्य को भी नया अर्थ प्राप्त हो गया था। वह बहुत प्रभावशाली भी था। किन्तु राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त हुए अभी दस वर्ष भी नहीं हुए थे कि यह स्थिति पलट गई। पुराने मूल्य दुर्बल थे। नये मूल्य केवल शाब्दिक थे। फलस्वरूप समाज में एक रिक्तता आ गई। उस रिक्तता में सामाजिक चेतना चमगादड़ के समान फड़फड़ाने लगी। हाथभट्टी से लेकर गर्ल फ्रेंड तक अनेक-अनेक शब्द दैनिक जीवन में बड़े ठाठ के साथ प्रयोग होने लगे।

मन को बेचैन कर डालने वाले जीवन के इस परिवर्तन को किस तरह चित्रित करूं इसके बारे में मेरा चिंतन आरंभ हो गया। तभी पुराण कथा का ययाति मेरे सामने खड़ा हो गया।

ययाति की कहानी मुझे बचपन से ही ज्ञात थी। किन्तु उसका डरावना पहलू मुझे इस जमाने में जितना अनुभव हुआ उतना पहले कभी नहीं हुआ था। मैंने सोचा, ययाति की उस कहानी का दायरा यह बताने के लिए कि प्रवाह-पतित साधारण आदमी प्राकृतिक भोग लालसा के कारण किस तरह फिसलता ही चला जाता है, बहुत उपकारक होगा। जैसे ही यह बात मुझे जंच गई कि बाह्यतः पौराणिक प्रतीत होने वाले किन्तु वास्तव में भोगवाद का शिकार होकर जीवन को तहस-नहस करते जा रहे समाज जीवन का चित्रण ऐसे उपन्यास के माध्यम से प्रभावकारी ढंग से किया जा सकता है, मैंने अपनी कल्पना को आगे काम करने के लिए छूट दे दी।

लेखक को चाहिए कि कहानी या उपन्यास की कथावस्तु की खोज न करे। कथावस्तु को ही अपनी ओर भागती हुई आने दे। किसी उद्देश्य से खोजे गए विषय को लेकर कहानी या उपन्यास लिखना यद्यपि साहित्यसर्जन की क्षमता तथा परिश्रमी प्रवृत्ति का द्योतक है फिर भी मन को छू लेने वाला आशय ऐसे उपन्यासों में अधिकतर व्यक्त नहीं हो पाता है। मैं तो कहानी या उपन्यास का कोई बीज मिलने पर उसे अपने मन में रख लेता हूं। नन्हा बालक जिस तरह बीच बीच में अपने खिलौनों के साथ थोड़ा-बहुत खेल लेता है उसी तरह उस बीज के साथ थोड़ा-बहुत खेल लेता हूं। मेरी कल्पना में वह अंकुरित हो जाए और भावना का जल सींचकर उसमें कोंपलें निकल आएं, तभी मैं उसे अपने काम का मानता हूं। पाच-दस कथा-बीजों में से एकाध ही इस तरह काम आता है। बाकी बीज अपने स्थान पर वैसे ही सूख जाते हैं। कुछ दिन बाद मुझे उनकी याद तक नहीं रहती।

किन्तु कभी-कभी इस तरह मन में अंकुरित बीज लेखक की जानकारी के बिना ही बढ़ने लगता है, जैसे वर्षा के पानी में बढ़ने वाली जंगल की वृक्ष-लताओं ने जमा ! कथा-बीज जब इस तरह अपने आप बढ़ने लगता है तो उस नन्हे से फूल पौधे पर बिना किसीकी जानकारी के पहली कली खिलने लगती है। उस कली की सुगंध आने लगते ही मैं बेचैन हो जाता हू। फिर मन पर वह कहानी या उपन्यास ही पूरी तरह छा जाता है।

ययाति भी इसी तरह लिखा गया है। लेखन प्रारम्भ करने से पूर्व जब मन में प्रस्फुरित कथावस्तु का चिंतन पूरा हो जाता है तो उसमें से सजीव व्यक्ति रेखाएं निकलने लगती हैं। कभी-कभी ऐसे ऐसे अनेक भावभीने अथवा नाट्यपूर्ण प्रसंग आंखों के सामने मूर्त होने लगते हैं जिनकी कल्पना भी न की होगी। लिखे जा रहे उपन्यास की विभिन्न व्यक्ति रेखाओं के चरित्र चित्रण को जीवन के अनुभवों का अधिष्ठान मिल जाता है और वे अधिक सजीव हो उठती हैं।

कहानी या उपन्यास जब इस तरह मन में सजीव होने लगता है, तो फिर लिखने के लिए बैठना अपरिहार्य बन जाता है। यह सारा किस क्रम या सिलसिले से होता है सुसंगत ढंग से बताना बहुत ही मुश्किल है। यह सब कुछ इस तरह होता है, जैसे माता के उदर में गर्भ बढ़ता जाए, प्रतिमास नया आकार लेता जाए और अंत में नौ मास पूरे हो जाने के बाद एक नये बालक के रूप में इस संसार में जन्म लेकर प्रकट हो जाए। नींव के पत्थर कभी दिखाई नहीं देते। इसी तरह उपन्यास या कहानी में भी लेखक का पूर्वचिंतन दिखाई नहीं देता। किन्तु दिखाई न देने वाली नींव का उसपर खड़े भवन को आधार होता है, उसी तरह कहानी या उपन्यास को भी लेखक के पूर्वचिंतन का बड़ा सहारा होता है। लेकिन एक बार कहानी प्रारम्भ हुई कि उसके पात्र लेखक के हाथ की कठपुतली बनकर नहीं रहते। वह स्वच्छन्दता से स्वयं ही बढ़ते जाते हैं। 'ययाति' में भी ययाति, देवयानी, शर्मिष्ठा, और कच—चारों प्रमुख व्यक्ति-रेखाएं इसी तरह विकसित हो गई हैं।

अभी मैंने सकल्पित उपन्यास को माता के गर्भ में बढ़ने वाले शिशु की उपमा दी है किन्तु मानव-जीवन में प्रसूति के लिए नौ मास पर्याप्त हो जाते हैं जबकि यही समय इस तरह के उपन्यास लेखन के लिए बहुत अल्प या बहुत प्रदीर्घ भी हो जाता है। 'उल्का' उपन्यास मैंने तीन सप्ताह में पूरा किया था। 'ययाति' को लिखना प्रारम्भ करने के बाद उसके पूरा होने में छह-सात वर्ष बीत गए। दो बार 'ययाति' के सृजन में बाधा पड़ी और दो-दो वर्ष तक लिखना बंद रहा। फिर भी इस उपन्यास ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। प्रत्यक्ष जीवन में कई व्यावहारिक बातें साहित्य-सृजन के लिए आवश्यक भाववृत्ति (*mood*) को बिगाड़ देती हैं। बालक तितली पकड़ने जाता है उसे लगता है अब तितली हाथ में आ ही गई समझो किन्तु तभी तितली फड़फड़ाती हुई फुर से उड़ जाती है—कुछ ऐसा ही उपन्यास लेखन में व्यवधान पड़ने पर हो जाता है। पहले भी अनेक बार मैंने इस बात का अनुभव किया था। किन्तु ययाति की कथा जिस परिस्थिति में मन में

प्रस्फुरित हुई थी वह फिर भी चारों ओर ज्यों की त्यों बनी होने के कारण उपन्यास सृजन के प्रारम्भ में रही भाववृत्ति बीच में दो बार बड़े-बड़े अन्तराल पड़ने के बावजूद मैं फिर से ला सका।

महाभारत में ययाति की कहानी में कच कहीं नहीं आता। संजीवनी विद्या प्राप्त करने के बाद वह देवलोक चला जाता है और फिर उस कहानी में कभी वापस नहीं आता। किन्तु मेरे उपन्यास की कथावस्तु में कच का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यती ययाति और कच की व्यक्ति रेखाएं मेरे मन में जैसे जैसे खिलती गईं वैसे-वैसे उपन्यास का ताना-बाना सुदृढ़ होता गया।

मेरे उपन्यास का ययाति महाभारत का ययाति नहीं है। देवयानी और शर्मिष्ठा भी महाभारत की कहानी से काफी भिन्न हैं। मैं स्वीकार करता हूं कि किन्हीं प्रमुख पौराणिक या ऐतिहासिक व्यक्ति रेखाओं में इस तरह मनमाने परिवर्तन करने का ललित साहित्य के लेखक को अधिकार नहीं है। किन्तु ययाति की कहानी महाभारत का एक उपाख्यान है। शकुन्तला के आख्यान की तरह ही ययाति का आख्यान इस ग्रंथ में आया है। शकुन्तला की मूल कथा में कालिदास ने अपनी नाट्य कृति का सौन्दर्य बढ़ाने के लिए जानबूझ कर अनेक परिवर्तन किए हैं। किन्तु मूल कथावस्तु की जानकारी न रखने वाले पाठक को वे कतई अखरते नहीं। इसका कारण यह है कि मूल कथा का आधार लेकर कालिदास ने एक पूर्णत: नयी और अत्यंत सुन्दर नाट्यकृति की रचना की है।

लेखक के नाते मैं अपनी सभी मर्यादाओं को भली भांति जानता हूं। इस शारदा के मन्दिर में कालिदास उच्चासन पर विराजमान हैं। इस मन्दिर में भीड़ कर रहे भक्तगणों में एक कोने में खड़े होने का भी मुझे स्थान प्राप्त होगा इसमें किसी ने सन्देह व्यक्त किया तो वह उचित ही होगा। कालिदास की रचनाओं का उल्लेख मैंने केवल इसलिए किया ताकि पौराणिक उपाख्यानों में कितने परिवर्तन करने का अधिकार लेखक को हो सकता है यह बात स्पष्ट हो जाए।

किसी ललित रचना का अंतिम स्वरूप लेखक के आंतरिक तथा साहित्यिक व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। उसकी सभी रुचि-अरुचियां उसकी रचना में प्रतिबिंबित हो जाया करती हैं। उपन्यास में यद्यपि कथावस्तु का स्थान मध्यवर्ती और महत्त्वपूर्ण होता है उस कहानी को काव्यात्मकता मनोविश्लेषण और जीवन के किसी सत्य पहलू का साथ मिल जाने पर उसमें ठोसपन आ जाता है। ययाति में यही प्रयास किया गया है। वह कहां तक सफल रहा यह तो पाठक ही तय कर सकते हैं।

यह उपन्यास संयम का पक्षधर है। भारतीय संस्कृति ने सुखी जीवन के आधार के रूप में संयम के सूत्र पर ही हमेशा बल दिया है। यह समाज जब भी अर्थहीन वैराग्य की ओर अवास्तविकता से झुका है भौतिक समृद्धि की ओर इस संस्कृति ने अनजाने पीठ फेर ली है। विगत तीन शताब्दियों में विज्ञान के सहारे पली यान्त्रिक संस्कृति संसार के जीवन की स्वामिनी बनती जा रही है। इस

सस्कृति का शिकार बना इसान भोगवाद को ही जीवन का मध्यवर्ती सूत्र मान कर जीने की कोशिश कर रहा है। किंतु भारतीय सस्कृति म बताया गया चरम वैराग्य जिस तरह मानव को सुखी नही कर सकता उसी तरह यात्रिक सस्कृति म बखाना गया अनिर्बंध भोगवाद भी आजकल के मानव को सुखी नही कर सकेगा।

मनुष्य के लिए जैसे शरीर है वैसे ही आत्मा भी है। दैनिक जीवन म जब इन दोनो की न्यूनतम भूख मिट सकेगी तभी जीवन म सतुलन बना रह सकेगा। हजार हाथो से भौतिक समृद्धि उछालते, बिखेरते आने वाले यत्रयुग म इस सतुलन को बनाए रखना हो तो व्यक्ति को अपने सुख की भाति परिवार और समाज के सुख की ओर भी ध्यान देना पडेगा। केवल उनके लिए ही नही बल्कि राष्ट्र और मानवता के लिए भी उसे कुछ त्याग करने के लिए तैयार रहना पडेगा। परिवार, समाज, राष्ट्र, मानवता और विश्व के केंद्र म स्थित परमशक्ति के साथ अपनी प्रतिबद्धता को जो जानता है और मानता है वही भोगवाद के युग म भी जीवन का सतुलन बनाए रख सकेगा। 'ययाति' का सन्देश यही है। व्यक्ति और समाज के जीवन में यह सतुलन रहा तभी जनतत्र और समाजवाद के आधुनिक जीवन मूल्य खिल पाएगे, अन्यथा वह असम्भव है।

कोल्हापुर
१५ अगस्त, १९७६

—वि० स० खाडेकर

ययाति

स्वय ही ठीक तरह से नहीं जानता क्या मैं अपनी आपबीती सुना रहा हू। क्या इसलिए कि मैं एक राजा हू ? लेकिन क्या वास्तव मे मैं एक राजा हू ? नही मैं एक राजा था!

राजा रानी की कहानिया लोग बड़े चाव से सुनते है। उनकी प्रणय कथाओ मे आम दुनिया वैसे ही रम लिया करती है। जाने माने शायर उन कथाओ पर न रो शायरी और कविताए भी रच डालते हैं।

मेरी कहानी भी एक प्रणय-कथा—नहा, नही! पता नही वह किस किस्म की कहानी है! जानता हू कवि मानस का मोह लेने लायक उसमे कुछ भी नही है। लेकिन आज मैं यह कहानी इसलिए नही सुना रहा कि वह एक राजा की कथा है। इस कहानी की जड मे न तो किसी तरह का अभिमान है, न अहकार और न ही है किसी बात का प्रदर्शन। ये तो राज-वस्त्र की धज्जिया हैं, कोई इसका प्रदर्शन भला किसलिए करेगा ?

राजवश मे जन्मा इसलिए मैं राजा बना राजा की हैसियत से जिया। इसमे मेरा न तो कोई गुण है न दोष। हस्तिनापुर के महाराजा नहुष के पुत्र के रूप मे परमात्मा ने मुझे जन्म दिया। पिता के बाद राजगद्दी पर सौंपा जा बैठा इसमे भी कोई बड़प्पन है ? राजप्रासाद के शिखर पर जा बैठे कौए को भी लोग बड़े कुतूहल से देखा करते हैं!

राजपुत्र न होकर मैं यदि कोई ऋषिकुमार हुआ होता तो किस तरह का जीवन बन गया होता मेरा ? शरद की नृत्य मग्न चान्दनी रात-सा या शिशिर की अधेरी रात सा ? क्या पता! किसी आश्रम मे पला होता तो क्या अधिक सुखी बन जाता ? नही! इस प्रश्न का उत्तर खोजते खोजते मैं हार चुका हू। रह-रहकर एक ही विचार मन मे आता है कि शायद तब मेरी जीवन-कहानी बिल्कुल ही मामूली सी हो गई होती किसी वल्कल जैसी। विविध रगो के ताने-बाने से बुने राजवस्त्र का रूप उसे कभी प्राप्त नही होता। जो भी हो आज भी इस राज वस्त्र की सभी छटाए मेरे मन को भाती नही है।

तब भी क्या मैं आज अपनी जीवन-कहानी सुनाने बैठा हू ? कौन-सी बात मुझे इसकी प्रेरणा दे रही है ? जख्म खोलकर दिखाने से मन का दुख हल्का हो

के आसुओ म अभाग मन का दावानल बुझान की शक्ति होती है। मेरे मन को कही उन्ही आसुओ की चाह तो नही ?

जो भी हो सच तो यह है कि इस कहानी से मेरा जी भर आया है सावन भादो क बादलो से भरे आकाश सा ! दिन देखा न रात बस इसी कहानी पर सोचता रहता हू। मन ही मन सोचता हू शायद मेरी इस कहानी को सुनकर किसीको जिन्दगी की राह म मुह बाए पडे गढे और खाइया दिखाई दें और वह समय पर चेत जाएगा। यह कल्पना मन को बडा सुख पहुचाती है लेकिन मात्र पल दो पल क लिए ! तुरन्त ही मन कोसता है कि यह अपने-आपको धोखा देना है। गुरुपत्नी पर मोहित होकर अपना मुह हमेशा के लिए काला किए बैठे चन्द्रमा की कहानी को कौन नही जानता ? क्या दुनिया जानती नही कि अहल्या क सौन्दय से उल्लू बन इन्द्र को हजारो घावो का प्रसाद मिला था ? दुनिया गलती करती है गलतियो क बारे म सुनती है लेकिन सबक कभी सीखती नही ! हर आदमी जिन्दगी क अन्तिम मोड पर कुछ सयाना अवश्य हो जाया करता है लेकिन यह समझदारी दूसरो की ठोकरों से नही बल्कि उसके अपने जख्मो से आया करती है। यह सब जब सोचता हू तो लगता है आखिर किसलिए सुनाई जाए यह अजीबो गरीब कहानी ? लताओ पर कई फूल खिलत है। उनम स कुछ देवी देवताओ की मूर्तियो की शोभा बढाते हैं। उन्ह भक्तो के नमस्कार प्राप्त हो जाया करते हैं। कुछ फूल सुरबालाओ की केशभूषा का शृगार बढाते हैं। महलो की शय्याओ पर होने वाला विविध विलास वे अपनी नन्ही नन्ही आखो स देखा करते हैं। कुछ फूल किसी पागल के हाथ लग जात है। देखत ही देखते वह उन्ह मसलकर फक देता है। इस दुनिया म पदा होन वाल इसानो का भी यही हाल होता है। कुछ को बहुत लम्बी उम्र मिलती है कुछ असमय ही मर जात है। कुछ वभव की चरम चोटी पर पहुच जात हैं तो कुछ असीम गरीबी की खाई म गिर जाया करत हैं। कोई दुष्ट होत है कोई सुष्ट ! कोई बदसूरत कोई खूबसूरत ! लेकिन अन्त म य सारे फूल धूल म मिल जाया करत हैं। उनम यही एक समानता होती है। इनम स किसी फूल का अपनी कहानी सुनात किसने देखा है ? फिर आदमी ही अपने जीवन को इतना महत्त्व क्यो दता जा रहा है ?

▫

जिन्दगी क्या है ? पीछे घना झखाड आग गहरा जगल ! अज्ञात क अधेरे म तो यह और भी डरावनी लगती है। कभी भूला बिसरा किन्ही झिलमिल सितारो का टिमटिमाता धूसर प्रकाश इस जगल की पगडडिया तक आ जाता है। इन्ही पग डण्डियो स होन वाली आत्मा की यात्रा को हम लोग जीवन या जिन्दगी का नाम दे देत हैं।

मेरी इस यात्रा म कहने लायक कुछ थोडा बहुत हुआ है। हो सकता है कि यह मेरा कोरा भ्रम हो ! लेकिन वाकई म मुझ ऐसा लगता है। बाल ययाति, किशोर

ययाति, युवा ययाति और प्रौढ ययाति सारे एक ही थ, लकिन आज का ययाति उन सबस कुछ भिन्न हो गया है। वह उन्ही सबके शरीर म रहता तो है लकिन उन सारी चीजो का अब देखन लगा है जो उन्ह कभी दिखाई नही दी थी। सबको वे चीज़ें दिखाई दे सकें—धुधली धुधली-सी ही सही—इसीलिए अपनी कहानी, अपनी आपबीती सुनाने का मोह उसे हो रहा है।

बचपन की स्मृतिया मयूर-पख की भाति कितनी नाजुक कितनी लुभावनी और फिर भी कितनी बहुरगी होती हैं! मैं देख रहा हू मेरी पहली स्मृति बता रही है कि अग्नि और फूल एक दूसरे का गल लगाए बठे हैं जुडवा भाइयो की तरह!

शुरू से ही मुझे फूलो स बहुत प्यार रहा है। मैं नन्हा-सा था तभी से कहते हैं कि राजप्रासाद स दिखाई देन वाले खिले हुए उद्यान की तरफ मैं घटो देखते हुए बठा रहता। रात होते ही मैं फूट फूटकर रोन लगता था। मुझ थपकी दे-देकर सुलान वाली दासी को मैं बहुत तग किया करता था। कभी चिकोटी काटता कभी लातें झाडता, कभी काट खाता था। उद्यान के सारे फूल तोडकर ले आओ और मेरे पलग पर बिछा दो, तभी मैं सोऊगा—एक बार मैंने एक दासी को आदेश दिया था। उसने हसते हसते यह बात दूसरी को दूसरी ने तीसरी को बताई थी और इस तरह कुछ कुतूहल कुछ सराहना की भावना से यही बात बातो ही बातो म सभी दासियो तथा सबको तक पहुच गई थी। सभी इसकी चर्चा कर रहे थे।

मा न भी शायद मेरी इस बात को सराहा था। पिताजी के सम्मुख मुझे खडा कर उसने कहा 'अजी, सुना आपने, अवश्य ही हमारा यह लाडला कोई बडा कवि बनन वाला है।'

तुच्छता से हसकर पिताजी बोले, 'क्या कहा, कवि? भई कवि बनकर क्या मिलन वाला है ययू को? कवि का काम तो दुनिया की सुन्दरता का वर्णन करना मात्र है! लेकिन उन सभी सुन्दर वस्तुओ का जी भर उपभोग केवल सूरमा ही कर सकते ह। मैं चाहता हू कि हमारा ययू एक शूर, वीर सूरमा बने। एक, दो नही सौ अश्वमेध वह करे। हमारे पूवजो म महाराजा पुरूरवा ने उवशी जसी अप्सरा को प्रेमिका बना लिया था। स्वय मैंने भी देवताओ को पछाडा है। इद्रासन पर विराजमान होने का आनन्द लिया है। ययू को इसी परम्परा को आग चलाना होगा।'

पिताजी की य सारी बातें मैंने सुन तो ली, लेकिन समझ मे कितनी आइ पता नही! आगे चलकर बडा हो जान पर भी मेरे पराक्रम की सराहना करते समय मा पिताजी के इन उदगारो का बार-बार उल्लेख किया करती थी, इसलिए वे सारी बातें मुझ कण्ठस्थ हो गई थी।

अग्नि की याद भी कुछ एसी ही है। मा उसे भी बार बार सुनाया करती थी। धनुर्विद्या की शिक्षा मैंने पूरी कर ली तब पिताजी ने साल भर के लिए मुझे एक आश्रम म रखन का निर्णय किया। जब आश्रम जाने को निकला तब मैं कोई दुधमुहा बच्चा नही था, लेकिन मा का प्यार अधा होता है। सोलह वष का ययू अब साल भर के लिए हम छोड कही दूर जाकर रहेगा इस कल्पना म वह किसी अबोध

बच्ची के समान बार बार आखें पोछ रही थी। अपना कांपता हुआ हाथ कितनी ही बार तो उसने मेरे चेहरे पर घुमाकर उसे सहलाया था। बरसते नयनों से उसने मेरे माथे को चूमा और गद्गद स्वर में बोली "बेटा ययू, मुझे तेरी बडी चिंता है बेटा! तू तो एकदम पागल ही है। बचपन में अग्निशाला में उठती ज्वालाओं को देखकर तू आनंद में नाचने लगता था। एक बार उन ज्वालाओं से कुछ चिनगारियां उड रही थीं। उन्हें देखकर तू तालियां बजा बजाकर चिल्लाया था 'फूल फूल'! उस समय मैंने तुझे रोका न होता तो शायद अवश्य ही तू उन फूलों को तोडने के लिए झपट पडता।' सिसकी दबाकर मां ने आगे कहा, 'बच्चा चाहे जितना बडा हो, मां की नजरों में वह बालक ही रहता है। आश्रम में अपना ख्याल रखकर रहना! वहां की नदियों में शायद मगरमच्छ और घडियाल होंगे, वन में जंगली जानवर दिखाई देंगे, कहीं पर भी व्यर्थ ही जान जोखिम में मत डालना।'

०

यह स्मृति तो काफी पहले की रही, लेकिन उससे पहले की कुछ बिसराई-सी और कुछ सुनी सुनाई सी कई स्मृतियां मेरे अंतस्तल में पडी हैं। लेकिन उन्हें फिर याद करने में, उनका रस लेने में अब मुझे कोई रुचि नहीं है, जैसे वे स्मृतियां घनघोर घटाओं में से हौले से झांकने वाली चांदनी हों। फिर भी उन दिनों की एक याद मन में एकदम पक्की बैठ गई है, जख्म की निशानी सी। उस याद का अर्थ अभी परसों तक भी मेरी समझ में नहीं आ रहा था, लेकिन अब—जीवन के प्रारंभ में अर्थहीन लगने वाली बातें ही जीवन के अंतिम चरणों में बहुत ही गहरा अर्थ रखने वाली प्रतीत होने लगती हैं।

मेरी मां की एक प्रिय दासी थी—कलिका। मैं भी उसे बहुत चाहता था। कभी कभी वह मेरे सपनों में भी आया करती थी। क्यों, यह तो मैं लाख कोशिशें करने पर भी समझ नहीं पाया था। उस समय मेरी आयु मुश्किल से छह वर्ष की होगी। खेल ही खेल में कलिका ने मुझे पकड लिया और कसकर सीने से भींच लिया। उसके बाहुपाश से मुक्त होने के लिए मैं छटपटाता रहा। लेकिन तभी उसने अपनी पकड और भी सख्त कर ली। मन में आया, इस जोर से काट खाऊं और 'कसी रहा'! कहकर तालियां पीटता भाग निकलूं। तभी मेरे माथे को अपनी छाती पर भींचते हुए उसने कहा, "बडे नटखट होते जा रहे हैं युवराज आजकल! बचपन में दूध पिलाने के लिए तो आपको कलिका की आवश्यकता हुआ करती थी! तब कैसे चुपचाप पडे रहते थे जनाब मेरी गोद में! और अब..."

चकित होकर मैंने पूछा, "क्या मैं तुम्हारा दूध पीता था?"

हंसते हंसते कलिका ने गरदन हिला दी। पास ही उसकी लडकी अलका खडी थी। होगी मेरी ही उम्र की। उसकी ओर निर्देश करती हुई कलिका बोली, "अपनी बांह में जन्मी इस बच्ची को मैंने बाहर का दूध पिलाया और आपको... सब कुछ भुला दिया आपने?"

मेरी बेचनी और भी बढ़ गई। पूछा, "तुम मुझे मा का दूध पीते हैं ?"

'जी !"

'तो तुम क्या मेरी मा हो ?'

वह डर गई। भयभीत सी नजर सब ओर दौडाते हुए उसने सहमे स्वर म कहा, "ऐसी वाहियात बातें नही किया करते, युवराज !"

धुधुआते अग्निकुण्ड सा मेरा बालमन भीतर ही भीतर सुलगने लगा। बाहर केवल धुआ ही निकल रहा था—मैं हस्तिनापुर का राजपुत्र था, युवराज था। फिर शैशव मे मुझे एक क्षुद्र दासी का दूध क्यो पिलाया गया ? जब कलिका का ही दूध मैंने पिया है तो क्या न मैं उसे अपनी मा कहकर पुकारू ?

इस विचार के साथ ही मेरे बालमन पर आया बोझ कुछ हलका हुआ। कलिका से लिपटकर मैंने कहा 'आज से मैं तुम्हे मा कहूगा !"

मेरे मुह पर तुरत हाथ रखकर वह बोली "युवराज ! महारानी जी आपकी मा हैं। भला मैं उनकी बराबरी कैसे कर सकती हू ? आखिर मैं तो उनके चरणो की धूल हू !"

मैंने खिसियाकर पूछा 'फिर मा ने मुझे अपना दूध क्यो नही पिलाया ?"

कलिका कुछ नही बोली।

अपने-आप म खोते हुए मैं चीखा, "उसने अपना दूध मुझे क्यो नही पिलाया ?"

खरगोश जैसी डरी सहमी नजर से इद गिर्द देख लेने के बाद मेरे कान म फुसफुसाई "कहते हैं कि छाती का दूध बच्चे को पिलाने पर स्त्री का सौंदर्य मुरझा जाता है ! '

कलिका के उन उदगारो का अर्थ उस समय मेरी समझ म ठीक से आया नही। लेकिन एक बात अवश्य ही मेरे कलेजे म गहरी चुभ गई कि किसी ऐसी बात से मुझे वचित कर दिया गया है जिसपर कि मेरा अधिकार था। एक बहुत बडा सुख मुझसे छीन लिया गया था और वह भी साक्षात जन्म देने वाली मा ने छीना था ! किसलिए ? अपना सौंदर्य बनाए रखने के लिए ! क्या मा भी इतनी स्वार्थी हो सकती है ? नहीं नहीं ! मा को मुझसे कोई प्यार नही है। उसे प्यारा है अपना सौन्दर्य !

जान बूझकर मा से मैं उस दिन पहली बार नाराज हुआ। दिन भर मैंने उससे कोई बात तक नही की। रात म मेरे पलग के पास आकर उसने कितनी बार दुलारा "बेटे मेरे राजा, ययू—!' फिर मेरे माथे पर आहिस्ता आहिस्ता हाथ भी फेरा। हरसिंगार के फूलो की कोमलता उस स्पर्श म थी। मैं कुछ पिघला भी किन्तु बोला नही। आखें भी नही खोली। खिसियाया मन कहता था "काश ! ऋषि मुनियो की वह शाप देने की शक्ति आज मुझम होती ! मा का तुरन्त अचेतन शिला बना देता।"

शब्द की अपेक्षा स्पर्श कभी कभी बहुत कुछ कह जाता है। किन्तु दिल को

हिलाने की क्षमता उसम नही होती। वह काम केवल आसू ही कर पाते है। मेरे गालो पर गरम आसू चूने लगे। तत्काल मैंने आखें खोली। मा को रोती हुई मैंने पहले कभी नही देखा था। मेरा बालमन सकपकाया। उसके गले म अपनी बाह डालकर गाल से गाल रगडते हुए मैंने पूछा 'क्या रोती हो मा ? क्या हुआ तुम्हे ?"

तब भी वह कुछ बोली नही। मुझे हृदय से भीच कर मेरे बालों को सहलाती और आसू बहाती वह पलग पर मौन बठी रही। तुम्हे मेरे सिर की सौगध मा!' आखिर हारकर मैंने कहा। कापते हाथो से उसने मेरा चेहरा ऊपर उठाया। भीगी आखो से एक टक मुझे निहारते निहारते वह गद्‌गद हो उठी। अपना दुख तुझे कैसे बताऊ बेटे ?'

'क्या पिताजी तुमसे नाराज हुए ?'

'नही तो।"

क्या पिताजी की तबीयत खराब है ?

नही नहीं!'

तो क्या आपका प्यारा मोर महल से कही उड गया ?

उस मोर की इतनी चिन्ता नही है मुझे!'

'तो फिर ?'

पता नही मेरा दूसरा मोर कब कहा उड जाए

दूसरा मोर ? कहा है वह ?'

'यह रहा "'कहते हुए उसने मुझे बहुत कसकर अपनी छाती से लगा लिया एकदम भीच ही डाला। फूलों की खुशबू सूघते समय मैं भी ऐसा ही किया करता था। कितनी भी सूघ ल जी भरता ही नही था। लगता था इस फूल को कुचल मसल डालू और उसके भीतर की सारी की सारी खुशबू अपनी ओर खीच लू। मां इस समय ठीक वही कर रही थी। मैं उसका फूल बन गया था।

उसके जबरदस्त आलिंगन से मेरे रोम राम म दद होने लगा। लेकिन मन को अपार सुख मिल रहा था। उसकी आखो का पानी अपनी तजनी से पोछते हुए मैंने कहा नही मा मैं तुम्हे छोडकर कहा नही जाऊगा कभी नही जाऊगा!'

लेकिन समझ म नही आ रहा था कि आखिर मा को यह डर क्या लग रहा है! मैं बार बार उसे कुरेदता रहा। आखिर उसने कहा आज दिन भर से तू मुझसे रूठा है! बोला तक नहा है। सध्या समय तेरा हाथ पकडकर मैंने कहा था चलो बाग म चलें। लेकिन तूने मेरा हाथ झटक दिया और तेवर चढाकर मेरी ओर देखा! अभी यहा पर भी मुझे मालूम है तू जाग रहा था। लेकिन मेरी दुलार भरी पुकारों का तूने कोई उत्तर तक नहीं दिया। इस तरह क्या नाराज हो बेटे ? ययू! मा बाप की दुख बच्चे कभी समझ नहीं पाते! लेकिन बेटा मैं भीख मागती हू तुमसे कम से कम तुम उसकी तरह न करना!

उसकी तरह ? किसकी तरह ? कौन है वह ?'

बचपन म राभम की कहाना मुनत समय मैं उत्सुकता से पूछा करता था—फिर क्या हुआ ?"—उसी उत्सुकता स मैंन मा स प्रश्न किया ' वह कौन ? '

महल म मेरे और मा के सिवा कोई नही था। शायद द्वार के बाहर दासी सोई थी। कान म रखे सोने के नीवट की ज्योति भी ऊघन लगी थी।

फिर भी मा क्यो चारो ओर कातर दृष्टि स देख रही है मेरी समझ म नही आया। वह धीरे स उठी। किवाड बद करके लौट आई। फिर मेरा मस्तक गोद म लेकर उस थपथपाती कोमल लकिन कापत स्वर म बोली, यू यह बात तेरे काफी बडे हा जाने के बाद मैं तुझे बतलाने वाली थी। लकिन, आज तुम मुझस रूठ गए कल शायद नाराज हो जाओग और परसो आपे स बाहर होकर कही चल दोगे वह चला गया है बस ! इसलिए "

वह ? वह कौन ?"

' तेरा बडा भाई।"

क्या मेरे भाई है ?"

' है बेटे ! '

बडा भाई है ?"

हा ! '

कहा है वह ?"

भगवान ही जान ! जहा भी रहे सुखी रहे यही तो मैं भगवान स हर रोज मागती हू।"

मैं एकदम छोटा था तब मैं अलका जस अनेक बच्चा के साथ राजमहल म खेला करता था। कुछ बडा हुआ तो अमात्य, सेनापति, राजकवि कोषपाल, अश्वपाल आदि के बच्चा क साथ खलने लगा। लकिन मुझे इस बात पर रह रहकर निराशा-सी होती थी कि राजप्रासाद म मेरे बराबर का कोई नही है। दास-दासिया के बच्चे मचक पर बठन म हिचकते थ। उद्यान वाटिकाओ म फूला क पौधो को रौन्द-कुचलते तितलियो का पीछा करने का हौसला भी उनम नही हुआ करता था। काश बडा भाई भी आज यहा होता ! तब इन सभी खेला का आनन्द दूना हो जाता। इसी विचार म मैं खो गया।

बचपन कितना भोला, सीधा सादा सरल निमल और एक ही लीक पर चलनेवाला होता है ! बडे भाई की उम्र क्या होगी यह तो मा स पूछना मैं भूल ही गया। वह यदि यहा होता तो पिताजी क पश्चात् राजसिंहासन पर वही विराजमान होता, सारा जीवन मुझे एक मामूली राजपुत्र क नाते ही बिताना पडता ऐसा मत्सर भरा विचार मेरे मन मे भी नही आया। मुझे तो बस वह बडा भाई चाहिए था खलने क लिए और लडने झगडने के लिए भी ! वह कहा है ? क्या करता है ? मा से मिलने क्यो नही आता ? अनेक प्रश्न मन को डसने लगे, जसे मधुमक्खिया अपने छत्ते से निकलकर भिनभिना उठी हो। डरते डरत मैंन मा से पूछा, उसका नाम क्या है मा ?"

यति।"

'उसे गए कितने दिन हो गए?"

तेरे जन्म से साल-डेढ़ साल पहले ही वह चला गया। बिल्कुल अकेला चल दिया।'

मा का स्वर अतीव आहत हो गया था। लेकिन बात मेरे ध्यान में नहीं आई। बिल्कुल अकेला चल दिया! बहुत ही बहादुर और निडर होगा यति। यही भाव मा के उस वाक्य से मेरे मन में उठा।

क्या वह बिना तुम्हें बताए ही चल दिया? मैंने मा से पूछा। उसने केवल गर्दन हिलाकर उत्तर दिया। उस दिन की विकल याद से मा व्याकुल हो उठी मानो किसी ने उनके कलेजे में चुभी फांस को हिला दिया हो। लेकिन मेरा मन तो उस साहसी यति पर मंडरा रहा था जो मा को बिना बताए ही राजप्रासाद से बिल्कुल अकेला चल दिया था। मैंने मा से फिर पूछा किस समय चल दिया वह?"

आधी रात को! बीहड़ जंगल में! खासी डेढ़ प्रहर रात बीतते तक मैं जाग रही थी। उसे समझा रही थी। फिर न जाने कब आंख झपकी। पौ फटने से पहले आंख खुली। देखा यति अपनी शय्या पर नहीं था! घने अंधेरे में सेवकों ने बहुत खोजबीन की पर वह कहीं नहीं मिला!

इसे कहते हैं भाई!' मन ही मन मैंने सोचा। तुरन्त ही कथा-कीर्तनों में चमत्कारों का वर्णन आने मन में जाग उठने वाली उत्सुकता ने मुझे आ घेरा। मैंने मा से पूछा यति को लेकर तुम वहां गई थी मा?

एक महात्मा के दर्शन करने। विवाह हुए अनेक वर्ष बीत जाने पर भी मेरे कोई सन्तान नहीं हो रही थी। इसलिए हम दोनों उस महात्मा के आश्रम में जाकर रहे थे। उनके आशीर्वाद से ही मेरे यति हुआ। प्रतिवर्ष उसके जन्मदिन पर मैं उसे उन महात्मा के दर्शन कराने ले जाया करती थी। जिस दिन वह चला गया उस दिन मैं वहां से लौट रही थी। मुझे पता चल गया था कि यति बेचैन है। उसने वहीं रहने की जिद की थी। इसीलिए मैंने गुस्सा किया था। खूब डांटा फटकारा था। बछड़े को नकेल डालकर बैलगाड़ी के पीछे बांधकर ले जाया जाता है न? ठीक उसी तरह मैं उसे लगभग घसीटकर आश्रम से वापस ले आई थी। उसके रूठने-बौखलाने की ओर मैंने कोई ध्यान नहीं दिया। वह क्या चाहता था

क्या चाहता था वह?

टप-टप आंसू बहाती हुई मा बोली वह तो मैं अभी तक ठीक से नहीं समझ पाई हूं। धरम-करम और देवी-देवताओं की ध्यान धारणा का उसे बड़ा शौक था। प्रतिदिन सुबह दासियां पूरे खिले ताजा और कई तरह के खुशबूदार फूल उसके सामने लाकर रखा करती थीं। लेकिन ऐसा कभी नहीं देखा गया कि उनमें से यति ने कुछ उठा लिए हैं और उन्हें जी भरकर सूंघा है। देर-अबेर कभी वह

ने चार फूल उठा लेता और चुपके से किसी पत्थर के भगवान पर चढा देता। उसके खेल भी बडे अजीब ही थे। समाधि मुद्रा मे आखे मूद कर बैठने या कभी किसी चीज़ की दाढी मूछ बनाकर नकली ऋषि बन बैठने म उसे बडा आनन्द आता था। राज धर्म तो उसके रक्त म था ही नही यद्यपि उसके माता पिता दोनो राज परिवार के थे। कभी राजसभा मे गया, तो वहा भी खरगोशी आखो से वह डरा-सहमा सा चारो ओर टुकुर-टुकुर देखते हुए बैठा रहता। लेकिन राज प्रासाद म पधारे किसी तपस्वी सन्यासी से उसकी तुरन्त दोस्ती हो जाती थी। हमने उसकी बहुत खोज की काफी ढूढा। लेकिन आकाश से टूटा हुआ तारा फिर भला किसीके हाथ लगा है? मेरा यति भी वैसे ही "

मेरे जन्म से पहले का अपना यह दुखडा मा यथासम्भव शान्ति के साथ मेरे सामने रो रही थी। लेकिन अन्तिम क्षण उसके धीरज का बाध टूट गया। 'मेरा यति भी वसे ही " कहते ही शायद उसकी आखो के सामने उस दिन की उस घने अधेरे अरण्य की वह सुबह फिर आ खडी हुई होगी। कहते-कहते वह हकलाई रुकी, कापने लगी जसे करुण राग नि सृत करती हुई सितार के तार अचानक टूट गए हो। पल भर उसने खोई खोई नजर स मुझे देखा। मैं डर गया। तुरन्त ही उसने एक लम्बी आह भरी और मुझे गल म लगाकर वह फूट फूटकर रो पडी। समझ म नहा आ रहा था कसे उसे सान्त्वना दू।

मा मा" कहता हुआ मैं उससे अधिक लिपटता जा रहा था और स्पर्श से अपनी भावना व्यक्त कर रहा था। दिल का उफान कुछ शान्त हो जाने के बाद वह बोली 'यति पहली बार मुझसे रूठा तब तुम्हारी ही उम्र का था, ययू! उसके रूठने की ओर मैंने कोई ध्यान नही दिया था। लेकिन, बेटे, आज तुम्हें भी रूठा हुआ देखकर मेरे दिल का वह पुराना घाव फिर हरा हो गया और उसम स जसे जोर से खून बहने लगा है। आज मैं तुम्हारे पास केवल मन की भयभीत अवस्था के कारण वह सारा राज खोल बैठी हू जिस राज ही रखने का हम दोनो न निश्चय किया था और कम से कम बचपन म तुम्हारे से भी उसे छिपाए रखने की हमारी कोशिश थी। कही ऐसा न हो कि तुम भी यति क समान ही एक दिन चल दो! ययू बच्चे मा की आखो के तारे होते है बेटा!'

सिसकता हुआ मैं बोला नहा मा! यति जैसा मैं तुम्ह छोडकर नही जाऊगा। ऐसा कभी कुछ नही करूगा जिससे तुम्ह दुख पहुचे!

'वचन दो बेटे!"

अपना हाथ उसके हाथ पर रखकर मैंने कहा 'वचन देता हू मा, मैं कभी किसी सूरत म सन्यासी नही बनूगा!'

०

आज भी वह रात आखो के सामने स्पष्ट है पाषाण से बनाई गई किसी शिल्प मूर्ति-सी। बरसो बीत गए लेकिन उसकी स्मृति ज्यो की त्यो बनी है।

कुम्हलाना तो दूर अभी उस मूर्ति की एक रेखा तक धुंधली नहीं हो पाई है।

यह तो नहीं बता सकता कि उस रात मेरी और मा की जो बातचीत हुई उसमे मेरे मन की कितनी और कौन-कौन सी छटाए उभरी थी लेकिन एक बात पक्की है कि उस एक ही रात म मैं देखते ही देखते बडा हो गया। सपनो के ससार से सच्चाई की दुनिया म आ गया ! उस रात दुख से मेरा पहला परिचय हुआ। जिस मा के स्पश म स्वगसुख की कल्पना की थी उस मैंने आठ-आठ आसू रोते देखा था। अनजाने म ही मुझे उन सभी बातो से घृणा होने लगी जो मा को दुख पहुचा गई है।

उस रात मैं चैन से सो ही न सका। बीच ही मे चौंक उठता था। मुझे सपने दिखाई देने लगे थ। एक सपना तो आज तक मुझे अच्छी तरह याद है। आज उस पर हसी भी आती है। उस सपने म मैं सारी दुनिया का राजा बना था। चाबुक फटकारता शहर शहर घूम रहा था। तपस्वी सयासी साधू बाबा जो भी राह म मिल' उसकी पीठ पर कोडे पर कोडे बरसाता हुआ मैं झूमता चला जा रहा था। कोडो के घावो से खून की फुहारें उडने पर तालिया पीटता था।

जी हा उस रात मैं अचानक बडा हो गया। उस रात के दो अधेरे प्रहरो म मुझे मालूम हो गया कि जीवन की सच्चाई क्या है। मेरे एक बडा भाई था और वह सयासी बनने के लिए भाग गया था। सभीने यह बात मुझसे छिपा रखी थी। लेकिन क्यो ? क्या कारण था इस सच्चाई को छिपाने का ? क्या सभी लोग एक दूसरे के साथ इसी तरह आख मिचौली खेला करते है ?

यह भान होने तक तो मेरी दुनिया म फूल हवा या पानी के सिवा कुछ नही था। सुबह मैं सोकर उठता था जब प्रात फूल खिलते हैं। कभी आधी या तूफान आ गया तब भी मुझे कभी डर नहीं लगा। मेरी तो सहज धारणा थी कि शायद पानी के समान हवा पर भी बीच-बीच म तहलका मचा देने की सनक सवार हो जाती है। कलकल बहता झरना देखकर लगता कि मेरी तरह वह भी शायद कोई गीत गुनगुनाता चल रहा है। देवदानवो और यक्ष गधर्वों की कहानिया मुझे बहुत भाती थी लेकिन उनम वर्णित ससार मेरा अपना हमेशा का ससार नही था। स्वप्न और तितलिया फूल और सितारे बादलो को देखकर नाचने वाले मोर नाचते मोरो को देखकर गाने वाले बादल खिलते फूल-सी हसने वाली सुबह और कुम्हलाते फूलो-सी सध्या वसत-बहार के पेड-पौधो और वर्षा ऋतु के इन्द्रधनुष के रग, टप-टप-टप करते हवा से बातें करने वाले घोडे और देवालयो म बजने वाली घनघनाती घटिया नदी किनारे की मुलायम रेत और पलग पर रखा मुलायम तकिया सबने मिलकर मेरे मन म एक जुडी हुई दुनिया बनाई थी। उस रात तक मेरी नजर म प्रकृति और पुरुष दोनो एक रूप ही थे।

कितना सुखद था उस स्वप्निल ससार का अनुभव ! कितने मीठे कितने मधुर ! एक बार मैंने आकाश म गरुड का बच्चा को नहाने हुए देर देखा तो मुझे लगा कि हमारे उद्यान म जो घरगाव है उन्हींके प्रतिबिंब आकाश के आदन म विचर है !

एक बार धूपकाल में बहुत गर्मी पड़ी थी। रोम रोम पसीने से तर था। तभी मुझे खेलने के लिए जाने की इच्छा हुई। सबकी आख बचाकर मैं राजप्रासाद से बाहर निकल पड़ा। लेकिन थोड़ी ही देर में धूप में घूमते घूमते मैं थक गया। पास में ही एक सुंदर वृक्ष अपना पर्णभार तानकर खड़ा था। उसकी छाया में मन की सारी थकान दूर हो गई। मा के आंचल में हसते हसते सो जाने का आभास होने लगा। चलते समय केवल नजर से उस पेड़ से विदा होने को जी नहीं मानता था। मैंने उसकी एक शाखा को कसकर बाहुओं में समेट लिया।

उस रात तक यही थी मेरी दुनिया। वह एक अदभुत और रमणीय स्वप्न था। किसीपर भी गुस्सा आ जाए तो बंदर जैसी फुर्ती से किसी पेड़ पर चढ़ गए और लगे पुकारने भगवान को! अपनी पुकार सुनते ही भगवान नीचे उतर आएगा और उस अपराधी आदमी को जरूर दण्ड देगा यह थी उस दुनिया की अटूट श्रद्धा!

लेकिन कितना ही मधुर कितना भी अदभुत हो था तो वह एक कली का सिमटा हुआ नन्हा-सा संसार ही! उसने भवरे का गुजन नहीं सुना था। सूरज की किरणों के सुनहरे स्पर्श से वह कभी पुलकित नहीं हुआ था। विशाल आकाश पर उस कली ने कभी नजर तक नहीं डाली थी। देवताओं की मनमोहिनी मूर्तियां और कमनीय कामिनियों के वेश शृंगार उस कली ने सपने में भी नहीं देखे थे!

लेकिन कली कब तक कली रह सकती है! आज या कल उसे खिलना ही पड़ता है बड़ा होना ही पड़ता है।

उस रात से मैं भी खिलने लगा बड़ा होने लगा। उस रात मेरे मन में विचार जड़ जमाने लगा कि हो न हो किसी दिन यति का अवश्य खोज निकालूगा उसे मा से मिलाने ले आऊंगा कहूगा तुम मेरे बड़े भाई हो। यह सारा राज्य तुम्हारा है बचपन का चिज्जी बाटकर खाने का आनंद क्या न हम अब भी उठाए?"

उस विचार ने ही मेरे बचपन को समाप्त कर दिया हो सो बात नहीं। मैं छह वर्ष का हो गया था। राजपुत्र होने के नाते अनेक विद्याओं और कलाओं में पारंगत होना मेरे लिए जरूरी हो चला था। पिताजी ने मेरे लिए अनेक गुरुजनों का प्रबंध कर रखा था। शुरू शुरू में तो उन्हें मैं अपना शत्रु ही समझता था। मुझे मल्ल विद्या सिखाने वाले गुरुजी तो राक्षस ही लगते थे। उनके दैत्याकार शरीर से ही उनका मल्ल विद्या सिखाने का अधिकार सिद्ध हो जाता था। लेकिन पौ फटते ही उठने और फिर अखाड़े की लाल मिट्टी छानने से मैं ऊब जाता था। पहले कुछ दिन तो सारे शरीर में इतना दर्द होता रहा था कि कहते भी नहीं बनता। मैंने मा से शिकायत की। तो जिसे आगे चलकर राजा बनना है उसे यह सब करना ही होता है कहकर उसने मुझे समझाने की कोशिश की। तब से मैं यह मंत्र-सा जाप करने लगा था— मुझे राजा बनना है।' प्रारम्भ में मल्ल युद्ध में मैं अक्सर हार ही जाता था। यह विद्या मुझे कभी प्राप्त नहीं होगी ऐसा सोचकर मैं हताश हो जाता था। लेकिन मेरे गुरुजी मुझे ढाढस और धीरज

बघात । कहन मैं तुम्हारा उम्र का था तन बस मक्खन का लौंदा ही था । लेकिन अब मेरी यह बाटु देखो । इसके आगे लोहे की माटी छड भी शायद मुलायम ही लगेगी ।'

उन सात आठ वर्षों म न जाने कितने ही गुरुजनों ने मित्रों ने और ग्रंथों ने मेरे तन मन को आकार दिया।

मैंने चौदहवें वष म पदापण किया तब की बात है। दपण के सामने खडा होकर मैं अपने सुन्दर सुदृढ और गठील शरीर को अतप्त आखों स देख रहा था। मन करता था उस प्रतिबिंब की पुष्ट बाहु पकडकर जोर जोर स हिला दू। उसका सिरहाना बनाकर आराम से सो जाऊ। मुझे वह चित्र याद आ गया जिसमे वक्रासुर का वध कर अपने प्रासाद लौटा इद्र इद्राणी की बाहु पर मस्तक रख कर सो गया है।

इस तरह की कल्पनाए भी मदिरा क समान ही नशीली होती है। पता नही उसी नशे म डूबा मैं कब तक उस दपण क सामन खडा रहा! सहसा चौंककर मुडके देखा। कोई बोल रहा था। मा क ही शब्द थ व। वह रही थी तो पुरुष भी घण्टों दपण क सामने खडे होकर अपने-आपको निहारने लगे हैं! मैं तो समझती थी कि केवल नारी को ही अपने रूप पर गव होता है। अजी ययू अब बडा हो गया है! यह सब देखेगा तो क्या सोचेगा वह!'

मैं मुडकर न देखता तो शायद मा कहती ही गई होती! मेरी मुद्रा देखते ही आ मा! कहकर वह लजा गई फिर अपने स ही हसी। पास आकर मेरी पीठ पर हाथ फेरता हुई बोली ययू देखते-देखत कितना बडा हो गया र! वही मेरी ही नजर न लग जाए बेटा तुझे! तू मेरी तरफ पीठ किए खडा था। मुझे लगा कि शायद महाराज ही दपण के सामने

वह बीच ही म रुक गई। उसकी आखें भर आइ। भीगी नजर म मेरी ओर देखते हुए बोली चलो मेरी एक चिन्ता दूर हो गई।

कैसी चिन्ता ?

कइ साल हो गए उस सम्बन्ध म तुमसे मैंने कुछ भी नही कहा है। लेकिन भीतर ही भीतर मेरा कलेजा धसा जा रहा था!

मा तुम हस्तिनापुर की महारानी हो। किसी दरिद्री ऋषि या अभागे दस्यु की पत्नी नही। तुम्हे किस बात की चिन्ता है ?

लेकिन मैं मा भी तो हू ययू!'

नहीं कौन कहता है ? लेकिन तुम मेरी मा हो!' मैंने कहा। मेरी शब्द पर बल देत समय मेरी नजर फिर स अपने सुदृढ तथा सुदर प्रतिबिंब पर मुडी। दपण म उस प्रतिबिंब को देख मा भी हसी। कुछ देर बाद गभीर होकर बोली सो तो है ही! लेकिन जिसके एक कलश म रखा अमृत विष बन गया हो, उसे अपने दूसरे कलश की चिन्ता तो होगी ही!

जाहिर है मा यति क बारे म कह रही थी। अपने दिल की इस चुभन को

उसने मुझे सुनाया तब मैं बहुत छोटा था और उसके निवारण के लिए कुछ भी कर सकने की स्थिति में नहीं था। लेकिन अब मैं बड़ा हो गया था। मल्ल विद्या, धनुर्विद्या अश्वारोहण, युद्धकला आदि सभी में मैं निपुणता प्राप्त कर चुका था। अब यति की खोज में सारा आर्यावर्त छान मारना मेरे लिए कतई कठिन नहीं था। मैंने मा से कहा, 'मा तुम पिताजी से अनुमति दिला दो, मैं सारी धरती उलट पुलट कर यति को खोज लाता हू और उसे तुम्हारा दर्शन करने ले आता हू।"

उसके होठ कुछ फड़के लेकिन पलकें भीग आइ। अपने-आपको सवारते हुए बोली 'अरे पागल भला तू यति को कैसे खोज पाएगा? वह यदि आज अचानक मेरे सम्मुख भी आ खड़ा हो गया, तो मैं भी उसे पहचान नहीं पाऊगी। तुमने तो उसे कभी देखा भी नहीं है! पता नहीं वह कहा होगा किस हालत में होगा कैसे जिन्दगी काट रहा होगा किस नाम से रहता होगा इस दुनिया में होगा भी या "

बोलते बोलते उसका गला भर आया। शब्द मुह में ही जमने लगे। यति ने उसके दिल को गहरी ठेस पहुचाई थी। ऐसी चोट देकर चला गया था जिसे किसी को भी—शायद पिताजी को भी बताने की उसपर पाबन्दी-सी लग गई थी। मा की हालत तो ऐसी थी जैसे कोई बेकाबू घोड़े पर से धड़ाम से नीचे फेंक दिया गया हो, चोट ऊपर से दिखाई नहीं देती हो, अग प्रत्यग दर्द से फटा जा रहा हो, और फिर भी कराहने तक की मनाही हो। सात साल तक मैं कितने ही गुरुजनो से शिक्षा लेता रहा कई बार शिकार खेलने गया नाना महोत्सवो में युवराज के नाते शान से घूमा, लेकिन एक स्थान पर भी किसीने यति के नाम का उल्लेख तक कभी नहीं किया। मैं तो लगभग भुला ही बैठा था कि मेरे एक बड़ा भाई है और सर्वोपरि वनन की धुन में वह बचपन में कहीं चला गया है!

लेकिन मा ने उस सारी स्मृति को ताजा कर दिया। मुझपर आखें गड़ाए मा ने कहा 'ययू तुम जल्दी बड़े हो गए हो शरीर भी तुम्हारा सुडौल और हृष्टपुष्ट हो गया है कला और विद्या आदि में भी तुम निपुण हो गए हो अब तुम्हारा विवाह करा देने में कोई हर्ज नहीं है। तुम्हारा विवाह हुआ कि मेरी बचीखुची चिन्ता भी दूर हो जाएगी। मैं आज ही महाराज से यह बात छेड़ती हू।"

पिताजी का दस्तूर मा था कि यति के बारे में किसीसे न कोई बात कहते, न किसीकी सुनते। लेकिन अन्य मामलो में वह माताजी की मुट्ठी में थे।

उसकी कोई बात वे टालते नहीं थे। किसी इच्छा को अस्वीकार नहीं करते थे। एक बार मेरे एक गुरुजी ने पिताजी को सुझाव दिया था कि कुछ दिन के लिए मुझे किसी आश्रम में रखें। 'आप ठीक ही कहते है। पेड़ को सही विकास के लिए वर्षा की तरह धूप मिलनी भी आवश्यक ही है। पिताजी ने गुरुजी को उत्तर दिया था। ये बातें मेरे सामने ही हुई थी। मैं चकरा गया था। जिस दिन से मालूम हुआ कि यति ने मा को कितना दुख पहुचाया है आश्रम-जीवन के प्रति मेरे मन में अनजाने ही एक घृणा पैदा हो गई थी। लम्बी-लम्बी-मूछवाले वे जटा

बाद ही अपने विवाह की सोच सकता हू।

एक वीर पुरुष के नाते दुनिया भर में अपनी साख जमाने की दुर्दम इच्छा से मतवाला होकर मैं मचल रहा हू यह बात मा के ध्यान में शायद आ गई थी। उसने पिताजी के सामने मेरे विवाह की बात नही उठाई।

विद्याजन की अवधि मे मैं कितना बदल गया स्वय मुझे भी कोई कल्पना नही थी। आसपास के भू भाग का परिणाम होकर नदी का स्वरूप बदल जाता है ठीक उसी प्रकार मेरा मन भी तेजी के साथ बदलता गया था। धनुर्विद्या का पहला पाठ सीखते समय दृष्टि और चित्त को एकाग्र करने म जो अलौकिक आनन्द है उसे मैंने पहले-पहल अनुभव किया था। बचपन म महल की खिडकी खोलते ही सामने दिखाई देने वाले नाना रगो के फूलो को देखकर मेरा तन पुलकित हो जाता था। लेकिन तीर का निशाना साधते समय इसके ठीक उल्टा मैंने अनुभव किया। लगा कि आसपास की सारी दुनिया ही तेजी के साथ छटने लगी है जसे कोहरा पल भर म छट जाता है। मारा अस्तित्व मानो मिट गया है। बगनी पहाडिया, हरे पेड नीला आकाश किसीका कोई अस्तित्व ही नही बचा है। मेरी दुनिया म तो बस एक ही चीज बची है वह काला बिन्दु जिसपर मुझे अपना तीर मारना है। वह काला बिन्दु ही मेरी एक मात्र दुनिया बन गया है।

इस नई अनुभूति स भी मैं रोमाचित हो उठा। निर्जीव वस्तु पर अचूक तीर चलाने म मैं बहुत जल्दी निपुण हो गया। अब सजीव प्राणियो का शिकार करने की बारी आई। इतने वर्ष बीत गए लेकिन मेरे पहले अचूक निशाने की याद आते ही मन थर्रा उठता है। एक ऊचे पेड पर आराम स बैठी वह एक मादा पक्षी थी। पक्षी ? नही एक ध्यानमग्ना योगिनी थी वह ! नील आकाश की पृष्ठभूमि पर वह एक मनोहर चित्र के समान लगती थी। पलक मारते ही यह चित्र सजीव होकर वहा से उड जाने वाला था। सूरज ढल रहा था। शायद किसी घोसले म नन्हे नन्हे बच्चे जिनके पर भी न उग होगे उसकी राह देखते होंगे। लेकिन मुझे या मेरे गुरु को उसके परिवार से या मुख दु ख स कोई लेना-देना नही था। मैं धनुर्विद्या म निपुण बनना चाहता था और मेरे गुरुजी मुझे वह विद्या पढाकर अपनी जीविका चलाना चाहते थे। उस नन्हे मासूम जीव पर तीर चलाते समय असीम वेदना स मेरा जी भर आया था। प्रकृति के साथ आज तक रहा मेरा निकट का नाता उस क्षण टूट गया। तब तक शायद हृदय के किसी कोने म मैं एक कवि था। उस क्षण वह कवि मर गया।

मैं नुरवीर बना अवश्य, किन्तु आसानी स नही। मेरे अन्दर बैठे कवि की हत्या कर उसकी समाधि पर इस शूरमा ने अपना सिंहासन खडा किया था। मेरी उस अचूक निशानबाजी की उस रात भूरि भूरि सराहना की गई। राजमहल म स्वय मा ने उस पक्षी का मास पकाया। उसने वह बहुत ही स्वादिष्ट बनाकर पिताजी को और मुझ परोसा स्वय भी खाया। पिताजी ने हर कौर के साथ मेरी प्रशसा क पुल बाधते हुए बड़े चाव स वह मास खाया। लेकिन मेरे तो एक-एक कौर

गले उतारे न उतरता था। रात को दो चार बार मैं नींद से चौंककर जाग उठा। एक बार आभास हुआ कि मेरे तीर से मर्माहत वह पक्षी छटपटाता क्रंदन कर रहा है। फिर जागा तो उसके बच्चों की चहचहाहट सुनी। कई वर्ष पहले गायब हुए अपने बेटे की याद में अपनी मां अब भी तड़पती-अकुलाती है, लेकिन वही मां पक्षिया की एक मां की मृत्यु को हंसते हंसते देख सकती है। उस निरीह प्राणी के शरीर को क्षत विक्षत कर देने वाले अपने पुत्र को सराहती है इस गूंगी मां का मांस चाव-ताव से लपक लपककर खाती है वह भूल जाती है कि इसी मांस का कण-कण अंतिम क्षण तक अपने बच्चों के लिए छटपटाता था। जीवन के अंदर पाए जाने वाले इस विचित्र विरोध से मैं चकरा गया।

दूसरे दिन शाम को मंदिर हो आने के बाद वृद्ध अमात्य राजमहल में आए। मैंने अपना सन्देह उनके सामने रखा। वे हंस और बोले युवराज अभी आप बहुत छोटे हैं लेकिन दुनियादारी का चक्कर देखते देखते मेरे बाल पक गए हैं। इस बूढ़े की अनुभवी बात हमेशा ध्यान में रखिए—यह दुनिया आदमी के मन की दया पर नहीं बल्कि उसकी कलाई की ताकत पर चला करती है। आदमी केवल प्रेम पर जीवित नहीं रह सकता। वह दूसरों का पराभव करके ही जिया करता है। आदमी की इस दुनिया में चल रही सारी दौड़ धूप केवल भोग के लिए होती है। त्याग की बातें मन्दिर पुराण और कीर्तन में ही ठीक लगती हैं लेकिन जीवन कोई मंदिर नहीं वह एक समरभूमि है।"

उसके बाद अमात्य ने कई वैदिक कहानियां मुझे सुनाई, पशु पक्षियों की मजेदार बातें भी बताई। सबका सार एक ही था—दुनिया शक्ति से चलती है प्रतियोगिता में जिया करती है और उपभोग के लिए दौड़धूप किया करती है।

उस दिन से मैं शक्ति का उपासक बन गया। मानने लगा कि क्रूरता और शूरता जुड़वां बहिनें हैं।

बचपन में मैं राजमहल में मृग शावकों के साथ खेला करता था। वही मेरे सहचर थे। अब मैं वन के हर मृग का शत्रु बन गया। हिरनों की चपलता का बचपन में मैं कायल था। अब उनकी उसी चपलता पर मुझे क्रोध आने लगा। मां के महल के द्वार पर मैंने उछल फांद करते हिरन का टेढ़ा मेढ़ा चित्र जब पांच साल का था तब बनाया था। अब उसी चित्र को मैं हिरनों के रक्त से रंगने लगा। एक बार मां की बहुत ही प्रिय एक हिरनी की पीठ में कोई घाव हो गया था। उस घाव पर मक्खी बैठ जाती तो हिरनी बड़ी बेचैन हो तड़प उठती थी। पिताजी के पास मयूरपंख का एक पंखा था। उस पंखे से हिरनी को हवा करता मैं घण्टा बैठा रहा करता था। अब तो हिरनों के शवों के साथ मेरा संबंध तभी आता था और उतना ही आता था जब मेरे द्वारा मारे गए हिरनों की खाल उधेड़ कर पकाकर सेवक मुझे दिखाने के लिए ले आते। बड़े अभिमान के साथ मैं उन पर धीरे धीरे हाथ फेरता। उनके मुलायम स्पर्श से मुझे गुदगुदी होती। तीर से मर्माहत हिरन की छटपटाहट प्राण पखेरू उड़ते समय जमती जानेवाली उनकी

आखो म बुझती तडपन उसके जख्मो स फूटता रक्त का फव्वारा किसी किसी बात का अब स्मरण नही होता। मैं वे मृगचम गुरुजनो स्वजनो और मित्रा को उपहार के तौर पर भेंट देता और वे सारे मेरे मृगया कौशल की सराहना किया करत।

मेरी इस शूरता की परीक्षा का समय अनायास ही आ गया।

कभी नारदजी तो कभी कोई अन्य ऋषि पिताजी के पास आकर उन्ह देव दानवा म निरतर चल रहे कलह के समाचार सुनाया करत थ। यह कलह अभी युद्ध म परिणत नही हुआ था। लकिन दोना पक्षो म छुटपुट मुठभेडें होने लगी थी। एसी ही किसी मुठभड म देवताओ की ओर से शामिल होने राक्षसो को पूरी तरह पराभूत करने और हमारा भावी राजा कितना पराक्रमशाली है यह सारी प्रजा को दिखा देने की मेरा जी बहुत करता था। लकिन पिताजी राक्षस पक्ष क समान देवताओ के पक्ष स भी उतनी ही घृणा करत थे। वे हमेशा कहा करत थ वृषपर्वा उस इद्र को बन्दी बनाकर उससे अपने राजमहल म झाडू लगवा ल तब भी मैं तुम्ह इद्र की सहायता के लिए नही भेजूगा। लकिन पिताजी इद्र से और देवता-पक्ष से इतन नाराज क्या है यह मुझे कोई नही बताता था।

इस बार म वृद्ध अमात्य को मैंने कई बार कुरेदकर देखा। लकिन हर बार वे एक ही उत्तर देत थ दुनिया की सभी बातें उचित समय पर आदमी को मालूम हो जाया करती हैं। पडो म पत्तो के साथ ही फूल और फूलो के साथ ही फल नही लगा करत। ऐसे समय मन करता कि युद्ध करने की अपनी आतरिक इच्छा कोई अन्य माहुम करके पूरी कर ली जाए। चलो निकल चल सीधे हिमालय की तलहटी तक नाना प्रकार के पशुओ का शिकार करते-करत पूर्वी आर्यावत के घन अरण्यो म स्वच्छन्दता म खूब सैर करें सुना है वहा मदमात हाथी स्वरता स घूमा फिरा करत हैं। अभी तक मैंन हाथी का शिकार नही किया है। तो वहा एक दो तीन चाह जितने हाथियो का शिकार करें। उनक सुन्दर लम्बे-लम्बे हाथीदात लकर हस्तिनापुर वापस लौट आए और मा के सामने उन्ह रख दें

लकिन मा तो मुझ अभी तक दुधमुहा समझती थी। पिताजी उसकी मुट्ठी म थ। इसीलिए मर य सार प्यारे प्यारे सपने धरे के धरे रह जात थ जमीन म गडी रखी सुवण मुद्राओ जसे ! होते हुए भी व न के बराबर ही थे।

राजप्रासाद म मरा शरीर और राजपुत्र के जीवन पर पडने वाली मर्यादाओ म मेरा मन मानो बन्दी बनाए गए थ ! इस घुटन से कसे छुटकारा मिले यही विचार मन को रात दिन सताता रहा था कि अकस्मात् एक सुनहरा अवसर अपने पैरो चलकर मेरे सामने आ गया।

नगरदेवता का वार्षिक उत्सव पास आया था। इस उत्सव के लिए दूर-दूर के नगरो और देहातो से हजारो लोग आया करते थ। उस समय हस्तिनापुर एक विशाल जागागार बन जाता था। कथा-कीतन पुराण प्रवचन भजन-पूजन नृत्य संगीत स्त्री-पुरुषो के विविध मन तरह-तरह के स्नान और नाना आदि की धूमी

धूम मचती थी कि उत्सव के दस दिन दस पल के समान कब बीत पता ही नही चलता था।

इस वर्ष के उत्सव में सेनापति ने एक नये खेल का समावेश किया था। खेल उत्सव के अंतिम दिन होने थे। नये खेल का आयोजन साहसी सैनिकों के साहस को प्रोत्साहन देने के लिए ही शायद किया गया था। खेल ऐसा था—एक वेगवान घोड़े को मद्य पिलाकर विशाल गोलाकार मैदान में खुलकर दौड़ाया जाएगा। उसपर न तो कोई जीन होगी न काठी न लगाम होगी न रकाब। मद्य के नशे में मदहोश होकर जब वह घोड़ा चौकड़ी भरकर भागना शुरू कर दे, तब खिलाड़ी को चाहिए कि किसी भी स्थान पर उस पकड़कर उसपर सवार हो जाए और मैदान के पांच चक्कर लगाकर बिना घोड़े को रोके ही उसपर से उतर भी जाए। प्रत्येक खिलाड़ी के लिए नया घोड़ा लाया जाने की भी शर्त रखी गई थी।

यह खेल मुझे बेहद पसंद था। लेकिन वह सामान्य सैनिकों के लिए था। युवराज का उस खेल में हिस्सा लेना किसीको भी भाने वाली बात नही थी। यह उन्मादक और जोशीला खेल चल रहा था तब मैं अतृप्त मन से और नयनों में अतीव उत्सुकता लिए मां और पिताजी के पास बैठा था। चार घोड़े आए और पांचवां चक्कर पूरा होने से पहले ही अपने पर सवार वीरों को गेंद के समान फेंककर चल गए। पांचवां घोड़ा मैदान में आने लगा तब मैंने देखा जैसे एक विशाल और सुडौल दैत्य ही चला आ रहा है। उसकी आंखें अंगारे बरसा रही थीं। नथुने फूले हुए थे। उसकी चाल लुभावनी लेकिन फिर भी मतवाली थी। उसे देखते ही समूचा जनसागर कुतूहल से ठाठे मारने लगा। हर नजर में टेर आश्चर्य और उत्सुकता का मिश्रण नाच रहा था। छह सेवक उस घोड़े को बांधकर मैदान में ला रहे थे। फिर भी वह काबू में नही रह पा रहा था और ज़ोर-ज़ोर से हिनहिनाता था टापें पटक पटककर खुरों से मिट्टी उछालता था। बीच ही में बड़े आवेश के साथ गर्दन उठाता था और मानो यह कह रहा था 'मैं तुम लोगों की इच्छा के अनुसार नही चलूंगा।' गरदन का झटका देते ही उसका अयाल बिखर जाता था। तब तो शाप देने के लिए उद्यत किसी क्रुद्ध ऋषि की बिखरी जटाओं के समान वह अजीब लगता। उसे देखते देखते मेरे मन में अपूर्व उन्माद भर आया। भुजाएं फड़कने लगीं। मैं ज़ोर-ज़ोर से जमीन पर पांव पटकने लगा। रोम रोम किसी फव्वारे से ऊंची उठने वाली जलधाराओं के समान उछलने लगा।

मैंने मां की ओर देखा। साक्षात भय ही उसकी आंखों में मूर्तिमान होकर थर्रा रहा था।

मां ने पिताजी से कहा 'इस घोड़े को वापस ले जाने के लिए कहिए। वह बहुत ही भयंकर दिखाई दे रहा है। कहीं कोई दुर्घटना हो गई तो उत्सव के अंतिम दिन बेकार ही असगुन हो जाएगा।'

पिताजी हंसकर बोले 'महारानी पुरुष पराक्रम के लिए ही पैदा होते हैं।'

पिताजी की उस हंसी से और उनके उस वाक्य से मुझे बहुत हर्ष हुआ। आंखें

मूदकर मैं उस वाक्य को अपने हृदय पर अंकित करने लगा। किन्तु अचानक ह
जनसमूह से एक भयावनी चीख उठी और मेरी तंद्रा टूट गई। लोगों की वह चीख
मैदान की गोलाई नापती हुई एक सिरे से दूसरे सिरे तक निकल गई। मैंने आंख
खोलकर देखा उस घोडे पर चढने में एक सैनिक असफल हो गया था। उसे दू
फेंककर घोडा बेतहाशा भाग जा रहा था। दूसरा-तीसरा चौथा अनेक सैनिक आ
और धूल चाटते रह गए। घोडा किसीसे बाज नहीं आ रहा था। सभी दर्शक सा
रोके डर गए थे। अब क्या होगा ? इसी विचार से सारे दर्शक प्राण आंखो मे
लाकर देख रहे थे। मेरे कानो में कोई घन गंभीरता से कह रहा था उठो उठो !
पुरुष पराक्रम के लिए ही पैदा होते हैं। उठो ययाति उठो तुम हस्तिनापुर के
भावी राजा हो। वास्तव में भय को ही राजा से डरना चाहिए ! वरना कल लोग
कहने लगेंगे कि हस्तिनापुर में क्षात्रधर्म नहीं रहा। एक घोडे ने उस नगर को जीत
लिया। देव-दानवो तक यह बदनामी फैलेगी। तुम महापराक्रमी पुरूरवा के प्रपौत्र
हो शूर-वीर नहुष के पुत्र हो

मैं तपाक से खडा हो गया दो कदम आगे बढा। तभी किसी कोमल बाहुपाश
ने मुझे समेट लिया। मैंने मुडकर देखा। वह मां थी।

मां ? नहीं नहीं ! शायद मेरी पूर्व जन्म की बैरिन ही मुझे रोक रही थी
मेरी सबसे बडी आकांक्षा से मुझे दूर रख रही थी। वह मेरी मां थी तो जरूर
लेकिन उसकी ममता अंधी थी। उसका मन पंगु था।

वन में विचरते हुए कोई यात्री जिस तरह राह में आने वाली लताओं और
टहनियों को दोनों हाथों से झट से दूर कर देता है उसी तरह मैंने उसके हाथ
हटा दिए। पल भर में मैं मैदान में कूद पडा। चारों ओर आदमी ही आदमी
दिखाई दे रहे थे। नहीं वे आदमी नहीं थे ! वे तो पाषाण की मूर्तियां थी। दूसरे
ही क्षण वे मूर्तियां मेरी आंखो से ओझल हो गई।

मेरे सामने अब केवल वह मतवाला होकर चौकडी भरता हुआ घोडा ही था
विजयी मुद्रा में एक बार उसने मुझे देख लिया। नहुष महाराज के राज्य में परा-
क्रम को वह चुनौती दे रहा था। प्रतिक्षण उसके और मेरे बीच अंतर कम होने
लगा। मैं मन ही मन कह रहा था यह घोडा नहीं है खरगोश है। उसकी गर्दन
पर के सफेद रोए

यह शब्द कानो में गूंज ही रहे थे कि किसीने बहुत जोर से चिल्लाकर कहा
अरे पागल कहां जा रहे हो तुम ? मौत की गहरी खाई है !

मैंने भी उतने ही जोर से उत्तर दिया नहीं यह मौत की खाई नहीं यह
कीर्ति शिखर है। यह ऊंचा पर्वत है जिसपर मैं चढने जा रहा हूं। कीर्ति दर्शन

था। मेरे हाथों ने और पैरों ने बिजली की जकड डाला था।

पहला चक्कर पूरा हुआ दूसरा शुरू हुआ प्रचण्ड दर्शक समुदाय म सराहना और आनद की लहरें उमडन लगी।

उस समय मन म क्या-क्या विचार आ रह थ मैं स्वय भी नही बता सकता। मैं जोश म बहोश हो गया था या ममाविस्थ सा बन गया था कह नही सकता। पता नही कोइ अतीद्रिय शक्ति मेरा समथन कर रही थी या शरीर का प्रत्येक रोम अपनी सारी शक्ति सजाकर उस घोडे पर कसी मेरी पकड ज़रा भी ढीली नही होन दे रहा था।

वह तजस्वी घोडा और उसपर आरूढ युवा ययाति दोनो अपनी मस्ती म मदहोश थे। दोनो केवल चलत फिरत पुतले थ। एक घोडे का दूसरा आदमी का। मानो एक पुतले पर दूसरा पुतला सवार है! दोनो बुत विलक्षण वग से दौडे जा रह थ। दोनो बुत एक दूसरे से ऐसे चिपके थे जस पूव जम के पाप-पुण्य हो।

दूसरा तीसरा चौथा, और तीन चक्कर पूरे हो गए।

पाचवा और अतिम चक्कर प्रारम्भ हो गया। मैंने वह पराक्रम कर दिखाया था जो न कभी किसीने देखा या सुना हो। किशोरावस्था म मन म सजोया मेरा सुनहरा सपना आज साकार हो गया था। स्वाती की बूद सीपी म पडकर मोती बन गई थी। मैं फूला न समाता था।

लगता था वह गगन! वह नीला आकाश! वह आसमान मुझस अब बस केवल चार हाथ की दूरी पर हो तो है! बस इसी घोडे की पीठ पर खडे होकर उस आकाश को पकडकर मुट्ठी म बद कर लू जिसके पीछे ईश्वर को छिपा हुआ बताते है।

ये सब स्वच्छद उड रहे मन म उठ रही चचल तरगें थी। घोडा झाग उगलने लगा था। उसकी गति कुछ धीमी हो चली थी। इसका अनुभव मुझे भी हो रहा था। और वही मन मुझे निरतर सचेत कर रहा था—सावधान होशियार!

पाचवा चक्कर अब समाप्त होने को था। जहा मा और पिताजी बठे थ उस स्थान म आगे निकल जान पर वह चक्कर पूरा होन वाला था। मैं उस स्थान के पास से जाने लगा। थोडे समय पहले मुझे रोकन वाली मा अब कितनी उल्लसित हो गई होगी यह देखने की इच्छा हुई। उस मोह का सवरण मुझसे करते नही बना। उस स्थान स घोडा अभी आग निकला ही था कि मैंने मुडकर पीछे देखा।

मोह के उसी क्षण घोडे पर अब तक कसी मेरी पकड शायद कुछ ढीली हो रही और क्या हो रहा है इसका चेत आने से पहले ही उस गुस्सबाज जानवर न मुझे हवा म उडा दिया। लगा कि उस एक ही कृति म उस गूगे जानवर ने अपना सारा प्रतिशोध ले लिया है। हवा म ही मुझे तरह-तरह की कक्श और करुण आवाजें सुनाई दी। लेकिन केवल क्षण-भर के लिए ही! दूसरे ही क्षण आभास हुआ कि किसी अधमहासागर के गहरे पानी म मैं डूबता चला जा रहा हू!

उस भयानक काले अधमहासागर स बाहर निकला तब मुझे प्रकाश की एक

मद्धिम किरण ही दिखाई दे रही थी। कहा हू समझ म नहा आ रहा था! क्या नागलोक की किसी गुफा म पहुच गया हू? फिर प्रकाश की यह किरण कसी? कही थाने म ठाठ के साथ फन फलाए नाग के मस्तक का यह मणि तो नही?

तब लगने लगा कि शायद मैं अपने महल म पलग पर लेटा हुआ हू। नीद से आखें बोझिल है। लेकिन उठा नही जा रहा है न उठने को मन ही करता है। पिताजी के महल स प्रभातिया नही सुनाई दे रही थी। शायद अभी बाहर पौ नही फटी थी। आज उत्सव का अन्तिम दिन था। आज देखना था कि सबसे अधिक मन्होश घोडे पर कौन सवारी

अचानक मेरी सारी स्मृति जाग उठी। उसके साथ ही सिर और अग प्रत्यग दद के मारे फटन-सा लगा। हवा म उडते जाते बान पतझड के सूखे पत्ते क समान उस दिन मैं घोडे पर स फेंका गया था। लकिन कहा जाकर गिरा? कही उस दुघटना म मैं अपग तो नही बन गया? दाया हाथ उठाकर मैंने अपन माथे पर रखा। वहा ठण्डे पानी की पट्टी रखी हुई थी। शायद मुझे ज्वर चढा था। लकिन मेरे पास तो कोई भी नही था फिर यह पट्टी इतनी ठण्डी कसे रही? पूरी शक्ति लगाकर मैंने पुकारा— मा

चूडियो की खनक सुनाई दी। शायद मा ही मेरे पास आ रही है। मैं आख फाडकर देखन लगा। नहीं वह मा नही थी। फिर कौन थी? क्या उस दुघटना म मेरे प्राणातक चोटें आई थी? मैं इस समय कहा हू अपन महल म या मौत के द्वार पर? कुछ समझ म नही आ रहा था। मरे सिरहाने की ओर खडी उस आकृति की ओर मैं अनिमिष दृष्टि से देखता रहा। क्या मौत इतना सुन्दर रूप धारण कर आया करती है? फिर दुनिया मौत स इतना डरती क्यो है?

तभी सुनाई दिया युवराज?'

यह अलका की आवाज थी। मैंने पूछा 'क्या उत्सव समाप्त हो गया?

'कभी का!

'कितने दिन हो गए?"

आठ!'

आठ?'

'जी।

उसकी आवाज काप रही थी। आठ दिन सूरज हर सुबह उगा था और हर सांझ म डूबा था लकिन मुझे कोई होश नही। इन आठ दिनो म मैं कहा था? किस दुनिया म था? क्या कर रहा था? मैं उलझन म पडा। मेरी मान्यता थी कि मेरे शरीर म उस शरीर स भिन्न एक मैं रहता है। लकिन उस मैं को पिछले आठ दिनो का एक क्षण भी याद नहीं था।

मैंने अलका स पूछा मां कहा है?

महारानी जी अपन महल म है उस दिन स उन्होने खाना-पीना छोड रखा है। अन्न बस मुश्किल स आपको देखन आई थी। अभी-अभी ही महाराज हा गद

और गिर गईं। राजवैद्य ने उन्हें उठने की मनाही कर दी है।"

तुम्हारी मां कहां हैं ?"

वह महारानी की सेवा में हैं। राजवैद्य ने आठ दिन बिना झपकी लिए बिताए हैं। अभी थोड़ी देर पहले वे आपकी नाड़ी देख रहे थे। और एकदम छोटे बच्चे जैसे वे नाचने लगे। मुझसे कह रहे थे, अलका, मुझे डर था कि कहीं मेरी विद्या इन सफेद बालों की लाज रखेगी या नहीं। उसी डर के मारे आठ दिन मैं सोया नहीं। लेकिन अब युवराज के लिए कोई खतरा नहीं रहा। शायद आज ही मध्य रात्रि के लगभग उन्हें होश आ जाएगा। बहुत ही विलंब हुआ तो पौ फटने से पहले तो वे निश्चय ही होश में आएंगे। तब तुम्हें जागती रहना होगा। उनके सिर पर हमेशा एकदम ठण्डी ठण्डी पट्टी रहेगी ऐसी '"

बोलते-बोलते उसे सहसा कुछ याद आया। वह तुरन्त वहां से हटी और कुछ लेकर फिर पलंग के पास मेरे सिरहाने की ओर आ खड़ी हो गई।

अब पहले की अपेक्षा मुझे साफ दिखाई देने लगा था। क्या वाकई मेरे सिर-हाने की ओर अलका खड़ी है ? नहीं ! उस दिन की दुर्घटना में शायद मैं मर चुका था ! स्वर्ग में पहुंच गया था और वहीं एक अप्सरा मेरे सिरहाने की ओर खड़ी थी।

अपनी इस कल्पना पर मुझे हंसी आ गई। अलका ने पूछा, "क्या हंस रहे हैं आप ?"

'हंसने के लिए भी क्या कभी किसी कारण की आवश्यकता होती है ?"

'मुझे तो ऐसा ही लगता है।"

तो फिर बताओ फूल क्यों हंसते हैं ?"

यह सवाल वह अपने आपसे पूछने लगी, फूल क्यों हंसते हैं ?' मानो वहां दो अलका खड़ी थीं और उनमें से एक दूसरी से सवाल कर रही थी। वह दूसरी अलका कुछ चकरा गई। उसे पसोपेश में पड़ी देखकर पहली अलका हंसी। फिर तुरन्त वह शरमा गई। अलका की वह शर्मीली मूर्ति और भी मोहक दीखने लगी।

क्या सागर की नाईं सौंदर्य में भी ज्वार आता है ? पता नहीं ! अलका क्षण-क्षण अधिक सुन्दर दीखने लगी थी।

मैंने हंसते हंसते कहा, 'मैं बताऊं ?"

'हां बताइए।"

'स्त्रियां शरमाती हैं, इसलिए फूल उनपर हंसते हैं।"

रहने भी दीजिए।"

उसकी यह अदा मेरे मन को बहुत भाई। मैं भूल गया कि मैं बीमार हूं बिस्तर पर पड़ा हूं विगत आठ दिन मुझे होश नहीं था। बस अपलक उसको देखता रहा।

वह चौंकी, तुरन्त बुदबुदाई, मैं भी क्या पागल हूं ! पट्टी पर डालने के लिए

दवा तो ले आई लेकिन खाली बातें ही करती बैठ गई। हां जी, आखें मूंद लीजिए।'

'भला क्यों?'

'यह दवा बहुत जहरीली है। राजवैद्य ने मुझे बार-बार आगाह किया कि इसका जरा-सा छींटा तक आंख में न जाने पावे।'

'लेकिन मेरी आखें बंद होने से इनकार जो कर रही हैं!'

'क्या?'

क्या? अब इस अलका को यह सब कैसे बताया जा सकता है कि उसे अपलक देखते ही रहने को मेरा मन करता है। क्या यह बात उसे अच्छी लगेगी? वह केवल एक दासी की लड़की नहीं है। उसकी मां ने अपनी छाती का दूध मुझे पिलाया है। मुझे अपनी गोद में दुलारकर बड़ा किया है। पिताजी भी कलिका को मानते हैं। मां तो उसके साथ किसी आत्मीय के जैसा व्यवहार करती हैं। हमेशा कहती हैं कि युयु की चिन्ता तो मुझसे कहीं अधिक कलिका को ही है। ऐसी कलिका की लड़की के साथ...

'देखिए, अब आपने आखें नहीं मूंदीं न तो मैं आपसे कुट्टी कर लूंगी समझे?'

अलका के इन मीठे-मीठे शब्दों के कारण मेरा बीता बचपन वापस लौट आया मानो समुद्र में जा मिला नदी का पानी उससे अलग हो गया हो!

मैंने चुपचाप आखें मूंद लीं। अलका मेरी पट्टी पर दवा की एक-एक बूंद छोड़ने लगी। कभी-कभी मूंदी आखें खुली आंखों की अपेक्षा शायद ज्यादा देख सकती हैं! मेरे साथ कुट्टी करने वाली बचपन की अलका से लेकर आज मेरे सिरहाने की ओर मेरी पट्टी पर दवा छिड़कती खड़ी अलका तक उसके कितने ही रूप मेरी मूंदी आखों के सामने से गुजरते रहे। कली तो वही थी लेकिन खिलते खिलते हर बार नया मनोहारी रूप धारण करती थी। अलका की हर मूर्ति में निराली ही मोहकता थी।

अलका अपनी मां के साथ राजमहल में ही रहा करती थी। इसीलिए उसके इन सभी बदलते रूपों को मैंने देखा था। लेकिन आज तक उनके बारे में कभी ऐसे भाव मन में नहीं जागे थे जैसे आज जाग उठे। ऐसा क्यों हुआ? मैं सोचने लगा। छह वर्ष की आयु तक अलका मेरी सहेली थी। लेकिन आगे चलकर धीरे-धीरे हम बिछुड़ गए। मैं एक राजपुत्र था और राजमहल, नगर, राजसभा, उत्सव आदि में बड़ी शान से घूमता था। वह थी दासी-कन्या। वह पीछे रह जाने लगी। राजप्रासाद में अपनी मां के छोटे-मोटे कामों में हाथ बटाने लगी। आगे चलकर मुझे एक राजा बनना था, विश्वविजयी वीर बनना था। वह दासी बनने वाली थी। हमेशा किसी न किसी की सेवा में लगी रहने वाली थी। अतः हम दोनों एक दूसरे से दूर हो गए।

पिता स्वर्गीय गुरुदेव ने मुझे एकदम महाशय बना दिया। मेरी आखें मूंदी ही

थी। दाया हाथ धीरे धीरे ऊपर उठाकर मैंने देखा, अलका झुककर बहुत ही साव धानी के साथ बूद-बूद दवा पट्टी पर टपकाती जा रही थी। उसके बालो की एक लट मेरे गाल पर अनजाने म ही झूल रही थी। उस लट का मेरे हाथ को स्पश हुआ। उस कोमल स्पश से मेरा सारा शरीर पुलकित हो उठा। इस कल्पना से कि मैं आखें खोलूगा तो अलका दूर हट जाएगी, पलकें बद रखते हुए मैंने हसते हसते पूछा, अलका मेरी नाक बहुत नाराज है!"

किससे ?"

'आपसे।"

किसकी ?"

अपनी।'

'वह किसलिए ?"

"इसलिए कि उसे पता नही चल रहा कि इतनी बढ़िया खुशबू कहा से आ रही है ?"

मैं उस नाक से पूछना चाहती हू कुछ।'

तो पूछ लो न ?

'क्या ईश्वर म उसकी आस्था है ?"

मेरी नाक कोई नास्तिक नही है!"

'मदिर म भगवान की मूर्ति तो पाषाण की बनी होती है, यह बात आपकी नाक को स्वीकार है या नही ?"

'है।"

फिर उस भगवान की मूर्ति के सामने वह अपने-आपको क्यो रगडती है ? क्या उस मूर्ति म उसे भगवान दिखाई देता है ?"

न भी दिखाई दिया, तब भी वह वहा झुकता ही है।'

'उस नाक का यह जो सुदर सुगध आ रही है म उसका भी वही हाल है।'

अलका के बात करने के उस ढग से मेरा काफी मनोरजन हुआ। मानो हम दोनो पुन बचपन म लौटकर शब्दो का खेल खेलने लगे थे। लेकिन इस तरह से केवल शब्दों का खिलवाड करते बैठने की अपेक्षा तो उस समय सुगध का आकण्ठ आस्वाद लेने की प्रबल इच्छा मेरे मन म जाग उठी थी।

मैंने अलका से पूछा 'किसकी सुगध है यह ?"

'जूही के फूलो की बचपन मे आपको ये फूल बहुत प्रिय थे।"

अलका ने ठीक ही कहा था। लेकिन बीच के दिनो धनुष की टकारो और घोडो की टापो म जवाकुसुम के इन फूलो की प्यारी-प्यारी चहक महक जाने कहा खो गई थी।

मैंने कहा अलका उन फूलों को मेरी नाक के पास ले आओ। मैं उनसे क्षमा मागना चाहता हू।

दवा तो ले आई लेकिन खाली बातें ही करती बैठ गई। हाँ जी, आँख मूंद लीजिए।'

'भला क्यों?'

'यह दवा बहुत ज़हरीली है। राजवैद्य ने मुझे बार-बार आगाह किया कि इसका ज़रा-सा छींटा तक आँख में न जाने पावे।'

'लेकिन मेरी आँखें बंद होने से इनकार जो कर रही हैं!'

'क्यों?'

क्यों? अब इस अलका को यह सब कैसे बताया जा सकता है कि उसे अपलक देखते ही रहने को मेरा मन करता है। क्या यह बात उसे अच्छी लगेगी? वह केवल एक दासी की लड़की नहीं है। उसकी माँ ने अपनी छाती का दूध मुझे पिलाया है। मुझे अपनी गोद में दुलारकर बड़ा किया है। पिताजी भी कलिका को मानते हैं। माँ तो उसके साथ किसी आत्मीय के जैसा व्यवहार करती हैं। हमेशा कहती हैं कि ययू की चिन्ता तो मुझसे कहीं अधिक कलिका को ही है। ऐसी कलिका की लड़की के साथ

'देखिए, अब आपने आँखें नहीं मूंदीं न, तो मैं आपसे कुट्टी कर लूंगी, समझे?'

अलका के इन मीठे-मीठे शब्दों के कारण मेरा बीता बचपन वापस लौट आया, मानो समुद्र में जा गिरा नदी का पानी उससे अलग हो गया हो!

मैंने चुपचाप आँखें मूंद लीं। अलका माथे की पट्टी पर दवा की एक-एक बूंद छोड़ने लगी। कभी-कभी मूंदी आँखें खुली आँखों की अपेक्षा शायद ज़्यादा देख लेती हैं! मेरे साथ कुट्टी करने वाली बचपन की अलका से लेकर आज मेरे सिरहाने की ओर मेरी पट्टी पर दवा छिड़कती खड़ी अलका तक उसके कितने ही रूप मेरी मूंदी आँखों के सामने से गुज़रते रहे। अलका तो वही थी लेकिन खिलते-खिलते हर बार नया मनोहारी रूप धारण करती थी। अलका की हर मूर्ति में निराली ही मोहकता थी।

अलका अपनी माँ के साथ राजमहल में ही रहा करती थी। इसीलिए उसके इन सभी बदलते रूपों को मैंने देखा था। लेकिन आज तक उसके बारे में कभी ऐसे भाव मन में नहीं जागे थे जैसे आज जागे हैं। ऐसा क्यों हुआ? मैं सोचने लगा। छह वर्ष की आयु तक अलका मेरी सहेली थी। लेकिन आगे चलकर धीरे-धीरे हम बिछुड़ गए। मैं एक राजपुत्र था और राजमहल, नगर, राजसभा, उत्सव आदि में बड़ी शान से घूमता था। वह थी दासी-कन्या। वह पीछे रह जाने लगी। राजप्रासाद में अपनी माँ के छोटे-मोटे कामों में हाथ बँटाने लगी। आगे चलकर मुझे एक राजा बनना था, दिग्विजयी वीर बनना था। वह दासी बनने वाली थी। हमेशा किसी न किसी की सेवा में लगी रहने वाली थी। अतः हम दोनों एक दूसरे से दूर हो गए।

किसी स्वर्गीय गन्ध ने मुझे एकदम मदहोश बना दिया। मेरी आँखें मूंदी ही

थी। दाया हाथ धीरे धीरे ऊपर उठाकर मैंने देखा अलका झुककर बहुत ही साव धानी के साथ बूद बूद दवा पट्टी पर टपकाती जा रही थी। उसके बालो की एक लट मेरे गाल पर अनजाने म ही झूल रही थी। उस लट का मेरे हाथ को स्पश हुआ। उस कोमल स्पश स मेरा सारा शरीर पुलकित हो उठा। इस कल्पना से कि मैं आख खोलूगा तो अलका दूर हट जाएगी पलकें ब द रखते हुए मैंने हसते हसते पूछा, 'अलका मेरी नाक बहुत नाराज है।"

किससे ?'

आखो से।"

किसकी ?'

अपनी।"

'वह किसलिए ?"

इसलिए कि उसे पता नही चल रहा कि इतनी बढ़िया खुशबू कहा से आ रही है ?"

'मैं उस नाक से पूछना चाहती हू कुछ।'

'तो पूछ लो न ?'

क्या ईश्वर म उसकी आस्था है ?'

'मेरी नाक कोई नास्तिक नही है।"

'मदिर म भगवान की मूर्ति तो पाषाण की बनी होती है यह बात आपकी नाक को स्वीकार है या नही ?"

है।"

फिर उस भगवान की मूर्ति के सामने वह अपने-आपको क्यो रगडती है ? क्या उस मूर्ति म उस भगवान दिखाई देता है ?'

'न भी दिखाई दिया तब भी वह वहा होता ही है।'

"उस नाक का यह जो सु दर सुग ध आ रही है न, उसका भी वही हाल है।'

अलका के बात करने के उस ढग स मेरा काफी मनोरजन हुआ। मानो हम दोनो पुन बचपन म लौटकर शब्दो का खेल खेलने लगे थे। लेकिन इस तरह से केवल शब्दों का खिलवाड करते बठन की अपेक्षा तो उस समय सुग ध का आकण्ठ आस्वाद लेने की प्रबल इच्छा मेरे मन म जाग उठी थी।

मैंने अलका स पूछा 'किसकी सुगध है यह ?'

जूही के फूलो की, बचपन मे आपको ये फूल बहुत प्रिय थे।"

अलका न ठीक ही कहा था। लेकिन बीच के दिनो धनुष की टकारो और घोडो की टापो म जवाकुसुम के इन फूलो की प्यारी प्यारी चहक महक जाने कहा खो गई थी।

मैंने कहा 'अलका उन फूलो को मेरी नाक के पास ले आओ। मैं उनसे क्षमा मागना चाहता हू।"

ठहरिए मैं गजरा ही निकाल देती हू!"

'गजरा ?'

"जी हा, वणी म ही तो गुथा है।"

तो फिर उसे वही रहने दो।"

"क्यो ?"

तुमने यदि उन फूलो का अपने बालो से अलग कर दिया तो व मुझसे नाराज हो जाएगे।'

बडे वो हैं आप!

उह वही लगे रहन दो सूघने दो मुझे।'

अलका बोली नही।

मैंने कहा तुमने यदि अपनी वणी मुझे सूघने नही दी तो मैं शोर मचा दूगा। फिर सब जाग जाएग '

शायद पट्टी पर डालने के लिए दी गई बूदें खत्म हो चुकी थी। अपना मासल हाथ झट से मेरे होठो पर रखकर वह बोली नही नही जी! शोर वोर आप बिल्कुल नही मचाएगे। आठ दिन हो गए राजप्रासाद म किसीको जान म जान नही थी। राजवद्य ने जब विश्वास दिलाया कि अब आपको निश्चय ही आराम आता जा रहा है तब आज जाकर वही सब लोग सो पाए हैं। राजवद्य भी पास ही के महल म सोए हैं। आप चिल्लाए तो ये सब लोग भागे भागे यहा चले आएगे! मा तो मुझे नोच खाएगी और झल्लाकर पूछेगी सेवा तक ठीक से करते नही बनती मुई से! फिर तो वह मुझे सूली पर चढाकर ही रहेगी।'

सूली पर चढने की अपेक्षा तो वणी सूघने देना कही अच्छा! है न? अच्छा देखो भले काम म देरी नही किया करते! बडे-बूढो ने ही कह रखा है। हा तो मैं पाच तक गिनती गिनता हू उसके पहले ही एक दो तीन चा चा

अवश्य ही नन्दनवन के सभी फूलो ने जूही के उन फूलो को अपनी सारी खुशबू दे रखी होगी।

अलका के बालो म गुथ गए उस गजरे को सूघते सूघते मुझपर एक नशा-सा छा गया। उन फूलो के साथ ही उसके बालो की लटो का मेरे गालो को होनेवाला स्पश बहुत ही सुखद था अत्यन्त उन्मादक था।

यह अनुभव करते ही कि अलका मुझसे दूर हटने की कोशिश म है मैं सुध-बुध खो बठा। उस सुगध से अब भी मेरा मन तृप्त नही हुआ था। रोम रोम म उसकी चाह बढ गई थी।

मैंने आखें खोली। वह दूर हटने लगी। तुरत ही मैंने फूलो का वह गजरा उसके बालों से खीच लिया। दोनो हाथो म उन फूलो को मसलकर चूर-चूरकर उन्हें फिर अपनी नाक के पास ले गया।

'ऐसा भी क्या युवराज!' अलका का स्वर काप उठा।

'अभी मेरा दिल भरा नहीं अलका ! और और सुगन्ध चाहिए मुझे !"

इससे पहले कि क्या कर रहा हूं समझ में आता मैंने अपनी बाहें उसके गले में डाल दीं। अगले ही क्षण उसके होठ मेरे होठों पर टिके। बहुत ही मधुर अमृत भरा था उन अधरों में। चिलचिलाती धूप में किसी रेगिस्तान से गुजरने वाले पथिक की तरह मेरे होठ सूख गए थे। तन मन प्यासा हो उठा था। वह अमृत मैं पीता गया, पीता ही गया। और और और भी 'यही एक दबी बुदबुद होठों से निकल रही थी। बस इतना ही होश बाकी बचा था कि मैं सुख के कुण्ड में तैर रहा हूं लेकिन उस कुण्ड का पानी पर्याप्त गहरा नहीं है।

'यह क्या हो रहा है युवराज ?" उस कुण्ड से किसीने प्रश्न किया।

किसने प्रश्न किया था वह ? क्या कोई मत्स्यकन्या थी ? मैं आंखें फाड़कर देखने लगा। यह अलका ही थी। मेरी शय्या से दूर हटकर वह खड़ी थी। लेकिन मेरे होठों की प्यास अभी बुझी नहीं थी। मन अभी तृप्त हुआ नहीं था। शरीर का प्रत्येक कण कण मानो सुलग उठा था। मैंने अभी जो अमृत प्राशन किया था, वही मुझे हलाहल सा जला रहा था। उस दाह को शान्त करने के लिए मुझे और अधिक अमृत चाहिए था।

अलका को पकड़ने के लिए मैं लड़खड़ाता हुआ उठने लगा। मेरे दायें पैर में भयंकर टीस उठी। तीर से मर्माहत पंछी की तरह छटपटाता एक आर्त चीख मारकर मैं शय्या पर धड़ाम से लुढ़क पड़ा।

उस जानलेवा बीमारी से अच्छी तरह स्वस्थ होने में कोई तीन चार महीने लग गए। लेकिन उस रात मेरी उस आर्त चीख के कारण सारा राजप्रासाद हर्ष से खिल उठा। यह मालूम होते ही कि मैं होश में आ गया हूं मौत के मुंह से लौट आया हूं सबकी जान में जान आ गई। बूढ़े राजवैद्य तो भाग भाग ही मेरे महल में आए और एक नन्ही बालिका के समान गदगद होकर आंसू बहाने लगे।

आठ दिन तक मैं मुर्दे जैसा पड़ा रहा। शायद मां को सन्देह था कि पता नहीं मैं उस अजीब मूर्च्छा से जागता भी हूं या नहीं ! नगर के सभी देवताओं को मेरे लिए वे मनौती मना चुकी थीं, मैं अभी चलने फिरने भी नहीं लगा था कि उसने जाकर बड़ी धूम धाम के साथ उन सभी मानताओं को समारोहपूर्वक पूरा कर लिया था।

मेरा ज्वर शीघ्र ही टूट गया। पैर की हड्डी में चोट आई थी। उसने अवश्य ही काफी तंग किया। लेकिन राजवैद्य पूर्वी आर्यावर्त से किसी हड्डी जोड़ने वाले को लिवा लाए थे। यह व्यक्ति था तो ठेठ जंगली लेकिन अपनी कला में माहिर था। उसे लिवा लाने में काफी मेहनत करनी पड़ी थी। उस आदमी ने हड्डी को ठीक तरह से जोड़ दिया। पैर में किसी तरह का कोई नुक्स नहीं रहा। लेकिन ये तीन चार महीने मैं अजीब घुटन अनुभव करता रहा और काफी परेशान रहा। महल की खिड़की में से आकाश में उड़ने वाले पक्षियों को देखकर अपने पंगुपन पर मैं खिसिया उठता। लगता कि बस इन्हीं पक्षियों की तरह खिड़की में से अपने

आपको बाहर फेंक दूं फिर जो होना है होता रहे। घोड़े का हिनहिनाना सुनता तो भुजाएं फड़कने लगतीं, जांघें फूलने लगतीं। अपनी पंगुता पर आया गुस्सा किसपर उतारा जाए, इसी विचार से मैं भीतर ही भीतर कसमसाता रहता और अपने शरीर को तावते बैठा रहता। पिछले दस वर्ष जिस शरीर की सुन्दरता और सामर्थ्य बढ़ाने के लिए मैंने दिन रात प्रयास किया वही शरीर आज मुझसे इस तरह बेवफा हो गया! नहीं! आदमी अपने शरीर से प्यार करता है। उस प्यार का कोई अन्त नहीं होता। लेकिन यह कमबख्त शरीर है कि आदमी से उतना प्यार करता ही नहीं। मौका पाकर बैरी ही हो जाता है!

बिस्तर में पड़े-पड़े मैंने काफी कोशिशें कीं कि खोज निकालूं यह शरीर किसका बैरी बन जाता है और क्यों? लेकिन एक भी कोशिश सफल नहीं रही। मैं हमेशा सोचता था कि इस शरीर से भिन्न कोई अलग ययाति मुझमें है। लेकिन कैसे उसे पहचानूं? सोच-सोचकर मैं हार जाता। मुझे भली भांति मालूम था कि मन बुद्धि अन्तःकरण शरीर के अवयव तो हैं नहीं। उनका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। लेकिन मेरा शरीर जब बैरी बन गया तब वे सारे क्या कर रहे थे? आठ दिन की वह मूर्च्छा! उसमें दवाइयां तो क्या राजवैद्य मुझे जहर भी दे देते तो उसे भी दवा मानकर मैं चुपचाप पी जाता! उस मूर्च्छा में मेरा वह मन कहां था? बुद्धि कहां चली गई थी? मेरे अन्तःकरण को क्या हो गया था? अंधकार! जहां-तहां केवल अंधकार!!

खिसिया कर अपने हाथ-पांवों को देखता रहा तब होंठ बुदबुदाते, 'तुम तो बस पागल हो! अरे इस शरीर ने क्या हमेशा तुमसे शत्रुता ही की है? उस रात अलका के अधरों का अमृतपान किसने कराया तुम्हें? हम ही ने न?'

वह रात तो जीवन का मधुर अमर सपना बन गई है। उस स्वप्न की स्मृति मात्र से पर की सारी वेदनाओं को थोड़े समय की इस पंगुता को बल्कि अन्य सभी दुखों को मैं भूला रहता था। बाहर जितनी ही धूप हो उतनी रात की याद के साथ वह अस्पष्ट हो जाता। फिर हाथ में आरती का थाल लिए खड़ी किसी रमणी की तरह वह रात आंखों के सामने आ जाती। जूही फूलों की वह मदमाती सुगन्ध अलका के बालों का वह कोमल स्पर्श उसके अधरों का वह मधुर अमृत—सबकी मधुर स्मृतियों से रोम रोम विभोर हो जाता था!

बीमारी के उन तीन चार महीनों में मुझे सबसे अधिक सुख इसी स्मृति ने दिया। समय-असमय मैं उसी स्मृति में मगन रहने में दंग रहने लगा। लेकिन उस सुख का फिर आस्वादन करने की इच्छा होने पर भी वैसा मौका मुझे नहीं मिला। अलका अनेक बार मेरा सेवा के लिए आती थी लेकिन दिन में। रात में वह फिर कभी नहीं आई। रात में अन्य-अन्य कर अनेक दासियां मेरी सुश्रूषा करती थीं। उनमें कुछ युवतियां भी थीं लेकिन मैं तो सिर्फ अलका को ही चाहता था! 'जूही के फूलों का गजरा डालकर मैं आपसे रूठी रहूंगी!' कहने-कहते पट्टी पर दवा डालते वाली 'यह क्या हो रहा है युवराज?' कुछ क्रोध से और कुछ

आ[illegible] से वहन वाली मेरी बचपन की सहेली अलका को ही मैं चाह रहा था। वह दिन म मेरे आसपास घूमा करती, तब बरसो से भूखे प्यास की अधीरता स मैं उसकी प्रत्येक हलचल जी भरकर आखो म समा लेता था। अन्य किसी दासी के प्रति ऐसा आकर्षण मुझे नहीं था।

अलका की इस मधुर स्मृति के साथ ही उन दिनो एक भव्य स्वप्न भी मन को बडा सुख देता रहा। हड्डी जोडने के लिए लाया गया वह जगल का आदमी काफी अनुभवी था। समूचा आर्यावर्त उसका घूम घूमकर देखा हुआ था। तरह तरह की गुफाए अरण्य, नगर, समुद्र, पहाड, मदिर, लोग आदि का वर्णन वह बहुत ही रसभीना किया करता था। उसकी बातें सुनकर मन ही मन मैंने एक सुदर सपना सजाया। अश्वमेध का घोडा लेकर मैं निकला हू वे सारी रम्य और भीषण बातें अपनी आखो देखता जा रहा हू सतरगी सौन्दर्य का आस्वाद ले रहा हू और नये-नये प्रदेशो को पदाक्रात कर रहा हू। यह था वह स्वप्न। उस स्वप्न का अतिम दृश्य होता था, दिग्दिगत पर विजय पाकर मैं हस्तिनापुर लौटता हू और मेरा वीरोचित स्वागत करने के लिए आरती उतारने वाली दासियो म सबसे आगे अलका पचारती लिए खडी है।

मैं पूरी तरह स स्वस्थ हो गया तब मैंने अपने वृद्ध अमात्य और अन्य गुरुजनो को अपना यह स्वप्न सुनाया। उन्हें वह पसद आया। मा के बार बार मना करने पर भी पिताजी ने नगर-देवताओ के एक उत्सव म अश्वमेध की घोषणा कर दी।

/

o

वे दिन मुझे अब भी याद आते है। पराक्रमी पुरुषो के वृत्तो के समान वे आज भी आखो के सामने आते है। उन रातो की यादें आज भी मन को खिला देती है अपने प्रत्येक पदविन्यास म उन्माद लिए चलनेवाली विलासिनियो की तरह।

लगभग डेढ साल मैं अश्वमेध के घोडे के साथ घूमता रहा। कदम-कदम पर इस प्राचीन और पवित्र भूमि का सौन्दर्य देखता गया। पचमहाभूतो के ताल पर गाए जाने वाले उसके असख्य मधुर गीत कानो से दिल म उतारता गया। उसके नित्य नूतन नृत्य आखो म समाता रहा। अश्वमेध का घोडा पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओ के क्रम से जानेवाला था। प्रत्येक भाग म भूमि क्या ही सुदर थी! हर ऋतु म वह नये वस्त्र परिधान करती थी। नाना तरह के आभूषणो से अपने-आपको सजाती थी। कभी तो आभास होता कि यह लोकमाता सजीव होकर मेरे सामने आ खडी हुई है। ये नदिया उसकी दुग्ध धाराए है। पर्वत उसके स्तन हैं और उन स्तनो से बहनेवाली धाराओ से वह अपने लाखो बच्चो का पोषण कर रही है। इस कल्पना से रोम रोम पुलकित हो उठता था।

कभी-कभी किसी रात म मा की याद आती थी। फिर उसको दिए वचन की स्मृति भी जाग जाती थी। नही, मैं किसी हालत म सन्यासी नही बनूगा, मैंने मा

को वचन दिया था। उसका प्रत्येक शब्द मैंने सच कर दिखाया था। दुनिया से मुख मोड़ लेने की अपेक्षा उसके सम्मुख खड़ा होकर उसका सामना करने के लिए मैं निकल पड़ा था। दुनिया का त्याग कर मैं जंगल में भाग जानेवाला नहीं बल्कि दुनिया को जीतकर उसे अपनी अर्जित करने वाला था।

हमारे घोड़े का विरोध बहुत ही थोड़े राज्यों में हुआ। पिताजी ने अपने पराक्रम से सारे आर्यावर्त में अपनी धाक जमा रखी थी। प्रत्यक्ष इंद्र का भी पराभव करनेवाले महाराज नहुष का अश्वमेध घोड़ा भला कौन रोकता? अविचार से जिस किसी ने उसे रोकने की हिम्मत दिखाई उसे मैंने अपने पराक्रम से दिखा दिया कि ययाति भी अपने पिता नहुष से किसी तरह कम नहीं है।

इन सभी छोटे मोटे संघर्षों में मुझे बड़ा आनंद आता था। आखेट में तो मैं निपुण था ही। शायद ही कोई पशु हो जिसका शिकार आसानी से मैंने नहीं किया था। लेकिन आमने-सामने रणक्षेत्र में आ डटे अपने जैसे ही शस्त्रास्त्रों से लैस मानवी शत्रुओं पर विजय पाने में एक कुछ निराला ही आनंद होता है। ऐसे समय शूर-वीरों के बाजुओं में सच्चा जोश उमड़ आता है। शिकार की सफलता की अपेक्षा युद्ध में प्राप्त विजय का आनंद अधिक उन्मादक होता है। मैं उसी उन्माद के लिए मचल रहा था। उस उन्माद की मधुरता का आस्वाद मैं कर चुका था इसीलिए तो उस दिन नगर-देवता के उत्सव में मैंने जान जोखिम में डाली थी। लेकिन आखिर वह तो एक पशु पर प्राप्त विजय थी।

अश्वमेध घोड़े के साथ दिग्विजय प्रवास में जब बड़े बड़े राजा महाराजा हथियार डालकर मेरे चरण चूमने लगे, मूंछों पर ताव देनेवाले धुरंधर घमण्डी जब दांतों में तिनका लिए अपनी हार मानने लगे तब तो मुझे लगा कि मैं आनंद के उत्तुंग शिखर पर चढ़ गया हूं। बचपन में हरसिंगार के वृक्ष को हिलाहिलाकर सबके उसके नीचे बिछ जाने वाले उसके फूलों को देखने में मुझे बड़ा आनंद आता था। उसी प्रकार अब आकाश-वन को हिलाहिलाकर नक्षत्रों के छिड़काव से सारी पृथ्वी को विभूषित करने का विचार मन में आने लगा। लेकिन तभी लगने लगा कि मैं भी क्या पागल हूं। आधी रात में टिमटिम करते इन नक्षत्रों को अपलक देखते रहने में जो आनंद है वह आकाश के इन झाड़-फानूसों को फोड़कर उनके भीतर जल रही दीप ज्योतियां बुझा डालने में कहां?

इस प्रवास में कई बार ऐसा होता कि मुझे नींद ही नहीं आती थी। यह नहीं कि मैं मां की याद आने या अन्य किसी कारण से बेचैन होता था। किसी अनामिक हूक से मेरी नींद उड़ जाती थी। शरीर थका मांदा होता था। लेकिन रथ का मुंहजोर घोड़ा जिस तरह अपने डांट पड़ सारथी की ओर कोई ध्यान न देकर चौकड़िया भरने लगता है उसी तरह मेरा मन थके शरीर का कोई लिहाज न कर स्वच्छन्दता से भ्रमण किया करता था। वह तो सीधे जन्म मृत्यु प्रणय धर्म ईश्वर आदि गहन प्रश्नों के चक्रव्यूह में घुस पड़ता था। वहां से बाहर निकलते निकलते नाक में दम आ जाता था। लगता था मृत्यु का सत्य रूप जानने की इच्छा

रखनवाले नचिकेता की कहानी झूठी है। मेरी देह म रोम रोम स आवाज़ निकलती थी—'मुझे जीना है!' मन परिहास करता, तो फिर क्या भाग चल जा रहे हो इस अश्वमेध के घोड़े के साथ? कहीं न कहीं इस घोड़े को रोका जाएगा घमासान युद्ध होगा, शायद उस युद्ध म तुम वीरगति को प्राप्त हो जाओगे। जिसे जीना है वह ऐसे स्थान पर कदम ही क्यो रखे जहा विकराल मृत्यु मुह बाए मडरा रही है?'

अन्तमन म जारी इस झगड़े को रोक पाना मेरे लिए असम्भव हो जाता था। तब सेज के फूल भी चुभने लगते। मैं उठकर बाहर आ जाता। तारो की ओर देखता। गुदगुदी करते भागनेवाली बयार से बातें करता। बीच ही म पास की अमराई के वृक्ष कुछ फुसफुसाते। मैं यह सब सुनते बैठता। समीप ही किसी जलाशय से चक्रवाक के जोड़े का क्रदन सुनाई देता। वह करुण सगीत मेरे दिल म गहरा पैठ जाता। कभी अकस्मात कोई तारा टूटकर गिर जाता जैसे जलती हुई लकड़ी से कोई चिनगारी निकली हो। आहिस्ता-आहिस्ता मेरे चारो ओर शान्ति का साम्राज्य फैल जाता। मेरे निवास के पास ही सेना का बड़ा पड़ाव पड़ा होता था। फिर भी मध्यरात्रि के दो प्रहर बाद इतनी शान्ति फैल जाती थी कि घोड़े भी हिनहिनाना भूल जाते थे। पेड़ो पर पछियो की चहक तो कभी की बन्द हो गई होती थी। अब नीड़ो म नींद म होने वाली कुलबुलाहट भी बन्द हो जाती। प्राणी मात्र की इस शान्ति को देखकर सहज भर मुह स प्रार्थना के शब्द निकलने लगते। बहुत ही धीमी आवाज़ म मैं उन मत्रो को कहता। अत म हाथ जोड़कर आकाश और आसपास फैली धरती की ओर प्रसन्न चित्त से देखता और तृप्त मन से कहता ॐ शाति शाति शाति! फिर नींद अपनी महीन रेशमी चादर मुझे ओढ़ाती और लोरी गाने लगती।

दिन म मिलने वाला पराक्रम का उन्माद और रात म मिलनेवाली यह शाति दोनो मुझे समान रूप स प्रिय थे। लेकिन किसी तरह समझ म नहीं आ पा रहा था कैसे इन दोनो का मेल बैठाया जाए। अश्वमेध के घोड़े के पीछे-पीछे मैं जा रहा था। काल-वृक्ष का एक एक पत्ता झड़ चला था। इस भ्रमण म शाति और उन्माद के कितने विभिन्न रूप मैंने देखे।

नृत्य म विभोर नर्तकी का आचल ढुलककर उसकी रूप-सपदा की झलक देखने को मिल जाया करती है। कई बार ठीक उसी तरह लगनेवाली शुद्ध चतुर्थी की चादनी का मैंने आकण्ठ पान किया। एक बार अत्यत घने जगल म हमारा पड़ाव पड़ा था। अधेरा घना होता जा रहा था। चहु ओर किरकिराते झींगुर थे और गुर्रानेवाले जगली जानवर। मध्यरात्रि बीत जाने पर भी मुझे नींद नहीं आ रही थी। ऊबकर मैं बाहर खुले म आ गया और लगा जैसे किसी यक्षलोक म आ गया हू। मैं चकित रह गया। मेरे सामनेवाले ऊचे घने वृक्षो की जाली म से छन कर हसती हुई चादनी नीचे उतर रही थी।

उस चादनी के समान ही वह दावानल भी अभी तक मुझे याद है। मानो सारे

जगल म आग लग चुकी थी। लेकिन उस दृश्य म केवल भयानकता ही नही थी भव्यता भी थी। लगा जसे सष्टि देवता का प्रचण्ड यज्ञ-कुण्ड भभक उठा है। ऐसे ही एक यज्ञ-कुण्ड म पावती अपन पति क प्रेम की खातिर कूद पडी थी। वह सती हो गई। उस दावानल को देखत समय मुझे प्रेम की वह अमर कहानी याद आई। मन म विचार आया काश ! मेरी भी कोई प्रेयसी होती। उसकी चीखें सुनकर मैं इन अग्नि-ज्वालाओ म घुस पडता और उसे सकुशल बाहर निकाल लाता। उसके प्रति मेरे इस असीम प्यार को देखकर देवता मुझपर फूल बरसात। कोई प्रतिभा शाली कवि दूर देश से मेरा दशन करन आता और कहता युवराज ययाति आज जीवन धय हो गया। इस दुनिया म पदा होने के बाद जो देखना था आज देख लिया। महाकाव्य की रचना क लिए मुझे विषय मिल गया।"

शाति और उन्माद के इतने विविध रूप इस दौर म मैंने देखे कहा तक बताऊ। धरती क शरीर पर रोआ के समान लगनवाली हरियाली और अपनी दण्डयुक्त शाखाओ स आकाश को थामन क लिए खडे गर्वीले देवदार के वक्ष ! आशीर्वाद दने के लिए पुरोहित द्वारा प्रोक्षण किए गए गगाजल के समान लगन वाली रिम झिम वर्षा की फुहारें और महाप्रलय की पवताकार लहरो की याद दिलानवाली धुआधार वर्षा की हाथीसूड-सी प्रचण्ड जलधाराए ! छिगुलिया पर पल भर का टिक जाए तो किसी हीरे की अगूठी-सी लगनेवाली सुदर नन्ही तितली और घोडे के समेत सवार को निगलकर अपने आपको किसी वृक्ष स लपटता हुआ दोनो का कचूमर निकाल देन वाला भयकर अजगर ! मन्दिरो क उत्तुग गापुर और गणिकाओ की सुदर हवेलिया ! अठारह-बीस फुट ऊची शूरवीरो की मूर्तिया और पवतीय गुफाआ म खुदी हुई कमनीय रमणीय आकृतिया !

ऐसे ही एक बार मैं एक रति की मूर्ति दखने गया था। साथ आए सारे सनिक बाहर खडे थ। मूर्ति बहुत ही सुन्दर थी। शकर द्वारा मदन का भस्म किए जान के बाद शोक करती बैठी रति की वह मूर्ति थी। उसकी तरफ मैं कितनी ही देर तक अपलक घूरता रहा। उसका आचरण देख गया था। सिर क केश खुलकर बिखरकर पीठ पर झूल रहे थ। देखत देखत मैं भूल गया कि वह एक निर्जीव पाषाण मूर्ति है। और इसस पहल कि मेरी समझ म आता कि मैं क्या कर रहा हू मैं आगे बढा और बडे ही आवग स उस मूर्ति क मुख को चूम लिया। ठण्डे पाषाण के स्पश म यदि मैं होश म न आया होता तो निश्चय हा उस मूर्ति के लाख-लाख चुबन लेन पर भी मेरा मन तृप्त न होता।

पाषाण क स्पश से मैं सकपका गया दूर हटा। सोचने लगा कहा मैं पाप तो नहा कर बठा ? परेशान मन को स्वय ही समझाया—छोडो भी रति न ता कोई स्त्री थी न ही कोई देवता। उसकी मूर्ति का चुबन लेन म भला क्या पाप ?

अश्वमेध का घाडा घूमत घूमत अब पूर्वी आर्यावत म आ गया था। घने जगलो की भूमि थी वह। बीच-बीच म हा थाडी आबादी थी। वहा किसी

जगह एकाध बड़ा नगर था। सर्वत्र आदिवासी लोगों के छोटे छोटे राज्य थे। अतएव युद्ध करने का मौका अधिकतर कहीं आया ही नहीं। लेकिन जीवन के इस सिलसिले से मन एकदम ऊब गया था।

सुना था इस इलाके में हाथी बहुत हैं। तो अब मैंने नया आखेट खेलने का तय किया ताकि मन कहीं तो उलझे। बड़े-बड़े जंगली हाथी रात में जंगल के जलाशयों में पानी पीने के लिए आते थे। मन में सोचा, चलो किसी हाथी की अकेले ही मृगया करूँ। एक मध्यरात्रि में बिना किसी को साथ लिए मैं अकेला ही घने जंगल के काफी गहरे अन्दर घुस गया। मैं एक जलाशय के पास ही ऊँचे वृक्ष पर चढ़ गया। क्या ही रोमहर्षक अनुभव था वह! घने अँधेरे का सागर चारों ओर फैला था। हाथ को हाथ नहीं सूझता था। मानो सारा जंगल तेज बुखार में कराह रहा था। तरह-तरह की अजीब आवाजें सुनाई दे रही थीं। सन्निपात में चिल्ला उठने वाले रोगी की तरह बीच में कहीं से शेर की दहाड़ सुनाई दे रही थी।

ऐसे वातावरण में हाथी का शिकार करने में ब्रह्मानंद था। पंचप्राण कानों में लाकर मैं सुन रहा था, आहट ले रहा था। कई लोगों से सुना था कि हाथी जब पानी पीने लगता है, डुब-डुब आवाज करता है। मेरे कान उसी आवाज को सुनने के लिए आतुर हो गए थे। धीरे धीरे बाकी सारी आवाजें सुनाई देना बंद हो गया था। इतना मैं एकाग्र हो गया था। बीतता पल घण्टा लम्बा लगने लगा था।

तभी दूर कहीं से कुछ अस्पष्ट सी एक आवाज सुनाई दी—डुब डुब डुब-डुब डुब-डुब। मेरे तन-बदन में बिजली दौड़ गई। लाख कोशिशें करने पर भी दूर की कोई बात दिखाई देना असम्भव था। केवल शब्दवेध ही सम्भव था। शब्दवेध से विद्ध होते ही हाथी चिंघाड़ उठेगा। फिर उसी आवाज की दिशा में सन् सन सन करते तीर बरसाता जाऊँगा। यही मेरी योजना थी।

डुब-डुब डुब डुब डुब डुब' मैंने तीर छोड़ा। उसके ठीक निशाने पर जा लगने की आवाज के साथ ही एक कर्कश मानवी स्वर भी सुनाई दिया!

"किस पापी ने यह तीर मारा है? जरा सामने तो आओ वरना "

मैं पसीने से तर हो गया। तीर किसी हाथी के नहीं बल्कि किसी योगी मुनि के जा लगा था। अब वह अवश्य ही शाप देगा। काँपती आवाज में वृक्ष पर से ही चिल्लाया क्षमा करें मुनि महाराज! मुझसे घोर अपराध हो गया है!

गिलहरी से भी अधिक फुर्ती से मैं वृक्ष पर से नीचे उतर आया! अँधेरे में ही मैं उस आवाज की दिशा में लपका। जलाशय के किनारे झाड़ झंखाड़ कुछ विरल हो गए थे। धूसर चाँदनी में मैंने पाया कोई वहाँ खड़ा है। लगा शायद कोई भूत प्रेत है। लपककर मैं सामने गया और उसके चेहरे पर दृष्टि तक न डालते हुए उसके पाँव छूने लगा।

वह तुरन्त पीछे हट गया। मुझे सुनाई दिया 'पापी का स्पर्श तक मुझे वर्जित है।"

मैं पापी नहीं हूँ महाराज! आखेट की धुन में मैं यहाँ चला आया। हाथी पानी पी रहा है सोचकर ही मैंने तीर छोड़ा। मैं क्षत्रिय हूँ। आखेट मेरा धर्म है।"

अब धर्म और अधर्म की बातें क्या तुम मुझे बताओगे? मैं एक व्रतस्थ योगी हूँ। आजन्म ब्रह्मचारी हूँ। क्या यह सच नहीं कि स्त्री के अधर स्पर्श से तेरे होंठ अपवित्र हो गए हैं? इस दृष्टि से यदि तुम पवित्र हो तभी मेरे चरणों को छू सकोगे।"

झूठ बोलने का साहस मैं कर नहीं पाया। उस रात भावना के ज्वार के साथ लिया अलका का चुंबन आँखों के सामने नाच गया। अवश्य ही यह योगी त्रिकालदर्शी होगा। झूठ कह भी दिया तो यह तुरन्त जान जाएगा और शाप देकर मुझे भस्म कर डालेगा। यह सोचकर मैं चुपचाप सिर झुकाए खड़ा रहा।

अत्यंत कठोर स्वर में योगी ने कहा 'लम्पट कहीं का!

क्या मैं वाकई में लम्पट था? स्त्री के स्पर्श में क्या इतना पाप होता है? तब तो दुनिया के सभी लोग क्या पापी नहीं हैं? मन में उल्टे-सीधे सवाल उठ रहे थे। समझ में नहीं आ रहा था क्या बोलूँ क्या न बोलूँ! क्या करूँ क्या न करूँ?

योगी ने फिर कहा तेरे जैसे एक तुच्छ जीव के साथ बातें करने के लिए मेरे पास समय नहीं है। मध्यरात्रि के बाद प्रहर-दो प्रहर सभी नित्यकर्मों से निवृत होकर मैं ध्यान लगाकर बैठा करता हूँ!'

आगे बढ़कर उसने अपने कमण्डलु में पानी भर लिया और मुड़कर जाने लगा। मैंने घुटने टेककर हाथ जोड़ते हुए कहा महाराज आपका आशीर्वाद चाहिए।

चाहे जिस आशीर्वाद देने के लिए मैं कोई भोला शंकर नहीं हूँ! तुम्हारा पूरा परिचय मालूम किए बिना भला मैं तुम्हें कैसे आशीर्वाद दे सकता हूँ?'

मैं एक राजपुत्र हूँ।'

तब तो तुम आशीर्वाद के पात्र नहीं हो।'

आखिर क्या? मैंने कुछ डरते सहमते प्रश्न किया।

इसलिए कि तुम शरीर के गुलाम हो। जितना वैभव अधिक, उतना ही आत्मा का पतन भी अधिक होता है! तुम्हारे जैसा राजपुत्र हमेशा मालपुवा खाकर रसना का दास हो जाता है। सुंदर वस्त्र और आभूषण धारण कर वह देह का दास बन जाता है। हर क्षण स्पर्शसुख और दृष्टिसुख के वह अधीन हो जाता है। सुगंधित फूलों और सुगंधित तेलों का जी भर उपभोग करने के कारण वह घ्राणेंद्रिय का गुलाम हो जाता है। वह प्रजा पर राज्य तो करता है लेकिन उसकी इंद्रियाँ उसके मन पर शासन चलाती हैं। स्त्री-सुख में सभी इंद्रिय सुखों का संगम

हुआ करता है। इसीलिए हम योगी लोग उस शरीर सुख को वर्जित मानते है। जाओ, राजपुत्र जाओ! हमारा आशीर्वाद चाहते हो, तो सभी सासारिक बातो का त्याग कर हमारे पास आना। फिर "

'लेकिन महाराज, किसी हालत मे सन्यासी न बनने का वचन दिया है मैंने!'

'किसे?"

अपनी मा को!"

शायद उस योगी के मन म जिज्ञासा उठी। उसने उत्सुकता से पूछा ऐसा वचन क्या दिया तुमने?'

मेरा बडा भाई बचपन म ही विरक्त होकर कही भाग गया। मेरी मा उस दुख को अब तक भुला नही पाई हैं।

क्या कहा? तुम्हारा बडा भाई?"

'जी महाराज! हो सकता है शायद वह आपसे कही मिला भी होगा। वह कहा रहता है यह यदि मुझे मालूम हो गया तो मैं हस्तिनापुर जाकर मा को ले आऊगा "

हस्तिनापुर से? तो क्या तुम हस्तिनापुर के राजपुत्र हो?"

जी महाराज!"

'तुम्हारा नाम?"

ययाति।'

तुम्हारे बडे भाई का नाम?

यति।'

यति?" कुछ भर्राई-सी आवाज म योगी के मुख म वह शब्द सुन मुझे कुछ अटपटा लगा मानो आसपास के पहाडो मे टकराकर मैं अपने ही शब्द की प्रतिध्वनि सुन रहा था!

अब उस योगी की आकृति मुझ पहले से ज्यादा स्पष्ट दिखाई देने लगी थी। उसने अपना बाया हाथ आगे बढाया। शायद मेरे कधे पर रखना चाह रहा हो। मुझे लगा उसका हाथ कुछ काप रहा है। नही! मध्यरात्रि बीत चुकी थी। जगल म ठण्डी पुरवया चलने लगी थी। शरीर को काट खाती उस हवा के कारण ही शायद उसका हाथ कापा था!

मेरे पीछे-पीछे आओ"—उसने जसे आदेश दिया और वह चलने लगा। कुछ कदम चलकर उसने मुडकर देखा। मैं अपने स्थान से हिला नही था। तनिक नरमाई से वह बोला ययाति तुम्हारा बडा भाई तुम्हे आज्ञा देता है चलो मेरे पीछे-पीछे चले आओ।'

यति की गुफा बहुत दूर नही थी। लेकिन वहा पहुचते तक जगल म उठ रही तरह-तरह की आवाज सुनकर भाग निकले खरगोश की भाति मेरा दिल काप रहा था। कही इसने मुझे गुफा म ही बन्द कर डाला तो? मैं कितना ही पराक्रमी

होऊ लेकिन इन हठ-योगियों को नाना प्रकार की सिद्धियां प्राप्त हुई होती हैं। कहीं गुस्से में आकर उसने मुझे किसी जानवर में बदल डाला तो ? अश्वमेध धरा का धरा रह जाएगा। मेरे साथ आए सैनिकों को यह पता तक नहीं चलेगा कि युवराज को कौन उड़ा ले गया है पाताल के नाग या आकाश के यक्ष गंधर्व ! वे सिर लटकाए हस्तिनापुर लौट जाएंगे लाहे के पांवों से। पिताजी सिर पीट लेंगे। ययु के गायब होने का समाचार सुनते ही मां बेहोश होकर गिर जाएगी।

आशा के समान भय के कारण भी दिमाग में पता नहीं कहां कहां की कल्पनाएं आने लगती हैं। जीवन में पहली बार यति मुझसे मिला था। वास्तव में इस अचानक भेंट के कारण मन को एकदम खिल जाना चाहिए था। लेकिन उसकी बातों से मेरा मन ठिठुर-सा गया था। सोच में पड़ा था कि गुफा में जाने के बाद उससे बातें करूं भी तो क्या ?

शीघ्र ही हम यति के निवास स्थान के पास पहुंच गए। वह एक ऊबड़ खाबड़ टेढ़ी मेढ़ी गुफा थी। कंटीली झाड़ी उसके प्रवेश द्वार को भी ढक रही थी। यति ने एक हाथ से जब कुछ झखाड़ को हटाया तब जाकर कहीं पता चला कि वहां एक गुफा है। मैं शरीर सिकोड़ता हुआ उसके पीछे पीछे भीतर पहुंचा लेकिन तब भी झखाड़ों की दो चार खरोंचें बदन पर उभर आई थीं। भीतर पांव रखा ही था कि शेर की गुर्राहट सुनाई दी ! मेरा हाथ तुरन्त तरकश-तीर की ओर उठा। यति ने पीछे मुड़कर हंसते हुए कहा आ हा ! यहां इसका कोई काम नहीं। तेरी गंध पाकर वह गुर्राया है। वरना तो दिन भर खरगोश सा पड़ा रहता है। मैं जहां भी जाता हूं वहां के खूंखार जानवर मेरे मित्र बन जाते हैं। आदमी से तो वे ही अधिक पवित्र होते हैं।

जाते-जाते यति ने शेर को माथा थपथपाया। वह किसी बिल्ली के बच्चे जैसा यति के साथ खेलने लगा।

अब हम लोग गुफा के एकदम भीतरी भाग में पहुंच गए थे। वहां एक अजीब किस्म की रोशनी फैली थी। मैंने चारों ओर नजर दौड़ाई। कोने-कोने में जुगनुओं के जत्थे जगमगा रहे थे। हर कोने में एक एक नाग कुंडली मार आराम से बैठा था। प्रत्येक के माथे की मणि चमक रही थी। दाईं ओर निर्देश करते हुए यति ने बताया 'यह है मेरी शय्या।'

मैंने झुककर देखा। यति ने एक छोटी-सी चट्टान को सिरहाना बना लिया था। गुफा के द्वार पर लगे झखाड़ से कुछ टहनियां काटकर कंटीला बिस्तर बनाया था। इस कल्पना मात्र से कि यति हमेशा इसी बिस्तर पर सोता है मैं सिहर उठा। वह मेरा बड़ा भाई था। आज यदि वह हस्तिनापुर में होता तो सारे राज नियाम हाथ जोड़े उसके सामने खड़े होते ! उन सबको त्याग कर यति ने यह जीवन क्या पसन्द किया ? इसमें उसे क्या सुख मिलता होगा ? आखिर यति क्या प्राप्त करने जा रहा है ? वह किस बात की खोज में लगा है ?

यति ने अपनी कंटीली शय्या के पास ही पड़ी एक मृगछाला उठाई और मेरे

तो मीठे फलो के प्रति हमारी आसक्ति हो जाती है। आसक्ति मनुष्य को शरीर पूजक बना देती है। शरीर के पुजारियो की आत्मा चेतना विहीन हो जाती है। आत्मा को जाग्रत रखने की शक्ति केवल विरक्ति मे ही है। उसी विरक्ति के लिए मैं इन्ही कडवे फलो का सेवन करता हू।"

उसने एक फल उठाया और दातो तले कचकचाकर खा गया। कडवेपन के कारण मेरे मुह म अभी वह छोटा सा टुकडा धरा का धरा ही रखा था। गुफा के बाहर जाना सम्भव होता तो मैं कभी का उसे थूक आया होता।

यति और मैं सगे भाई थे। लेकिन हम दोनो के बीच एक भयकर गहरी खाई फल गई थी। वह कितनी गहरी है अब मैं पूरी तरह जान पाया था।

फल खा चुकने के बाद यति ने कहा प्रत्येक इद्रिय पर मनुष्य को इसी तरह विजय प्राप्त करना चाहिए। जब से इस माग को स्वीकार किया है मैं इसीके लिए प्रयत्नशील हू। लेकिन अभी मुझे अपने पर भरोसा नही हो पाया है। हरी दूब म साप भी दबे छिपे रहते हैं। विरक्ति की ओट म उसी प्रकार आसक्ति भी "

बचपन म मा को छोडकर एक रात वह क्या भाग निकला मेरे लिए एक पहेली ही थी। कुछ ढाढस बाधकर मैंने पूछा बिल्कुल बचपन मे ही तुमने यह माग क्यो स्वीकार किया ?

जिस ऋषि की कृपा से मेरा जन्म हुआ उन्हा के आश्रम म यह विरक्ति भी पैदा हो गई। मा मुझे उनका दशन कराने ले गई थी। रात म मा मुझे लेकर पण कुटी म गहरी नीद सो रही थी। लेकिन मुझे अजीब सपने आने लगे। मैं तुरन्त उठकर बाहर आ गया। दब पाव पास की एक कुटिया म गया। आश्रम के ब्रह्मचारी आपस म बातें कर रहे थे इस नहुष राजा के पुत्र कभी सुखी नही होंगे।'

मैं भय से काप उठा। शरीर के रोंगटे खडे हो गए। यति के समान मैं भी तो नहुष महाराज का ही पुत्र था। क्या उन शिष्यो की वह भविष्यवाणी सत्य होगी ? और होगी तो ?

अनजाने ही मेरे मुह से निकल गया नहुष राजा की सतान सुखी नही होगी ?'

हा आज तक वे शब्द मेरे काना म गूज रहे हैं।

ऐसा क्यों ?'

शाप है।

'किसका ?'

'ऋषि का।'

'पिताजी ने ऐसा क्या पाप किया था जो उन्ह ऋषि ने शाप दिया ?

वह कहानी तो मैं भी ठीक तरह से नही जानता। लेकिन अब तुम चले जाओ। मेरा ध्यान लगाने का समय हो गया। किन्तु एक बात याद रहे। उस रात

उन शिष्या की बाता ने मुझे सावधान कर दिया। मैंने तय कर लिया कि दुखी राज पुत्र होने की अपेक्षा सुखी संन्यासी बनूगा। घूमता भटकता मैं हिमालय चला गया। वहा मुझे एक हठयोगी गुरु मिल।"

मैंने बीच ही म टोक कर पूछा, "यति, अपने छोटे भाई को एक भिक्षा दोगे ?"

'तुम क्या चाहते हो ?"

मैं हस्तिनापुर जाकर मा को ले आता हू। तुम एक बार उससे मिल लो।"

सिर हिलाते यति ने उत्तर दिया, 'यह सम्भव नही है।'

क्या ?"

'मेरी तपस्या अभी पूरी नही हुई है। भगवान अभी मेरी मुट्ठी म आया नहा है। तुम उसे ले भी आए, तब भी मुझसे भेंट नही होगी। मैं एक ही स्थान पर ज्यादा दिन कभी नही रहता। आसक्ति ही आत्मा का सबसे बडा शत्रु है। किसी भी स्थान के प्रति जरा-सा भी आकर्षण लगने लगते ही मैं उस स्थान को छोड देता हू।

'फिर तुम्हारी मा से भेंट कब होगी ?"

क्या पता ! शायद हो जाएगी, शायद कभी नही होगी !'

'और हम दोनो की भेंट ?'

आज के समान ही कभी सयोग से होगी ! तब सभी सिद्धिया को मैंने अपने वश म किया होगा। चलो उठो बाहर जाओ। मेरी ध्यान धारणा का समय हो चला है। आओ, मैं तुम्हे गुफा के बाहर तक छोड आता हू और "

गुफा के प्रवेश स्थान को मेरे घनी कटीली लताओ की छाया से अलग करते हुए हम दोनो भाई बाहर आ गए। अब उससे विदा लेना अपरिहार्य ही था। मैंने गदगद होकर कहा, यति मैं चलता हू। मुझे भुला मत देना।"

जब से गुफा म आया, उसने मुझे ठीक से छुआ तक नही था। लेकिन इस आखरी क्षण शायद उसका कठोर निश्चय टूट गया। अपना दाया हाथ मेरे कधे पर रखता हुआ वह बोला ययाति आज या कल तुम राजा बनोगे सम्राट बनोगे सौ सौ अश्वमेध करोगे। लेकिन एक बात हमेशा याद रखना—मन को जीतना जग को जीतने जसा आसान नही "

o

अश्वमेध का दिग्विजयी घोडा साथ लेकर मैंने हस्तिनापुर में प्रवेश किया। राजधानी ने मेरा शानदार स्वागत किया। सारी नगरी नई दुल्हन सी सजी थी, एक रमणी के समान नृत्य गायन म मस्त थी किसी प्रमदा जैसी भाव भगिमा से फूलो की झडी लगा रही थी।

लेकिन इस अपूर्व धूमधाम से किए स्वागत से भी मेरा मन उतना प्रसन्न नही हुआ जितना कि होना चाहिए था। पहनाए गए सुन्दर और सुगन्धित फूलो के

हार म ठीक अपना चहेता फूल ही नदारद हो ऐसा उस स्वागत म मुझे बार बार अनुभव हो रहा था। नगर के महाद्वार पर मेरी पचारती उतारने के लिए खडी दासियो म अलका कही भी दिखाई नही दी। बाद मे अनेक समारोहो म भी वह कही नजर नहीं आई। मेरी आखें निरतर उसे ही खोजती रही लेकिन आखो की प्यास अनबुझी ही रह गई।

मा को कितना आनद हुआ है उसके चलन फिरन म देखने दिखाने म प्रति पल प्रकट हो रहा था। मानो उसका यौवन लौट आया था! लकिन उसकी ममता भारी दृष्टि से वह निकले वात्सल्य म नहाकर भी मेरे दिल का कोई कोना सूखा ही रहा था।

आखिर सहज ढग मे याद आने का बहाना बनाते हुए मैंने मा स पूछा अलका कही दिखाई नही दी मा?

वह अपनी मौसी के घर गई है!

कहा रहती है उसकी मौसी?

बहुत दूर हिमालय की तलहटी म। वहा से आग राक्षसो का राज्य शुरू होता है।

उस रात मैं बार-बार यति और अलका के बारे म ही सोचता रहा।

मैं तो अपने महल म पलग पर आराम के साथ लेटा हू। लकिन इसी समय यति हाथ म कमण्डलु लिए वन म किसी जलाशय पर जा रहा होगा! उसके मन म न कोई भय है न किसी के लिए प्यार! क्या इस दुनिया म सुख प्राप्ति का सच्चा माग वही एक है? फिर मेरा मन क्यो नही उस माग की ओर बढ़ता? रह रहकर अलका की याद मेरे मन म क्या उठती है? उस रति मूर्ति के समान उस रात वाली अलका की मूर्ति का मेरे मन पर किसने अकित कर दिया है? अब इस समय वह क्या करती होगी? घन स भो गई होगी या मेरी याद म बेचन तडप रही होगी? क्या स्वप्न म वह यहा हस्तिनापुर आती होगी? यहा आने पर मेरे महल क फेरे मारती होगी?

मैं अश्वमेध के समारोहो म आहिस्ता आहिस्ता इन बातो को भुलाता गया।

अश्वमेध अभी समाप्त हुआ ही था कि उस महर्षि के शिष्य जिनके आशीष से मा ने यति प्राप्त किया था पिताजी के लिए उनका कोई सन्देश लेकर आ पहुचे।

हमारे परिवार म एक अलिखित प्रथा-सी थी कि उन महर्षि का नाम तक कोई अपने मुह स न निकाले। अब यह पता नही कि इस प्रथा के पीछे नितान्त भक्ति थी या चरम क्रोध!

लकिन यह आपबीती सुनाते समय अपना मन को निरतर सीख द रहा हू कि कोई बात छिपाई नही जानी चाहिए। उस महर्षि का नाम था अगिरस।

देव दानवो के बीच महायुद्ध प्रारभ होने के आसार दिखाई देने लगे थ। उस युद्ध को रोकने के लिए महर्षि अगिरस न शान्ति यज्ञ करने का सकल्प किया था।

इस यज्ञ में मुख्य ऋत्विक उनका प्रिय शिष्य कच बनने वाला था। कच देवताओं के गुरु बृहस्पति का सुपुत्र था। इसलिए नितांत सम्भव था कि राक्षसों की ओर से इस यज्ञ में बाधा डाली जाएगी। इस विघ्न से यज्ञ की रक्षा करने के लिए अंगिरस जी ने पिताजी से उनका दिग्विजयी पुत्र मांगा था।

यह तो अश्वमेध से भी बड़ा सम्मान था। मेरी आकांक्षाएं उस शान्ति-यज्ञ की परिक्रमाएं करने लगीं। यति से मुलाकात मेरे जीवन का एक भयंकर सपना था। अलका का चुम्बन जीवन का एक सुंदर सपना था। लेकिन दोनों आखिर थे तो सपने ही। शान्ति-यज्ञ कोई सपना नहीं था। उस यज्ञ की रक्षा करते समय मेरी वीरता और पराक्रम प्रकट होने वाले थे। राक्षसों को चुटकियों में पराभूत करने वाला यह कौन नया सूरमा है यह जानने के लिए इन्द्र मुझे बुला भेजेगा। फिर मैं स्वर्ग जाऊंगा। वहां अलका से हजार गुना सुंदर अप्सराएं मेरे को रिझाने का प्रयास करेंगी। लेकिन उनकी चंचल चितवनों और मोहक प्रणय कलियों की ओर कतई कोई ध्यान न देते हुए मैं इन्द्र से कहूंगा, 'देवेन्द्र, देव दानव युद्ध में मैं हमेशा आपका साथ दूंगा। लेकिन मेरे लिए आपको भी एक बात करनी होगी। मेरे पिताजी को शाप मिला है कि नहुष की सन्तान कभी सुखी नहीं रहेगी। उन्हें उस शाप से मुक्त करने वाला उपाय आपको मुझे बताना होगा।"

मेरे जाने में मां ने रुकावटें डालने की काफी कोशिशें कीं। आंखों में पानी लिए उसने कई बार मुझे समझाना चाहा कि पुत्र कितना भी बड़ा क्यों न हो जाए मां को तो वह हमेशा बच्चा ही लगा करता है! उसकी इस दुर्बलता पर मुझे दया आने लगी। राक्षसों की हार और अपने पराक्रम के सपने मैं देख रहा था। मैंने उससे कहा, "तुम्हारी यह बात कहां तक सच है स्वयं बूढ़ा होने के बाद ही समझ पाऊंगा। लेकिन मां, बुढ़ापे में यदि मैं कुछ बचपना करने लगूं तो मुझे क्षमा करोगी न?" रुंधे स्वर में मां बोली, "तुझे बूढ़ा हुआ देख सकूं यही भगवान से मेरी प्रार्थना है।" पता नहीं इन शब्दों की जड़ में जमे मां के दुख को कोई समझ भी पाता था या नहीं! लेकिन मुझे तो अवश्य लगा कि हो न हो उस भीषण रात को जब यति भाग गया था मां आज भी भूल नहीं भुला पा रही है। किसी डरावनी राक्षसी के समान उसका डर आज भी उसे दबाए हुए है!

o

मेरे अंग रक्षक आराम से पीछे-पीछे आ रहे थे। उनकी धीमी गति के कारण अंगिरस ऋषि के आश्रम को जाते जाते मेरा घोड़ा ऊब गया। अपने मालिक के समान उसका भी मन नटखट था शायद। हवा से बातें करने में उसे बड़ा आनंद आता था। कुछ ही समय में मैं आश्रम के पास आ गया।

शाम ढल चुकी थी। सामने वाली झाड़ी से काले धुएं की लकीरें बल खाती हुई नील आकाश की ओर उठ रही थीं। लगता था किसी नर्तकी का तालबद्ध

पद विन्यास ही है। नीडो म लौटते पछी मधुर स्वर म चहक रह थे। पश्चिम आकाश म मानो कोई सुदर यज्ञ कुण्ड भभक उठा था। उन ज्वालाओ म मेघो की आहुतिया चढाइ जा रही थी और सारे पछी गण ऋत्विक बनकर मन्त्रोच्चारण कर रह थे।

नाना प्रकार के पक्षी अपने अपने घासले को लौट रहे थे। राजप्रासाद म भी रगो की इतनी विविधता मैंने कभी देखी नही थी। मैंने घोडा रोक लिया। उन तरल और गाते हुए रगो को देखकर मन मुग्ध हो गया। एक पचरगा पक्षी उडते उडते मेरे सामने से जाने लगा। उसके रगो स मन इतना मोहित हो गया कि लगा तीर मारकर इस नीचे गिरा दू और इसके अति सुदर डैने अपने पास सुरक्षित रख लू। इसी प्रबल इच्छा से मैंने धनुष पर तीर चढाया। तभी कठोर वाणी गूज उठी—"रुक जाओ।"

वह अनुरोध नही आदेश था। चौंककर मैंने मुडकर देखा। उस पक्षी के रग बिरग रूप को देखते रहने की धुन म मैं इतना खो गया था कि आसपास ध्यान ही नही गया था। बाइ ओर एक वृक्ष की शाखा पर बैठा कोई ऋषिकुमार सध्या की शोभा देख रहा था। मेरी ही उम्र का होगा। उसके उस आदेश पर मुझे काफी क्रोध आ गया। लेकिन अनजाने म ही मेरा हाथ नीचे आ गया था। उसकी अपेक्षा मुझे अपने-आप पर ज्यादा क्रोध हो आया। वह तुरत वृक्ष से कूदकर मेरे पास आकर बोला "यह महर्षि अगिरस का आश्रम है।"

कुछ अकडकर मैंने उत्तर दिया "हा हा मालूम है।"

"इस आश्रम के परिसर म तुम इस पक्षी को मारने जा रहे थे। वह अधर्म होता।"

"मैं क्षत्रिय हू। हिंसा मेरा धर्म है।"

"हिंसा धर्म तब बनती है जब वह आत्मरक्षार्थ या दुर्जनो का विनाश करने के लिए की गई हो। इस बेचारे मूक प्राणी ने तुम्हे कौन सा कष्ट दिया था? उसने तुम्हारा क्या बिगाडा था? कौन-सा कुकर्म किया था?"

"उस पछी के रगो पर मैं बहुत ही मोहित हो गया।"

"बडे रसिक जान पडते हो! लेकिन यह न भूलो कि जिसने तुम्हे यह रसिकता दी है उसीने इस पछी को जान भी दी है।"

"ऐसी नीरस बकवास किसी मन्दिर म ही भाती है" मैंने खिसियाकर कहा।

ऋषिकुमार हसते-हसते बोला, "तुम एक मन्दिर म ही तो खडे हो! वह देखो पश्चिम म इस मन्दिर का आरती-दीप मद मद होता जा रहा है। जरा ऊपर की ओर देखो। अब सध्या-आरती के लिए एक के बाद एक अनगिनत दीप जल उठेंगे।"

वेशभूषा म वह ऋषिकुमार लग रहा था लेकिन उसकी वह बकवास ऋषि को नही किसी कवि को शोभा देने वाली थी। परिहास से मैंने कहा "कविराज क्या आप घोडे पर सवारी करना जानते है?"

'नहीं।'

तो आप मृगया में क्या सुख है कल्पना ही नहीं कर सकते।'

किन्तु मैं भी शिकार करता हूं।"

"किसका ? दर्भों का ?" मेरे स्वर में परिहास कूट-कूटकर भरा था।

'अपने शत्रुओं का।" उसने अत्यन्त शांतभाव से उत्तर दिया।

'वल्कल परिधान धारण करने वाले और पर्णकुटी में रहने वाले ऋषिकुमार के भी कोई शत्रु होते हैं ?"

एक ही नहीं, अनेक!"

'लेकिन शत्रुओं का मुकाबला करने के लिए तुम्हारे पास शस्त्र कहां हैं ?"

सूर्य और इन्द्र से भी अधिक तेजस्वी घोड़ा मेरे पास '

'लेकिन अभी तो तुम कह रहे थे कि तुम्हें घोड़े पर बैठना नहीं आता ?"

तुम्हारे घोड़े पर नहीं लेकिन अपने घोड़े पर मैं हमेशा सवार रहता हूं। बड़ा ही सुन्दर और चंचल है मेरा घोड़ा। और भागता भी इतना तेज़ है कि कुछ पूछो मत। पल झपकते ही पृथ्वी से स्वर्ग में जा पहुंचता है। वह ऐसे स्थान पर भी पहुंच जाता है, जहां प्रकाश की किरण तक नहीं जा सकती। अश्वमेध के कई घोड़ों को उस पर निछावर किया जा सकता है। उसके बल पर आदमी नर से नारायण और देवता देव से महादेव बन जाया करते हैं!'

शायद उसकी बातें तिलमिला देनेवाली थीं। लेकिन उनका अर्थ मेरी समझ में नहीं आ रहा था।

गुस्से में अपने घोड़े को मैंने एड़ लगाई और उस उद्धत ऋषिकुमार से पूछा, 'कहां है तुम्हारा घोड़ा ?"

'वह मैं तुम्हें दिखा नहीं सकता। किन्तु आठों पहर वह मेरे पास रहता है। मेरी सेवा में हमेशा एकचित्त होकर लगा रहता है, सजग रहता है।'

अरे भाई, तुम्हारे घोड़े का कोई नाम वाम तो होगा न ?"

अवश्य है।"

फिर बताते क्यों नहीं ? क्या है उसका नाम ?"

आत्मा!"

मां ने मुझे बार बार जताकर भेजा था कि मैं आश्रम में अत्यन्त विनम्र भाव से प्रवेश करूं। इसीलिए मैं सेना आदि राजवस्त्र और अन्य अलंकार उतारकर पहले ही अंगरक्षकों के हवाले कर आया था। मामूली सैनिक सा लगने के कारण ही उस ऋषिकुमार ने शायद मुझे पहचाना नहीं था।

मैंने भी उसे कभी देखा नहीं था। फिर उसे पहचानता कैसे ? सभी ऋषि और पहाड़ दूर से एक-से ही लगते हैं। जटाजूट, यज्ञोपवीत, वल्कल, विभूति आदि वस्तुएं सभी ऋषियों में एक सी ही तो होती हैं!

किन्तु उस रात प्रार्थना के समय महर्षि अंगिरस ने जब हम दोनों का परस्पर परिचय कराया तो मैं सिटपिटा गया। वह ऋषिकुमार कच था! देव गुरु बृहस्पति

का पुत्र। शान्ति-यज्ञ का एक प्रमुख ऋत्विज। मेरे सामने वह भी उम्र में छोटा ही लगता था। बहुत हुआ तो शायद मुझसे एक-आध वर्ष बड़ा होगा! मैं हैरान था कि इतनी कम उम्र वाले कच को अंगिरस जैसे निःस्पृह महर्षि ने अपने यज्ञ का प्रमुख पद बहाल किया। सच ही तो है, प्रेम अन्धा होता है। चाहे वह प्रेम एक मां का अपने पुत्र से हो या एक महर्षि का अपने शिष्य से।

अंगिरस जी द्वारा मेरा परिचय पाते ही कच भी चकित रह गया। अभी शाम को ही तो हम दोनों में छोटी-सी नोक-झोंक हो गई थी। शायद उसीको याद करता हुआ कच हंसते-हंसते आगे आया और अभिवादन करते हुए बोला, "युवराज, पता नहीं शाम को शायद मैं आपसे कुछ भला-बुरा कह गया! गुरुजी की यह सीख कि सत्य बोलो किन्तु सुनने वाले को प्रिय लगे ऐसा बोलो, अभी मैं ठीक तरह से आत्मसात् नहीं कर पाया हूं। मेरे कहने का बुरा मत मानिए। मन का घोड़ा कब और किस विभीषिका से सहम कर बेकाबू हो जाएगा, कोई भरोसा नहीं। मुझे क्षमा कीजिए।"

मैंने भी उसे प्रति-अभिवादन किया। "आप भी मुझे क्षमा कर दें"—शब्द मुंह में उठे तो, लेकिन किसी तरह बाहर नहीं निकल पाए। हस्तिनापुर का युवराज एक ऋषिकुमार से क्षमा-याचना करे? भला यह कैसे हो सकता था!

अपने-आपसे ही कुछ बुदबुदाता हुआ कच अग्निशाला से बाहर आया। मैं भी उसके पीछे ही था। कच के शब्द मुझे सुनाई दे रहे थे—"आत्मा वा अरे मन्तव्य श्रोतव्य आत्मा वा अरे निदिध्यासितव्य।"

हम दोनों को अलग-अलग पर्णकुटियों में ठहराया गया था। आश्रम के बिलकुल दूसरे सिरे पर थीं वे। गहरी हरी वृक्ष-वाटिकाओं में वे दोनों कुटिया ऐसे लग रही थीं मानो दो नन्ही-मुन्नी बहनें एक-दूसरी से लिपटकर एक ही कम्बल में सो गई हैं।

मेरी ओर देखकर हंसते-हंसते कच ने कहा, "युवराज, अब तो हम पड़ोसी हो गए।"

"कचदेव, याद है न? कहते हैं, पड़ोसी से बढ़कर कोई शत्रु नहीं होता!" मैंने फब्ती कसते हुए कहा।

"प्रत्येक लोकप्रिय कहावत केवल अर्धसत्य ही होती है!" उसने भी हंसकर उत्तर दिया। पर्णकुटी की शय्या पर मैं लेट तो गया, लेकिन नींद आने का नाम नहीं ले रही थी। मति की उस कांटों भरी सेज से तो शय्या लाख दर्जे अच्छी थी। किन्तु एकदम मुलायम परों की आरामदेह शय्या पर सोने के आदी बने मेरे शरीर में वह चुभने लगी। कोने में किसी तेल का दिया मन्द-मन्द जल रहा था। शायद इंगुदी के तेल का हो। या कोई और तेल डाला गया हो। युवराज ययाति ने इंगुदी शब्द सुना तो था, लेकिन उसका तेल निकालने की विधि की उसने कोई कल्पना तक नहीं की थी। इस कल्पना से कि इसी रंगहीन रूखे और दरिद्र वातावरण में शान्ति-यज्ञ के समापन तक मुझे रहना होगा, मेरे रोंगटे खड़े हो गए। पास की

पणकुटी स मद मधुर स्वर म किसी गुजन की आवाज सुनाई दे रही थी। कलकल करत बहन वाल गगा प्रवाह के समान वह ध्वनि बहुत ही मीठी और सुखद लगती थी। आखें मूदकर मैं सुनन लगा। शायद कच अपने नित्यक्रम क अनुसार सोने से पूव पाठ पढ रहा था। शब्द ठीक से सुनाई नही दे रहे थे। लेकिन धूप म तपकर आए यात्री को वषा की फुहार जितनी सुखद लगती है उतना ही सुख उन्हे सुनकर मुझे मिल रहा था। धीरे धीरे निद्रा ने मुझे अपने आचल मे ल लिया। मैं सपना दख रहा था– अलका गुनगुना रही थी, आत्मा वा अरे म नव्य श्रोतव्य निदिध्यासितव्य ! —ह मानव, आत्मा के स्वरुप का चिन्तन करा, आत्मा की पुकार सुनो। आत्मज्ञान को ही अपना लक्ष्य समझो। उसीकी धुन मे मस्त हो जाओ।''
अच्छा तुम तो अब बस गार्गी, मत्रेयी बन गई हो ? कहता हुआ मैं आगे बढा और उसके कधे पर हाथ रखा। वह अदृश्य हो गई।

जपमाला म जस एक एक रुद्राक्ष पीछे खिसकता जाता है उसी तरह से एक एक दिन बीतता चला गया। शरीर शिकायत करता रहा। लकिन हर बार शरीर की किचर पिचर किसी न किसी आनन्द म डूबकर रह जान लगी मत्र घाष म झीगुरो की झीगझीग खो जाती है वसे ही ! हो सकता है इसका कारण शान्ति यज्ञ के लिए किए जा रह काम थे, या महर्षि अगिरस द्वारा मेरी प्रशसा म यह कहते रहना था कि तुम यहा आए हो यह बात राक्षसो को मालूम हो गई है। तभी यज्ञ मे विघ्न डालने की हिम्मत वे नही कर पा रहे है।" या इसका कारण यह भी हो सकता है कि आश्रम म आदमी हवा के समान स्वच्छन्द और हिरन के समान चपल हो जाता है। या कि कच जैसी तेजस्वी सुविचारी और काफी लिखा पढा मित्र मुझे मिला था इसलिए भी शरीर की किचर पिचर मुझे सुनाई नही द रही थी। क्योकि वह शान्ति यज्ञ का प्रमुख ऋत्विक था, कच सुबह से शाम तक केवल पानी पीकर ही रहता था। यज्ञ का मुख्य रक्षक होने के नाते मुझे भी इसी तरह व्रतस्थ रहना चाहिए था। लेकिन महर्षि अगिरस न मेरे अग रक्षका म स छह को चुना था। वे छह और सातवा मैं बारी बारी स एक दिन सूर्योदय स लेकर सूर्यास्त तक केवल पानी पीकर रहत थे। सप्ताह म जब मरी बारी आती, तो वह दिन मेरे लिए बडा दुश्वार हो जाता था। पेट म जब-तब चूहे दण्ड पलने लगत और मैं बहुत ही बचैन हो जाता था। यह नही कि मृगया म या अश्वमेध क घोडे के साथ होन वाले भ्रमण मे मुझे भोजन बिल्कुल ठीक समय पर मिलता ही था। लेकिन उस समय मन ऐस उन्माद से भरा रहता था कि उस खाने पीन की सुधि कहा रहती थी। भूख स बिलख उठना तो मन म विचार आत कि काश मेरे व्रत के दिन ही राक्षस यज्ञ पर आक्रमण कर दें ! तब तो उनस युद्ध करन म सारा दिन आसानी से कट जाएगा और उसी धुन म पेट म पड रही यह आग भुलाई जा सकेगी। लकिन वसा कभी हुआ नही। इस प्रकार व्रत रखन के दिन कच को दखकर मुझे बडा आश्चय होता ! यहा तो सप्ताह मे एक दिन व्रत रखना टेढी खीर लगता है और एक यह कच है कि प्रतिदिन इसी व्रत का पालन बडे ही

नही आ रहा था कि फूल किसे दिया जाए। उसकी परेशानी को भापते हुए कच ने कहा "बेटी यह फूल तुम इन युवराज को दे दो।" मैंने तुरन्त उससे कहा "नही नही यह तो इन्हे ही देना है महान ऋषि है ये।"

वह बच्ची उस अर्धखिली कली को तोडने ही वाली थी कि कच ने धीरे से उसका हाथ अपने हाथ मे ले लिया और बोला "बेटी तुम्हारी यह सुन्दर भेट मुझे पहुच चुकी है। लेकिन इसे लता पर ही रहने दो। वही उसे खिलने दो। प्रतिदिन प्रात यहा आकर मैं तुम्हारे इस फूल से बातें करूगा। अब तो खुश हो न?"

कच के इन शब्दो से लडकी को परम सन्तोष मिला, लेकिन मैं बेचैन हो उठा। उसी रात बातें करते करते मैंने इसी विषय को छेडा। मैंने कहा "कच यह फूल कल परसो तक पूरी खिल जाएगा। दो चार दिन वह फूल लता पर हसता रहेगा झूमता रहेगा फिर मुरझाएगा अपने-आप झड जाएगा। यह सब देखते रहने मे क्या सुख धरा है? फूल क्या केवल दूर से देखने मात्र के लिए होते है? सच्चा आनद तो उन्हे तोड लेने मे सूघने मे उन्हे हार मे पिरोने मे बालो मे गूथने मे और सेज पर बिछा देने मे है।

कच हसकर बोला "वह आनन्द अवश्य है लेकिन पल भर का है केवल उपभोग का है।"

"क्या उपभोग पाप है?"

"नही धर्म का उल्लघन न करने वाले उपभोग मे कोई पाप नही। लेकिन इस ससार मे उपभोग से भी श्रेष्ठ एक और आनन्द है।"

"कौन सा?"

"त्याग का।"

मुझे यति का स्मरण हो आया। बचपन मे ही वह ससार को त्याग कर चला गया था। उस रात जगली हाथी का किया शिकार यति की वह अजीब गुफा उस गुफा मे बिछी यति की वह काटो भरी शय्या सबकी स्मृति जाग उठी और मैंने कच से प्रश्न किया "इस ससार मे क्या सन्यास ही सुख का एकमेव मार्ग है?"

वह हसा। कुछ देर चुप बैठा रहा। मैंने फिर पूछा "कल राजा बनने के बजाय मैं यदि सन्यासी बन जाता हू तो क्या वह बात उचित होगी?"

अब कच की मुद्रा गभीर बन गई। आवेश के साथ वह बोला "कदापि नही। युवराज राजा होकर प्रजा का पालन करना और प्रजा के सुख के लिए सदा रत रहना ही तुम्हारा राजधर्म है। यह राजधर्म सन्यास धर्म से कम श्रेष्ठ नही है।"

मैंने कहा "क्या सिहासन पर बैठकर सन्यासी के समान आचरण करना सभव है?" कच के माथे पर सूक्ष्म बल उभर आया। उसने आराम से कहा "युवराज घर गृहस्थी चलाना हो मनुष्य का सहज स्वभाव है। स्पष्ट है कि उसके जीवन मे सब प्रकार के उपभोगो को स्थान है। भगवान यदि यही चाहता होता कि मनुष्य

उपभोग न करे तो वह उस शरीर ही नही देता। लेकिन इसका मतलब यह कदापि नहीं कि केवल उपभोग ही जीवन है। भगवान ने शरीर के साथ मनुष्य को आत्मा भी दी है। शरीर की प्रत्येक वासना को इस आत्मा के बंधन में रखना जरूरी है इसीलिए मनुष्य की आत्मा हमेशा जाग्रत रहनी चाहिए। नहीं तो सारथी के हाथों से लगाम छूट जाती है घोड़े बेकाबू होकर मनमानी दिशा में भाग खड़े होते हैं रथ गहरी खाई में गिरकर चकनाचूर हो जाता है और उसमें बैठा धनुर्धर व्यर्थ प्राणों से हाथ धो बैठता है।"

कहते कहते वह रुका। सिर उठाकर उसने एक बार तारों भरे आकाश पर दृष्टि डाली। फिर बोला 'युवराज मुझे क्षमा करें। इस तरह की कोई बात चल पड़ी न तो मैं सुधबुध खो बैठता हूं। मैं तो जीवन मार्ग का एक राही हूं। इस मार्ग में पड़ने वाले पहाड़ों और खाइयों, जंगला-झखाड़ों नदी-नालों आदि से अभी मैं गुजरा नहीं हूं। अभी मैंने जो कुछ कहा वह निरा किताबी ज्ञान है। उसमें व्याव हारिक अनुभव की कमी है। लेकिन बृहस्पति जैसे पिता अंगिरस जैसे गुरु के सान्निध्य में मैं जो कुछ सीख पाया हूं, जो थोड़ा बहुत चिंतन मैंने किया है उस सबका सार यही है। वह सुंदर फूल देखकर मैं हर्षाया। उस बच्ची का दिए हुए वचन को मैं निभाऊंगा। उस फूल को देखने से आंखों को जो सुख मिलेगा वह मैं प्रतिदिन लूंगा। वह जब पूरा खिल जाएगा तब उस लता के पास जाकर मैं उसको सूंघूंगा। लेकिन मैं उसे तोड़ूंगा कभी नहीं। आज केवल सुगंध की तृष्णा से एक फूल तोड़ लिया, तो कल उसी सुख के लिए कई फूल तोड़ने का मन करेगा। फिर दूसरे के फूलों का अपहरण करने की लालसा भी मन में प्रबल हो उठेगी। अपहरण जैसा कोई अधम नहीं है।"

मुझे लगा वह बस ऐसे ही बोलता चला जाए और मैं उसकी बातें सुनता रहूं। लेकिन उसकी वाणी की मधुरता के कारण ही मुझे ऐसा लगता था। वैसे उसकी सारी बातें तोता रटंत-सी प्रतीत होती थीं। किसी पोथी पुराण की बकवास लगती थी। उसे रोकते हुए मैंने पूछा क्या एक शंका उपस्थित कर सकता हूं?"

अवश्य कीजिए। लेकिन एक बात ध्यान में रहे कि आपके जैसा मैं भी एक अनुभवहीन युवक हूं। जीवन का रहस्य हमेशा गुफा में छिपा होता है। हम लोगों ने अब जाकर कहीं उस गुफा में केवल प्रवेश ही पाया है। भीतर के अंधेरे में हम कुछ भी नहीं देख पा रहे हैं। हममें से प्रत्येक को वह रहस्य स्वयं ही खोज निकालना पड़ेगा।

'यह सब रहने दो। मेरी शंका बस इतनी ही है—चार दिन बाद वह फूल अपने-आप मुरझा जाएगा। फिर आज ही उसे तोड़ लो सूंघ लो यही नहीं मसल भी डालने में क्या हर्ज है? इसमें किसी का क्या बिगड़ने वाला है? किसको क्या हानि होने वाली है? ऐसा करने से क्या कम से कम क्षण भर के लिए मैं उस सुगंध के उन्माद में जी नहीं सकूंगा?

कच मेरे इस प्रश्न का सीधा-सा उत्तर नहीं दे पाया। लेकिन अपनी हार भी

उस स्वीकार नही हो सकी। उसने कहा 'हाल ही म मैंने सुना है कि दत्या के गुरु शुक्राचार्य ने बडी उग्र तपस्या कर संजीवनी विद्या प्राप्त कर ली है। उस विद्या के बल पर मृतकों को फिर स जिलाया जा सकता है। यदि मैं उस विद्या को प्राप्त कर सका तो निश्चय ही मुरझा जाने वाले फूलो को फिर से प्रफुल्लित करने के लिए उसका उपयोग करूगा।"

कच छोटे बालक जैसी बातें कर रहा था। ऐसी बातें उसने केवल इसी समय की हो यह भी नही और भी कई बार वह इसी तरह बाता करता था। उसकी बातें मुझे तनिक भी जचती नही थी। देव दानवो मे छोटी छोटी लडाइया कई वर्षों से होती आ रही थी। शुक्राचार्य द्वारा संजीवनी विद्या प्राप्त कर लेने के कारण अब उन छोटे मोटे संघर्षों और लडाइयो का रूपान्तर घमासान युद्ध म होना अटल था। संसार को इस भीषण आपत्ति से बचाने के लिए अंगिरसजी न इस शाति यज्ञ का आयोजन किया था। उधर इन्द्रादि देवता युद्ध की तैयारियो म लगे थे और उसी समय देवगुरु का यह पुत्र इधर शाति-यज्ञ की पुरोहिताई करने यहा आया था। वह हमेशा कहा करता देव विलासिता के अधे उपासक हैं। दत्य शक्ति की अधी उपासना करते है। ये दोनो जगत को सुखी बनाने म असमर्थ हैं। ये युद्ध भी कर लें तब भी उस युद्ध से कुछ भी निष्पन्न नही होगा।

बडे ही अजीब थे उसके विचार। मैं उसके इतने पास रहा हमारी इतनी घनिष्ठता हो गई लेकिन उसके मन की थाह मैं कभी पा न सका। कभी तो वह यति से सौ गुना समझदार लगता कभी पागल से भी गया बीता। उसकी कई कल्पनाए एकदम स्वप्नवत् प्रतीत होती थी।

लेकिन एक बात निःसन्देह सच थी। अब शीघ्र ही हम दोनो बिछुडने वाले थे। इस विचार स एक अजीब धडकन मैं अनुभव करने लगा था। किन्तु प्रयाण म विछोह अनपेक्षित ढग से आ गया। उत्सव की तीसरी रात हस्तिनापुर से अमात्य का सन्देश लेकर एक दूत आ पहुचा। पिताजी अचानक बहुत रुग्ण होकर मृत्युशय्या पर पडे थे। मुझे तत्काल लौट जाना जरूरी था। समझ म नहा आया कि क्या करूँ। अत महर्षि अंगिरस के पास गया। उन्होने अतीव ममता से मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा युवराज तुरन्त लौट जाओ। यहा की कोई चिन्ता अब मत करना। यज्ञ का मुख्य भाग तो तुमने सम्पन्न करा ही दिया है। धर्मसेवा की भाति पितृसेवा भी तुम्हारा कर्तव्य है।"

मैंने भक्तिभाव स अंगिरस जी को प्रणाम किया। वात्सल्य भरी दृष्टि से मुझे देखते हुए उन्होने कहा युवराज मैं तुम्हे सुखी रहो ऐसा आशीर्वाद नही दे रहा हू। मानवी मन और जीवन का ताना-बाना विलक्षण ढग से बुना गया है। इसी लिए कई बार सुख की खोज एक मृगमरीचिका की खोज मात्र हो जाती है। इतनी तपस्या करने के बाद भी मैं अभी तक यह पहेली सुलझा नहीं पाया हू कि सुख दुख की छाया है या दुख सुख की परछाई। तुम भी इस उलझन के झझट म न पडना। तुम्हें राज्य करना है। धर्म अर्थ और काम ही तुम्हारे मुख्य पुरुषार्थ हैं। लेकिन अर्थ

और काम बहुत ही पन तीर हं। विनय ही रूपवती स्त्री की शोभा है। उसी प्रकार अथ और काम भी धम के साथ रहें तभी सुदर लगत है। और धम भी आखिर क्या है ? जिस तरह के व्यवहार की आशा मैं इस दुनिया स करता हू, उसी तरह का व्यवहार उसक साय करने की श्रद्धा का ही नाम धमबुद्धि है। इस धमबुद्धि का प्रकाश जीवन म तुम्ह हमेशा मिलता रहे यही मेरी कामना है।'

मा अपन बच्चे को जिस तरह सहज ममता से उपदेश किया करती है ठीक वही भावना महर्षि अगिरस के प्रत्येक शब्द स प्रकट हो रही थी। वे शब्द मेरे कानो म घुमत ता थ लेकिन मन की गहराई म नही उतर पाते थे। पिताजी की गम्भीर बीमारी का समाचार सुनते ही मन उचट-सा गया था। अनक अवाछनीय कल्पनाए मन म कुहराम मचा रही थी। कातर वेला म वास के जगल मे कराहती बयार की आवाज सुनकर सहम हुए बच्चे जसी ही मेरे मन की स्थिति हो गई थी। उस बयार की बढती आवाज म नाग की फुफकार सुनाई देने पर जसी मन स्थिति हो सकती है वैसी ही अवस्था अब यति द्वारा बताए गए शाप का स्मरण होने पर मेरे मन की हो गइ। पिताजी का क्या शाप मिला है ? कही उसी शाप के कारण तो व आज मृत्युशय्या पर नही पडे ? उस शाप क निवारण का क्या उपाय है ?

मुझसे रहा नही गया। डरत सहमत मैंने अगिरस जी से पूछा मैं आपसे पूछना चाहता हू क्या पिताजी को कभी किसीने कोई अभिशाप दिया है ?'

उनके चेहरे पर अवसाद फैल गया। कुछ क्षण स्तब्ध रहन के बाद भारी स्वर म उन्होंने उत्तर दिया हा।'

व फिर रुक। जब उनका चेहरा पहले जैसा प्रसन्न दिखाई दने लगा। कहने लग युवराज उस शाप स इतना डरने की क्या आवश्यकता है ? सच पूछो तो इस ससार म आन वाला हर व्यक्ति शापित ही होता है !

हर व्यक्ति ?" मेरा स्वर कातर हो गया था। उस कातरता स मैं स्वय ही डर गया।

उन्होंने हसत हसत कहा मै तुम तुम्हारा पिता—हम सब अपनी-अपनी जगह एक तरह से शापित ही हैं किसीके भाग म पूवजन्म क कम रोडा बन जाते हैं किसीको माता पिता दोनो के दोषो को भुगतना पडता है कोई अपने ही स्वभाव क कारण दुखी होता है तो किसीको परिस्थिति की शृखलाओ म बधकर जीवन का पथ तय करना पडता है।'

तो क्या जीवन भी एक अभिशाप ही है ?

नही नही ! जीवन तो एक वरदान है दिव्य वरदान ! वह परमात्मा की असीम कृपा का प्रसाद है। जीवन को एक अभिशप्त वरदान ही समझो !

तो क्या केवल इस अभिशप्त जीवन को अनुभव करने क लिए ही मनुष्य इस ससार म आता है ?

नहा ! अगिरस जी न गभीरता स कहा। लेकिन तुरत ही वे मुस्कराए। उनकी वह मुस्कराहट शरद की चान्दनी-सी लगी मुझे।

'तो मानव जीवन का उद्देश्य क्या है ?'

इस अभिशाप से मुक्ति पाने का प्रयत्न करना। ययाति अन्य प्राणियों में शारीरिक सुख-दु:खों के परे की बातों को अनुभव करने की शक्ति नहीं होती। वह केवल मनुष्य को ही प्राप्त ईश्वरीय देन है। इसी अनुभूति के बल पर मनुष्य पशु कोटि से ऊपर उठ पाया है संस्कृति के दुर्गम पर्वत पर आरोहण करता चला आ रहा है। आज नहीं तो कल वह उस पर्वत की चोटी पर पहुंच जाएगा। तब इन सभी अभिशापों से उसका जीवन मुक्त हो जाएगा। एक बात कभी न भुलाना—शरीर सुख मानव जीवन का मुख्य निकष नहीं है। आत्मा का संताप ही वह निकष है।'

कुछ रुककर वे फिर कहने लगे "मैं भी क्या पागल हूं! बिना अवसर ही तुम्हें ब्रह्मज्ञान पढ़ाने लगा। ठीक ही तो कहा है कि क्षत्रिय का तीर-तरकश और ब्राह्मण की जिह्वा सदैव सिद्ध रहते हैं! तुम बिलकुल निश्चिन्त होकर हस्तिनापुर जाओ। तुम्हारे पिता के स्वास्थ्य के लिए मैं निरन्तर प्रार्थना करता रहूंगा। जाओ तुम्हारी यात्रा में कोई विघ्न न आवे। शिवास्ते पन्थानः सन्तु!"

हस्तिनापुर पहुंचने तक कच और अंगिरस जी के दार्शनिक विचारों का साया मेरे पर छाया हुआ था। उस साये में मोह की धूमरता थी और उस समय की रमणीयता भी। लेकिन नगर में कदम रखते ही वह सुंदर साया एकदम कहां खो गया और उसकी जगह मेरी राजधानी पर छाई चिंता की काली छाया ने ले ली। यों राजमार्गों पर मन्द हंसते-खेलते झूमनेवालों की चहल पहल रहा करती थी। किन्तु आज वे ही राजमार्ग पर लोग चुपचाप अपने भारी कदमों को मानो घसीटे चल रहे थे। इस आशंका से कि कहीं पिताजी का अंतिम दर्शन भी संभवतः मेरे भाग्य में नहीं है मेरा मन क्षण क्षण प्रतिपल थर्रा रहा था। युद्ध में हारे राजपुत्र के समान मैंने राजप्रासाद में प्रवेश किया—एकदम मौन —सिर झुकाए हुए! पिताजी के शरीर में थोड़ी चेतना थी किन्तु उन्होंने मुझे पहचाना नहीं। चिलचिलाती धूप में तप रेगिस्तान की भांति उनका शरीर गरम था। निर्जन मरुभूमि में आंधी रात सांय-सांय करने रहनेवाली हवा के समान वे अनाप शनाप बोलते रहे थे। उन्हें सन्निपात हो गया था। मां राजवैद्य वृद्ध अमात्य दास-दासियां सबकी मुद्राओं पर भय और दुःख का साया छा गया था।

मैं पलंग पर पिताजी के सिरहाने की ओर बढ़ गया। पिताजी पिताजी कहकर कई बार मैंने पुकारा। वे कुछ बुदबुदाए लेकिन मेरी एक भी पुकार का उत्तर उन्होंने नहीं दिया। मानो वे हमारे इस संसार में ही नहीं थे!

उठकर मैं उनके पैरों की ओर बढ़ गया। धीरे धीरे मैं उनके चरणों पर हाथ फेरने लगा। किन्तु मेरे स्पर्श को भी वे पहचान नहीं पाए। मेरी आंखें भर आईं। पिताजी के चरणों पर मैं अपने आंसुओं का अभिषेक करने लगा।

अमात्य उठकर मेरे पास आ गए। अपना कृश हाथ मेरे कंधे पर रखकर बड़ी ममता से वे मुझे महल के बाहर ले गए। फिर रुंधे गले से कहने लगे "युव

राज, अभी आप छोटे हैं। इसीलिए दुनिया की परिपाटी स आप परिचित नही हैं। यह मत्युलोक है। मानव का जीवन जैसा कल्पवक्ष है वसा ही विपवृक्ष भी है। आपसे महाराज की यातनाए देखी नहा जाएगी। नगर से दो कोस की दूरी पर अपना अशोक वन है। बहुत ही सुदर विश्राम-वाटिका है वह। जब भी कोई ऋपि महात्मा अतिथि बनकर आते है उनका सारा प्रबध वही करन की परिपाटी चली आ रही है हमारे यहा। बस ता वह स्थान हिमालय की किसी गुफा से कम शान्त नही। वहा पूरा एकान्त है। यहा से अशोक वन जाने के लिए एक सुरग भी बनी है। यह माग बहुत ही निकट पा है। आप जाकर उस शात विश्राम-वाटिका मे रहे। दिन म दो वार महाराज का दशन करने आया करें। कुछ विशेष बात हुई तो आप इस सुरगवाले रास्त से अतिशीघ्र यहा पहुच सकेंगे। महारानी जी से परामश करने के बाद ही यह याजना मैंन तयार की है। अश्वमेध और शाति यज्ञ म आपको जो कडा परिश्रम करना पडा उससे आप अवश्य ही थक गए होगे। अशोक वन म विश्राम करन स आपकी सारी थकान दूर हो जाएगी।

आखेट और युद्धभूमि म किसीसे मैं डरा नही था, न ही मैंने रण छोडकर पीछे हटा था। किन्तु समूचे राजप्रासाद पर मडरा रही मृत्यु की छाया से मैं बहुत डर गया चुपचाप अशोक वन म रहने के लिए चला गया।

लेकिन मृत्यु भी एक भयानक रीछ है। आप चाहे कितनी ही ऊची टहनी पर जा बैठें, फिर भी वह आपका पीछा नही छोडता। कही भी लुककर बठ जाइए वह भरकम घिनौनी बदसूरत काली जान आपकी गध पा ही जाती है। उसकी गुर्राहट स प्राण सूखने लग जात हैं।

अशोक वन म अमात्य न मेरे लिए सभी सुख साधन जुटा दिए थ। लेकिन मेरा मन एक म भी नही रमता था। दास दासिया और अन्य सेवक इन गिने ही थ। लेकिन उनम म हर एक मेरी आना सर आखो पर लिए खडा रहता था। समझ म नही आता था कि प्रत्येक स क्या काम लिया जाए। दासिया मे एक नई थी। उसका नाम मुकुलिका था। वह बहुत ही चतुर और सुन्दर थी। होगी यही कोई पच्चीस की। मेरे मन को शाति मिले इस हतु वह यथासम्भव सभी सेवको को दूर खडा कर स्वय ही चुपचाप मेरी सवा म लगी रहती थी। रसोइए द्वारा बनाए गए पक्वान थाली म वसे ही छोडकर मैं उठने लगता तो पखा झलते-झलते वह रुक जाती। मैं मुडकर देखता, ता उसके चेहरे पर लज्जा और आखो म करुणा का भाव जाग जाता। मानो आखो स ही वह कहना चाह रही हो ऐसा भी क्या युव राज ? आपने यदि कुछ भी नही खाया तो बेचारा शरीर क्या करेगा ?

दिन रात मेरी एक ही कोशिश रहती थी कि किसी तरह मौत की छाया अपने मन पर न पडने दू। लेकिन जसे ही पिताजी के दशन करने के लिए प्रासाद म पर रखता बीच की अवधि म किया हुआ मेरा सारा चिन्तन विफल हो जाता था। इस ममन्त क साथ कि मृत्यु आठो पहर अश्वमेध करने वाला एक विजयी सम्राट है और उसका विरोध कर सकने वाला ससार म कोई नही है मेरा मन

दुबला पडकर अकुलाने लगता था। आज पलग पर असहाय पडे पिताजी की जो अवस्था है वही कल मेरी भी होने वाली है एसा दृश्य आखो के सामने आ जाता और मन म बार-बार बचकाना विचार आता कि चलो कहा भाग चलें किसी ऐसी गुफा को खोज निकाल जहा मृत्यु की बर्फीली लम्बी लम्बी भुजाए पहुच ही न पाए और उसम छिप जाए!

पिताजी की इस बीमारी म एसे एसे अनुभव करने को मिल जिनसे मृत्यु की भीषणता और भी भयावनी लगने लगी।

कभी सन्निपात का वग हलका पड जाता और पिताजी घडी भर क लिए होश म आ जाते थ। मा को तो व बराबर पहचान लेत। वह एक एसा ही प्रसग था! पिताजी को शायद मालूम नही था कि मैं उनक सिरहाने बठा हू। उन्होने मा को इशारा किया। वह थोडा आगे खिसककर झुक गई। बड ही कष्ट स उन्होने अपना दाया हाथ उठाया और मा क चिबुक को स्पश करत हुए अत्यन्त क्षीण स्वर म बोले यह सारा सौदय सारा वभव यहा छोडकर मुझे शायद अब जाना पड़ेगा!

मा पशोपेश म पड गइ। समझ नही पा रही थी कसे महाराज को जताया जाए कि इस समय मैं भी महल म हू। पिताजी छोटे बच्चो क समान फफक फफक कर रोत रोत कहने लगे इस अमृत का तो अब भी प्यासा हू मैं लकिन

मा ने सकेत स मुझे बाहर चले जाने को कहा। लकिन पिताजी का वह आत आक्रोश मेरे कानो और मन म भी गूजता रहा। बहुत ही अटपटा लगा मुझे। वह एक ऐसे वीर का रुदन था जिसक पराक्रम की पताका स्वग तक म गौरव से लहरा रही थी। व हस्तिनापुर के दिग्विजयी सम्राट क आसू थ! उन आसुओ का अथ अपनी समझ म नही आया। लकिन यह सोचकर कि हो न हो इन आसुओ के पीछे अवश्य जीवन का ही कोई गहरा मम छिपा है मैं सिटपिटा गया।

लकिन उस समय मेरे हृदय का कपा देने वाला अनुभव और ही था। रात भर जागती रहने क कारण थकी हुई मा को मैंने सोने के लिए उसक महल म भिजवा दिया था। मैं पिताजी क पास बठा रहा। बहुत दर तक व अचेत पडे रह थे। राजवद्य घडी घडी आकर उन्ह कोई अवलेह चटा जात थ। दिन ढल चुका था। खिडकी म दिखाई देने वाली बाहर की दुनिया धीरे धीरे धुधली और उदास होने लगी थी। तभी पिताजी ने आखें खोली। शायद उन्होने मुझे पहचान लिया था। मेरा हाथ मजबूती स पकडकर डर हुए ममन की तरह वह चिल्ला उठे ययु ययु! मुझे मजबूती स पकड रखो! मुझे अभी जाना है! मुझ नहीं मैं नहीं जाऊगा ययु व देखो देखो व यमदूत है! और तुम इतने पराक्रमी हो फिर फिर य सवार मन यहा तक कसे आ पाए है! तुमने इन्ह क्या आने दिया?

उनका हाथ कापने लगा। व फिर चीख तुम सब लोग कृतघ्न हो। अपना

आयु का एक एक दिन भी आप लोगो ने मुझे तो मैं यथु यथु ! मुझे बलपूर्वक थाम लो

चीखते चिल्लाते वे फिर अचेत हो गए। लेकिन उनके उस हाथ ने मुझे वह सब कुछ बता दिया, जो वे अपने मुह से बोलकर नही कह पाए थे। कितनी शक्तिशाली मजबूत पकड थी उस हाथ की ! ममाहत होकर प्राणो के लिए भागते जाने वाले हिरन का सारा डर उसमे समाया हुआ था। थोडी देर बाद मै बहुत ही उदास मन से अशोक वन लौट गया। बार बार आखो के सामने वही कुछ देर पहले वाला दृश्य आता था। कभी पिताजी के स्थान मे मुझे ययाति दिखाई देता था—अशक्त बूढा मृत्यु को सामने खडी देखकर घिग्घी बाधे हुए पागल जैसा इधर-उधर भाग रहा ययाति !

जीवन का अ त यदि मृत्यु ही है तो आखिर मनुष्य जन्म लेता ही क्यो है ?

कच और अगिरस के उदात्त दर्शन को मैंने याद किया। लेकिन असमजस मे पडे मन को उससे भी सन्ताप नही मिला। टिमटिमाते जुगनुओ ने भी कही अमावस के अधेरे को प्रकाशमान किया है !

अशोक वन के मदिर मे अपने बिस्तर पर मैं रिक्त मन से लेट गया। बाहर घना अधेरा फैला था। मेरे मन मे भी उतना ही घना अधेरा छा गया था ! मुकुलिका धीरे से आई और उसने सोने का दीप जलाया। सारे महल मे प्रकाश जगमगा उठा। मुकुलिका मेरी ओर पीठ किए दीवट जलाने लगी थी। उस प्रकाश मे उसकी आकृति बहुत ही मनमोहक लगी। मैंने मुडकर देखा। दीवार पर उसकी परछाइ पडी थी। कितनी बडी और कितनी अजीब थी वह !

वह मेरे पलग की ओर धीरे धीरे आने लगी। उसका पदविन्यास किसी नर्तकी के समान हो रहा था। मेरी आखें खुली देखकर उसने पूछा, 'क्या महाराज का जी अच्छा नही है ?" उसका स्वर अत्यन्त कोमल था।

कुछ समझ मे नही आ रहा मुकुलिके ! पिताजी की दशा देखकर तो "

सुना है अब चिन्ता की कोई बात नही है ! आज ही राज ज्योतिषी बता रहे थे कि महाराज के सभी अशुभ ग्रह शीघ्र ही "

'मुझे थोडी मदिरा लाकर दो। ग्रह बीमारी मृत्यु सबको मैं भुलाना चाहता हू।'

वह स्तब्ध खडी रही। झल्लाकर मैं चिल्लाया 'मुझे मदिरा चाहिए !'

गरदन झुकाकर वह बोली महारानी जी का आदेश है युवराज, यहा कोई मद्य-मदिरा न रखी जाए !"

वास्तव मे उसके इस उत्तर से मुझे क्रोध आना चाहिए था। लेकिन पृथ्वी पर दृष्टि गडाए खडी मुकुलिका उस समय मुझे इतनी मोहक लगी कि मैं अपना सारा क्रोध भूल गया ! अनिमिष नेत्रो मे उसे समाने लगा मैं। सोचा काश मैं चित्रकार या शिल्पकार होता !

स्त्री क्या स्वभाव से ही अन्तर्ज्ञानी होती है ? या अपनी सुन्दरता और

सामर्थ्य का भान उसे सदैव रहता है ?

मुकुलिका की दृष्टि पृथ्वी पर गड़ी थी। फिर भी पता नहीं कैसे उसे मालूम हो गया कि मैं उसकी ओर एकटक देख रहा हूं और मेरी प्यासी प्यासी आखें उसके रूप को पीती जा रही हैं ! सहसा उसने पलकें उठाकर देखा तो ऐसे लगा मानो बिल्कुल स्वच्छ नील आकाश में अचानक बिजली कौंध गई हो। उसकी वह मधुर मुस्कान हंसते समय गालों पर सहज पड़नेवाला वह हलका-सा गढ़ा उसका मादक सौंदर्य—सब कुछ सुनहरे प्रकाश में कौंध गया।

फिर देखा तो मुकुलिका ने पलकें फिर से झुका ली थीं। वह मेरे पलंग के बिल्कुल पास खड़ी थी। मैंने कोई मद्य नहीं पिया था। फिर भी मदिरा की मस्ती कण-कण में फैल उठी थी। दूसरे ही क्षण ययु मुझे मजबूती से पकड़ लो मुझे जीना है !" कोई मेरे कानों में चीखता सुनाई दिया। वे शब्द कानों में लगातार गूंजने लगे। उन शब्दों की अनगिनत प्रतिध्वनियां बड़े हथौड़े का रूप लेकर मानो मेरे मस्तिष्क पर दनादन आघात करने लगीं। मैंने मां को बचपन में ही वचन दे रखा था कि युद्ध और मृगया के अलावा अन्य किसी व्यवहार में मदिरा का स्पर्श नहीं करूंगा। अब तक वह वचन मैंने निभाया भी था। लेकिन इन घनों के आघातों से बचने का मन की व्यथा को भुलाने का दूसरा कोई उपाय ध्यान में नहीं आ रहा था। मैंने मुकुलिका से पूछा यहां मदिरा न रखने का आदेश क्या सचमुच मां ने दिया है ?'

जी युवराज !

क्या ? मैं यहां नशे में धुत पड़ा रहूंगा इस भय से ?'

यह बात नहीं युवराज !'

तो फिर क्या बात है ?'

यह स्थान एकदम एकान्त में है। नगर से दूर भी है। अतिथि के नाते सारे ऋषि मुनि यहीं निवास करते हैं। ऐसी कोई वस्तु यहां नहीं होनी चाहिए जो उन्हें अपवित्र लगती हो '

पिताजी की वह बात आक्रोश फिर कानों में गूंजने लगा। उनकी वह खोई खोई-सी नजर प्रत्येक शब्द से प्रकट होने वाला मृत्यु का डर

मेरा बदन थरथर कांपने लगा। अपने अकेलेपन से मैं डरने लगा। मुझे किसी सहारे की आवश्यकता थी।

तुरन्त करवट बदलकर मैंने मुकुलिका का हाथ पकड़ लिया।

▪

वह रात।

बार-बार मन में आता है कि उस रात के बारे में मौन रहूं ! कुछ भी न बताऊं !

प्रचण्ड बाढ़ में प्रवाह के विरुद्ध तैरने में पुरुषार्थ होता है। उस प्रवाह के साथ

वह जान म भला कौन-सा पराक्रम धरा है ? उस वह जान का वणन करन म भी क्या आनन्द हो सकता ह ?

उस रात जो कुछ हुआ हो सकता है वह स्वाभाविक होगा। शायद हर रात दुनिया म वही होता होगा हुआ होगा, होने वाला होगा। लकिन कुछ बातें ऐसी भी होती है जो होने को तो बिल्कुल स्वाभाविक होती हैं लकिन उनक बारे म बोलते समय जीभ झिझकती है मन झेंपता है शरम लगती है। यो ही नही, मदिर म भी युवती अपनी कचुकी की गाठ बीच बीच म टटोलकर देख लिया करती कि कही वह ढीली तो नही हो गइ।

लकिन मैं तो अपनी कहानी बिना कुछ भी छिपाए ज्यो की त्यो बताने वाला हू। अपना हृदय खोलकर दिखाने वाला हू। दिल खोलते समय उसके किसी कोन का अधर म रखना एक अपराध होगा। लज्जा सौन्दर्य का आभूषण है सत्य का नही। सत्य तो नग धडग होता है नवजात शिशु जसा। और उसे वसा होना ही पडता है।

उस रात मुकुलिका क बाहुपाश म मैं नही।

मेरे बाहुपाश म मुकुलिका नही नही।

साक्षात् मदन भी नही बता पाता, उस रात कौन किसके बाहुपाश म था।

मुकुलिका का हाथ मैंने अपने हाथ म लिया और पल भर म मेरा इस दुनिया से रहा सहा सबध ही टूट गया। मैं युवराज नही रहा। वह दासी नही रही। हम थे केवल दो प्रेमी जीव। दो पखरू दो तार

हम महल म नही थे हस्तिनापुर म नही थे पृथ्वी पर भी नही थे। अनत आकाश म नक्षत्र मण्डल के भी परे हम उस स्थान पर पहुच गए थे जहा दुख रोग मृत्यु आदि शब्दो की आवाज तक नही सुनाई देती। वह एक न्यारी ही दुनिया थी। जितनी सुन्दर उतनी धूसर भी। जितनी मोहक उतनी दाहक भी। वह केवल हम दोनो की दुनिया थी। क्या वह एक मधुर मदहोशी थी ? एक विलक्षण पागलपन था या सुदर समाधि थी ?

क्या पता।

मेरे और मुकुलिका के अधरो का मिलन होते ही मेरे मन से मृत्यु का भय गायब हो गया।

उस रात मुकुलिका के कितने चुम्बन मैंने लिए और कितने चुम्बन उसने मुझे दिए

भला आकाश के नक्षत्रो की भी कोई गिनती कर सकता है ?

स्त्री-सौन्दय का वणन मैंने काव्यो म पढा था। उसके प्रति धुधला-सा आकषण मेरे मन म बरसो स जागने लगा था। उस आकषण म क्या आनन्द हो सकता है इसकी कुछ-कुछ कल्पना भी मैं करने लगा था। लेकिन वह आनन्द चद्रमा को हाथ मे पकड लने वाले बच्चे का आनन्द था। उस रात मैंने पहली बार अनुभव किया कि सुदर युवती का सहवास कितना नशीला होता है उसके रोम-रोम से

क्षण-क्षण प्रतिपल स्वर्गीय सुख की कसी-कसी फुहार उठती है उछलती हैं। इस अनुभव की मस्ती म चूर हो गया था मैं!

उस मदहोशी स मुझ पक्षियों की चहचहाट ने जगाया। आखें खोल कर मैंने सामने की खिडकी से बाहर देखा। प्राची के महाद्वार म सूय का रथ तेजी के साथ बाहर निकल रहा था। उसके पहियों से उठी सुनहरी धूल मन को मोह लेती थी।

मैं पलग पर उठकर बैठ गया। इसी शय्या पर कल रात मैं कितनी व्याकुल मन स्थिति म आकर लेट गया था! लकिन वही शय्या वही महल वही दीवारें वही पलग खिडकियों से झाकने वाली वही लताए एक ही रात म मानो पुन जन्म के बाद एकदम बदली-बदली-सी लगने लगी थी। अब हर चीज मेरे अग प्रत्यग म ठाठें मार रहे आनन्द का वढा रही थी। वृक्ष अब ज्यादा हरे हो गए थे। पछियों का गायन अधिक मधुर हो चला था। महल की दीवारें ससार का अत्यत अदभुत रहस्य देखने के आनन्द म एक-दूसरी की ओर आखें मिचकाकर देख रही थी।

यह देखने के लिए कि मैं जाग गया हू या नही मुकुलिका द्वार धकलकर भीतर आई। पास आकर उसने पूछा रात म नींद तो अच्छी आई न?'

मैंने सोचा था मेरे सामने आते ही वह तनिक शरमाएगी मेरी नजर से नजर मिलाते समय पल भर के लिए पशोपेश म पड जाएगी। लकिन वह तो इतनी शाति के साथ सारे व्यवहार करने लगी मानो रात म कुछ हुआ ही नही था! जो कुछ हुआ था मात्र एक सपना था। जाग जाने के बाद सपने किस काम के!

मुकुलिका कितनी कुशल अभिनत्री थी! रात म उसने प्रेयसी की भूमिका अदा की थी! लकिन अब उतनी ही कुशलता से दासी की भूमिका निभा रही थी!

समझ म नही आ रहा था उसके प्रश्न का क्या उत्तर दू? वह होले से मुस्कराई। चितवन की बहुत ही मधुर भगिमा म नचाकर उसने मेरी ओर देखा। मुह-हाथ धोने का सामान लाने के लिए वह जाने लगी। उसके पृष्ठ भाग को देख कर रात की स्मृतिया फिर जाग उठी। अनजान म मेरे मुह से निकल गया—मुकुलिका!'

वह रुकी। तनिक बल खाते हुए पीछे मुडकर उसने देखा। फिर वह फुर्ती से लौट आई। पलग के पास आकर उसने पूछा युवराज ने आवाज दी मुझे?

मैंने उसे आवाज दी तो थी लकिन किसलिए? मैं स्वय ही नही जानता था! मैं स्तब्ध रह गया।

तुरत हाथ जोडकर अत्यत विनीत भाव से उसने कहा क्या मुझसे कोई भूल हो गई?"

भूल तुमसे नही, मुझसे हुई है! तुम्हारे भीतर आते ही मुझे चाहिए था यह

था कि तुम्हें इस तरह खींचकर अपने पास बिठा लेता। लेकिन उसके बजाय तुम्हें दासी का काम करने में जुटाना

चाहता था कुछ ऐसा ही कहूं। लेकिन बात मन ही में रही। मैं बोला कुछ भी नहीं।

मेरा इस तरह चुप रहना उसके लिए एक पहेली बन गया। तनिक कातरता से बोली 'महाराज नाराज हो गए हैं दासी से?

नहीं तो! बस यही एक शब्द भर मुंह से निकल पाया। आगे कहने वाला ही था पगली कहीं की!' लेकिन तभी मुकुलिका की मातहत एक दासी जल्दी से भीतर आई।

मेरा कलेजा धक्-सा रह गया! जागने के बाद से एक बार भी मुझे पिताजी की याद भी नहीं आई थी! आदमी भी कितना आत्म लम्पट होता है! अपनी कृतघ्नता पर मुझे खेद होने लगा!

वह दासी अमात्य द्वारा भेजा गया एक पत्र लेकर आई थी सो देकर चली गई।

वह पत्र कच का था! एक ऋषिकुमार उसे लेकर मध्यरात्रि में हस्तिनापुर पधारे थे!

'युवराज, आपके पीछे-पीछे मुझे भी आश्रम छोड़कर जाना पड़ रहा है। हम सभी ने मिलकर शांति यज्ञ तो सम्पन्न किया। किन्तु उस यज्ञ के पवित्र कुण्ड की अग्नि का विधिपूर्वक विसर्जन होने से पहले ही देव दानव युद्ध का दावानल भड़क उठा है! दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य द्वारा संजीवनी विद्या प्राप्त किए जाने की बात तो हम लोग यहां रहते थे तभी सुन चुके थे। उस विद्या के बल पर समरभूमि में मारे जाने वाले राक्षस सैनिकों को वे बार बार जीवित कर लेते हैं। अब अपनी हार को अटल जानकर देवता निराश हो गए हैं। अब क्या किया जाए, किसी की समझ में नहीं आ रहा है।

'युद्ध को मैंने हमेशा निंदनीय और निषिद्ध माना है चाहे वह दो व्यक्तियों में हो दो जातियों में हो या दो शक्तियों में। आदिशक्ति द्वारा रचा गया यह संसार कितना सुन्दर और कितना समृद्ध है! क्या प्रत्येक व्यक्ति यहां सुख से जी नहीं सकेगा? मुझ जैसे बावले का तो यही स्वप्न रहा है! पता नहीं वह कभी सच होने वाला भी है या नहीं! आज तो यह सोचना एक ख्याली पुलाव ही है।

स्पष्ट है इस युद्ध में देवता-पक्ष हारने वाला है। अपनी शक्ति की हार खुली आंखों देखना कितना कठिन है! मैंने सोचा इस हार को टालना अपना कर्तव्य है। सारी रात पर्णकुटी के आंगन में इधर से उधर टहलता रहा हूं। आकाश में तारे झिलमिला रहे थे। लेकिन मेरा मन अंधेरे से भर गया था। मन की इस वेदना में क्या बताऊं तुम्हारी कितनी याद आई! आखिर मुझे अंधेरे एक कल्पना सूझी नहीं! मन में प्रस्फुरित हुई! कवि को काव्य किस तरह सूझता है मैंने अनुभव किया।

देवता पक्ष को संजीवनी विद्या प्राप्त हो जाए तभी उसकी हार टल सकती है। किन्तु तीनों लोकों में वह विद्या अकेले शुक्राचार्य को ही अवगत है! किसी को शिष्य बनकर उनकी सेवा में जाना चाहिए और वह विद्या हस्तगत कर लेनी चाहिए। देवताओं में से कोई ऐसा साहस करेगा ऐसा नहीं लगता। इसीलिए वृषपर्वा के राज्य में जाकर इस विद्या के लिए शुक्राचार्य का शिष्य बनने का मैंने निश्चय किया है। वहां क्या होगा कैसे बता सकता हूं? शायद मेरा उद्देश्य पूरा हो जाएगा। शायद अपने ध्येय की पूर्ति के लिए मुझे अपने प्राणों से हाथ भी धोना पड़ सकता है!

महर्षि अंगिरस जी ने— क्या मैंने आपसे बताया था कि वे हमारे ही कुल के हैं?—मेरे इस विचार को आशीर्वाद दिया है। आशीष देते समय उन्होंने सहजता से कहा—जन्म से तुम ब्राह्मण हो। अध्ययन-अध्यापन, पठन-पाठन, यज्ञ-याग तुम्हारा धर्म है। विद्या प्राप्त करने तुम जा तो रहे हो, लेकिन तुम्हारा यह साहस किसी ब्राह्मण से अधिक क्षत्रिय को ही शोभा देने वाला है। मैंने कहा—युवराज ययाति यहां होते तो उन्हें साथ लेकर ही मैं राक्षसों के राज्य में जाता। वीरता का काम उन्हें सौंप देता और विद्या प्राप्त करने का दायित्व अपने पर ले लेता।

अंगिरस जी के सामने मैंने कहा तो नहीं, लेकिन उनके उन उद्गारों से मेरे मन में एक नया विचार आ गया। प्रत्येक वर्ण यदि अन्य वर्णों के गुणों को आत्मसात कर लेता है तो क्या हानि हो सकती है? अनेक नदियों का जल मिलाकर ही तो हम अपने आराध्य देवता का अभिषेक किया करते हैं।

युवराज, शांति-यज्ञ के निमित्त हम निकट आए। समान आयु के होने के कारण हममें मित्रता बढ़ी। आपकी स्नेहमयी स्मृति मेरे मन में सदा जागती रहेगी। संजीवनी विद्या प्राप्त कर यदि मैं सकुशल लौट आया तो कहीं न कहीं आपसे भेंट अवश्य होगी।

कुछ ग्रहों की युति जल्दी हो जाया करती है, कुछ की काफी देर बाद। आज नहीं कह सकता हम दोनों फिर कब मिलेंगे। लेकिन मिलेंगे अवश्य और उस समय धर्म का—दुनिया में जो जो मंगल है उसका—समर्थन करनेवाले पुण्यश्लोक राजा के नाते अपने मित्र को मैं देखकर गर्व से फूल उठूंगा। आज तो मैं इसी सुख-स्वप्न में मस्त हूं।

और क्या लिखूं? हृदय की भावना व्यक्त करते समय वेद भी अधूरे पड़ जाते हैं! आचार्यजी ने आपको अनेक आशीष भेजे हैं। भगवान उमाशंकर से प्रार्थना है कि महाराज नहुष शीघ्र ही पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करें।

अरे हां! एक बात लिखना तो भूल ही गया! अपनी वह नन्ही मुन्नी वासन्तिका—वही जो असमंजस में पड़ गई थी कि एक फूल दोनों को कैसे दे— यह जानकर कि मैं आश्रम छोड़कर जा रहा हूं फूट-फूटकर रो रही है! उसकी लता पर अब फूल ही फूल खिले हैं लता फूलों से जैसे लद गई है। वासन्तिका परेशान है कि अब कौन उनकी सराहना करेगा। मैंने उससे कह दिया है कि युवराज

ययाति फिर से शीघ्र ही तेरे लिए आश्रम आएगा। केवल तुम्हारे इन फूलों को देखने के लिए ही नहीं, बल्कि उन्हें सूंघने के लिए भी!

कच का पत्र पढ़कर मेरी अवस्था वस्तुतः ही विचित्र हो गई। किसी चोर की भांति मैं चुपचाप पलंग पर बैठ गया। मन विषाद में भर गया। कच अपने पक्ष के लिए प्राण न्योछावर करने के लिए कटिबद्ध हो गया था! और मैं? पिताजी आखिरी सांसें गिन रहे हैं, मुझे इसका होश तक रात में नहीं रहा। सुख की खोज करते-करते

सुंदर खुशबूदार फूल क्या केवल दूर से देखने के लिए ही होते हैं? उन्हें सूंघ लेने में कौन-सा पाप हो जाता है? मुकुलिका मुझे सुंदर लगी और मैंने

मैंने क्या पाप किया है! कल रात क्या मैं कोई पाप कर्म कर बैठा?

पाप की कल्पना से मन छटपटाने लगा। मधु का आस्वाद लेते लेते छत्ते से मधुमक्खियां मानो भिनभिनाती निकल पड़ें और सारे शरीर भर ज़ोर ज़ोर से डंक मारती जाएं

पलंग से उठते उठते मैंने मुकुलिका से कहा "रथ तैयार करने के लिए कह दो।"

'क्या ऐसे ही चल जाएंगे आप?'

'हां।'

कहां?"

नगर जाऊंगा पिताजी का दर्शन करने मां के चरणों की धूल माथे पर लगाने।

'थोड़ा जलपान '

'बीच में अपना मुंह मत मारो! दासी से उपदेश सुनने की आदत नहीं है हमें! और देखो शाम मैं यहां वापस नहीं आ रहा हूं। प्रासाद में ही रहूंगा!'

'लेकिन '

लेकिन क्या?"

'अमात्य ने आज्ञा दे रखी है हम सभी सेवकों को कि युवराज दिनरात अशोक वन में ही रहेंगे और सभी सजग रहें कि उन्हें पूरा विश्राम मिले और हर तरह से उनका मन प्रसन्न रहे "

ठीक है। मैंने सुन ली वह!'

तो शाम को विश्राम के लिए "

'मैं नहीं आऊंगा!'

०

पिताजी के स्वास्थ्य में रत्तीभर भी सुधार नहीं हुआ था। दिन में वे संकत में पड़े रहते थे। शाम को वात ज़ोर पकड़ता तो बड़बड़ाने लगते थे। कभी सगत,

पंडित जी के घर आए पश्चिम आर्यावर्त के एक शास्त्रीजी ने उनसे पूछा— आपके कितने बच्चे हैं ? —उन्होंने तपाक से उत्तर दिया— मुझे नहीं पता, मेरी धर्मपत्नी से पूछिएगा ! ऐसी बातों में बर्बाद करने के लिए मेरे पास समय नहीं है ! लेकिन हर बच्चे के नामकरण के समय बच्चे का क्या नाम रखा जाए इस प्रश्न को लेकर पंडित और पंडितानी जी में जमकर ठना करती थी। बेचारी पंडितानी की इसी एक मामले में पति के सामने एक भी नहीं चलती थी। पंडित जी की पुत्रियों के नाम थे माया मुक्ति प्रवृत्ति तितिक्षा ! एक पुत्र का नाम उन्होंने यम रखा। पत्नी ने हाथ जोड़ते हुए कहा— ऐसा भयंकर नाम न रखिए। लेकिन पंडित जी भला कहाँ माननेवाले थे। उन्होंने यह कहकर कि यह तो यम नियम में से आया यम है—पंडितानी को चुप करा दिया। बच्चा पाँच छह वर्ष का होकर बाहर के बच्चों के साथ खेलने लगा। प्रत्येक लड़का उसे उलाहना देकर चिढ़ाता— क्यों बे यम तेरा भैंसा कहाँ है ? —आखिर हारकर बेचारा यम रुआंसा हो गया और उसने अपने पिताजी के पैर पकड़कर अनुरोध किया कि जैसे भी हो उसका नाम बदल दें।

माधव को रसीली वाणी की देन मिली थी। उसने ये सारे किस्से इतने चटपटे बनाकर सुनाए कि हँसी को रोकना असंभव हो गया। विद्वान लोग विक्षिप्त हुआ करते हैं। बुद्धि की अलौकिकता के साथ ही उनकी वृत्ति प्रवृत्तियाँ भी लोक विलक्षण होती हैं ! इसीलिए उनके किस्से सुनाते समय हर कोई अपनी ओर से मिर्च मसाला लगाकर बहुत कुछ हाँक-सी लगाता है। मैं जानता था कि पंडितजी के बारे में फैलाई गई ये किंवदन्तियाँ भी इसी तरह प्रचलित हो गई होंगी।

पता नहीं माधव द्वारा बताए गए इन किस्सों में सच्चाई कितनी थी लेकिन उसकी रसभीनी बातों में मेरा मन अवश्य ही रम गया ! मन पर छाई बदली छंट गई !

पण्डितजी ने अपने अध्ययन-कक्ष में ही मेरा स्वागत किया। वहाँ पड़े पोथियों के ढेर और उनके पन्नों का बिल्कुल आधा के पास ले जाकर पढ़ने वाले पंडितजी की कृश मूर्ति को देखकर मुझे बरबस यति की गुफा और यति की याद हो आई। पण्डितजी से बातें प्रारम्भ होते ही मैं समझ गया कि यह कमरा ही उनकी अपनी दुनिया है। किसी दुर्लभ पोथी का एक पन्ना निकालकर मुझे दिखाते समय वे एकदम ब्रह्मानन्द अनुभव करते थे। उनके पांडित्य के सामने हर कोई नतमस्तक हो जाता। मैंने एकदम नये प्रश्न उठाए थे। लेकिन उनका उत्तर देते समय भी उन्होंने कितने ही श्लोक मुखाग्र पढ़कर सुनाए और अपने मत का समर्थन करने के लिए न जाने कितने आधार प्रस्तुत किए।

लेकिन उनके पांडित्य से भरे उन प्रश्नों का जिनके कारण मैं बेचैन हो उठा था उचित नापतौल उत्तर देने की सामर्थ्य नहीं था। यह बताने पर कि मैं मृत्यु की कल्पना से बहुत बेचैन हो उठा हूँ वे बोले बाल मृत्यु में कौन सच सारा है

युवराज ? वस्त्र पुराना हो जाने पर हम लोग उसे उतार फेंकते हैं न ? वस आत्मा भी शरीर को वसे ही त्याग देती है।

मैंने उन्हें बीच म ही टोका सभी लोग बूढ़े होने के बाद मरते होते तो आपकी बात से मेरी शका का समाधान हो जाता। लेकिन क्या जीवन का नियम वैसा ही है जैसाकि आप बता रहे है ? नित्य ही हम देखते हैं नन्हे बालक और युवालोग भी मृत्यु के शिकार हो जाते हैं। इसका कारण क्या है ?"

माधव ने बीच ही म कहा मेरी भाभी की ही बात लीजिए न ! कितनी स्वस्थ हसमुख और अच्छे स्वभाव वाली थी वह ! लेकिन केवल बीस वर्ष की उम्र म तीन माह की बच्ची को पीछे छोडकर वह चली गइ। इसम भगवान के यहा का कौन-सा न्याय रहा ? और पुराना होकर जीर्ण हो चुका वस्त्र भी कहा था ?

पडितजी ने तनिक आखें तरेरकर माधव को घूरा। फिर मेरी ओर मुडकर व कहने लगे युवराज, आप एक बात का ध्यान म रखें ! तब आपकी शका का समाधान हो जाएगा।"

कौन-सी बात ?'

कि यह सब माया है।

मतलब ?"

इस ससार म केवल एक ही बात सत्य है।

कौन-सी ?"

'ब्रह्म ! इस विश्व की मूल शक्ति ! बाकी सब मिथ्या है। यह माधव यह पडित ये युवराज—ये सब मात्र आभास है। ये पाणिया ये घर यह मृत्यु का डर, ये सब मिथ्या है।"

मेरे मन म समाया मृत्यु का डर झूठा है ? तब तो जीने म मुझे आने वाला आनन्द भी झूठा ही होगा ! कल रात मुकुलिका के आलिगन म मैंने जो आनद लूटा वह भी झूठा और आज सुबह मन म आई यह कल्पना कि वह पाप था और उसका चुभन भी झूठ ! देव मिथ्या दानव मिथ्या ! तो क्या महात्मा अगिरस ने देव-दानवो का युद्ध रोकने के लिए शाति यज्ञ का इतना झझट किया ? सजीवनी विद्या प्राप्त करने के लिए कच क्या इतना साहस करने के लिए उद्यत हुआ ? आखों स दिखाई देने वाला यह चराचर ससार और मन के द्वारा अनुभव किए जाने वाले सभी सुख-दुख यदि केवल माया ही हैं क्षणिक आभास मात्र हैं तो महाराज नहुष की मखन म पडी देह देखकर क्यो मेरा मन व्याकुल हो जाता है ? शरीर नाशवान होगा लेकिन वह मिथ्या नही है। उत्कट सुख दुखो की अनुभूति समय के साथ धुधली हो जाती होगी लेकिन वह असत्य कैसी ? वह असत्य नहा है। भूख असत्य नहा है और उसका दुख भी असत्य नहीं ! पच पक्वान असत्य नहा और उनसे मिलने वाला सुख भी असत्य नहीं।

पण्डितजी ने अनेक पोथियो स श्लोक निकाल निकालकर मुझे सुनाए उनकी

तारका मेरी गोद पर सिर रगडते हुए बोली आज मैं आपके घाल का जान नही दूगी ।

'क्यो ?

सादी जा है आज !'

'किसकी ? तुम्हारी ?'

ज ह ! मेली गुनिया की !

कब है ?

परसा !

दूल्हा कहा का है ?

दूल्हा ? कहते हुए उसने दोना हाथ हिलाकर नही नही' का सकेत किया। उसकी यह नकारात्मक भगिमा बहुत ही माहक थी । एसा लगा जैसे कोई लुभावना पछी बूदें झाडन क लिए अपन नन्हे-नन्हे डैन सिहार रहा हा ।

तारका की गुडिया की शादी परसा हाना निश्चित हो गया था और मजे की बात यह थी कि अभी दूल्हा ही निश्चित नही हुआ था ! उसका मजाक उडान के लिए मैंने कहा अपना घोडा ता तुम्हारी गुडिया की शादी के लिए म दता हू मैं लेकिन दूल्हा कहा स लाआगी तुम ?

आप सच कहते ह ! भला दूल्हा कहा स लाया जाए ? कहकर अपनी हथेली पर चिबुक रखकर वह साच म पड गई ।

माधव भीतर भाजन का प्रबध करने गया था। इसलिए तारका दिल खोल कर मुझसे बात कर रही थी हस रही थी मचल रही थी । उसकी वह साच म डूबी नन्ही मूर्ति क्या ही मनोहर लगती थी ! मन कर रहा था कि उसे उठा लू और बार-बार चूम लू । किन्तु उस ध्यान समाधि का भग करना सभव नही हुआ ।

कुछ देर बाद सिर उठाकर उसने बडी गभीरता से प्रश्न किया ओ युवलाज ! आप बनोग दूल्हा मेरी गुनिया का ?

उसी समय माधव लौट आया । उसने तारका का वह अद्भुत प्रश्न सुन लिया था । काई और समय हाता ता एसा ऊटपटाग प्रश्न करने क लिए उसने उस अबोध बालिका को शायद अच्छी पिटाई की हाती । किन्तु मेरे सामने वह एसा कर नही पाया । वह चुपचाप हाथ मलता रह गया । हस्तिनापुर का युवराज और इस तारका की गुडिया का दूल्हा ! भई वाह ! नन्हे बच्चा की कल्पनाए भी क्या उडान भरा करती है ! मैं उस विवाह का चित्र अपनी आखा क सामने लाने लगा । एक तरफ बित्ते भर की गुडिया खडी है बीच म माधव की अधफटी धोती का अतरपट पकडा हुआ है और दूसरी तरफ खडा है अच्छा माटा-तगडा ऊचा-पूरा ययाति ।

तारका की अटपटी बतिया म भाजन की बेला तक का समय कब बीत गया पता ही नही चला । भाजन म निरत हाते हुए मैंने मारा स कहा हम यहा पर

विश्राम करने जा रहे हैं। धूप ढलने के बाद तुम फिर से रथ ले आना। आज रात हम राजमहल में ही रहेंगे।'

तीसरे पहर माधव अपने भाई की कविताएं पढ़ने के लिए मुझे दे गया। जो भी पन्ना अनायास सामने आ गया, मैं पढ़ने लगा।

उस पन्ने में 'सागर-दर्शन' था। सागर के ज्वार के उठनेवाली उत्तुंग लहरों की तुलना हजार घोड़ों वाले रथ में सवार होकर पृथ्वी पर विजय पाने के लिए निकले वरुण के साथ करने की उस पृष्ठ पर अंकित कल्पना मेरे मन को बहुत ही अच्छी लगी। विशेषतः फेनिल लहरों को तेज दौड़ने के कारण अयाल बिखरे घोड़े से जो उपमा दी गई थी वह तो कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति की परिचायक लगी।

समुद्र पर रची गई कविता का एक चरण था—

ए उन्मत्त सागर, व्यर्थ में गरजना छोड़ दे। इस क्षण भाग्य तेरे अनुकूल है। इसीलिए भूमि का एक-एक भाग पदाक्रांत करता हुआ तू आगे बढ़ता जा रहा है। लेकिन कुछ समय ठहर गया, तो उसी भाग्य के प्रताप का तुझे पता चल जाएगा। वह मर्यादा की जो भी लीक खींच देगा उसको लांघकर तू एक कदम भी नहीं जा पाएगा। यही नहीं यदि भाग्य का पासा पलट गया तो चुपचाप तुझे भूमि का पदाक्रांत किया हुआ एक-एक भाग त्याग कर पराजित होकर सिर झुकाए उलटे कदम लौटना पड़ेगा। ऐश्वर्य पाने पर सत्पुरुष उन्मत्त नहीं हुआ करते और विपदाओं में वे साहस भी नहीं हारते क्योंकि वे जानते हैं कि भाग्य की गति बड़ी विचित्र होती है।'

भाग्य की गति की इतनी काव्यपूर्ण व्याख्या करते समय माधव के भाई ने अपनी पत्नी की मृत्यु और फलस्वरूप जीवन में आनेवाले परिवर्तन की क्या तनिक भी कल्पना की होगी? इस समय वह कहां पर होगा? क्या किसी सराय में? या गंगा के किनारे किसी मन्दिर में? वह क्या कर रहा होगा? उसके मन में क्या क्या विचार उठते होंगे? सांध्य की छायाओं को देखते ही क्या उसे तारका की याद सताती नहीं होगी? घर घर में दीप जलाए जा रहे हैं, पुरुष अपने-अपने परिश्रम के काम समाप्त कर घर वापस आ रहे हैं, नारियां हंसते-हंसते उनका स्वागत कर रही हैं, मिलन की बेला समीप आने की कल्पना मात्र में उन सभी नर-नारियों के मन पुलकित हो रहे हैं, यह सब देखकर उसे क्या लगता होगा?

राजप्रासाद से निकलने के बाद से मुझे मुकुलिका की याद नहीं आई थी। अब उसकी कमनीय आकृति एकदम आंखों के सामने आकर खड़ी हो गई। उसे मिटा डालने के लिए मैं उस काव्य का एक और पन्ना पढ़ने लगा। लिखा था

'कैलाश पर्वत कितना ऊंचा है! उसके शिखर हमेशा आकाश को चूमते रहते हैं। कैलाश पर सर्दी भी कितनी भयंकर! जिधर देखो उधर बर्फ की परतें ही परतें जमी हुई हैं! मानो भोले शंकर द्वारा रमाई गई भभूत ही हवा से बिखर-कर जहां-तहां पड़ी है! लेकिन इस तरह का यह स्थान पार्वती परमेश्वर ने अपने

निवास के लिए आखिर क्या चुना होगा? शंकर तो ठहरे निर्धन और दिगंबर भी। ऊपर से यह स्थान भी कुछ ऐसा कि खाने के लिए कंद मूल और पहनने के लिए वल्कल मिलना भी मुश्किल।

फिर उन्होंने अपनी गृहस्थी के लिए किसी अन्य स्थान का चयन क्यों नहीं किया, बताऊं?

'उमा और महेश प्रणय-पूर्ति के लिए यथार्थ में एकान्त चाहते थे। वे एक ऐसे एकान्त स्थल की खोज में थे, जहां कोई नहीं आएगा, शंकरजी उमा के साथ जीभर कर द्यूत क्रीड़ा खेल सकेंगे, उस द्यूत में हार जाने के बाद सारी बिसात को ही क्रोध में उठाकर फेंक सकेंगे, उमा जब यह कहकर रूठ जाएगी कि बस बस आपकी तो आदत ही ऐसी है, जरा कुछ मन के विरुद्ध हुआ नहीं कि बस गए आपे से बाहर होकर! —तो उस बाहुपाश में जकड़कर उसको मना सकें। इसीलिए उन्होंने कैलाश का चयन किया।

'आपको मेरी यह बात जंचती नहीं तो जाकर भगवान विष्णु से पूछिए। वे भी आखिर सागर-तल में जाकर शेषनाग की सेज पर जाकर क्यों लेटे हैं? इसलिए न कि उनके एकान्तसुख को कोई भंग न कर सके?

यह वाक्य पढ़कर समाप्त करते ही मुकुलिका की मूर्ति मेरी आंखों के सामने पहले से भी अधिक मोहक रूप धरकर खड़ी हो गई। मन अनायास वन की ओर खिंचा जाने लगा। लगा कि प्रातः उसपर व्यर्थ ही गुस्सा किया था। जो कुछ हुआ उसमें उसकी गलती क्या थी? वह स्वयं मेरे पास थोड़े ही आई?

नहीं! मुकुलिका के बारे में ही हमेशा इस तरह सोचते रहना ठीक नहीं। कल रात जो कुछ हुआ, वह पाप हो न हो। लेकिन आज फिर से वही नहीं होने देना चाहिए। अब मैं फिर कभी भी नहीं होने दूंगा, चाहिए।

मैं फिर वाक्य पढ़ने लगा—

स्त्री जैसी विलक्षण रची वस्तु त्रिभुवन में कोई और मिलती? स्त्री-आलिंगन का सुख पान करनेवालों ने संसार में हमेशा महान पराक्रम किए हैं। बड़े बड़े वीरों और कवियों की जीवनियों को देखिए, यह बात स्पष्ट हो जाएगी। इसके विपरीत स्त्री के बाहुपाश को ठुकरा जानेवालों का जीवन पराक्रमशून्य रहता आया है। इन तेजो-तापसियों और साधु-संन्यासियों का भला इस दुनिया में कब कमी रही है?

उसके आगे का वाक्य पढ़ने पर तो मैं बस हो गया —

हे रमणी, तेरा गहलियों और आनजनों का लगता है कि तेरा प्रियतम बहुत दिनों बाद घर लौट आया है और इसीलिए उसे देखते ही तू शरमा गई और तेरे गालों पर लालिमा छा गई है। लेकिन ये अरसिक लोग असल बात को क्या जानें? वास्तव में रात कितने ही दिनों से तू अपने प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। उसके द्वार पर आंखें बिछाए बैठी थी। सारी-सारी रात अपलक जागती बैठा करती थी तुम। हवा के झोंके से दरवाजा तक उठता तो

प्रियतम के ही आने की कल्पना कर तुम दौडकर जाती और दरवाजा खोलकर देखती। फिर निराश होकर बिस्तर पर लेट जाती थी।

मूसलाधार वर्षा होने लगती तो तुम्हारे मन मे यही प्रश्न उठता था कि वे कहा होग ? इस समय यदि वे राह मे होगे तो इस वर्षा मे तो पूरे भीग गए होगे। यह मुसीबत यदि उनके यहा रहते मे आई होती तो मैं तुरन्त उनसे कसकर लिपट कर उन्हे अपनी गरमाहट दे देती। लेकिन वे तो इस समय मुझसे सकडो कोस दूर है। यह सहायता मैं वहा तक कैसे पहुचा सकती हू ?

'रमणी इसी तरह तूने कई रातें जागकर काटी है। इसीलिए तुम्हारी आखें लाल हो गई हैं। आज प्रीतम से नजरें मिलते ही आखो की वह लाली आनदाश्रुओ के रूप मे बहकर तुम्हारे गालो पर उतर आई है। तुम्हारे इद गिर्द के लोग अरसिक है पागल हैं। इसीलिए वे सोच रहे है कि प्रीतम को देखते ही तुम शरमाकर लाल हो गई हो। भला इतना शरमाने के लिए तुम नई-नवेली दुल्हन थोडे ही हो ?

इसके आगे ही एक 'रजनी स्तोत्र' लिखा था। अब तक के काव्यो को पढ लेने के बाद उस पर बिना मुझसे नही रहा गया

'सभी ऋषि मुनि प्रात सूर्य को अर्घ्यदान करते है। प्रार्थना करते हैं कि हमारी बुद्धि को भी वह आलोकित करे।

'हे रजनी तुझे कोई अर्घ्यदान नही करता। तेरी कोई प्रार्थना नही करता। इसलिए तुम घुलती घुटती जा रही हो। पागल हो तुम ! सूर्य की अपेक्षा तुम्हारे ही भक्तो की सख्या ज्यादा है। हर घर मे झाककर देखो। तुम देखोगी कि तुम्हारे आगमन से युवक युवतियो के हृदय-कमल खिल उठे है। हर पल उन्हे युग समान प्रतीत हो रहा है। तुम स्वय शीतल हो लेकिन उनके रोम रोम को तपा रही हो। ठीक है कि तुम्हे देखकर फूल खिला नही करते लेकिन प्रेमीजनो का अग प्रत्यग तो तुम्हारे आगमन से ही पुलकित होता है आकाश मे तारो की बहार खिल उठती है। भला इन बातो मे तुम्हारा सानी कौन हो सकता है ?

'सूर्य कर्तव्य का सन्देश देता है। तुम प्रीति का गीत गाती हो। सूर्य मनुष्य की बुद्धि को आलोकित करता है तुम उसके हृदय मे चादनी बरसाती हो।

हे रजनी तुम जगमाता हो। तुम न होती तो—आठो पहर सूर्य ही पृथ्वी पर प्रकाशमान रहता तो मनुष्य की सभी कोमल भावनाए दग्ध हो गई होती। उसे मुक्ति पाने के लिए आत्महत्या के सिवा कोई मार्ग दिखाई न देता।"

माधव से विदा लेकर मैं रथ मे आ बैठा तब इन कविताओ का मुझपर एक नशा-सा छा गया था। शरीर का कण कण प्यासा हो उठा था। बयार पर सवार होकर आनेवाली मद सुगध के समान रात की स्मृतिया मन को बेचैन कर रही थी।

सारथी राजप्रासाद की ओर रथ को मोडने लगा। तभी मैं जोर से चिल्लाया रथ रोको सारथी !

रथ को रोककर उसने पूछा 'क्या बात है महाराज ?'

'कहां लिए जा रहे हो ?"

राजप्रासाद।

'किसने कहा तुम्हें उधर चलने को ?"

'आप ही ने महाराज दोपहर में !

अब जाकर कहीं मुझे दोपहर वाले अपने संकल्प की याद आई। बेचारे सारथी की कोई गलती नहीं थी। मैंने नरम स्वर में कहा रथ अशोक वन ही ले चलो। आज सिर में बड़ा दर्द है।

अशोक वन के महल में कदम रखते ही मैंने उसे कल जैसा ही सुसज्जित और सुशोभित पाया। मैं जाते समय मुकुलिका से कह गया था कि आज मैं यहां नहीं आऊंगा।' इसके बावजूद उसने यह सारी साजसज्जा कर रखी थी इसपर मुझे आश्चर्य हुआ।

मेरे पीछे-पीछे ही वह भी महल में आई। उसके हाथों में मदिरा की एक सुंदर सुराही थी। बनावटी गंभीरता से मैंने पूछा महारानी जी की आज्ञा है न कि यहां मदिरा न रखी जाए ?'

उसने हंसकर कहा मैं आपकी दासी हूं। आपकी इच्छा '

कहते-कहते उसने एक चषक में मदिरा ढालकर मुझे दे दी।

चुसकी लेते-लेते मैंने मुकुलिका से पूछा मैंने सुबह तुमसे कह दिया था कि मैं यहां नहीं आऊंगा। इसके बावजूद '

नहीं ! नहीं !'

क्या मतलब ?

आप तो यही कहकर गए थे कि मैं शाम को आने वाला हूं !"

क्या कह रही हो ?

सच बताऊं ? छिगुनिया को यूं ही दांतों तले दबाकर उसने कहा नारियों का ध्यान पुरुषों की बातों की ओर नहीं उनकी आंखों की ओर लगा करता है !'

■

सूरज उगता था डूबता था। सूर्योदय के बाद मैं नगर में आता था और पिताजी की चरणधूलि मस्तक पर धारण करता फिर आराम में माधव के यहां जाता। उसके सहवास में काव्य नृत्य और संगीत का आस्वाद लेते हुए अपने आपको भुला देता और सूरज डूबने के बाद अशोक वन लौट जाता। यही मेरा नित्यक्रम-सा बन गया था। कभी-कभी तो लगता कि यह जीवनक्रम एक अबोध शिशु का है। वह जागता है दूध पीता है हाथ-पांव हिला-हिलाकर हंसता है और थोड़ी देर बाद फिर से सो जाता है। दिन में अठारह-बीस घण्टे उसके सोने में ही बीत जाते हैं। इसलिए शायद चिंता दुःख मृत्यु आदि की गहरी काली परछाइयां उसके मन को छू तक नहीं पातीं। कभी लगता नहीं ! यह निरी आत्मवंचना है। मोह का प्रथम क्षण पाप की पहली सीढ़ी होता है। पहली सीढ़ी मैं उतर आया

है। यह सीढ़ी बड़ी ही मोहक और रत्न-जड़ित है ! लेकिन कितनी भी सुंदर हो, तब भी वह अध पतन की सीढ़ी है ! यह सीढ़ी मुझे कहा ले जाएगी ? भीषण गर्त मे ? भयानक खाई मे ? सप्त पाताल मे ?

कभी-कभी मन के भीतर चल रहा यह द्वद्व बहुत ही भयानक रूप ले लेता। मन की अवस्था तो उस छोटे-से बालक जैसी हो जाती, जो दो प्रमत्त हाथियो की भिड़त देख रहा है दोनो हाथी लाल-लाल रक्त मे नहा चुके है खून से लथपथ एक हाथी का नुकीला दात दूसरे के शरीर मे भाले जैसा घुस गया है आहत हाथी ने भी प्रत्याघात के लिए अत्यत क्रोध और जोश से अपनी सूड हवा मे किसी गदा के समान उठाई है—और यह सब दूर से देखते-देखते भीतर ही भीतर घबराकर बेहोश होकर गिर पड़ा है !

लेकिन ऐसा क्षण शायद ही कभी आता।

एक दिन शाम को एक कलात्मक शृगार-नृत्य देखकर मैं और माधव लौटे। माधव को उसके घर छोड़कर मैंने सारथी को रथ अशोक वन ले जाने की आज्ञा दी। तभी प्रासाद से एक दूत अमात्य का सन्देश लेकर आया। पिताजी अब अच्छी तरह होश मे आ गए थे और 'ययू कहा है ?' की लगातार रट लगाए हुए थे।

तीर के वेग से मैं राजप्रासाद पहुचकर पिताजी के महल मे गया। उनका चेहरा बहुत ही निस्तेज पड़ चुका था—ग्रहण लगे सूर्य के जैसा ! मै चकरा उठा।

मुझे अपने पास बिठाने के लिए पिताजी ने अपना दाया हाथ ऊपर उठाने की चेष्टा की। किन्तु इसमे उन्हे बहुत ही कष्ट होता दिखाई दिया। मैं रुआसा हो गया। मेरे बचपन की बीमारियो मे इसी हाथ ने मुझे धीरज बधाया था बचपन के छोटे छोटे पराक्रमो के लिए इसी हाथ ने मुझे प्रोत्साहन दिया था। वह हाथ मेरा कृपा छत्र था। वही हाथ अब

मेरी पलकें अनजाने मे भीग आई। पिताजी ने इशारा कर मेरे अलावा सबसे उस कक्ष के बाहर चले जाने को कहा। दासिया चली गई अमात्य गए, राजवैद्य भी गए। चार-पाच क्षण मा हिचकिचाती रही किन्तु पिताजी मुझ अकेले से ही शायद कुछ कहना चाहते है यह जानकर वह भी कुछ अनिच्छा से बाहर चली गई। बाहर जाते ही उसने द्वार भी बद कर दिया।

पिताजी के सिरहाने अनेक मात्राए चूर्ण भस्म और अवलेह आदि दवाइया रखी थी। उन्हीमे मदिरा की एक छोटी सुराही भी थी। बडे ही कष्ट से उन्होने उस सुराही की ओर उगली दिखाते हुए मुझसे कहा मुझे थोड़ी मदिरा दो।'

मैंने देखा था राजवैद्य बीच बीच मे पिताजी को घूट दो घूट मद्य दे दिया करते है। इसीलिए मैंने चषक मे बहुत ही थोड़ा मद्य ढाला और चषक उनके होठो तक ले गया।

चषक की ओर घूर घूरकर देखते हुए उन्होने कहा पूरा प्याला भरकर दो मुझे '

लेकिन पिताजी आपका परहेज

व विपण्णता से हँसे। 'तुमसे काफी बातें करनी हैं मुझे। और उसके लिए शक्ति भी चाहिए काफी पूरा प्याला पूरा भर कर दो। यूँ ही तीर्थ की तरह "

मैंने चषक भर उनके हाथों से लगा दिया। चुसकियाँ लेते-लेते वे सारा मद्य पी गए। फिर कुछ देर आँखें मूँदकर पड़े रहे। उन्होंने आँखें खोलीं तब उनका चेहरा काफी उल्लसित दिखाई दिया।

मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर पिताजी ने कहा ययु अब भी जीने की बहुत चाह मन में है। अपनी जिन्दगी मुझे दे देने वाला कोई मिलता है तो मैं उसे अपना सारा राज्य तक दे डालूँगा। लेकिन

एक लम्बी आह भरकर वे मेरी ओर अत्यंत करुण दृष्टि से देखने लगे। पुरुष सिंह के नाम से पिताजी का त्रिभुवन में यश फैला हुआ था। किन्तु अबकी बार उनकी वह दृष्टि मर्माहत हिरन की दृष्टि थी भयभीत खरगोश की दृष्टि थी। धीरे धीरे वे आगे कहने लगे ययु एक अत्यंत समृद्ध राज्य मैं तुम्हारे हाथों में सौंपकर जा रहा हूँ। यदि जीवन भर तुम ऐश और आराम करते रहे तब भी यह राज्य सुचारु ढंग से चलता रहेगा। मैं सिंहासन पर आरूढ़ हुआ तब भी दस्युओं का उपद्रव बहुत था। जनता अनेक सुख-सुविधाओं से वंचित थी। राज्य व्यवस्था भी लेकिन छोड़ो इन बातों को। एक अत्यंत समृद्ध राज्य तुम्हें विरासत में देकर मैं

पिताजी आपके कर्तृत्व और पराक्रम को मैं भली भाँति जानता हूँ। यह तो मेरा अहोभाग्य है कि मैं आप जैसे पिता का पुत्र हूँ '

और दुर्भाग्य भी ' पिताजी ने मुझे बीच ही में टोककर कहा।

मैं सिहर उठा। क्या कहूँ समझ में नहीं आता था।

क्या उनके इस उद्‌गार का संबंध उन्हें मिले उस शाप से होगा ? या अब भी यति के विछोह का दुःख उनके मन में चुभ रहा है ?

पिताजी एक एक शब्द आहिस्ता-आहिस्ता कहने लगे ययु तुमने बचपन में अनेक बार सुना होगा कि तुम्हारे पिता ने इन्द्र को भी परास्त किया था वह स्वर्ग का राजा भी बना था। लेकिन वह कहानी कि जिससे मुझे वह इन्द्रपद छोड़ना पड़ा '

किसीने यह मुझे नहीं बताई पिताजी !

भीषण हास्य करते हुए पिताजी बोले राजाओं के दुर्गुणों की चर्चा उनकी मृत्यु के बाद लोग करने लगते हैं। हाँ तो भला मैं तुमसे क्या कह रहा था ? हाँ आया याद। इन्द्रपद की प्राप्ति के कारण मेरी वृत्ति प्रवृत्तियाँ बदल गई। मैं घमण्ड में चूर हो गया। भर जैसा पराक्रमी वीर ताना लोकों में नहीं यह जानकर मैं मदोन्मत्त हो उठा। ययु एक बात का कभी न भुलाना। पराक्रम पर गर्व करना एक बात है और उसके घमण्ड में उन्मत्त हो जाना दूसरी ! मेरा उन्माद इतना हद

तक पहुंच गया कि मैं इन्द्राणी की ओर भोग विलास की लालसा के नाते देखने लगा। इन्द्राणी मेरी बात को एक शर्त पर स्वीकार करने को तैयार हुई। शर्त यह थी कि मैं उसके रंगमहल में एक ऐसी अनोखी पालकी में जाऊं जो मेरे पराक्रम की शान बढ़ाए। इन्द्राणी ने यह सुझाव भी दिया कि हमारे मिलन के लिए ऋषियों द्वारा ढोई गई पालकी त्रिभुवन में अलौकिक सवारी हो सकती है। उन्माद ने मुझे पहले ही अंधा बना दिया था, ऊपर से कामुकता का भूत भी मुझपर बुरी तरह सवार हो गया था। बड़े-बड़े ऋषि महर्षियों को बुलाकर मैंने स्वर्ण के रत्न से जड़ित अपनी पालकी उनके कंधों पर रखवा दी। ऋषि पालकी ढोकर मुझे ले जाने लगे। किंतु मैं इतना कामातुर हो गया था कि ऋषियों की गति मुझे मंथर लगने लगी। मैं तो एक मचल रहा था कि कब इन्द्राणी के रंगमहल पहुंचूं और कब उसके सौन्दर्य का जी भर कर उपभोग करूं। इसीलिए मुझे ऋषियों की इस मंथर गति पर गुस्सा आ गया। 'पालकी जल्दी जल्दी चले इस हेतु उनमें से एक ऋषि के मस्तक पर मैंने सर्प!' कहकर जोर से लात मारी। वह—अगस्त्य ऋषि थे। उन्होंने तत्काल शाप दिया और '

आखरी शब्द कहते-कहते पिताजी बुरी तरह हांफने लगे। उनका उच्चारण बहुत ही अस्पष्ट, बहुत ही कंपित था।

उनसे ज्यादा बोला नहीं गया। उन्होंने फिर से मदिरा के प्याले की ओर उंगली दिखाई। अभी तुरंत ही उन्हें मद्य देना निश्चय ही बड़ी बदपरहेजी होगी ऐसा सोचकर मैं चुपचाप बैठा रहा। लेकिन उनके चेहरे पर उभर आई व्याधि की वेदना मुझसे देखी नहीं गई। चषक आधा-अधूरा भरकर मैंने उनके होंठों से लगा दिया।

उतने मद्य से ही उन्हें फिर से कुछ ताजगी आ गई। कुछ कहने के लिए उनके होंठ फिर हिलने-से लगे। अतः मैंने कहा, 'अब आप आराम कीजिए पिताजी, हम लोग बाकी बातें कल कर लेंगे।'

'कल?' उन्होंने यह एक ही शब्द कहा तो, लेकिन उसमें दुनिया भर का सारा कारुण्य समाया था।

क्षण भर के लिए वे कुछ अंतर्मुख हो गए। फिर शांत भाव से बोले, "वह शाप था—'यह नहुष और इसके पुत्र कभी सुखी नहीं होंगे!' —मां-बाप की भली बुरी सभी बातें विरासत में बच्चों को मिला करती हैं। प्रकृति का यह नियम ही है। लेकिन बार-बार मुझे लगता रहा है कि उस शाप की बला जन्म में ही तेरे पीछे नहीं लगनी चाहिए थी। ययु, तुम्हारा पिता अपराधी है। उसे क्षमा कर दो बेटे! एक ही बात हमेशा याद रखना—जीवन की मर्यादाओं को कभी भुलाना नहीं चाहिए। मैंने उन्हें भुला दिया और

हताश मुद्रा में पिताजी ने आंखें मूंद लीं। स्पष्ट था कि इतना बोलने के कारण ही उनपर काफी तनाव आ गया था। अब उन्हें पूरे विश्राम की आवश्यकता थी। किन्तु वे अपने-आप ही कुछ बुदबुदा रहे थे। मैं झुककर गौर से सुनने लगा।

मैंने सुना—शाप यति मृत्यु मुझसे रहा नहीं गया। मेरे मुंह से शब्द निकल गए पिताजी यति जिन्दा है!

आंधी के वेग से जैसे घर के किवाड़ तड़ाक-से खुल पड़ें कुछ इसी तरह पिताजी ने आंख खोल दी और बहुत ही भर्राए स्वर में पूछा कहां?'

पूर्वी आर्यावर्त में

मतलब क्या है?'

वह मुझसे मिला था।

कब?

अश्वमेध के समय।

पिताजी सुनकर थरथर कांपने लगे।

और इतने दिन तक तुमने यह बात मुझसे छिपाए रखी? स्वार्थी नीच दुष्ट—मैं उसे वापस लिवा लाता और मेरे बाद वही राजा बनता इसी भय से तूने उसको '

आगे का शब्द उनके मुंह से निकाल नहीं निकला। लेकिन वे मेरी ओर इतनी अजीब दृष्टि गड़ाकर देखने लगे कि अनजाने ही मैं चिल्लाया मां ।

मां अमात्य राजवैद्य दासियां सभी भीतर आ गए। राजवैद्य ने जैसे-तैसे कोई औषध पिताजी को चटाया।

शायद थोड़ी देर बाद उन्हें कुछ अच्छा लगने लगा। उन्होंने धीरे से अमात्य से कहा अमात्य अब मेरा कोई भरोसा नहीं है। इन्द्र को पराजित करने के बाद प्रसारित की गई हमारी सुवर्ण मुद्रा ले आइए। एक बार आंखें भर मैं उसे देखना चाहता हूं। उसे दर्शन-स्पर्शन करना चाहता हूं। मनुष्य को विजय के उन्माद में मृत्यु आनी चाहिए!

पिताजी के इन वाक्यों से मां के तो होश-हवास उड़ से गए। वह आंखें पोंछने लगी। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि कैसे उसे सान्त्वना दूं।

अमात्य वह सुवर्ण मुद्रा ले आए।

'लाइए वह मेरे हाथ में दीजिए।' पिताजी ने कहा। हाथ में लेने के बाद काफी कष्ट होने के बावजूद उन्होंने उसे उलट-पुलटकर देखा और बोले 'इसपर मेरे पराक्रम की निशानी कहां है? धनुष बाण—मेरा धनुष—मेरा बाण

अमात्य उस मुद्रा का एक कोना पिताजी को दिखाते हुए बोले इस तरफ आपका धनुष-बाण का चित्र है महाराज!'

कहां-कहां? यह सुवर्णमुद्रा वह नहीं है! मुझे धोखा दे रहे हैं आप लोग!

नहीं महाराज! इसी ओर वह चित्र अंकित है!

तो मुझे वह क्या नहीं दिखाई देता? दूसरी ओर से दिखाइए मुझे!

अमात्य ने फिर दूसरी ओर से मुद्रा पिताजी को दिखाई। पिताजी एकाग्र दृष्टि से देखने लगे। बीच ही में उन्होंने मुझे पुकारा ययु

मैं आगे बढ़ा। वे मुझसे कहने लगे इस सुवर्णमुद्रा पर क्या कोई अक्षर है?'

'हं, पिताजी !"

भला पढ़कर सुनाओ तो !'

जयतु जयतु नहुष"

'अरे तो फिर मुझे ही वे अक्षर दिखाई क्या नहीं देते ? शायद उन्होंने भी मेरे विरुद्ध षडयन्त्र रचा है !'

पिताजी ने मुझसे उस मुद्रा को दो तीन बार उलटने पुलटने को कहा। मैंने वैसा ही किया। हर बार एक तरफ धनुष-बाण का चिह्न और दूसरी तरफ 'जयतु जयतु नहुष' अक्षर मुझे स्पष्ट दिखाई दिए। लेकिन पिताजी उन्हें देख ही नहीं पा रहे थे !

उनकी आखो से आसू बह निकले। गद्गद स्वर में बोले "नहीं, मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है ! जयतु जयतु नहुष ! झूठ है ! झूठ है यह सब ! आज उस नहुष की हार हो रही है ! मृत्यु उसे पराजित कर रही है ! मृत्यु ! मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है ! मुझे मुझे !"

बोलते-बोलते वे अचेत हो गए। मा अपनी सिसकियां को दबाने की कोशिश कर रही थी, लेकिन आखिर उनका विस्फोट होकर ही रहा ! राजवैद्य एक दासी की सहायता से पिताजी को नाड़ दवा चटाने लगे।

मृत्यु ने दबे पांव महल में प्रवेश कर लिया था। किसीको भी वह दिखाई नहीं दे रही थी लेकिन उसकी घुटन पैदा करने वाली काली गहरी छाया सभी के चेहरो पर उतर आई थी।

मुझसे वहा और खड़ा नहीं रहा गया। दोनो हाथो से मुह ढाककर मैं महल के बाहर आ गया। रोने को जी कर रहा था लेकिन रुलाई फूट नहीं रही थी।

थोड़ी देर बाद अमात्य और राजवैद्य बाहर आए। मेरे कधे पर हाथ रखकर राजवैद्य ने कहा 'युवराज अभी दी हुई मात्रा के कारण महाराज को आराम पड़ा है। इस क्षण तो चिन्ता का कोई कारण नहीं है लेकिन कह नहीं सकता किस समय क्या हो जाए ! अब तो सारा भार ईश्वर पर ही है। आप आशोक वन जाकर विश्राम कीजिए। महाराज के स्वास्थ्य में थोड़ा भी परिवर्तन हुआ तो अमात्य तत्काल आपको सूचना देगे।"

अमात्य ने भी गर्दन हिलाकर राजवैद्य की बात का समर्थन किया।

वहा रहकर भी आखिर मैं क्या करता ? किसी निर्जीव बुत की तरह चुपचाप मा का दु ख देखता रहा। पिताजी की वेदनाओ को एक पत्थर की तरह निर्विकार भाव से बैठे देखता।

राजपथ पर मेरा रथ दौड़ रहा था। जिधर देखो लोगो के जत्थे घूम रहे थे। कोई हंस रहे थे, कोई खेल रहे थे। कोई गीत गुनगुना रहा था कोई चादनी में टहल रहा था। उनके सुख को देखकर मैं और भी दु खी हो गया।

अशोक वन के महल में कदम रखा तो देखा मुकुलिका सजधज कर द्वार में ही स्वागत के लिए खड़ी है। उससे एक भी बात किए बिना ही मैं भीतर चला गया।

मेरी पोशाक उतारने के लिए वह आगे बढ़ी। मैंने हाथ के इशारे से ही उसे मना कर दिया। वह चौंकी और नज़र फेरकर पीछे हट गई।

मुझे झल्लाहट हो रही थी कि यह दो कौड़ी की दासी आखिर अपने-आपको क्या समझती है? रंभा, उर्वशी या तिलोत्तमा? उधर महाराज मृत्युशय्या पर पड़े हैं और इधर यह साज शृंगार कर मुझ पर डोरे डालना चाह रही है! अवश्य ही इसने हिसाब किया होगा कि आज नहीं तो कल युवराज सिंहासन पर बैठेगा, राजा बनेगा। उसके साथ अपना इस तरह का नाजुक रिश्ता रहा तो अवश्य ही वह अपनी मुट्ठी में रहेगा। इसीलिए यह अपना जाल बिछा रही है। यदि ऐसा नहीं है तो क्या यह हर दिन नया साज शृंगार कर नई-नवेली दुलहन की तरह मुझे मोह लेने की चेष्टा में लगी रहती है? यहाँ का सारा कारोबार उसने कितनी कुशलता से अपने ही हाथों में रखा है! इस कान की बात उस कान तक भी यह जाने नहीं देती। इस सबका आखिर दूसरा उद्देश्य हो ही क्या सकता है? मेरे साथ जोड़ी हुई उसकी घनिष्ठता, मेरे जैसे दुनियादारी के अनुभव से अछूते युवक के साथ उसके द्वारा खेला जा रहा प्रेम का यह नाटक, पाप की कल्पना तक से अपरिचित एक युवक को अधःपतन के मार्ग पर चलाने के लिए जारी उसकी यह सारी दौड़धूप, छटपटाहट...

डरते-डरते मुकुलिका ने पूछा, "भोजन कब कीजिएगा?"

"मुझे आज भोजन नहीं करना है।"

"क्यों?"

"मेरी मर्जी!"

"लेकिन आज तो मैंने खास तौर से..."

"मैं तेरे सारे नाटक को अच्छी तरह समझता हूँ! कल सुबह होते ही चुपचाप यहाँ से महल चली जाओ! मैं तेरा मुँह भी देखना नहीं चाहता! तू... तू... निकल बाहर! और ध्यान में रख, जब तक मैं न बुलाऊँ इस महल में पाँव नहीं धरना है, तुझे समझी?"

मैं खिसिया गया था, नाराज हो गया था अपने-आपसे, दुनिया से, मृत्यु से, मुकुलिका से! मुझे स्वयं को ही पता नहीं चल रहा था कि मैं क्या बोले जा रहा हूँ!

मुकुलिका डरी-सहमी बाहर निकल गई। उसकी भयभीत मुद्रा देखकर मुझे बरबस ही अच्छा लगा। राज-वस्त्र उतारे बिना ही मैं पलंग पर लेट गया।

एकाएक मुझे पिताजी की याद हो आई। वह स्वर्णमुद्रा, उसपर अंकित विजय चिह्न था, उसे पाने के लिए उनकी वह छटपटाहट! अभी थोड़ी देर पहले उनकी दृष्टि समाप्त हो गई थी। अब शायद उनकी हाथ-पाँव हिलाने तक की शक्ति भी जाती रही होगी! स्वर्ण तक के द्वार खोलने वाले वीर पुरुष के नाते पिताजी सारी दुनिया में प्रख्यात थे, लेकिन आज उन्हीं के लिए अपना हाथ तक हिला पाना

असभव हो गया है! और कुछ क्षण बाद शायद उनका सारा शरीर निर्जीव काठ का बनकर रह जाएगा!

मृत्यु का अनाम भय फिर से मन पर छाने लगा था। किसी डरे हुए बच्चे की भाति मैंने आखें बद कर ली थी। धीरे धीरे नीद के साम्राज्य म मैंने प्रवेश किया।

मैं कितनी देर सोया था पता नही! एक भीषण सपना देखने के कारण मैं जाग उठा। उस सपने म पिताजी के स्थान पर ययाति मृत्युशय्या पर पडा था। उसकी आखो को कुछ भी दिखाई नही दे रहा था। हाथ पाव ठण्डे पडते जा रहे थे। उसकी वाणी मौन हो गई थी वह हस नही पा रहा था रो भी नही सकता था।

पागल की तरह मैं अपने शरीर को—उसके प्रत्येक अवयव को देखने लगा। देह नहीं तो मधुर सगीत नही देह नही तो सुन्दर चद्रोदय नही देह नही तो स्वादिष्ट व्यजन पकवान नही देह नही तो खुशबूदार फूल नही देह नही तो प्यारभरा स्पर्श नही! जन्म से ही मैंने जिन जिन सुखो का उपभोग किया था जिन उन्मादो को अनुभव किया था उन सबका मेरी देह के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। अपने आपको मैं कहनेवाला ययाति इस देह से भिन्न कोई वस्तु है या नही मैं समझ नही पा रहा था। देह भिन्न आत्मा भिन्न यह सीख तो मैं बचपन मे ही पाता रहा था लेकिन किसी अग्निज्वाला के समान बार बार मेरे सामने यही एक प्रश्न नाच रहा था ययाति की देह के बिना क्या ययाति की आत्मा दुनिया के किसी सुख का उपभोग कर सकती है?

लगने लगा मुकुलिका पर अभी व्यर्थ ही मैंने गुस्सा दिखाया। राजप्रासाद की चारदीवारें ही उसके जैसी दासी के लिए चारो दिशाए होती है। उस बेचारी को भला बाहर की दुनिया से क्या लेना देना? मुझे साहित्य कर या झासा देकर आखिर उसे क्या मिलनेवाला है? वह तो केवल एक ही भावना से मेरे साथ पेश आई कि युवराज उसके स्वामी हैं और उनके सुख म किसी प्रकार की कोई कमी न रहने पाये। इसके बावजूद

मैंने उसे पुकारा मुकुलिके "

पता नही वह बाहर दरवाजे से कान लगाए बैठी थी या नही। तुरत उसने हौले से दरवाजा खोला उतने ही हौले से उसे भीतर से बद किया और एक एक कदम रखती हुई वह आगे बढती चली आई।

पलग के पास आते ही सिर झुकाकर वह खडी रही।

मैंने कहा इस तरह क्या खडी हो? क्या इसलिए कि मैंने अभी यह कहा था कि मैं तुम्हारा मुह भी देखना नही चाहता!

वह मुस्कराई लेकिन उसने सिर नही उठाया।

मैंने फिर से कहा इतना-सा मजाक भी तुम समझ नही सकती? अब सिर

ऊपर नहीं उठाया तो घोड़े को जैसे लगाम डालते हैं, वैसे लगाम ले आऊंगा मैं बल से तुम्हारा मुंह अपनी ओर करने के लिए।'

अब वह सिर उठाकर मधुर मुस्कान भरती हुई मेरी ओर देखने लगी। शायद तब से बाहर खड़ी खड़ी वह रो रही होगी। इसीलिए बारिश हो जाने के बाद और अधिक सुंदर लगने वाली प्रकृति के समान वह मोहक दिखाई दे रही थी।

मैं उसके कंधे पर हाथ रखने ही वाला था कि शब्द सुनाई दिया, 'युवराज!'

'तुमने पुकारा सुने?' मैंने उससे पूछा। उसने सिर हिलाकर 'नहीं' कहा। लेकिन शायद यह पुकार उसने भी सुनी थी। वह पलंग से झट से दूर हो गई। बौराई नजर से दरवाज़े की ओर देखने लगी।

'युवराज!' फिर से वही पुकार सुनाई दी।

पलंग के पीछे सामने वाली दीवार से ही कोई पुकार रहा था। आश्रम से आने के बाद अमात्य द्वारा कही गई बात का स्मरण हो आया। राजमहल से अशोक वन तक आने के लिए एक सुरंग मार्ग था। शायद उस सुरंग मार्ग से ही कोई आया था! दीवार के पास जाकर मैंने उसे अच्छी तरह से देखा। ठीक बीच में दीवार वाली थी। वहां आसानी से दिखाई न देने वाली एक कल थी। उस स्थान ही बीच का लगभग एक पुरुष ऊंचाई का हिस्सा तुरन्त हट गया। सुरंग की ऊपर वाली सीढ़ी पर अमात्य का सेवक मशाल खड़ा था। कांपती आवाज़ में उसने कहा, 'जल्दी कीजिए युवराज, महाराज अंतिम सांस...'

मुकुलिका की ओर मुड़कर देखे बिना ही मैं सुरंग की सीढ़ी पर उतर गया। वह गुप्त द्वार बंद कर दिया और मशाल के पीछे पीछे किसी कठपुतली की तरह चलने लगा।

दुनिया की दृष्टि में ययाति राजा हो गया था, एक ऐश्वर्यशाली राज्य का स्वामी बन गया था। किन्तु वास्तव में ययाति अनाथ हो गया था, निराधार बन गया था!

कभी कभी पिताजी की याद में मैं अत्यंत व्याकुल हो उठता। तब राजगुरु मुझे समझाने का प्रयत्न करते, 'महाराज नहुष महाराज की आत्मा अब मुक्त हो गई है। वह अंतरिक्ष में भ्रमण करती चली जा रही है। पहले तो पूरण उसे उसके नये स्थान तक जाने वाला मार्ग दिखाएगा, फिर सविता भी उसके साथ हो लेगा। यह आत्मा एक विशाल प्रवाह को पार कर जाएगी। तब यमराज के प्रहरी के रूप में गहरे रंग वाले चार चार आंखों तथा शरीर पर छोटे बाल वाले दो श्वान। के पास से जाकर शिव... के पुत्र हैं, गुजरती हुई वह आत्मा आत्माओं के निवासस्थान की ओर बढ़ेगी। यह एक अपूर्व अनोखा स्थान है। वहां की रोशनी कभी क्षीण नहीं होती। वहां न... ...ी... सुगंध। वहां केवल सुख और आनंद का ही साम्राज्य रहता है। इसीलिए आप शोक छोड़ दें। महाराज की आत्मा

सभी वासनाओं का त्याग करती हुई शीघ्र ही आत्मानन्द-सागर में निमग्न हो जाएगी। अत किसी प्रकार से कोई दुख न करें।'

बेचारे राजगुरु! मेरे मन को समझाने का दूसरा उपाय था ही कहा उनके पास? इसी आशय की ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं को ग्रहलन के साथ वे मुझे मुखाग्र सुनाते। घण्टा उनका अर्थ समझाते। मैं उनकी बातें चुपचाप सुन लेता। किन्तु मन मसोसकर कहता कहा रहती है यह मनुष्य की आत्मा? वह कैसी होती है? क्या करती है? देह से भिन्न बात उसमें क्या होती है? राजगुरु मुझे अब समझा रहे है कि पिताजी की आत्मा अब आत्मानन्द में निमग्न होने वाली है। फिर उनके दाह-संस्कार के समय चिता जलाते हुए पुरोहितों ने 'हे अग्निदेवता इस मृतक को जो हम तुझे स्वधा के रूप में अब अर्पण कर चुके है पितरों के लिए फिर से उत्पन्न कीजिए। यह पुन जीव धारण कर शरीर को प्राप्त करे उसे पुन शरीर प्राप्त हो 'इस तरह की जो प्रार्थना की थी उसका अर्थ क्या होता है?

उस प्रार्थना में निहित कल्पना के साथ यू ही मेरा मन उलझता सुलझता रहता। हमेशा वही धुन सवार रहती। पिता जी फिर से कौन-सा शरीर धारण कर आएगे? क्या मैं उन्हें उनके उस पुनर्जन्म में पहचान सकूगा? क्या वे मुझे पहचान पाएगे? हमारी भेंट मित्र के रूप में होगी या शत्रु के नाते? पिताजी मेरे शत्रु बनेंगे? नहीं! मैं पिताजी का वैरी बन जाऊगा? असम्भव! असम्भव!

ययाति का पुत्र बनकर जन्म लेने में ही उन्हें आनन्द होगा! क्या ऐसा हो सकेगा? उस जन्म में क्या मा उन्हें पहचान जाएगी? नहीं! पुनर्जन्म मात्र एक कवि-कल्पना भी तो हो सकता है!

इस विचार से मैं बेचैन हो उठता। कई प्रहर पलग पर लेटा पड़ा रहता। पड़े पड़े ऊब जाता तो बाहर के उद्यान को देखता रहता। फिर बचपन की स्मृतियां ताजी हो जाती। उन दिनों मेरे लिए बगीचे के फूल ही मानो साथी बच्चे थे! उनके साथ खेलने हसने हसाने और मेल मेल में खिल जाने में बड़ा आनद अनुभव होता था। उस आनद के लिए मैं हमेशा लालायित रहता। अब फूल मेरे लिए मात्र फूल रह गए हैं। रग और गंध का नश्वर सौन्दर्य लेकर आई इस विराट विश्व की एक तुच्छ वस्तु! एक निर्जीव चीज! अब उनकी ओर कितना भी जीभर कर देखा तब भी वे मुझे किसी स्वप्नलोक में नहीं ले जाते थे।

तब अपने बड़े हो जाने पर मैं झल्ला उठता! लगता व्यर्थ ही यह यौवन आया। क्या आया? मैं राजा क्यो बन गया? कहा खो गया वह ययाति जिसे उद्यान-वाटिकाओं में खिले फूलों और यज्ञ-कुड की धधकती चिनगारियों का एक सा ही आकर्षण था? वह एकदम निशक निर्भय अबोध बचपन कहा गायब हो गया?

आज मैं हरगिज चिनगारियों को पकड़ने के लिए दौड़ूगा नहीं! आज मुझे होश आ गया है कि अग्नि दाहक होती है! आज किसी भी कली को मैं अपना

राज खोलकर नहीं बतलाऊंगा। मुझे ज्ञान हो गया है कि वह कल खिलनी और परसों मुरझाने वाली है

तो ज्ञान आखिर क्या है? मानव को मिला वरदान या अभिशाप? यौवन हर प्राणी को मिलनेवाला वरदान है या अभिशाप? यौवन बुढ़ापे की पहली सीढ़ी है तो मृत्यु अंतिम! नहीं नहीं! जीव मात्र को भरमाकर बुढ़ापे की ओर ले जाने वाला भी कोई यौवन है! कौन मानेगा उसे वरदान? वह तो एक भयंकर अभिशाप है।

किसी भी कारण अभिशाप शब्द इस तरह मन में उठा कि मुझे बरबस पिताजी द्वारा अंत समय बताई गई वह कहानी याद आ जाती। आभास होने लगता कि कोई अंतरिक्ष में अग्नि ज्वालाओं से लगातार उसी शाप-वाणी को लिख जा रहा है—यह नहुष और उसकी संतान कभी सुखी नहीं होगी।

वह अभिशाप आधा-अधूरा सच हो गया। पिताजी सुखी नहीं हुए। उनकी वह अंतिम छटपटाहट जीने की अभिलाषा वह अतृप्तता—अपनी अपूर्व विजय का स्मारक तक न देख नहीं सके।

पिताजी ने उन्मत्त होकर अगस्त्य ऋषि को लात मारी थी। उन्होंने पिताजी को शाप दिया सो ठीक ही किया। लेकिन हम पुत्रों ने उनका क्या अपराध किया था? उस समय मैं तो पैदा भी नहीं हुआ था! इसपर भी किसी भूत के समान क्या यह अभिशाप जीवन भर मेरा पीछा नहीं छोड़ेगा?

कभी कभी जी करता कि अभी सीधा उठकर अगस्त्य ऋषि के पास जाऊं—वे धनाश्री की घाटी पर तपस्या के लिए गए हैं। तो वहां उनके सामने जाकर खड़ा हो जाऊं—और पूछूं हम निरीह बच्चों को आपने यह शाप क्या दिया? यह कहां का न्याय है कि मां बाप के पाप का दण्ड उनके बच्चों को दिया जाए? क्या देवताओं के यहां कोई न्याय होना ही नहीं?

मैंने यति का जीवन क्रम देखा था। कहीं इसी शाप के कारण ही तो वह यौवन में घर से भाग निकलने की गलती नहीं कर बैठा होगा? क्या मैं भी उसी तरह वह मुझे लिखा नहीं! वह एक बुरा सपना था!

पिताजी की मृत्यु के कारण मैं राजा बना हूं। अभिषेक समारोह की तिथि पक्की करने के बारे में मां अमात्य के साथ लगातार विचार विनिमय कर रही है। अब तक वह मन मुताबिक नहीं मिला है जैसा कि मां चाहती है।

क्या सिंहासन पर आरूढ़ होने पर भी मैं सुखी नहीं हो पाऊंगा? यह कैसे संभव है? पता नहीं भाग्य में भगवान ने क्या लिख रखा है?

इस तरह के विचारों से मन अजीब तरह से सुन्न पड़ गया था। लगता था दिमाग कोई खाने से बेहाल पड़ा हो, खाना-पीना छोड़कर दूं। बस पड़ा चुपचाप पड़ा रहूं। यह बात मां के ध्यान में आ चुकी थी। एक दिन उन्होंने मुझसे कहा—ययु, तेरी तबियत नासाज है क्या? ... अशोक वन की तुम्हारी वह प्यारी मुझे लिखा आई थी। तुम्हारी आंखें सामने प्यारा कर लिया मिल रही दिया गया नहीं। बहुत ही प्यारी और

समझदार है वह ! सोचती हू कि उसे उधर के बजाय इधर लाकर रखा जाए। क्या ख्याल है तुम्हारा ? कहती थी, 'महाराज बडे अबोल हैं। खुद कभी नही बताएगे कि यह चाहिए, वह चाहिए ! उनकी आखो म उनकी इच्छा देखनी पडती है और फिर उसे पूरा करना पडता है !' कसा हो यदि आज अभी उसे यहा बुला भेजू तुम्हारी सेवा म ?"

'वह मुकुलिका एक पागल और तुम सात पागल हो मा ! सच कहता हू इधर कुछ दिनो स मन किसी बात म लगता नही है। जी करता है यह सारा वैभव छोडकर कही '

मा को मानो साप सूघ गया। मेरा हाथ मजबूती स थामती हुई बोली ययू याद है तुमने बचपन म मुझे एक वचन दिया था ?'

शरारती भाव से मैंने कहा बचपन म तो मैं हर रोज तुम्हें एक वचन दिया करता था। इसलिए मन म वचनो की इतनी भीड जमा हो गई है कि एक भी वचन अब याद नहा आ रहा है !

ऐसे नटखट हो तुम पहले स ही ! माजी अपने पर उतरने लगी कि

क्षण भर के लिए मन म विचार आया यति का सारा हाल मा को सुना दू और उससे कहू 'उसके पास जाओ मा उसे अपनी माया ममता म बाधकर वापस ले आओ। वह बडा भाई है। उसे राजा बनने दो। मेरा मन उचट सा गया है। मुझे राज्य नही चाहिए कुछ भी नही चाहिए !'

ओफ ! उस दिन अनजाने म ही मेरे मुह से पिता जी के सामने यति का नाम निकल गया। लाभ तो कुछ हुआ नही पिताजी की परेशानिया अवश्य बढ गई। मा को भी केवल इतना सुनकर कि यति कही पर जिदा है कौन-सा सुख मिलेगा ? व उसे खोजने निकली तब भी आसुओ को देखकर यति थोडे ही वापस आने वाला है ? सिंह और बाघ जसे जगली पशुओ को आदमियो के साथ हिला लेना आसान है लेकिन यति जैसे हठयोगी सच, यति के जीवन का अन्त क्या होगा ? इसी माग से चलकर क्या वह ईश्वरीय साक्षात्कार के शिखर पर पहुच जाएगा ? यदि ऐसा हो जाता है तो सारी दुनिया उसकी सराहना करेगी एक महान तपस्वी के नाते वह ससार भर म ख्याति प्राप्त कर लेगा। लेकिन उस शिखर की ओर एक एक कदम बढते वराग्य का हिम-पवत चढते समय उसका पर कही फिसल गया तो ? उस पवत को ढापने वाली बफ कही एकदम पिघलने लगी और वह उसे अपने भीतर समा ले तो ?

मुझे चुप देखकर मा बोली, 'काफी दिन प्रतीक्षा की मैंने कि आज नही तो कल तुम्हारा चित्त ठिकाने पर आ जाएगा। लेकिन शुरू स देख रही हू तुम बहुत हठीले हो। भला तुम भी आखिर कर ही क्या सकते हो ! तुम्हारा खानदान ही ऐसा है ! और अब तो क्या बालहठ के साथ राजहठ भी जुड गया है ! लेकिन तुम यदि राजहठ पर उतर आए हो तो याद रखो मैं भी राजमाता का अधिकार चलाना खूब जानती हू। मैं बताऊ तुम क्या इस तरह उदास हो गए हो ? '

कुछ भी हो आखिर था तो वह मा का हृदय ! बेटे के पर म मामूली सा काटा चुभ जाने पर भी आखो से सावन बरसाने वाला ! किसी अचेतन शिला के समान मेरे मन को एक जडता प्राप्त हो गई थी। स्वय मेरी ही समझ म नही आ रहा था आखिर ऐसा क्या हो गया है। स्वाभाविक ही था कि मा मेरे विचित्र व्यवहार से असमजस म पड जाती।

बात बदलने क लिए मैंने कहा मा तुम वस्तुत ममतामयी हो यह तो मैं जानता था लेकिन तुम अन्तर्यामी भी हो यह तो

यह बुढापे म प्राप्त होने वाला अन्तर्ज्ञान है बेटा !''

मतलब ?''

हसती हुई बोली अरे पगले कभी मैं भी तो तेरी उम्र की थी न ?

तो फिर ?

तो क्या भूलते हो कि मुझे आज भी कुछ तो अवश्य ही याद होगा कि उन दिनो मुझे कैसा लगता था मैं क्या-क्या सोचा करती थी ?''

देखो मा ! मैं हू पुरुष ! तुम महिलाओ की पहेलिया बूझने की यह भाषा मेरी समझ म कतई नही आती ! सीधे बतला दो न तुम्हारे मन म क्या है !

बस यही कि विवाह हो जाने पर तेरा मन ठिकाने पर आ जाएगा

क्या यह बात तुम्हारी आपबीती पर आधारित है ?

अरे तो इसमे आश्चर्य की क्या बात है ? मेरा विवाह हुआ तब मैं तुमसे भी छोटी थी। मा को छोडकर ससुराल जाते समय मुझे तो भगवान याद आ गए थे। लगा था कि ससुराल म एक दिन भी सुख म नही बीत पाएगा !''

फिर ? आगे क्या हुआ !

होना क्या था ! वहा जो घर घर म होता आया है हर लडकी के साथ होता रहा है ! देखते ही देखते मैं अपनी घर गृहस्थी म रम गई। मा को बिल कुल भूल गई। इसीलिए कहती हू इस अभिषेक समारोह को जल्दी म निपटा दे और फिर तुम अपनी पसन्द की किसी राजकन्या के साथ

समारोह की तिथि पक्की करने के लिए मा इसने लगत नहीं गई।

चाहिए तो यह था कि उसके उन आखिरी बातो से मेरे मन म मधुर कल्पनाओ का सागर ठाठे मारने लगता। मैं हस्तिनापुर का राजा बना था। अत्यत सुन्दर और अप्सराओ को भी लज्जित करने वाली राजकन्या से ही विवाह करने की मैं जिद करता तो जाहिर था कि वह अवश्य ही पूरी कर दी जाती। जीवन यात्रा म मेरी सहचारिणी बनने वाली वह त्रिलोकसुन्दरी कैसी होगी ? इस समय क्या कर रही होगी ? हमारे जीवन प्रवाह क्या किसी काव्यमय तरीके से अकल्पित ढग से एक होने वाले है या राजवश की परिपाटी के अनुसार स्वयवर के राजमार्ग से ही मैं प्रीति के प्रात म प्रवेश करने वाला हू ? इस और इसी तरह के अन्य यौवनसुलभ और कल्पना रम्य प्रश्नो से मन को गुदगुदी होनी चाहिए थी !

लेकिन मैं सोचता रहा मा के बारे म। पिताजी की बीमारी म आखिरी दिनो म मुख्यम उसकी हालत दखी नही जाती थी। उसकी आखो म घिरे दुख की घटाओ की ओर देखन की हिम्मत नही होती थी। बलिवेदी के पास लाकर खडे किए गए पशु की तरह उसकी मुद्रा दिखाई देती थी। इस कल्पना मात्र से हो कि पिताजी की मृत्यु के बाद उसके हौसले पस्त हो जाएग और उनके पीछे पीछे वह भी मुझे अनाथ छोड चल बसेगी मै बहुत ही बचैन हो उठता था।

लेकिन प्रत्यक्ष मे जो कुछ हुआ वह मेरी कल्पना म एकदम भिन्न था। पहले कुछ दिना म वह दुख म चूर थी—लेकिन कितनी शीघ्रता से वह सभल गई और राजमाता के नाते घर का और बाहर का सारा कारोबार उसन अपन हाथो म ले लिया। हर बात म वह बहुत उत्साह से ध्यान दने लगी। उसके चेहरे पर बुढापे का साया पडा था। लेकिन उसे देखकर ढलती साझ की परछाइयो की याद नही आती थी। उसकी हलचल म फुर्ती आ गई थी। लगने लगा था जीवन रस की मधुरिमा का आस्वाद वह नय सिर स ल रही है।

मेरी उदासीनता के सामन उसकी उत्साह भरी मूर्ति का चित्र और भी अच्छा उभर आता था। कम से कम मुझे तो लगता कि घुमडकर आई काली घटाओ म बिजली कौंध उठती है।

कभी विधि विडम्बना थी। उभरती जवानी के ज्वार पर खडा ययाति बूढे के समान नीरस और निष्क्रिय हो गया था और बुढापे की अन्तिम सीढिया नापती उसकी मा नवयुवती के समान हर बात म मन लगाकर रस ले रही थी नित्य नय सपनो म और सकल्पो म खोइ जा रही थी।

मेरी यह कल्पना कि उसका सारा सुख पिताजी पर निभर करता है कितनी निराधार थी।

सच तो यही है कि इस ससार म हर कोई केवल अपन लिए ही जिया करता है। मनुष्य सुख के लिए अपन निकट के लोगो का सहारा ठीक उसी तरह खोजता है जसे वक्षलताओ की जड पास की आद्रता की ओर मुड जाती हैं। इसी लगाव को दुनिया कभी प्रेम कहती है, कभी प्रीति, तो कभी मैत्री। लेकिन वास्तव म वह होता है आत्मप्रेम ही। एक तरफ की आद्रता नष्ट होने से पड पौधे सूख नही जाते हैं उनकी जडें किसी और आद्रता की खोज म दूसरी ओर मुड जाती है—वह आद्रता नजदीक हो या दूर—और उसे खोजकर वे फिर से लहलहान लगते हैं।

शायद मा के अन्दर अब पाया जान वाला नया उत्साह इसी तरह निर्माण हुआ था। अभी परसो तरसो तक उसकी शान एक महारानी की शान थी लेकिन इतन ऐश्वय म भी वह स्वतत्र कहा थी? क्या उसका बडप्पन केवल इसी बात पर निभर नहा करता था कि अपनी सुन्दरता के बल पर वह अपन पति को वस म किए थी? पिताजी जब इद्राणी पर मोहित हो गए तब मा न कितनी यातनाए सही होगी? भीतर ही भीतर कितनी घुटन उसन अनुभव की होगी। मन ही मन कितना रोई होगी। रात रात जागकर उसन शय्या के तकिया को आसुओ स

तर कर दिया होगा। वह भी तब जबकि उन आसुओ को पोछने वाले प्रेमी हाथ कोई नही थे।

बचपन म मा क नाते उसने मुझे अपनी छाती का दूध नही पिलाया था इसकी जड म भी शायद एक महान पुरुष की पत्नी बनी स्त्री का यही दुख होगा। वात्सल्य की अपेक्षा सुन्दरता की चिन्ता उसके लिए परम आवश्यक थी। पति ही उसका सवस्व था। फिर भी पति पर उसका कोइ अधिकार नही चलता था लकिन उसके बिना उस कोई चारा भी नही था।

आज वह डर नहीं रहा था। वह चिन्ता नही बची थी। आज वह राजमाता हो गई थी। पुत्र पर माता क अधिकार का मान उसकी बोल चाल म कदम-कदम पर प्रकट होता था।

मेरे मन म मा क बारे म इस तरह क विचार आ रह थे तभी नित्य की भाति माधव मिलने आया। लेकिन आज वह अकेला नही था। उसक साथ तारका आई थी। उस नटखट को देखते ही मेरा मन प्रसन्न हो उठा। उस पास बुलाकर मैंने पूछा क्यो तारका जी आपकी गुडिया का आखिर दूल्हा मिला या नही ?

उसने गर्दन हिलाकर हा कहा। लकिन मेरी ओर कतई न देखते और मुह म एक शब्द म भी न बोलते हुए वह राजप्रासाद का निरीक्षण करने लगी।

दूल्हा अच्छा तो है न ?'

उसने फिर गर्दन हिलाकर ही जवाब दिया नही। बोली कतई नही। उसने इस मौन व्रत का कारण क्या है मेरी समझ म नही आया। मैंने हसते हसते प्रश्न किया अच्छा नही है क्या मान हुए ? गुडडे जसा गुडडा तो है न वह ?

नाक सिकोडती हुई तारका बोली दूल्हा नकटा है !

तो उसम कौन बडी बात हुई ? हाथी ने पाव रखा होगा उसकी नाक पर ! दुनिया म नकट पति काफी होते हैं और नकटी पत्निया भी होती है !

और तुतला कर भी बोलता है वह !

गुडडा तुतलाकर बोलता है ? यह चमत्कार मेरी समझ म नही आया ! मैंने माधव की ओर देखकर पूछा यह तो मैंने सुना था कि कई ज्ञानी पडितो क घर क पशु-पक्षी भी वदान्त पर चर्चा किया करते हैं। लकिन यह मामला उनस भी अपूर्व लगता है !

उसका तुतलाकर बोलना इसने स्वप्न म सुना लगता है ! माधव ने कहा।

मैं खिलखिलाकर हसा। तारका फिर भी चुप हो थी। माधव ने मुझस कहा आज यह जानबूझ कर महाराज के पास आई है !

सो भला क्या ? उस नकट दूल्हे की नाक ऊची कराने के लिए ? तो फिर यहा राजवद्य का बुला लते हैं और पूछते हैं लगन। या किसी बढई को बुला भेजन हैं ! है न तारका ?

ऊ हू अब जाकर कहा उसका मौन टूटा।

तो आखिर चाहती क्या हो तुम ?

गदन चुकाए ही उसन एक बार मेरी ओर देखन का चेष्टा करत हुए कहा अब तुम महालाज हो गए हो न ?"

हा।"

'अब तुम शेल पल बठोगे ?'

शेर पर ?"

'जी हा, शेल पल ! काका कहत थे !'

अब जाकर कही उसके कहन का मतलब मेरे ध्यान म आया। मैंने हसते हसत कहा राजा को ता सिंहासन पर बठना ही पडता है। नही ता उस राजा कौन कहगा ?"

वह शेल काट खाता है ?"

मैंन गभीर होकर उत्तर दिया अह। वह बूढा होता है। उसके लगभग सभी दात उखाड दिए होत हैं।

'वह मुये भी नही काटेगा ?"

नही !"

'ता तुम मुझे अपनी लानी बनाओगे ?"

ता यह बात थी ! तारका मेरी रानी बनने के लिए पधारी थी ! स्वयवर का यह अदभुत और अपूव मामला दखकर मन ही मन हसी से मरे पेट म बल पडन लगे थ। लकिन इस हेतु कि तारका का बालमन विरस न हा जाए मैंने बनावटी गभीरता धारण का और माधव का भी इशारा किया कि वह भी न हसे।

'रानी बनकर तुम क्या करोगी ?" मैंन तारका से पूछा।

बहुत ही प्यारी हरकता म हाथा को नचात हुए वह बोली, मैं लानी बन गई न ता दादी मुये सवेले-सवेल बिस्तल स नहा उठाएगी। मैं लानी बन गई न, तो मुझे खेल सात गहन मिलेंगे गुडिया के लिए ! म लानी हो गई न ता "

रानी बनन क अनक लाभ उसन काफी सोचकर ढूढ निकाल थ। इतना ही नही वह उन्ह अच्छी तरह से रटकर भी आइ थी ! वे सारे लाभ उसने अपनी मीठी प्यारी तातली बोली म मुझे गिना दिए। लेकिन मरा ध्यान उसकी बाता पर नही था। एसे नन्हे-नन्हे सपन देखन वाले उसके बालपन म मुझे ईर्ष्या हो रही थी !

रानी हाने के सारे लाभ जब वह गिना चुकी तो मैंन उससे कहा 'अभी तुम बहुत छोटी हो। जब बडा हो जाओगी न तब मैं तुम्हे अपनी रानी बनाऊगा समझा ?"

बहुत-सी मिठाइ दकर मैंने तारका को विदा किया।

शाम को महर्षि अगिरस के आश्रम स उनका पत्र लकर दो शिष्य पधारे। उस पत्र पढकर मैं तारका की मासूम दुनिया स एकदम एक निराली ही दुनिया म पहुच गया। भगवान् अगिरस ने लिखा था

नहुष महाराज के देहावसान क कुछ दिन बाद यह पत्र मैं तुम्ह लिख रहा

हू। इस बीच मैं आश्रम म नही था इसीलिए पत्र लिखने म विलब हो गया है।

तुम्हारे जाने क कुछ ही दिन बाद कच सजीवनी विद्या प्राप्त करने हेतु वपपर्वा क राज्य म चला गया। हमारा शातियन निर्विघ्न सम्पन्न हो गया था। लेकिन स्पष्ट हो चुका था कि देव-दानवो म युद्ध रोकने म हमारे उस पुण्यकार्य का कोई प्रभाव नहीं पड पाया। आखो के सामने कोई अमगल बात होती हो तो हाथ पर हाथ धरे बठे रहने म कोई पुरुषार्थ नहीं। इसीलिए शिव तीथ जाकर एकान्त म पुरश्चरण करने का सकल्प कर मैंने आश्रम छोडा। अपना सकल्प पूरा कर आश्रम लौटते समय माग म ही नहुष महाराज के देहावसान का समाचार मिला। आज आश्रम लौट आते ही तुम्हे लिख रहा हू। ययाति, मृत्यु जीवमात्र को जितनी अप्रिय है उतनी ही वह अपरिहार्य भी है। जन्म की तरह वह भी सृष्टिचक्र का नाटयपूर्ण और भेद भरा भाग है। बसत म डाल डाल पर घुपक से झाकने वाले सिदूरी कोपलें जिस तरह आदिशक्ति की लीला हैं उसी तरह शिशिर क पतझड म झडकर गिरने वाले जीर्ण शीर्ण पत्ते भी उसी की क्रीडा है। इसी दृष्टि से हम मत्यु की ओर देखना चाहिए। उदय-अस्त ग्रीष्म वर्षा प्रकाश-अधेरा दिन रात स्त्री-पुरुष सुख-दुख शरीर और आत्मा, जन्म और मत्यु य सभी अभिन्न जोडिया है। जीवन का वह द्वद्वात्मक व्यक्त रूप है। इन्ही ताने-बाने से आदिशक्ति विश्व के विलास और विकास के वस्त्र बुनती रहती है।

महाराज नहुष अतीव पराक्रमी थ। उस पराक्रम स तुम्हे निरतर प्रेरणा मिले। प्रजा तो राजा क लिए एक कामधेनु ही हुआ करती है। उसकी सेवा तुमस सदव होती रहे। तुमपर एक अय-काम की कृपा बनी रह जिसका धर्म स कोई विरोध नहो। आदिशक्ति क चरणो म मेरी सदव यही प्रार्थना रहेगी।

पत्र यही पूरा करने वाला था। किन्तु दुर्भाग्य स अनुभव कर रहा हू कि अमगल समाचार कभी अकेला नही आता।

राक्षस राज्य की सीमा स पधारा एक ऋषिकुमार कह रहा है कि कच न उस राज्य म प्रवेश पा लिया। शुक्राचाय न उस अपना शिष्य बनने का अवसर भी दिया। अब कच को यह आशा हो चली कि भक्तिभाव और अखण्ड सेवा स वह अपने गुरु को अवश्य प्रसन्न कर लगा और आज नहीं तो कल सजीवनी विद्या प्राप्त करके रहेगा। राक्षसो को ध्यान था कि इसी सजीवनी की सहायता स य देवता हमारे घर म स्वग म प्रवेश कर लेंगे।

इसीलिए व कच स द्वेष करने लगे। प्रतिदिन की भाति कच जब गुरुजी की गाए चराने वन गया तो राक्षसो न उसकी अत्यन्त क्रूरता स हत्या कर दी। उसकी बोटी-बोटी काटकर उन्होंने भेडियो के सामने डाल दी।

इस ऋषिकुमार को वहा मुनिजनो स इतना ही समाचार मिल सका है। राक्षसो क राज्य म प्रवेश पाना और फिर वहा स सकुशल निकल पाना यत्न ही

टनी धीर हो गया है। सीमा प्रांत में अनेक ऋषिकुमार प्राणों की बाजी लगा कर यह काम कर रहे हैं।

लेकिन अब उनके लिए करने को वहां काम ही क्या धरा है! कच का इस तरह अंत हो जाने के बाद—ययाति, ऊपर की चार-पांच पंक्तियां के शब्द कन्ल हो अस्पष्ट हो गए हैं। उन पंक्तियों पर अनजाने में ही मेरे आंसू गिरे हैं। इन आंसुओं को रोकने का मैंने बहुत प्रयास किया। लेकिन ऋषि संयमी और विरक्त हो जाने पर भी आखिर मैं एक मनुष्य हूं!

कच के सद्गुणों को याद कर मेरा मन व्याकुल हो उठा है। इस संसार में जन्म लेने वाले सभी लोग कुछ अमंगल और कुछ मंगल प्रवृत्तियां लेकर ही आते हैं। लेकिन कुछ लोगों में—शायद बहुत ही थोड़े लोगों में—मंगल प्रवृत्तियां बहुत ही उत्कटता के साथ प्रकट होती हैं। पर्वत का शिखर जिस तरह आकाश को चूमने के लिए बढ़ता है उसी तरह उनके मन हुआ करते हैं। उन्हें उदात्तता के प्रति चरम आकर्षण होता है। कच के स्वभाव में यही विशेषता थी जो मेरी दृष्टि में बहुत ही अनमोल है।

'मैं तो आशा लगाए बैठा था कि देव दानवों का युद्ध रोकने का महान कार्य उसके द्वारा सम्पन्न होगा। लेकिन—

'आशा करना मानव के बस की बात है उसका सफल होना

अभी ऊपर मैंने तुम्हें लिखा है कि जन्म और मृत्यु एक अभिन्न जोड़ी है। और अब स्वयं ही कच की मृत्यु पर शोक कर रहा हूं! इसपर तुम मन ही मन मुझपर हंस रहे होगे। शायद तुम्हारे मन में यह सन्देह भी जागा होगा कि कहीं दुनिया की ये दार्शनिक बातें केवल दूसरों से कहने के लिए तो नहीं होतीं? लेकिन मुझ जैसे बूढ़े की बात को याद रखना—इस द्वंद्वपूर्ण जीवन में दार्शनिक सिद्धांत ही मानव का अंतिम सहारा है।

'राजमाता का दुःख मैं समझ सकता हूं। आदिशक्ति से मेरी प्रार्थना है कि तुम्हारे सत्कर्मों से वे अपना दुःख शीघ्र ही भुला पाएं।

तुम राजा बन गए हो। पत्र लिखने के लिए बैठते समय मन में अवश्य ही विचार आया कि तुम्हें 'आप' कहकर संबोधित करूं! किन्तु 'आप' की अपेक्षा 'तुम' मन के प्रेम को अधिक अच्छी तरह से प्रकट करता है है न?"

अंगिरस जी के पत्र का एक ही भाग मेरे मन को छू गया। और वह था कच की मृत्यु पर उनकी आंखों से बहे चार आंसू और उन आंसुओं से अस्पष्ट बने पत्र के वे कुछ शब्द! बाकी तो बस सारा दर्शन ही था, निरा रूखा दर्शन।

लेकिन क्या आदमी केवल दर्शन पर जीता है? नहीं! वह आशा पर जीता है। सपनों पर जीता है प्रीति पर जीता है ऐश्वर्य और पराक्रम पर जीता है। लेकिन केवल दर्शन के सिद्धांतों पर क्या वह जी सकता है? या कहीं ऐसा तो नहीं कि इन ऋषि मुनियों को हर बात में दर्शन शास्त्र घुसेड़ने का बड़ा शौक होता है!

जो भी हो उस पत्र में कच की वीरता का जो वर्णन आया था, उसपर मैं

मोहित हो गया। लगा राजा हो तो ऐसा! सेनापति हो तो ऐसा! कच को बृहस्पति के घर पैदा कर ब्रह्मा ने शायद बडी भारी भूल की है! निहत्था होकर भी वह कितना निडर था! वध किए जाते समय उसकी मुद्रा बिजली के समान कौंधी होगी! गले में पडी रुद्राक्ष की माला के साथ खेलते हुए उसने उन दुष्ट दैत्यों से कहा होगा तुम मेरी देह की बोटी-बोटी काट सकते हो! लेकिन मेरी आत्मा के टुकडे कर न सकोगे! वह अमर है!'

उसके समान कोई साहस करने के बजाय मैं यहां निष्क्रिय जीवन बिताता राजमहल में पडा था। मुझे अपने पर ही क्रोध हो आया। लगा इस समय राज्य में कहीं पर भी दस्युओं का विद्रोह होना चाहिए था। फिर अपने-आप मेरे पराक्रम को चुनौती मिल जाती। हवनकुंड की राख को हटा देने से जिस प्रकार अग्नि ज्वाला फिर से भभक उठती है उसी प्रकार इस निष्क्रिय बन बैठे ययाति का एक उत्साही ययाति बन जाता! मनुष्य का युयुत्सु मन लोहे के हथियार जैसा है। उससे हमेशा काम लेना पडता है अन्यथा उसपर जंग चढ जाता है।

किंतु पिताजी की मृत्यु के बाद भी राज्य में कहीं पर कोई विद्रोह नहीं हुआ था। राज्य का रथ सुचारु रूप से चलता जा रहा था और एक मैं था रत्न जटित पिंजरे में बंदी बना पक्षी!

कच वैनतेय के समान अंतराल में ऊंची उडानें भरता हुआ नील गगन में मंडराता निकल गया था। मुझे भी लग रहा था कि मैं भी कहीं इसी प्रकार चला जाऊं किसी असीम साहस का परिचय दे दूं। इसी विचार में सारी रात मैंने जाग कर बिता दी। सुबह-सुबह मैंने एक स्वप्न देखा। उस स्वप्न में यति मुझसे कह रहा था 'नीच स्वार्थी दुष्ट कहीं का! राज्य पर तेरा क्या अधिकार है? तुम जानते थे कि मैं जिन्दा हूं। लेकिन यह बात तुमने मां से जानबूझ कर छिपा रखी! चल उठ जा उस सिंहासन पर से वरना अभी इसी समय शाप देकर मैं तुझे भस्म कर डालूंगा!'

यह सुनते ही मैं जाग उठा। सीधा मां के पास गया और अश्वमेध के समय यति से हुई मुलाकात और आज देखा हुआ वह स्वप्न उसे सुना दिया।

पहले तो वह कुछ असमंजस में पडी। मेरी आंखों में गहरी नजर डालते हुए उसने पूछा ययु यह सब तुम सच तो कह रहे हो न?'

'पिताजी की सौगंध खाकर कहता हूं मां '

उपालंभ के स्वर में उसने कहा और कोई या किसीकी भी सौगंध खाओ! तुम्हारे पिता पराक्रमी थे उन्होंने इंद्र तक को हराया था लेकिन मेरे सम्मुख खाई एक भी सौगंध का उन्होंने पालन नहीं किया! मेरा वह दुख

पिताजी के बारे में ऐसे उपालंभ से बोलते मैं मां को पहली बार सुन रहा था। वे दोनों एक दूसरे से बहुत प्यार किया करते थे यही मेरी धारणा थी। लेकिन वह एक नाटक था। उस नाटक में मां ने हंसमुख रहते हुए पत्नी की भूमिका

अतीव कुशलता से निभाई, इस बात की अनुभूति मैं पहली बार कर रहा था। उस अनुभूति से मन को गहरी ठेस लगी।

दुलार से मेरी पीठ सहलाते हुए मां ने कहा, 'बेटा, तुम पुरुष हो! जाके पांव न फटी बिवाई सो क्या जाने पीर पराई! नारी के दुख को तुम कभी समझ ही न सकोगे। कोई व्यक्ति चाहे कितना ही प्रिय क्यों न हो, जीवन भर उसकी थाली का बैंगन बनकर रहना' वह तनिक रुकी फिर सिसकी निगलकर बोली "मैं महारानी कहां थी? युवा महादासी थी! उनके इशारों पर मैं जीवन भर नाचती रही! लेकिन मैं अब उस प्रकार नाचने वाली नहीं। पति की अपेक्षा पुत्र पर स्त्री का अधिक अधिकार होता है। पुत्र उसके जिगर का टुकड़ा होता है।'

उसने जो कहा, हो सकता है वह सत्य था एक बहुत ही कठोर सत्य! इसीलिए मुझसे वह सुना नहीं गया। उसको सांत्वना देने के लिए मैंने कहा "मां, मैं कभी ऐसा कोई काम नहीं करूंगा जिससे तुम्हें दुख पहुंचे।"

कहते-कहते आवेग से उठकर मैंने उसके चरणों पर हाथ रखा। मेरे उस स्पर्श से और उस वाक्य से वह कुछ आश्वस्त हुई। दोनों हाथों में पकड़कर उसने मुझे उठाया और भीगी आंखों से मेरा चेहरा सहलाया।

काफी आनाकानी के बाद मां ने मेरा यह प्रस्ताव मान लिया कि मैं पूर्व आर्यावर्त में जाकर यति को खोज निकालूं। उसे यह भी जंचा कि मेरा जाना गोपनीय रखा जाए और मेरे साथ उतने ही इने गिने लोग रहें जो अत्यन्त आवश्यक हैं। लेकिन उसने एक शर्त रखी कि यदि यति नहीं मिला और उसका पक्का पता न चला तो मुझे सीधे वापस हस्तिनापुर लौट आना होगा। मैंने शर्त मान ली। वह स्वयं भी मेरे साथ जाना चाहती थी। लेकिन एक तो इतनी लम्बी यात्रा का कष्ट उससे सहन नहीं हो पाता और दूसरे राजधानी में युवराज और राजमाता दोनों का न रहना ठीक नहीं था।

अभिषेक के बजाय मां अब मेरे प्रवास की तैयारियां करने लगी। उतने ही उत्साह के साथ! मंदार अमात्य का अत्यंत विश्वसनीय सेवक था। उसे मेरे अंगरक्षक की हैसियत से भेजने का निर्णय उसने किया। मार्ग में मुझे किसी भी प्रकार से कोई कष्ट न हो इस हेतु विभिन्न कामों के लिए सेवकों के साथ दो एक दासियों को भेजना भी उसने तय कर दिया। उसने मुझसे कहा, "वह मुकुलिका बहुत ही चतुर है। उसे तुम्हारे साथ भिजवा दूं तो कैसा रहे!"

मैं क्षण भर दुविधा में पड़ा रहा। फिर पक्के इरादे से बोला "उससे तो कलिका अधिक अच्छी रहेगी। वह अधिक अनुभवी भी तो है। मुझपर बड़ी ममता भी है उसकी!"

"लेकिन कलिका यहां है कहां?"

काफी दिनों से मैंने कलिका को देखा नहीं था लेकिन यह तो ध्यान में ही नहीं आया कि वह राजमहल में नहीं है। मैंने पूछा "कहां गई है वह?"

"दूर हिमालय की गोद में किसी देहात में।"

वहा क्या करने गई है ?

यह भी कोई सवाल है ? अरे बाबा अपनी लडकी की घर गृहस्थी देखने गई है ।

यानी ? अलका की शादी कब हो गई ?'

काफी दिन हो गए ! तुम शांति यज्ञ के लिए गए थे न ? तभी !

मुझे मालूम भी नही हुआ ?

उसमे तुम्हे खबर करने की बात ही क्या थी ? दासी की लडकी का ब्याह और गुडिया का ब्याह हमारे लिए दोनो एक से ही है ! '

मैं चुप रहा।

मा अपने भावी सकल्पो की धुन मे कहने लगी तुम्हारे लौटने तक मैं इधर दो सुन्दर राजकन्याओ की खोज रखती हू ।

मैंने हसते हुए पूछा यानी ? मेरे एक साथ दो विवाह कराने जा रही हो क्या ?'

यह बात नही बेटा ! एक तेरी पत्नी होगी और दूसरी दूसरी वह था न वह की उधेडबुन मे बच्चे के समान वह उलझ गई। अन्त मे धीरज बाधकर बोली यति आ गया तो उसकी भी तो शादी करानी पडेगी न ?"

मेरी समझ मे नही आ रहा था कि मेरी रानी बनने के लिए आई तारका मे और यति की शादी कराने निकली मा मे क्या अन्तर है ? क्या मातृत्व बालमन के समान होता है ? मैं मा की ओर देखता रहा। देखते देखते मन मे विचार आया एक मनुष्य का स्वभाव दूसरे की समझ मे कभी पूरी तरह से आता भी है ? अब यही देखो न यह मेरी मा है ! किन्तु उसका स्वभाव — नही ! आकाश का छोर शायद भले ही मिल जाए लेकिन मनुष्य के स्वभाव का ?

०

मैं जिस राह मे जाने वाला था अगिरस का आश्रम उससे थोडी दूरी पर था। फिर भी मैं उनके दर्शन करने गया। बहुत आनन्द से मेरा स्वागत करते हुए उन्होने कहा ययाति तुम्हारा आगमन बहुत ही शुभ लगता है। तुम्हारे यहा पहुचने से दो घडी पहले ही एक शुभ समाचार मिला है। राक्षसो ने कच की बोटी बोटी काट कर भेडियो के सामने डाल दी थी यह बात सच है। किन्तु शुक्राचार्य ने शिष्यप्रेम के कारण कच को फिर से जीवित कर दिया। देवता पक्ष को सजीवनी प्राप्त होने का लाभ मिलने लगा।

यह समाचार सुनकर मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ। मैं अपना हर्ष प्रकट ही कर पाया था कि एक ऋषिकुमार जल्दी जल्दी भीतर आया। उसके पैर धूल से भरे थे। चेहरा पसीने से तर हो गया था। मुद्रा म्लान दिखाई दे रही थी। वह प्रवास के कारण म्लान दीख रहा था या

वह बहुत ही दुख से कहने लगा राक्षसराज्य मे बडा समारोह धूमधाम से

मनाया जा रहा है गुरुदेव। मन्दिरा से उन्हें बड़ी सहायता मिली, इसलिए वे मन्दिरोत्सव मना रहे हैं ''

मैंने बीच ही में पूछा ''मन्दिरा ने कौन-सा बड़ा उपकार किया है राक्षसों का ?'

वह कहने लगा, राक्षसों ने यह तरकीब निकाली कि शुक्राचार्य कच को फिर से जीवित न कर पाएं।"

"कैसी तरकीब ? अंगिरस ने प्रश्न किया।

'कच को मारकर उसे जलाया और उसकी राख मदिरा में घोलकर शुक्राचार्य को पिला दी। यानी कच अब शुक्राचार्य के पेट में है। शुक्राचार्य बड़े ही मदिरा भक्त हैं। राक्षसों का षड्यंत्र आसानी से सफल हो गया। अब कच के फिर से जी उठने की '

उस ऋषिकुमार का गला भर आया। उससे और बोला नहीं जा रहा था।

क्षण भर में सारे आश्रम पर उदासी छा गई।

अंगिरस जी से विदा लेकर मैं निकला तब भी वह उदासी मन पर छाई हुई थी। परन्तु आगे चलकर प्रवास में मिले अनेक रम्य और भव्य दृश्यों को देख कर वह अवसाद धीरे धीरे हटने लगा। उत्तुंग पर्वत गहरी खाइयां विशाल इन्द्र धनुष्य नन्ही-नन्ही तितलियां ताड-तमाल के ऊंचे ऊंचे वृक्ष छोटे छोटे तुर्रे हिलाते लता पक्षी सबका सौन्दर्य मुझे आकृष्ट करने लगा। नाना नगर देहात कस्बे गांव, भारी भरकम और सुडौल देह के स्त्री पुरुष उनकी कमनीय आकृतियां नाना प्रकार के वेश-परिवेश, आभूषण-अलंकार तरह तरह के गीत नृत्य, उत्सव और मेले आदि देखते सुनते मेरा प्रवास चल रहा था। इन सबकी चलते मात्र से मेरी मानसिक अस्थिरता हट रही थी, छूट रही थी। मानसिक अस्थिरता पर यह सब एक अच्छी दवा का काम कर गया। लगने लगा बहुत अच्छा हुआ जो यति की खोज निकालने के लिए ही सही मैं राजप्रासाद की कारा से बाहर तो निकला। इस विशाल विश्व में एक कच एक यति या एक ययाति की भला क्या हस्ती है। सृष्टि की विविध और विशाल पृष्ठभूमि में मानव कितना क्षुद्र जीव लगता है। क्या धरा है उसके सुख में और दुख में। सागर की लहरों पर बहते जाने वाले तिनके सुख-दुख की भी भला कोई चिंता करते हैं ?

हम लोग कोशिश कर रहे थे कि जितनी जल्दी हो सके पूर्व आर्यावर्त पहुंच जाएं। लेकिन इस जल्दबाजी में भी सभी सेवक इस बात का ध्यान रखते थे कि मुझे कोई कष्ट न हो। मदार को ज्यादा बोलना पसंद नहीं था लेकिन तब भी वह प्रात मेरे जाग जाने से लेकर सोने तक—कभी तो मेरे सो जाने के बाद भी—इस बात के लिए बहुत जागरूक और सजग रहता था कि मेरी सुख सुविधाओं में किसी भी प्रकार से कोई कसर न रहने पाए। कभी एकाध बार मैं मध्य रात्रि में जाग जाता और छत की ओर देखता पड़ा रहता। ऐसे समय भी मैंने देखा था कि मदार अचानक मेरे निवास-स्थान में थाककर चला जाता है।

वहा क्या करने गई है ?"

यह भी कोई सवाल है ? अरे वाबा अपनी लडकी की घर गृहस्थी देखने गई है !

'यानी ? अलका की शादी कब हो गई ?

काफी दिन हो गए ! तुम शाति यज्ञ के लिए गए थे न ? तभी !'

मुझे मालूम भी नहीं हुआ ?

उसमे तुम्हे खबर करने की बात ही क्या थी ? दासी की लडकी का व्याह और गुडिया का व्याह हमारे लिए होना एक सा ही है !

मैं चुप रहा।

मा अपने भावी सकल्पों की धुन मे बहने लगी तुम्हारे लौटते तक मैं इधर दो सुन्दर राज कन्याओ को खोज रखती हू।

मैंने हसते हुए पूछा यानी ? मेरे एक साथ दो विवाह कराने जा रही हो क्या ?

यह बात नही बेटा ! एक तेरी पत्नी होगी और दूसरी दूसरी वह था न कह की उधेडबुन मे बच्चे के समान वह उलझ गई। अन्त मे धीरज बाधकर बोली यति आ गया तो उसकी भी तो शादी करानी पडेगी न ?'

मेरी समझ मे नही आ रहा था कि मेरी रानी बनने के लिए आई तारका मे और यति की शादी कराने निकली मा मे क्या अन्तर है ? क्या मातृत्व बालमन के समान होता है ? मैं मा की ओर देखता रहा। देखते देखते मन मे विचार आया एक मनुष्य का स्वभाव दूसरे की समझ मे कभी पूरी तरह से आता भी है ? अब यही देखो न यह मेरी मा है ! किन्तु उसका स्वभाव — नहीं ! आकाश का छोर शायद कभी मिल जाए, लेकिन मनुष्य के स्वभाव का ?

○

मैं जिस राह से जाने वाला था अगिरस का आश्रम उससे थोडी दूरी पर था। फिर भी मैं उनके दर्शन करने गया। बहुत आनन्द से मेरा स्वागत करते हुए उन्होंने कहा, ययाति तुम्हारा आगमन बहुत ही शुभ लगता है। तुम्हारे यहा पहुचने से दो घडी पहले ही एक शुभ समाचार मिला है। राक्षसो ने कच की बोटी बोटी काट कर भेडियों के सामने डाल दी थी यह बात सच है। किन्तु शुक्राचार्य ने शिष्यप्रेम के कारण कच को फिर से जीवित कर दिया। देवता पक्ष को सजीवनी प्राप्त होने का लाभ मिलने लगा।

यह समाचार सुनकर मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ। मैं अपना हर्ष प्रकट कर पाया था कि एक ऋषिकुमार जल्दी जल्दी भीतर आया। उसके पैर धूल से भरे थे। चेहरा पसीने से तर हो गया था। मुद्रा म्लान दिखाई दे रही थी। वह प्रवास के कारण म्लान दीख रहा था या

वह बहुत ही दुख से कहने लगा राक्षसराज्य मे बडा समारोह धूमधाम से

मनाया जा रहा है गुरुदेव। मन्दिरा से उन्हें बड़ी सहायता मिली, इसलिए वे मदिरोत्सव मना रहे हैं'

मैंने बीच ही में पूछा "मदिरा ने कौन सा बड़ा उपकार किया है राक्षसों का?"

वह कहने लगा "राक्षसों ने यह तरकीब निकाली कि शुक्राचार्य कच को फिर से जीवित न कर पाएं।'

'कैसी तरकीब?' अंगिरस ने प्रश्न किया।

"कच को मारकर उसे जलाया और उसकी राख मदिरा में घोलकर शुक्राचार्य को पिला दी। यानी कच अब शुक्राचार्य के पेट में है! शुक्राचार्य बड़े ही मदिरा भक्त हैं। राक्षसों का षड्यंत्र आसानी से सफल हो गया। अब कच के फिर से जी उठने की..."

उस ऋषिकुमार का गला भर आया। उससे और बोला नहीं जा रहा था।

क्षण भर में सारे आश्रम पर उदासी छा गई।

अंगिरस जी से विदा लेकर मैं निकला तब भी वह उदासी मन पर छाई हुई थी। परन्तु आगे चलकर प्रवास में मिले अनेक रम्य और भव्य दृश्यों को देखकर वह अवसाद धीरे धीरे हटने लगा। उत्तुंग पर्वत, गहरी खाइयां, विशाल इन्द्रधनुष्य, नन्हीं-नन्ही तितलियां, ताड़-तमाल के ऊंचे ऊंचे वृक्ष, छोटे छोटे तुर्रे हिलाते नवा पक्षी सबका सौंदर्य मुझे आकृष्ट करने लगा। नाना नगर, देहात, कस्बे, गांव, भारी भरकम और सुडौल देह के स्त्री पुरुष, उनकी कमनीय आकृतियां, नाना प्रकार के वेश परिवेश, आभूषण अलंकार, तरह तरह के गीत, नृत्य, उत्सव और मेले आदि देखते सुनते मेरा प्रवास चल रहा था। इन सबकी मरहम मात्र से मेरी मानसिक अस्थिरता हट रही थी, छंट रही थी। मानसिक अस्थिरता पर यह सब एक अच्छी दवा का काम कर गया। लगने लगा, बहुत अच्छा हुआ जो यति को खोज निकालने के लिए ही सही मैं राजप्रसाद की कारा से बाहर तो निकला। इस विशाल विश्व में एक कच, एक यति या एक ययाति की भला क्या हस्ती है! सृष्टि की विविध और विशाल पृष्ठभूमि में मानव कितना क्षुद्र जीव लगता है! क्या धरा है उसके सुख में और दुख में! सागर की लहरों पर बहते जाने वाले तिनके सुख-दुख की भी भला कोई चिंता करते हैं?

हम लोग कोशिश कर रहे थे कि जितनी जल्दी हो सके पूर्व आर्यावर्त पहुंच जाएं। लेकिन इस जल्दबाजी में भी सभी सेवक इस बात का ध्यान रखते थे कि मुझे कोई कष्ट न हो। मंदार को ज्यादा बोलना पसंद नहीं था लेकिन तब भी वह प्रातः मेरे जाग जाने से लेकर सोने तक—कभी तो मेरे सो जाने के बाद भी—इस बात के लिए बहुत जागरूक और सजग रहता था कि मेरी सुख सुविधाओं में किसी भी प्रकार से कोई कसर न रहने पाए। कभी एकाध बार मैं मध्य रात्रि में जाग जाता और छत की ओर तकता पड़ा रहता। ऐसे समय भी मैंने देखा था कि मंदार अचानक मेरे निवास स्थान में झांककर चला जाता है।

लेकिन इतने दूर के इस प्रवास पर मैं जिस उद्देश्य से निकला था वह सफल होना भाग्य को मंजूर नहीं था। यति अपनी गुफा का त्याग कर कभी का कहीं निकल गया था। उसकी गुफा के पास पड़ोस वाले काफी देहातों में मैं हो आया। कई लोगों से बात की। बड़े बूढ़ों से कुरेद कुरेदकर प्रश्न किए। इससे बस इतना ही मालूम हुआ कि पहले किसीको अपनी गुफा के पास भी फटकने न देनेवाला यति इधर कुछ दिनों से कभी-कभी बस्तियों में आने लगा था। लोग उसके लिए एक प्रयोगशाला बन गए थे। बस्तियों में आकर वह तरह तरह के चमत्कार कर दिखाता था। पानी और आग पर चलना उसके लिए जमीन पर चलने जैसा आसान हो गया था। कइयों ने उसे अंतराल में भी चलते देखा था। पूर्व आर्यावर्त प्राचीन काल से ही जादू टोना के लिए प्रसिद्ध इलाका रहा था। लेकिन अब तो वहां के बड़े-बड़े जादूगर भी यति का लोहा मानने लगे थे। फिर भी इतनी सिद्धि पर यति को संताप नहीं था। स्त्री को देखते ही उसपर झक सवार होती थी। वह किसी गांव में जाता तो स्त्रियां अपने अपने दरवाजे बंद कर भीतर बैठी रहती थीं। दुनिया की सभी नारियों को पुरुषों में बदल डालने की एक विलक्षण महत्त्वाकांक्षा यति को सताए जा रही थी। उस अभूतपूर्व सिद्धि को प्राप्त करने के लिए वह दिन रात एक कर रहा था। उसके लिए उसने नाना प्रकार की उग्र तपस्या की थी कई व्रत किए थे किंतु वह सिद्धि उसे किसी तरह प्राप्त नहीं हुई। इसी असंतुष्ट मन स्थिति में उसने भी सुना कि शुक्राचार्य संजीवनी विद्या द्वारा मृतकों को फिर से जीवित करते हैं। अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए इसी प्रकार के गुरु की आवश्यकता को जानकर यति कुछ महीने पहले ही राक्षस राज्य में चला गया था।

यह सारी जानकारी सुनी-सुनाई और उस गुफा के इर्द गिर्द जो थोड़ी विरल बस्ती थी उसके देहातियों से मिली थी। उसमें सत्य कितना था मिर्च मसाला कितना था कोई नहीं जानता था। लेकिन एक बात पक्की थी कि यति उस गुफा को त्याग कर हमेशा के लिए कहीं चला गया है। हो सकता है शायद वह शुक्राचार्य के पास ही गया हो।

उसकी खोज करना हवा में गांठ बांधने की तरह ही कठिन था। फिर यति यदि यहां नहीं मिला तो मैं खाली हाथ हो सही हस्तिनापुर लौट आने का वचन मां को दे आया था। सदा नियमित रूप से मेरे कुशल क्षेम का समाचार हस्तिनापुर भेजता था। तब भी जब तक मैं सकुशल वापस लौटकर मां के सामने उपस्थित नहीं हो जाता वह मेरी ही चिन्ता में डूबी रहेगी इसमें कोई संदेह नहीं था और मैं यह अच्छी तरह से जानता भी था।

हम लोग लौटे। बीच बीच में नजदीक के रास्ते से प्रवास करते हुए, तेजी के साथ तीन चार दिन चलते रहे। पांचवें दिन हम एक ऐसे रमणीय स्थान पर पहुंचे जो राजमार्ग से हटकर कुछ भीतर की ओर था।

पहाड़ खाई नदी जंगल सबका वहां बड़ा ही सुंदर संगम हुआ था। इनमें

से प्रत्यक्ष उस स्थान की रमणीयता को बढा रहा था। पहाड कोई खास ऊंचा नही था। नदी म बीच म एक न्ह था। उसे छोड दिया जाए ता शेष प्रवाह महज एक झरना मात्र था। इसी प्रकार बीच का हिस्सा छोडकर शेष सारा जगल किसी उद्यान के समान लगता था। मैंने इस स्थान को जब पहली बार देखा, तो मन म विचार आया कि, हो न हो ब्रह्मा न यह स्थान सृष्टि की बालक्रीडा के लिए बनाया होगा। कोस दो कोस के अन्दर कोई वस्ती नही थी। लेकिन ऐसे निजन स्थान म फैल सन्नाटे का जो अनामिक भय लगा रहता है वह इस स्थान म बिलकुल महसूस नही होता था। लगता था चहकते पछी आपस म बातें कर रहे है। कलकल करती बहती नदी किसी मुग्ध बालिका के समान अपनी ही धुन म गाती नाचती चली जा रही है। खाई मानो एक प्रशान्त शयन कक्ष है। पहाड यज्ञ-वेदी है। मन पर भव्यता का भार नहा रहता था कोई भय नहीं ऐसा स्थान था वह। वहा था केवल सौम्य रम्य सौंदय और अनत अपार आनद!

म जानता था मा मेरी राह म आखे बिछाए बैठी होगी और मुझे हस्तिनापुर जितनी जल्दी हो सके पहुचना चाहिए। लेकिन इस सौम्य रम्य स्थान ने मुझे जैसे मत्रमुग्ध कर दिया। घण्टो म जीभर कर देखता रहा किन्तु तृप्ति न मिली। मेरी अवस्था तो ऐसी हो गई थी जसे आख तो खुल गई किन्तु नीद पूरी न होने के कारण बिस्तर पर ही पडा हू और उठने को जी नही कर रहा है। उस स्थान से विदा होने को मन नही करता था। आगे का प्रवास रोककर मैं वही रुक गया। प्रतिदिन साय प्रात दह से कुछ ही दूरी पर एक वृक्ष पर चढकर मैं यह सारा सौन्दय देखत बैठा करता था। बीच ही मे कभी यति की याद हो आती थी। उसने तो ऐसे कई रमणीय स्थान देखे होगे। फिर क्या नहा उसके मन मे आया कि इसी सौन्दय को आखो म भर कर जिया जाए? क्यो उसने मत्र तत्र और हठ योग का बीहड माग पसद किया होगा? और अब तो शुक्राचाय की सेवा कर समस्त ससार को पुरुषमय बनाने की विद्या प्राप्त करने के लिए वह गया है! स्त्री से—उसके सौन्दय से इतनी घृणा वह क्या कर रहा है? कितनी पागल सी है उसकी आकाक्षा! वह यदि इस सुदर स्थान को देख लेता तो निश्चय ही इसे मरुभूमि म बदलने पर उतर आता। तो मानव जीवन का लक्ष्य आखिर है क्या? जो सहज स्वाभाविक है, प्राकृतिक है सुदर है उससे प्यार करना उसकी पूजा करना जीवन खिल उठे उसका ऐसा उपभोग करना था

दो दिन बीत गए तीसरा भी बीता लेकिन उस स्थान से विदा होने को जी नही चाहता था। मदार यह समझ नहीं पा रहा था कि मैं कहा जाता हू क्या करता हू और क्या यह स्थान छोडने का मेरा जी नहीं कर रहा है। दो-तीन बार वह लुके छिपे मेरे पीछे पीछे आया। लेकिन जसे ही मुझे उसकी आहट मिली वह लौट गया। इस स्थान के प्रति मेरे मन म जो आकषण पैदा हो गया था मदार को यह समझाकर बताना मेरे बस की बात नहीं थी।

मुझे लगता पता नहा फिर कब मैं इस रमणीय स्थान पर आता हू। आता

भी हू या नही ! शायद कभी नही आ पाऊगा ! जीवन आलेख की रेखा अजीब सी वक्र होती है। उसकी गति मनमानी होती है। क्या भरोसा कि वह मुझे फिर से कभी इस स्थान पर आने देगी ? इस दुनिया म सुख का मजा लूटने का समय एक ही होता है—जब वह मिलता रहता है !

इसी विचार म मैं लगातार अपना प्रस्थान स्थगित करता जा रहा था। जाने वाले प्रत्येक दिन क साथ मदार के माथे पर एक एक बल बढता जा रहा था। अन्त म पाचवे दिन उसने मुझसे कह ही डाला "कल मुह अधेरे हम यहा स चलना ही चाहिए।"

उसने 'ही' पर जो जोर दिया था मुझे कतई नही भाया। मैं हस्तिनापुर का राजा था। मदार मेरा एक तुच्छ सेवक था। फिर भी यहा और रहने का कोई युक्तियुक्त कारण मैं उसे बता नहा पा रहा था। आखिर शाम को बहुत ही अन मना होकर मैं उस स्थान से विदा लेने के लिए गया। किसी प्रिय व्यक्ति के चिर वियोग की कल्पना से मन व्याकुल हो उठता है न ? वसी ही मेरे मन की दशा हो गई थी। मनुष्य क चिर वियोग क दुख म दुख बाट लेने के लिए कोई आगे आ सकता है अपने आसुओ स और स्पश स दुख व्यक्त कर सकता है। लेकिन वह बात यहा कहा ?

साझ की लम्बी लम्बी परछाइया पहाड की चोटिया पर वक्ष लताओ की पणशाखाओ पर और दह म प्रशान्त जलाशय पर धीरे धीरे छाने लगी थी। वह दृश्य देखता मैं उसी वक्ष पर हमशा की भाति बठा था। अब कुछ ही देर बाद यहा स चलना पडेगा यही सोचकर मन अन्त ही बेचन था। तभी नदी क परले किनारे पर एक हिरनी शान स खडी दिखाइ दी। शायद पानी पीने आई थी किन्तु पानी का स्पश किए बिना वसी ही खडी रह गई थी। मानो कोई शिल्पी उसकी मूर्ति बना रहा था और उसकी कला क सौन्दय म थोडी भी कसर न रह इसी हतु वह निश्चल खडी हो गई थी ! अनायास ही मरा दाहिना हाथ कन्धे पर पहुचा। तीर तरकश की याद शायद उसे आ गई थी। मेरे अन्दर बठा शिकारी जाग गया था। लकिन केवल क्षण भर के लिए। तुरन्त ही यह विचार कि मृगया म पाप है मन को छू गया। यह विचार एक क्षत्रिय को शोभा दने वाला नही था। लेकिन उस हिरनी की ओर देखत रहने क बाद मन म वह आया अवश्य।

हिरनी वस ही खडी थी। मैंने मुडकर नदी के इस किनारे पर नजर डाली। मैं चकित रह गया। वहा भी एक हिरनी—नहा ! शायद कोई युवती खडी थी। उसकी पीठ मेरी तरफ थी। इस बीहड स्थान पर भला वह क्या आई होगी ?

उसने ऊपर आकाश की ओर देखा ! हाथ जोडे ! और दूसरे ही क्षण दह म अपने-आपको फक दिया !

उस युवती को बचाने क लिए मैंने दह म छलाग लगा दी तब मेरा मन केवल करुणा स भर गया था ! किन्तु उसे बाहर निकालकर होश म लाने के लिए मैंने

उसका सिर अपनी गोद में रख लिया और करुणा के स्थान पर मेरा मन भय आश्चर्य और आनन्द से भर गया।

वह अलका थी!

अलका के नाक मुँह में बहुत पानी नहीं भरा था। शीघ्र ही उसने आँखें खोलीं किन्तु मेरी ओर दृष्टि जाते ही मन्द-मन्द मुस्कराकर उसने पलकें फिर मूँद लीं। बहुत ही क्षीण स्वर में उसने कहा 'आ गए युवराज कब पधारे?' ज़ाहिर था कि स्थल और काल का चेत उसे अभी नहीं आया था।

"अलका अब मैं युवराज नहीं हूँ महाराज हो गया हूँ!" मैंने हँसकर कहा।

उसने फिर पलकें खोलीं और मुझ पर दृष्टि गड़ाती हुई बोली "सच है भूल मेरी है महाराज!" कहते-कहते वह इतनी मधुर हँसी कि चंद वर्ष पूर्व रात बरात मेरे सिरहाने के पास खड़ी मुग्ध अलका मेरी आँखों के सामने खड़ी हो गई। उस रात के उस प्रथम चुम्बन की मधुरिमा मेरे रोम रोम में सरसराती चली गई। वह मेरी ओर अपलक ऐसे देख रही थी जैसे एक शिशु दीपक की ओर टकटकी लगाए देखता रहता है। शायद अब भी उसे सम्भ्रम था कि वह जो कुछ देख रही है वह सपना है या हकीकत! उस सम्भ्रम के कारण उसका चेहरा और भी मोहक दिखाई दे रहा था। उसका चुम्बन लेने का ज़बरदस्त मोह मन में जाग गया। उसके होठों पर अपने होठ रखने के लिए मैंने गरदन तनिक झुकाई। शायद बात उसके ध्यान में आ गई! सिहरती हुई बोली "...ज हूँ!"

उसका स्वर कुछ भर्राया सा था। किन्तु उसके पीछे उसका निग्रह बहुत पक्का था। मैंने चुपचाप अपनी गरदन सीधी कर ली। भीगी पलकों से चंद क्षण मेरी ओर देखती रहने के बाद मेरा हाथ सतर्कता से पकड़कर उसने कहा, 'अब मैं पराई हूँ महाराज!'

उसका हाथ काँप रहा था। चेहरे पर भय छा गया था। मेरे लाख मना करने पर भी उसने रुकते रुकते अपनी कहानी बताना प्रारम्भ किया। पूरे भीग चुके वस्त्र, पानी चुआते केश किसी बात का उसे होश नहीं था!

मौसी ने उसकी शादी तय करा दी। माँ को आनन्द हुआ। विवाह हो गया। पति एक काश्तकार था। अच्छा सुन्दर, सशक्त और धनवान। किन्तु वह जुआरी था। जुए की धुन भी इतनी ज़बरदस्त कि अन्य कोई काम-धाम उसे सुहाता ही नहीं था। घर धन पत्नी, माँ किसी की सुध उसे रहती न थी। उसका एक जानी दोस्त था। वह जादू टोना किया करता था।

एक दिन किसी मेले में जाने के लिए पति अलका को साथ लेकर घर से निकला। वह मित्र भी साथ हो लिया था। मेले के जुए में पति सब हार गया। अलका को लेकर वहाँ से भाग निकला। मित्र भी साथ था ही। पति हमेशा हवाई किले बाँधता रहता कि इस मित्र की सहायता से आज नहीं तो कल अवश्य ही कर्ण पिशाची उसके बस में हो जाएगी और फिर जुए में वह बहुत धन कमा लेगा! उसका मित्र तो न रात देखता न दिन बस हमेशा मंतर जंतर में ही लगा रहता

था ! आदमी को गधे म बदल दने के जादू की खोज वह कर रहा था। वह यह भी कहता फिरता था कि आदमी को कुत्ता या बकरा बनाने की शक्ति उसे प्राप्त हो चुकी है !

उन दानो के साथ घूमती फिरती अलका अपने घर स बहुत दूर आ गई थी। उसकी समझ म नही आ रहा था क्या करे। वह पति के उपदेशयुक्त बातें कहने जाती तो वह उसीपर गुर्राने लगता और अपने मित्र स कहता इसे तुम कुतिया या बकरी बना डालो फिर यह इस तरह भुनभुनाया नही करेगी चुपचाप हमारे पीछे पीछे आती जाएगी। वह मित्र आग जलाता उसपर सरसो के दाने छिडकता और पता नही कुछ मत्र बुदबुदाने लगता। अलका के प्राण सूखने लगते। वह दानो के हाथ पाव जोडती और नाक रगडकर स्वीकार कर लेती कि अब से आगे वह इस तरह कुछ भी नहा बोलेगी। फिर जादू टोना वाले उस मित्र का कुनकुनाना रुकता।

किन्तु उसके दुर्भाग्य को इतने पर ही सताप नहा था। चार पाच दिन हुए उसका पति जुए म उसीको दाव पर लगा बैठा और हार भी गया ! जीतने वाला ललचाई नजर स उसे देखने लगा। किसी बहाने वह वहा स खिसक गई और अधेरे म जिधर राह मिली भाग निकली। छुपती छिपती चलती रहती किसीने कुछ खाने को दे दिया तो खा लेती जहा मिल गया वही पानी पी लेती इसी तरह उसने ये दिन काटे थे। अन्त मे हारकर इस दुख स मुक्ति पाने के लिए उसने आत्महत्या का निश्चय किया था।

यह कहानी कहते कहते उसे बहुत कष्ट हुआ ! उसकी कहानी सुनकर मुझे लगा भाग्य एक क्रूर बिलाव है। मारने स पहले मनुष्य के साथ एक चूहे की भाति निमम खिलवाड करने म ही उसे बडा आनन्द आता होगा।

सूरज ढल रहा था किन्तु ऐसा कुछ कहना आवश्यक था जिससे अलका के मन म आशा का उदय हो। उसकी लटा म वत्सलता भरी करुणा म हाथ फेरते हुए मैंने कहा तुम बिलकुल मत डरना। तुम मरी

मेरा गोद म रखा अपना मस्तक तुरत उठाती वह चिल्लाकर बोली नहीं मैं आपकी नही ! मैं मैं किसी दूसरे की हू ! '

उसका माथा थपथपाकर मैंने कहा पगली कहा की ! तुम मेरी बहन हो ! याद है न ? मैंने तुम्हारी मा का दूध पिया है !

धीरज दिलाने वाले शब्द म अपनेपन के एक स्पश म कितनी शक्ति होती है !

अलका हस पडी। मानो बुझती ज्योति को नेह मिल गया था !

साझ तेजी स धरती पर उतरती जा रही थी। इस निजन स्थान म अब अधिक देर रहना उचित नही था। मैंने धीरे धीरे अलका को उठाकर बिठा दिया। फिर हाथ पकडकर उसे खडा किया। दह म नर नदी की धारा म उमड गया। नदी

के निर्मल जल से उसने पेट भर पिया। अब उसे काफी ताजगी अनुभव होने लगी थी।

वह पानी पी रही थी तब मेरा ध्यान उसके बालों की ओर गया। डूबते सूरज की किरणों में उसके चार पांच बाल एकदम चमक उठे। अलका को मैं छुटपन से देखता आया था। लेकिन उसके बालों में एक सुंदर सुनहरी छटा है इसकी मुझे तनिक भी कल्पना नहीं थी। आज पहली बार वह छटा देखकर मैंने हंसते हुए कहा, 'तुम्हारे बाल सुनहरे हैं?'

'जी हैं कुछ-कुछ!'

होने ही चाहिए!"

'वह क्यों?'

'बड़ी की सारी बात बड़ी ही होनी है!"

वह दिल की तह से हंसी और मुझपर नजर गड़ाती बोली 'मैं बहुत बड़ी हूं! बहुत-बहुत बड़ी हूं। जानते हैं आप, मैं कौन हूं?"

"नहीं तो!"

हस्तिनापुर के महाराज ययाति की बहन!"

उस रात मैं शय्या पर पड़ा तब सुनहरे बालों वाली अलका नदी के शुभ्र साफ प्रवाह में खड़ी होकर मुझसे कह रही थी जानते हैं आप मैं कौन हूं? हस्तिनापुर के महाराज ययाति की बहन! उसकी उस मूर्ति को आंखों में भरते भरते उसकी मीठी हंसी जी भरकर सुनते सुनते ही मैं सो गया।

मध्य रात्रि में आभास हुआ कि कोई मेरे पैरों को छू रहा है। चौंककर मैं जाग पड़ा। दीप की रोशनी मंद पड गई थी। फिर भी मैंने पहचान लिया कि मेरे पैरों के पास खड़ी आकृति अलका की है। मैं तुरंत उठा और उसके पास जाकर पूछा क्या बात है अलका? क्या हुआ?"

वह बोल न सकी। बस केवल थरथर कांपती रही! मैंने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। वह पसीने से तर हो गया था। मैंने उसे उसकी शय्या पर बिठाया। उसकी पीठ सहलाता हुआ उसे धीरज बंधाया। तभी आभास हुआ कि द्वार के पास किसीकी परछाईं पड़ी है। मुड़कर देखा वहां कोई न था।

जब से अलका बिस्तर पर पड़ी थी उसको क्षण भर के लिए भी नींद नहीं आ पाई थी। वह जादू टोने से बहुत डरती थी। आज एक सपने में वह बकरी बना दी गई थी तो दूसरे में बुढ़िया। तीसरे सपने में उसने देखा था कि उसका पति उसे पहाड़ी की चोटी पर से नीचे धकेल दे रहा है। वह चीखकर जाग पड़ी थी। लेकिन उसके पास ही सोई मीना दासियां खर्राटे भर रही थीं! वह बहुत ही डर गई। आखिर हिम्मत कर वह मेरे पास आई थी।

मैं उसकी बात सुन रहा था कि तभी किसी कीड़े ने आकर दिया बुझा दिया। बोलते बोलते वह रुक गई तब जाकर कहीं यह बात मेरे ध्यान में आई। तभी बाहर कोई आहट सुनाई दी। शायद वह पहरेदार था।

अलका को समझा बुझाकर मैंने उसे उसके स्थान पर वापस भेज दिया। लेकिन एक बात मेरे ध्यान म आए बिना न रही कि जुआरी पति और उसका वह जादू-टोना करने वाला मित्र दोनो से अलका बहुत ही ज्यादा आतकित है। मैंने कितना भी धीरज बधाया समझाया बुझाया तब भी उसका भयभीत मन एकदम सामान्य नही बना।

मेरा ख्याल था कि दूसरी रात वह मेरे कक्ष म नही आएगी। लेकिन पूव रात के समान ही वह थरथर कापती हुई मेरे पास आई। रात उसकी वैरन बन गई थी। उसके मन पर सवार सारे भूत पिचाश अधेरे म बाहर निकलकर उसे सता रहे थे।

अगली रात अलका फिर आई। लेकिन अब की बार उसकी शिकायत कुछ निराली ही थी! उसने भूत देखा था। भूत की शक्ल सूरत मन्दार जसी थी! यह सोचकर कि वह सोई हुई है उस भूत ने उसका चुबन लेने की चेष्टा की। उसके थोडी हलचल करते ही भूत भाग गया था।

तीसरे दिन मैंने दासियो को आज्ञा दी कि अलका का बिस्तर मेरे ही कक्ष म लगवाए। मेरे शयन कक्ष का द्वार हमेशा खुला रहता था। पहरेदार बीच बीच म आकर यह देख जाता था कि मैं सुख से सोया हू या नही। अलका यदि मेरे शयन कक्ष म सोई तो किसीका क्या बिगडता? स देह की गुजाइश ही कहा थी?

मेरे प्रति प्रगाढ विश्वास होने के कारण या हर बीतते दिन के साथ मन मे समाया भय लगातार कम होता जा रहा था इस कारण अलका आराम से सोने लगी थी। यह नही कि उसका चीखकर जाग उठना बिल्कुल ही बद हो गया था। लेकिन एकाध बार ही वह महाराज! कहकर चीख उठती और मैं तुरत उसे क्या बात है अलका? पूछता तो उसका मन कुछ शात हो जाता था। शेष सारे प्रवास मे चार-पाच बार ही वह इस तरह चाखी चिल्लाई थी! वह थर थर कापने लगती तो मैं उसे लाकर अपनी शय्या पर बिठाता उसकी पीठ सहलाता और उसका मन शात हो जाने पर उसे फिर उसकी शय्या पर भेज देता था।

उन सारे प्रसगो को मैं ठीक तरह याद करके देख रहा हू लेकिन मुझे नही लगता कि किसी भी अवसर पर—अलका रात्रि के अलावा मेरी शय्या पर आकर बठी थी, तब भी— मेरे मन म उसके शरीर सुख की अभिलाषा जागी थी। उसके सौन्दय की अपेक्षा तो उसका मेरे प्रति जो अथाह विश्वास था वह ही मुझे सौगुना अधिक आकषक लगने लगा था। उसके चुम्बन सुख की अपेक्षा मेरी गोद म सिर रखकर वह निश्चितता अनुभव करती थी इसका आनद मुझे अधिक और निराला ही उत्साह देता था।

प्रवास के व दिन कितनी जल्दी बीत गए! किन्तु उनकी मधुर स्मृतिया आज भी मेरे मन म बराबर बनी हुई है। दिन भर अलका मेरे इद गिद ही रहती थी। कभी गीत गुनगुनाती कभी मनमानी वेश रचना करती कभी मेरी चीजो पर से धूल का एक एक कण साफ करती कभी वनफूलो का नन्हा-सा गजरा गूथती कभी

किसी नगर म मुकाम करन पर मुझे भाने वाले अन्न-पकवान बनाती मैं भोजन करने बैठता तो पास बैठकर पखा चलाती तो कभी किसी पदाथ को आग्रह कर-करके मुझे परोसती। तब मैं उससे कहता लगता है अब हस्तिनापुर जाने पर मैं अवश्य ही अजीण से बीमार पडन वाला हू। अब की बार जब राजवद्य मुझे कडव काढे पिलाने आएग, तो मैं उनसे कह दूगा कि य सभी काढे अलका को जबरदस्ती पिलाइए। उसी की वजह स मुझे यह अजीण हुआ है!"

पता नही विधाता न नारी का बनात समय क्या क्या चीज मिलाई थी। लेकिन बात सच है कि उस प्रवास म अलका का अस्तित्व मुझे बहुत ही सुखदाई लगा। प्रतीत होता था जस कोई नाद मधुर भावरम्य काय ही मेरे चहुओर समाया हुआ है! उस काव्य म शृगाररस का नाम तक नही था। किन्तु हास्य वत्सल, और करुणरसो का उसम मनोहर सगम अवश्य था।

कई बार मन्दार उसकी ओर गुस्से से देखा करता था। शायद उस यह पसद नही था कि अलका के एक दासी की लडकी होन के बावजद मैं उसके साथ बरा बरी के नात स पश आता हू। लेकिन उस पागल को क्या पता कि दुनिया की दष्टि म ययाति भल ही राजा हो अलका की दष्टि म वह केवल एक भाई था। उसे क्या पता कि दुनिया की दृष्टि म अलका भले ही एक दासी की लडकी हो ययाति की दष्टि म वह कवल एक बहन थी!

निरीह आनद, निरपेक्ष प्रेम और निमल हास-परिहास के वे दिन बातो ही बातो म बीत गए। हस्तिनापुर केवल दस कोस रहा था। तब मन्दार न मुझसे कहा 'महाराज मैं पहल नगर पहुचता हू। वरना राजमाता जी इसलिए नाराज हो जाएगी कि आपके स्वागत की तैयारी करने के लिए उन्ह समय नही मिला!"

मैंने उसे जान की अनुमति दे दी। लकिन बार बार मन म आता कि मा की आखो म वात्सल्य के और अलका की आखो म ममता के आरती के दीप जब निरतर जल रह है तो ययाति का अलग से स्वागत करने की क्या आव श्यकता है?

०

हम लोग हस्तिनापुर पहुचे तब काफी रात हो चुकी थी। मैंने मा को यह बताकर कि अलका कहा और कस मिली उसे मा क हवाले कर दिया।

उस रात भोजन कर चुकन क तुरन्त बाद मैं सो गया। मने सोचा था कि मा प्रात यति की बात चलाएगी किन्तु वह कुछ भी बोली नही। शायद मुझे अकेला खाली हाथ लौटा देखकर उस बहुत दुख हुआ होगा! मुझे लगने लगा कि बेकार ही मैंन मा के मन म यति क बारे म आशा जगाई। आशा टूट जाने जैसा भयकर दुख इस दुनिया म और कोई नही!

वह सारा दिन बडी व्यस्तता म बीता। अमात्य और अन्य अधिकारी आए तो उन्होन अभिषक की बात चला दी। माधव तारका को लकर आया। तारका

को मिठाई दिलवाने के लिए मैंने अलका को पुकारा। लेकिन मिठाई लेकर उसके बजाय कोई दूसरी दासी आई। दिन भर मैं काम मे लगा रहा। फिर भी किसी न किसी बहाने तीन चार बार मैंने अलका को याद किया। किन्तु एक बार भी न तो वह मेरे सामने आई न ही मुझे कही दिखाई दी।

रात्रि के भोजन के समय मैंने मा से पूछा अलका कही दिखाई नही देती ?"

मा ने निर्विकार भाव से जैसे मेरा प्रश्न उसने सुना ही न हो कहा युयु अब तुम हस्तिनापुर के राजा बन गए हो। राजाओ की नजर राज-कन्याओ पर जानी चाहिए दासियो पर नही।"

मा ने यह इतने निर्विकार भाव से कहा कि मैं समझ नही पाया कि वह मेरा मजाक कर रही है या उलाहना दे रही है। मैं चुप रहा। किन्तु उसके इस वाक्य के कारण थाली मे परोसे गए रसील पदार्थ मुझे रुचिहीन लगने लगे। मैं बिना खाए ही उठ गया।

मा ने इशारा करके मुझे अपने महल मे बुला लिया। मैं चुपचाप उसके पीछे चला गया। उसने तुरन्त दरवाजा बद कर लिया। फिर अपने पलग के पास रखे एक नारगी के सुदर पुतले की ओर देखती वह बोली अलका इस समय अपनी जिदगी की अतिम घडिया गिन रही है।"

मैं समझ नही पाया कि मैं जाग रहा हू या कोई स्वप्न देख रहा हू। बहुत कष्ट से मेरे मुह से निकला मतलब ?

इस ससार मे जन्म का मार्ग एक ही है किन्तु मृत्यु की बात वसी नही। मृत्यु अनेक मार्गों से आती है। कही से भी आती है।

किन्तु उसकी ऐसी अवस्था के बारे तुमने मुझ कुछ बताया क्यो नही ? मैं राजवद्य को

इस मामले मे राजवैद्य का कोई काम नही। यह राजवश की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। राजमाता का प्रश्न है। तुमने प्रवास मे जो रगरेलिया एकदम मेरी ओर मुडकर मा ने कहा। उसकी आखो मे अगारे सुलग उठे थे। क्षण भर रुककर उसने कहा तुम्हे जो भयकर रोग हो गया है उसका इलाज करने के लिए।

मुझे कौन सी बीमारी हो गई है ?

कौन-सी ? उस मुकुलिका को मैंने अशोक वन से निकाल दिया है। उसे चेतावनी दी है फिर से नगर मे कदम रखेगी तो जान से हाथ धोना पडेगा। वह आज यहा होती तो तुम्हारी बीमारी के सारे आसार

मैंने सिर झुका लिया। मुकुलिका के साथ मैंने ज्यादती की थी। मैं स्वय इस बात को जान गया था। कुछ दिन तक वह बात मन को चुभती भी रही थी। लेकिन अशोक वन मे हुई भली बुरी बातें मा से किसने कही होगी ? क्या उसने स्वय आकर बताया होगा ? नही। वह भला ऐसा क्या बताएगी ? शरीर सुख के बदले मे युवराज की कृपा चाहने वाली वह एक दासीमात्र थी। वह किसलिए यह राज

मा कहने लगी, "इधर तुम्हारे पिता मृत्यु शय्या पर पड़े थे और उधर तुम उस तुच्छ दासी को अपने पलग पर लेकर '

उस दिन अमात्य ने सुरग मार्ग से मन्दार को भेजा था। वह आया तब मुकुलिका मेरे पलग के पास खडी थी। उसे महल के बाहर भेज देने के बाद सुरग का द्वार खोलने का भान मुझे न रहा था!

मेरा सिर भन्ना उठा। मदार क्या इतना कमीना है? मा से यह सब कुछ कहकर उसने क्या पाया होगा?

अशोक वन मे जो कुछ हो गया था सारा का सारा मा से कह दिया जाए कुछ भी न छिपाते हुए बता दिया जाए, ऐसा मन मे आया तो किन्तु लज्जा के मारे मैं कुछ बोल न सका। फिर मा ने भी तो मुकुलिका को काफी आडे हाथो लिया होगा! तब इस पाप की सारी जिम्मेदारी उसने मुझपर डाल दी होगी! अब मैंने कितनी भी हार्दिकता से सफाई दी, तब भी मा की मन स्थिति ऐसी है कि उसे मेरी बात कतई सच नहीं लगेगी।

मन ही मन जलता हुआ मैं स्तब्ध रह गया। किन्तु मा ने शायद समझा कि मेरा इस तरह चुप रहना पाप करने की बात का स्वीकार करना है। अपनी वाणी के आरे से मेरे मन की लकडी को चरचर चीरती हुई उपालभ भरे स्वर मे वह बोली 'इसमे तुम्हारा कोई दोष नहीं है। दोष है मेरे भाग्य का! तुम्हारे घराने के रक्त मे ही यह बात है! सुदर स्त्री को देखने की देर है कि '

समझ नही पाया कि मा इद्राणी पर पिताजी के मोहित होने की बात की ओर सकेत कर रही है या उन्हे मिले शाप की। किन्तु उसका एक एक शब्द चमडी उधेड देने वाले कोडे की तरह कडकता हुआ मेरे अन्त करण की धज्जिया उडाता गया।

वह बोलती ही जा रही थी 'जो रक्त मे होता है वह हर अवसर पर उफनता हुआ ऊपर आता ही है। पत्नी के नाते मैंने काफी दुख झेले है! अब मा के नाते तो वैसे दुख नही सहने पडेंगे ऐसी आशा सजोए मैं बैठी थी! किन्तु "

किसी दुर्ग का फौलादी सिंहद्वार सहसा बद हो जाए वैसे ही मा भी एकदम चुप हो गई। उसने मुझे इशारा किया। मैं उसके पीछे-पीछे चलने लगा। वह महल की पूरब वाली दीवार के पास गई। शायद वहा वैसी ही सुरग थी जैसी महल से अशोक वन जाने के लिए थी। मा के पीछे-पीछे मैं भी उस सुरग मे उतरने लगा। लेकिन मुझमे इतनी हिम्मत नही थी कि उससे पूछता हम कहा जा रहे हैं!

सुरग बहुत लम्बी नही थी। उसके दूसरे सिरे पर एक तहखाना था। तहखाने के द्वार पर एक डरावनी सूरत वाला भारी भरकम पहरेदार पहरा दे रहा था। उसने हम दोनों को प्रणाम किया।

मा मेरी ओर मुडकर बोली, भीतर जाओ। लेकिन ख्याल रहे तुम्हे वहा केवल घडी-दो घडी ही रहने दिया जाएगा! कहते है, मरने से पूर्व व्यक्त की गई मरनेवाले की इच्छा पूरी करनी चाहिए। इसीलिए अलका पर मैंने यह दया दिखाई

है ! वरना 'कुछ रुककर वह फिर बोली युवराज "

युवराज ? मा ने मुझे ययु के बजाय युवराज कहा था !

'देखिए, युवराज कल आप महाराज बनने जा रहे हैं। ध्यान रहे रोना राजाओ को शोभा नही देता। यह भी मत भूलना कि राजा लोग कभी कोई गलती नही किया करते। और यह भी कि चाहने पर राजा को प्रतिदिन अप्सरा जसी नई सुदर स्त्री मिल सकती है

इतना कहकर मा मुह फेरकर खडी हो गई। पहरेदार ने धीरे से द्वार खोल दिया। मन सुन्न पड गया था। उसी मन स्थिति म मैंने भीतर कदम रखा। उस कमरे से कमरे के एक कोने म एक दीपक मद मद टिमटिमा रहा था। उसके क्षीण प्रकाश म क्षण भर तो मुझे ठीक तरह स कुछ भी दिखाई नहा दिया। फिर कमरे के बीचोबीच घुटनो म गदन डाले बठी अलका दिखाई दी। भारी कदमो से मैं उसके पास गया। शायद मेरी आहट भी उसे सुनाई नही दी थी ! मैंने बहुत पास जाकर उसके कन्धे पर हाथ रखा तब जाकर कही उसने सिर उठाया। वह मेरी ओर काफी देर तक केवल देखती ही रही। उसका चेहरा स्याह पड चुका था। आखें पथराई-सी होन लगी थी। बार बार मेरी ओर देखते हुए उसने पूछा कौन है ?

उसको सुनाई नहा देता था दिखाई नही देता था मेरा कलेजा धक-स रह गया। उसके दोनो कधो को जोर जोर से हिलाते हुए मैं चीखा 'अलका !

उसने मेरी आवाज शायद पहचान ली। उसके सूखे होठो पर हलकी-सी मुसकान खेल गई। उसने भारी किन्तु मधुर स्वर म पूछा कौन ? महाराज ?"

उसके पास बठकर मने किसी न ह बालक के समान उसका सिर अपने कन्धे पर रख लिया और उसे सहलाते हुए कहा क्या कर लिया तुमने अलका ?'

उसके पास ही कुछ दूरी पर एक खाली प्याला लुढका पडा था ! उसकी ओर ही कष्ट से उगली दिखाकर उसने कहा उससे पूछिए। उस उस प्याले म प्रेम था उस उस म पी गई !

उससे आगे बोला नही गया। उसकी आखो से यकायक आसू बहने लगे ! मेरा कन्धा भीगकर तर हो गया। फिर बहुत ही तडपकर उसने कहा, वो वो मदार उस उसन उसको मैं '

उसकी जीभ लडखडाने लगी। मैं पागल-सा उसे लगातार सहलाता जा रहा था। उसके बदन पर हाथ फेरता आ रहा था। वह कष्ट से टेढी मेढी अगडाइया लेने लगी। उसका बदन उलटा सीधा अकडने एठने लगा। उस विष की शायद उसे असह्य वेदनाए हो रही थी ! शरीर ठण्डा पडता जा रहा था ! मेरे कधे पर रखा उसका सिर प्रतिक्षण अधिक भारी होने लगा। सासे भी रुकने लगी। समझ म नही आ रहा था क्या करू।

अब उसे हिचकिया आने लगी। एक बार उसने बहुत ही क्षीण स्वर म कहा म मु मुझे भुलना नही म मेरा ए एक स सु सुनहरा व बाल

याद म आइ था ! '

मैंन धीरे स उसका एक सुनहरा बाल तोड लिया। अब अलका च द क्षणो की मेहमान थी। मर कारण ही उसकी मौत आई थी ! मृत्यु के अनात प्रदेश की कभी न समाप्त होने वाली यात्रा पर अलका मरी अलका मेरी अभागिनी अलका निकली थी। क्या मुझे उस यात्रा क लिए सदव सम्बल के रूप म उसके काम आ सकने वाली कोई निशानी उसका नही देनी चाहिए ?

मृत्यु के द्वार पर आकर राजा भी भिखारी बन जाता है। मैं उसे कुछ भी नही द सकता था !

अनजान मरा माथा थक गया। अलका क होठो पर मैंने अपन होठ रख दिए। शायद अभी उस थोडा होश था। मुह फेर लन की कोशिश करत हुए उसन कहा, 'नही ! नही ! विष विष !"

लकिन मुह फेरने की भी शक्ति अब उसम नही रही थी। मैं पागल-सा उसके चुबन लेने लगा।

उस रात लिया अलका का पहला चुम्बन इस रात अलका का यह अन्तिम चुम्बन ! ओफ ! जीवन भी कितना भयकर नाटक है ! मुह फेर लेन की कोशिश में अलका का सिर मेर कधे पर से फिसला और वह धडाम स नीचे गिर पडी !

मैंने उस हिलाकर दखा ! पछी पिंजरे स उड गया था।

उसका निष्प्राण शरीर मेरे सामन पडा था ! उसकी आत्मा मन कह रहा था कहा है वह आत्मा ?

बाहर स मा न आवाज दी युवराज

मैं अपन महल म लौटा तो अमात्य मेरी प्रतीक्षा कर रह थे। व जानबूझकर ही ऐसे समय आए थे। उन्होन कहा बहुत ही आनन्द का समाचार आया है !"

इस दुनिया म आनद भी क्या कही हो सकता है ? म स्तब्ध रहा।

अमात्य कहने लग, देव दानवो का युद्ध समाप्त हो गया है ! कच न सजीवनी विद्या प्राप्त कर ली। फलस्वरूप दवता-पक्ष के मृत सनिक फिर से जीवित होने लग। इसीलिए दानवो ने ही अपनी ओर से युद्ध समाप्ति की घोषणा की। बहुत ही अच्छा हुआ। इस युद्ध म दानव जीत जाते तो निश्चय ही व हमारे राज्य पर भी आक्रमण करत।"

कच को सजीवनी प्राप्त हो गई थी ! दव-दानवो का युद्ध समाप्त हो गया था ! मरी दृष्टि म ये सारी बातें अत्यत तुच्छ थी। मेरा मन निरतर आक्रोश से पीडित हो रहा था—अलका कहा है ? मेरी अलका कहा है ? प्रेम के भूखे इस भाई की इकलौती बहन कहा है ?

देवयानी

देवयानी

बाहर वसत की शीतल बयार महक रही है। लेकिन मैं ता यहा डर की मारी पसीन से तर बठी हू। विशाल शुभ्र कमल की तरह चौदहवा की चादनी खिली है। लकिन भीतर मेरा मन कुम्हलाए हुए हरसिंगार की तरह स्याह पड गया है। बाहर कोयल की उन्मादक कुहू-कुहू काना म रस घोल रही है। किंतु मेरे अत करण म भग्न वीणा की बेसुरी झकार उठ रही है।

क्या मन म वही सपन म' वाली कहावत सही होगी ? नही !

कितना भयानक सपना देखा मैंन ! जागी तो मझा म थरथर कापती लता के समान मुझे कपकपी-सी हो रही थी। सिर से पाव तक मैं पसीन स लथपथ हो गई थी—आस म नहाई लता जसी !

क्या कच पर मुझे क्रोध आया होगा ? होगा क्या ? है ही ! मुझे उसपर बहुत अधिक क्रोध है ! यह ठीक है कि जब वह मेरे प्यार का ठुकराकर जाने लगा तो मैंन उसे शाप दे दिया कि तुम जो विद्या लकर जा रह हो वह तुम्ह कदापि फलगी नही !' लेकिन इसका मतलब क्या यह है कि मैं उस सपने म दिखी वसे

देवमानी दानव-गुरु की कन्या है लकिन स्वय कोई दानव नही।

लगभग घटा बीत चुका है लेकिन अब भी उस स्वप्न का स्मरण आते ही रागटे खडे जाते हैं !

कच के चले जान के बाद कई दिना तक आसू बरसाती रही। कुछ खान तक को जी नही करता था। मैं पिताजी से बार-बार कह रही थी सजीवनी गई ता जान दीजिए। फिर से तपस्या करन बैठिए। भगवान शिवजी से नया वर प्राप्त कीजिए और उस निदयी छली और कृतघ्न कच का मेरे सामने लाकर खडा कीजिए !'

मैं कच को ऐसा दड देना चाहती थी जो उसे जीवन भर याद रहे, आज भी चाहती हू ! मेरे प्यार का ठुकराकर मेरे दिन का परा तले कुचलकर वह चला गया ! जाते-जाते मुझे शाप भी दे गया कोई भी ऋषिकुमार तेरा पाणिग्रहण नहा करगा !' बेहया कही का ! मैं उसे अच्छा खासा मजा चखाना चाहती हू ! प्रतिशोध लेना चाहती हू ! लेकिन प्रतिशोध क्या उस स्वप्न के अनुसार लूगी मैं ? नही री मया ! ओफ उस स्वप्न की याद आते ही अब भी रोम रोम सिहर उठता है !

वह भीषण स्वप्न ! इस समय भी वह ज्यो का त्यो आखो के सामने खडा है ! राजसभा म लोह की जजीरो म जकडा कच खडा था। आखो म जकडती बिजलिया लिए वह चारो ओर देख रहा था। महाराज वृषपर्वा ने मुझसे कहा गुरु कन्या देवयानी ! हमारे उद्धार के लिए गुरुदेव तपस्या करने बठे हैं। यह नई तपस्या आरभ करते समय उन्होंने मुझे आज्ञा दी है— राजा देवयानी मेरा छठा प्राण है। उसे हमेशा प्रसन्न रखो ! हम जानते है कच ने तुम्हे बहुत दु ख पहुचाया है। इसीलिए बहुत शौर्य के साथ हमने देवलोक से कच को बदी बनाकर यहा तुम्हारे सामने उपस्थित किया है। अब वह तुम्हारा बदी है। बोलो तुम इसे क्या दड देना चाहती हो ? तुम्हारी आज्ञा हमारे लिए सर-आखो पर है !

सच्ची प्रेयसी अपने प्रीतम को—उसने बेवफाई की हो तब भी—आखिर क्या दड दे सकती है ? यही न कि उसे हमेशा हमेशा के लिए अपने बाहुपाश म रखना पडेगा ? लेकिन इतना दड भी मैंने उसे नही दिया ! मेरा दड तो इससे भी मामूली था ! मैंने उस बेहया से यही मिन्नत की बस एक बार केवल एक बार मेरा चुबन ले लो ! यह भी कह दिया कि चुबन लेते ही तुम मुक्त कर दिए जाओगे।

लेकिन मृत्यु द्वार पर खडा होने पर भी उसकी उन्मत्तता रत्ती भर कम न हुई। उसने मुझसे कहा देवयानी राक्षसो ने मुझे मार डाला जला दिया और मेरी अस्थियो की भस्म मद्य म घोलकर शुक्राचार्य को पिला दी। फलस्वरूप मैं उनके हृदय के ठीक मर्मस्थल तक पहुच गया। दुनिया म सभीको अज्ञात सजीवनी मत्र को मैंने वही आत्मसात किया। किंतु उसी कारण मैं तुम्हारा भाई भी हो गया हू। जिस पेट से तुम पैदा हुई उसी पेट से मैं भी '

मैं झल्ला उठी। मैंने उससे कहा देवयानी को तुमने शायद भोली भाली बावली लडकी समझा है। बच्चे मा के पेट स पैदा होते हैं बाप के पेट से नही यह बात समझने के लिए किसी विशेष बुद्धिमानी की आवश्यकता नही हुआ करती है ! मैं तुम्हारी बहन नही हू न ही तुम मेरे भाई हो। मैं तुम्हारी प्रेयसी हू। मैं तुमसे और कुछ भी नही मागती। बस केवल एक बार मेरा चुम्बन ले लो। चुम्बन लेते ही तुम्हे तुरत मुक्त करने की आज्ञा दे रही हू।

लेकिन वह भी कितना मतवाला कितना जिद्दी कितना दुराग्रही है ! मेरी यह मामूली माग भी उसने स्वीकार नही की ! महाराज वृषपर्वा ने पूछा गुरु कन्या अब बताओ इसे क्या दण्ड दिया जाए ?'

यह कच मद्य म घुलकर पिताजी के पेट म चला गया था। सजीवनी पाकर ही सही उसे फिर से जिलाने के लिए मैंने ही पिताजी से काफी अनुनय किया था। आज उसी कच को दड दू ? क्या मा अपने बालक को कठोर दड दे सकती है ? फिर प्रेयसी भी तो ।

लेकिन कच को कठोरतम दड देना जरूरी था। मेरा इस तरह अपमान करते समय वह जरा भी तो नहीं हिचकिचाया था ! अत करण के थाल म प्रीत का दीप जलाकर मैं उसकी आरती उतार रही थी, और एक यह है कि मतवालपन से

आरती का वह थाल मेरे हाथ से छीनकर छितरा दन म भी नही अघाता ?

मैंने महाराज वपपर्वा से कहा 'कच का सिर उतार दो' उसका मस्तक काटकर एक थाल मे रखकर राजसभा म लिवा लाओ। आज मैं सबको बता देना चाहती हू कि देवयानी नत्यकला म कितनी निपुण है।'

सेवक उसका खून से लथपथ कटा मस्तक थाल म रखकर ले आए। उस थाल को राजसभा म बीच म रखकर मैं नाचने लगी। प्रीति कभी खिलत पुष्पो के समान हसती है, तो कभी लपलपाती ज्वालाओ के समान प्रतीत होती है। कभी वह चादनी सी फैलती है तो कभी बिजली बनकर कौंधती है। वह कभी हिरनी बनती है तो कभी जहरीली नागिन! कभी वह प्राण न्योछावर करती है कभी प्राण ले लेती है। ये सारी भावनाए मैं अपने नत्य म प्रकट करती गई।

पता नही इस तरह मैं कब तक नाचती रही! मुझपर उस नत्य का नशा-सा हावी हो गया था। थाल म रखे कच के उस कटे मस्तक के अलावा मुझे अन्य कुछ भी दिखाई नही दे रहा था! उसके मस्तक स खून टपक रहा था और मुझे लगता था जसे मगल कुमकुम तिलक किए यह मर प्रीतम का माथा है! मैं अभिसारिका बन उससे मिलने चली हू। मैं भूल गई कि वह माथा एक निष्प्राण मस्तक है। नाचते-नाचते ही घुटनो के बल पर बैठकर मैंने उसका चुबन लेते हुए कहा कचदेव! आप चुबन देने के लिए तैयार न थे किंतु आखिर मैंने चुबन ले ही लिया न ?"

और उसी क्षण मेरी नींद टूटी थी। स्वप्न म ही सही, कच के धड कटे सिर का चुबन मैंने ले लिया था!

नही-नही! स्वप्न का यह अतिम हिस्सा शायद सच नही था! बचपन म किसी असुर की ऐसी कहानी मैंने सुनी थी। शायद वही ।

o

मैं कच से अब भी प्यार करती हू। फिर भला मैं उसक साथ इसी तरह क्रूरता स क्यो पेश आती ?

सपने आते कहा से है ? मानवी मन से ही न ?

अच्छा! अब आया समझ म! स्वप्न एक अजीब बुनाई की रेशमी माला है। मेरे मन म यह स्वप्न किस तरह ।

कच हमेशा कहा करता था कि विद्यार्थी को व्रतस्थ रहना चाहिए। वन म जाकर वह वहा से मेरे लिए मुझे बहुत पसद आने वाले फूल अवश्य ले आता था। किंतु एक बार भी कभी उसने उन्हे मेरे बालो म नही गूथा। मेरा स्पर्श उसे अत्यधिक सुखद लगता था। गलती स भी उसे स्पर्श करते ही क्षण भर के लिए उसकी मुद्रा अत्यत प्रसन्न हो जाती थी! लेकिन वह हरदम यही कोशिश करता कि जहा तक हो सके मेरा स्पर्श उसे नही हो पाए।

मुझसे दूर दूर ही रहने की उसकी चेष्टा उसपर मुझे आता क्रोध और

अनुराग कल होने वाला उत्सव इन्ही सभी बातो ने मिलकर मेरे मन म उस स्वप्न की रेशमी माला बुनी थी।

लकिन क्या मेरा पागल मन अब भी वास्तव म उससे प्यार करता है ? और मेरा विवकी मन उससे घणा ? प्रेम और घणा ! आग और पानी !

पता नही कब मेरे दो मना की यह उधेडबुन समाप्त होन वाली है। सच दो मना का यह सघष क्या कभी समाप्त नही होगा ? स्त्री का मन भी कितना पागल कितना कोमल कितना अधा होता है ! यहा से जाने के बाद कच न एक शब्द से भी किसीस मेरा हाल नहा पूछा है। मर प्यार के बल पर उसने पिताजी स सजीवनी प्राप्त कर ली। सजीवनी लेकर वह दवलोक म चला गया। वहा उसकी जय जयकारो से वायुमडल गूज उठा। वह एक महान ऋषि और महा पराक्रमी वीर बन गया ! देवताओ पर आया प्राण सकट उसीके कारण टल गया।

अब तो इद्र उस मनचाही अप्सरा दने लगा होगा ! फिर क्या वह देवयानी को याद करन लगा ! *पुरुष इसी तरह बेवफा होते हैं ! छली ! कठोर ! पाषाण हृदयी !* जाल समेत उड निकलनेवाल पछियो क समान व भागकर दूर-दूर चल जात ह। और स्त्रिया आखो म दूर होत जा रहे उन्ही प्रीति पाशो म अपने अत करणो को उलझाकर रोती बठती रहती है।

फूल की पखुडिया भडकर गिर जाती है। पीछ बचत है केवल काटे ! प्रीति की रीत भी क्या एसी ही होती है ? उन फूलो की उड चुकी सुगध की याद मे स्त्री घुलती घुटती काटा बनकर रह जाती है ! उन्ही काटो का पागल पूजा करती बठती है। वे काटे चुभकर खून निकल आया कि ।

नही म अन्य नारिया के समान रोती घुटती नही बैठूगी। मैं आम नारियो स भिन्न हू असामान्य हू। भगवान न मुझे सौन्दय दिया है। पिताजी न मुझ बुद्धि दी है। पिताजी की पहली सारी तपस्या पर पानी फिर गया। व फिर स उसी जिद स नई तपस्या करन बैठ रहे है। फिर म वही विद्या प्राप्त करन जा रह है। मैं उन्ही पिता की लडकी हू। दुनिया की थोडी भी परवाह न करन वाल शुक्राचाय की पुत्री हू। मैं कच को भुला दूगी !

नही ! उसके प्रति अपन मन म रह प्रेम को म भुला दूगी। वह मुझे शाप दकर चला गया है। सच्चा प्रेम भी क्या शाप दे सकता है ? क्या खूब ! कह रहा था कोई भी ऋषिकुमार तुम्हारा पाणिग्रहण नही करेगा !' न सही ! यहा किसे पडी है कि एक ऋषिकुमार क गले म वरमाला डालकर जगल की झोपडी म जीवन बिताए ? पागल कच ! मेरे इतन समीप आकर भी मेरे मन को समझ न सका ! अरे कवल फूलो का शृगार करन क लिए थोडे ही आदिशक्ति न मुझे इतना रूप दिया है ? शर्मिष्ठा जसी सुदर राजकन्या भी रात दिन क्या मुझस जलती रहती है ? कल वसतोत्सव आरभ होन जा रहा है। आज तो उस नीद भी न आई होगी ! इस उत्सव म कौन-स वस्त्र परिधान किए जाए क्या क्या आभूषण पहने जाए ताकि मेरा रूप दवयानी स भी अधिक निखर उठे इसी सोच म वह जाग

रही हागी ! जागती और सोचती रही तो रह मेरी बला स ! कल उत्सव का प्रथम दिन है। इसलिए राजकन्या और उसकी सखिया प्रात ही वन विहार क लिए जाएगी। वहा जलक्रीडा भी करगी। पिताजी का मन रखने के लिए मैं भी जाऊगी। कच मेरे लिए स्वगलाक से जो सुदर वस्त्र ल आया था उसे ही मैं पहनूगी। तब सारी लडकिया मेरी ओर ही देखती रह जाएगी। इसी उत्सव के लिए तो मैंन उस वस्त्र को सावधानीपूवक सुरक्षित रखा है। शर्मिष्ठा तक को उसकी काई कल्पना नही होगी। उस महावस्त्र म जब वह देवयानी को देखेगी तो

लेकिन वह वस्त्र कच का दिया हुआ है। वह जब हमारे यहा रहन आया तब उपहार क रूप म वह उसने दिया था। तब, स्वाथ के लिए सही वह मुझसे प्यार करता था ! लकिन मैं सचमुच उसपर मोहित थी। उस समय मैं वह वस्त्र पहन लेती ता बात शोभा भी देती। किन्तु अब जबकि परस्पर प्रेम समाप्त हो गया है प्रेमिया ने एक दूसर को शाप दे दिया है उसे परिधान करना क्या ठीक हागा ? नही ! अब मैं उस परिधान करती हू ता जलकर राख हुइ प्रीति की स्मृतिया मेरे मन म फिर जाग उठेंगी ! मेरे प्रिय पुष्पा को ताड लान के लिए जान जाखिम म डालकर भी कच ऊची कगारा पर चढ जाया करता था मेरा वर्षा-नृत्य देख कर वह किसी नाग-सा झूम उठता था मरी नीद न टूट इस हतु भोर म ही उद्यान के बिलकुल सिरे वाल किसी कोन म जाकर बहुत ही धीम स्वर म मन्त्रपाठ करता था शायद एकाध बार ही किन्तु बहुत ही मनभावनी हरकत से मुझस कहता था, तुम तो स्वग की अप्सरा से भी अधिक सुदर लगती हा !" इसपर जब मैं कहती चलो हटो बडी चाटुकारिता करत हा' ता हसकर कहता था 'पता है जो सुदर हाता है न उसीकी प्रशसा दुनिया किया करती है ! य सारी स्मृतिया फिर जागेंगी !

नही अब उन स्मृतिया को याद करन स काई लाभ नही ! एक एक स्मृति आग की जलती हुई लपट है दिल को बुरी तरह झुलसाने वाली लपट ।

मैंन निश्चय किया है कच क प्रेम का भुला देने का ! फिर कस उसके दिए हुए वस्त्र को अब पहन सकती हू ? माना कि वह बहुत सुदर है इद्राणी का भी इतना सुदर वस्त्र नही मिला हागा ! लेकिन अब मैं उस क्यो पहनू ? अब ता यही उचित है कि वस्त्र कितना भी सुन्दर क्या न हो चीर चीर कर उसकी धज्जिया धज्जिया कर दू ! उसका पोतना बनाकर उससे आगन पोत लू ! उस बेवफा के लिए यही दण्ड उचित होगा !

मैं धीरे स उठी और जल क्रीडा क लिए निकाल वस्त्रा म स उस लाल वस्त्र का लेकर आगन म आ गइ। उस सरर से फाडने क लिए दोना हाथा से मैंने उसे ऊपर उठाया।

किन्तु वह वस्त्र मुझसे फाडा नही गया। शायद कोई पुरुष होता तो उसे अवश्य ही फाड देता। कच होता ता उसन निश्चय ही उसकी धज्जिया उडा दी

होती। लेकिन म आखिर स्त्री जो थी ! सौन्दर्य की पूजा स्त्री का मम होता है। वह किसी भी सुदर वस्तु का नाश नही कर सकती।

मुझे लगा, शायद चद्रमा भी उस वस्त्र का देखकर उसपर मोहित होकर आकाश म ही रुक गया है और अब वह हप के साथ हसन वाला है ! और फिर कल की पूर्णिमा आज ही आनेवाली है !

जल क्रीडा के बाद कल जब मैं यह वस्त्र पहन लूगी ता मेरा रूप-यौवन ऐसा निखर उठेगा इतना निखर उठेगा शर्मिष्ठा को बहुत घमड हो गया है कि उसका पिता एक राजा है ! जब भी देखो जसे भी हो कल के उत्सव म तो उसकी नाक नीचे करनी ही होगी ।

और जस शर्मिष्ठा की बस ही उस कच की भी ! उसका दिया हुआ यह वस्त्र *मैं नही फाडूगी ! लकिन उसकी स्मृतिया जगान वाली अय बातें* ।

मेरी नजर उद्यान के कोन म स्थित उस लता-कुज की ओर गई। वह कच का बहुत ही प्रिय स्थान था। उसे उखाडकर फेंक दिया जाए !

लेकिन वह कुज पिताजी को भी प्रिय है। कल प्रात यदि उन्होने उसके बारे म पूछा तो ? तो कुछ न कुछ कारण बता दूगी। यही कि गोशाला मे बधी वह कपिला गाय इन दिनो बहुत ही बेकाबू होती जा रही है। बडा उधम मचाती है। रस्सी तोडकर भाग निकलती है उछल कूद मचाती है कूदती फादती रहती है। सीग तानकर मारने दौडती है ! वही रात को रस्सी तोडकर भाग निकली होगी और इस कुज को उसीन बरबाद किया होगा ! एसा ही कुछ बता दूगी !

मैं उस लता कुज की ओर बढा हा थी कि पीछे स किसीने पुकारा देवी "

वह पुकार सुनकर मुझे बहुत अच्छा लगा। आखिर पिताजी की आदत बदल तो गई। वरना जब देखे, मुझे दव कहकर ही पुकार लिया करत थ न अपना देखते न पराया ! जस मैं उनका पुत्र हू ! कच क सामने जब व मुझे इस तरह पुकारत तो मैं लाज क मार गड जाती थी। मैंन कई बार उन्ह बताया काफी नाराज भी हुइ तो अब जाकर वही व मुझे देवी कहकर पुकारने लगे है। अब वे इसम कोई भूल नही करत। इन बुजुर्गों की बात भी बडी अजीब ही हुआ करती है। अब स आग आप कभी भी मुझे देव कहकर नहा पुकारग मैंन ज़िद की ! तो पिताजी बाले ठीक है। दव कह देने मात्र से तुम कोई दव तो बनोगी नहीं देवी ही रहोगी। उनस क्या कहती अपना सिर ? उनके जसे तपस्वी को भला यह कहा स मालूम होता कि तरुणी का मन कुम्हड बतिया जसा होता है और सीधी सादी बात स भी वह सकुचा जाता है ! य लोग तो आठो पहर किसी निराली ही दुनिया म मस्त रहत है !

पिताजी की उस पुकार का सुनत ही म ठिठक गइ। मुडकर देखा। वे धीरे धीर आग आए। पास आकर मरा चिबुक उठाकर मेरी आखो की गहराई नापन वाली नजर डालत हुए उन्हान पूछा बेटी अभी तक जाग रही हो ?"

नीद ही नहा आ रही पिताजी ! इसलिए सोचा थोडा बगीचे म उस

वस्त्र को पिताजी से कम छिपाया जाए इसी चिंता म जो मन म आया मैंने बोल दिया।

मेरी पीठ सहलाते हुए वे बोल, "जानता हू, बटी तुम्हारा दुख मैं जानता हू। दिल टूट जाने जैसा दुख "

कच की बात मेरे लिए जहर जसी लगन लगी थी। बात को बदलन क लिए मैंने बीच म कहा पिताजी, क्या मेरी आहट से आप जाग गए ?

उन्होने गदन हिलाकर ना कहा। फिर एक सिसकी निगलकर बाले 'वंशी पराभव का दुख मेरे मन म चुभता रहता है। मन म निश्चय जागता है कि फिर एक बार नये सिरे से घोर तपस्या करू और ऐसी नई विद्या प्राप्त करू जो दुनिया ने न कभी दखी होगी न सुनी होगी।'

तो फिर कीजिए न प्रारभ ? सजीवनी के लिए आपन तपस्या की तब मैं छोटी थी। यह नही जानती थी कि मेरे पिताजी इस ससार के सबसे महापुरुष है। अब की बार आप तपस्या के लिए बैठेंगे तब मैं स्वय आपकी सेवा करूगी आपका कष्ट कम हो एगा ।'

उन्होंने हसकर कहा, वह असम्भव है।'

उनकी इस बात पर मुझे उनपर बडा क्रोध हो आया। मैं बहुत ही छोटी थी तब मेरी मा चल बसी। तब से पिताजी ने ही मुझे पाल पोसकर बडा किया। लेकिन इसका अथ यह तो नही कि देवयानी को वे हमेशा एक तितली तपस्या म किसी काम न आनेवाली सुख की आदी और अपनी सेवा करने म असमथ मान लें। मेरे बारे म ऐसी गलत धारणा कर लने का उन्हे क्या अधिकार था ?

मैं डर रही थी कि कही ऐसा न हो कि पिताजी का ध्यान मेरे हाथ म सुरक्षित उस वस्त्र पर पड जाए और दिन रात दिल को जलानेवाली सारी स्मृतियो की आग उनके मन म और भी जोर से भभक उठे। किन्तु वे तो अपने ही विचारो म खो गए थे।

चारो ओर फली दूधिया चादनी की ओर देखते हुए वे बोल, देव

अ ह दवी

गई मैं तो भूल ही गया था!" हसत हसते उन्होने कहा 'मदिरा का उन्माद मुझे तपस्या क उन्माद क समान ही प्रिय था। किन्तु समय आन पर मैंने एक क्षण म मदिरा त्याग दी। किन्तु तुम्हारे बचपन से जिह्वा को जो आदत पड गई है न वह तुम्हारा नाम ।' वे कहते-कहते रुक गए। फिर बडी ही अकुलाहट से कहने लग यह शुक्राचाय सजीवनी का स्वामी था तब सारी दुनिया ये ताना लोक उसके नाम से भी आतकित थे। किन्तु आज वही शुक्राचाय दुनिया के हजारो जोगडो म से एक वैरागीमात्र बन बैठा है। नही बटी! मुझसे यह सब सहा नही जाता! नाखून और दात चले जाने के बाद शेर किसलिए जिन्दा रहे ?'

सजीवनी का हरणकर कच निकलो न पिताजी क कलेज पर कितना भयकर

आघात किया था ! इतने दिन बीत जाने पर भी उस घाव से अभी खून रिस ही रहा था।

पिताजी को धीरज बधाने के लिए मैंने कहा पिताजी दुबारा तपस्या कर आप अवश्य ही दूसरी उसी प्रकार की विद्या प्राप्त कर लेंगे !"

करूंगा अवश्य करूंगा। एक क्या दश विद्याए प्राप्त कर लूगा। किन्तु उनकी प्राप्ति के लिए अत्यंत उग्र तपस्या करनी पडेगी। तपस्या करते समय साधक के मन को सभी चिन्ताओ से मुक्त होना पडता है। मेरी पिछली तपस्या के समय तुम छोटी थी। अब तुम ब्याहने योग्य हो गई हो। तपस्या के सफल होने मे पता नही कितने वर्ष लग जाएगे ! भगवान शिवजी बडे ही मनमौजी देवता है !

किन्तु पिताजी '

मुझे पूरी बात करने का अवसर दिए बिना उन्होने कहा 'यही कहने जा रही हो न कि मेरी शादी की चिन्ता आप छोड दीजिए ? बेटी मा बाप का मन जानने के लिए मा बाप ही होना पडता है ! तुम घुटनो के बल रेंग भी नही सकती थी तब से मैं ही तुम्हारी मा और मैं ही तुम्हारा पिता हू। तुम्हारी अठखेलियो से मुझे ज्ञान और मदिरा दोनो का आनद मिला है। इन दो आनदो के परे की किसी दुनिया से मेरा कतई परिचय नही है। मेरे पास सजीवनी थी तब तो कोई भी ऋषि देवता राजा मेरा दामाद बनने के लिए चुटकियो मे तयार हो जाता ! किन्तु दानवो को जिताने के उन्माद मे उस बात की ओर मेरा ध्यान नहा गया। किन्तु आज बडी तपस्वियो का राजा तुम्हारा पिता एक कगाल भिखारी बन गया है ! मेरी बेटी को स्वीकार कीजिए ! कहकर दूसरो के सामने गिडगिडाने, उनके पाव पडने की नौबत मुझपर अब आने वाली है !

मुझे पिताजी पर विलक्षण क्रोध हो आया ! उनके पास सजीवनी थी वह जाती रही ! चली गई तो चली जाए ! देवयानी का निखरता रूप तो नही गया है न ? अपने सौन्दर्य के बल पर वह

मा बाप को अपनी सतान से बहुत ममता होती है ! किन्तु वह ममता अधी होती है। सतान के गुण दोषो को वह ठीक से देख नही सकती। गुण तो दिखाई देते ही नहा वरना क्या पिताजी के ध्यान मे न आता कि देवयानी के सौन्दर्य पर मोहित होकर तीनो लोको का कोई भी पुरुष उसके चरण चूमने लग जाएगा ?

किन्तु यह बात पिताजी को कैसे समझाई जाए ? कौन समझाए ?

मैं उन्हे उनकी कुटिया मे ले गई। किसी नन्हे बालक के समान उन्हें उनकी शय्या पर सुलाया। बडी देर तक उनके चरण दबाती बैठी रही।

मेरी बाई आख फडकने लगी। कहते है यह बडा ही शुभ होता है। मन ही मन मैंने अपनी आख से पूछा— क्या भई बात क्या है ? कल ऐसी क्या विशेष घटना होने जा रही है मेरे जीवन मे ?'

आख भला क्या उत्तर देती ? बस फडकती रही।

०

हम सारी सखियां वन में उस विशाल जलाशय के पास पहुंची। अन्य सखियां अपने वस्त्र उतारकर दासी के पास रखती हुई स्नान के लिए पानी में उतर गई। मेरे और शर्मिष्ठा के वस्त्रों को सभालने के लिए एक और दासी आगे बढ़ी। वह वस्त्र ही भारी थी। मैंने शर्मिष्ठा से पूछा "इसे किस संग्रहालय से ले आई हो?"

उसने हंसते हंसते उत्तर दिया "जिस विधाता ने तुम्हें और मुझे इस संग्रहालय में पैदा किया उसीने इसे भी यहां भेजा है"

मुझे उसका यह उत्तर कतई पसन्द नहीं था। चाहती तो वह मुझे कह सकती थी। किन्तु अपने साथ उस भाटी को पंक्ति में मुझे क्या घसीटा। सिवा ईर्ष्या के यह और कुछ भी नहीं है।

'शर्मिष्ठा के और मेरे वस्त्रों को अलग-अलग रखना।' उस मोटी दासी को चेतावनी देकर मैं पानी में उतर पड़ी। मेरे बाद दासी से कुछ कहकर शर्मिष्ठा भी आ गई।

जलाशय में मानो नीला आकाश क्रीड़ा के लिए उतर आया था। वनश्री उस पर चंवर डुला रही थी। अन्य सखियां कुछ दूर जाकर एक दूसरी पर पानी उछालती खेल रही थीं। लेकिन गहरे पानी में उतरने की उनमें से एक की भी हिम्मत नहीं थी। मैंने शर्मिष्ठा से हंसकर कहा "जल क्रीड़ा का अर्थ यह नहीं कि कलश के पानी से मार्जन कर लें। आओ हम तैरते तैरते कुछ दूर निकल जाएं। फिर इन डरपोक लड़कियों का भी कुछ हौसला बढ़ जाएगा। यह देख उस कमल के साथ हंस का वह जोड़ा खेल रहा है न? वो दो नन्हे-से सफेद बादलों का सा जोड़ा लग रहा है। चलो वहां तक जाकर वापस किनारे तक आएंगी। देखें कौन वहां जाकर पहले वापस किनारे पर लौट आती है। रही शर्त।"

शर्मिष्ठा खिलखिलाकर हंस दी। हम दोनों तैरने लगीं। उसे काफी पीछे छोड़ने के लिए मैं तेजी से हाथ मारती आगे निकल गई। मछली जैसी तैरती हुई काफी आगे निकल जाने के बाद मैंने मुड़कर पीछे देखा। शर्मिष्ठा आराम से पानी चीरती हुई चली आ रही थी—किसी कछुए के समान। अब उसकी काफी खासी फजीहत करने का अवसर मिलेगा इसी खुशी में मैं मन ही मन लट्टू हो रही थी। तैराकी की यह होड़ वह निश्चित हारने वाली है। हारकर जब वह किनारे आ जाएगी तो मेरा परिधान किया हुआ वह लाल वस्त्र देखकर और भी जल उठेगी।

तैरती हुई मैं उस कमल के पास पहुंच गई थी। शर्मिष्ठा अभी पीछे ही थी। किन्तु यकायक थकान-सा अनुभव होने लगी। लगा व्यर्थ ही इतनी जल्दबाजी की। कुछ देर सुस्ताने के लिए मैं रुकी। मुड़कर देखा तो शर्मिष्ठा बिलकुल पास आ रही था। मैं तुरन्त मुड़ी और वापस किनारे पर पहुंचने के लिए सारी शक्ति लगा

कर हाथ चलाने लगी। जाते जाते थोडा मजाक करने के लिए मैंने कमल के पास जा रही शर्मिष्ठा के मुह पर काफी पानी उछाला।

मैं तरती जा रही थी। किन्तु जिस वेग मे आई थी उतने वेग से लौट नही पा रही थी। सारे शरीर म थकान भरती जा रही थी। जाते समय तो जलाशय का पानी हसते बालक सा लगता था। आते समय वही पानी बौखलाकर उठा पटक म लगे बालक सा लग रहा था। उमपर बडी बडी लहरें हिलोरे ले रही थी। चन्द घडियो म ऐसा परिवतन क्यो मेरी समझ म नही आ रहा था। मैंने ध्यान से सामने देखा। जगल म बडी जोर की हवाए चल रही थी। लगता था वक्ष लताओ को कोई जोर-जोर स झकझोर रहा है। धूल भरी आधी उठने लगी थी। आकाश धूलि धूसरित हो रहा था।

मै घबरा गई। तभी शर्मिष्ठा पीछे से आकर जल्दी जल्दी पानी चीरती हुई मुझसे आगे निकल गई। मैंने उसे पुकारा। किन्तु उसने कोई उत्तर नही दिया।

शर्मिष्ठा मुझसे पहले किनारे पहुच गई थी। मैं मर गई हू या जिन्दा हू उसे कोई परवाह नही थी। पाच सात सखिया उसके चारो ओर जमा हो गइ। उनसे बातें करती करती वह दासी के पास पहुच गई और एक वक्ष की आड म गायब हो गई।

किनारे पर कदम रखते ही मैं सिर लटकाए चलने लगी। उहा सखियो ने मुझे घेर लिया और पूछा क्या शर्मिष्ठा ने शत जीत ली न ? वे सब मुझे चिढाने लगी। उनमे से दो को दूर हटाकर मैं उस दासी के पास गई। उसने मेरे वस्त्र सामने रखे। मुझे गुस्सा आ गया। वे मेरे वस्त्र नही थे ! कच का दिया हुआ वह सुदर वस्त्र जो मैं आज पहनने वाली थी उसे स्वामी ने शर्मिष्ठा को दे दिया था ! बेवकूफ कही की ! ' कहते हुए मैंने जोर स उसके मुह पर एक तमाचा मार दिया और वहा पहुच गई जहा शर्मिष्ठा वस्त्र बदल रही थी। मेरा वह सुदर वस्त्र – जो वसतोत्सव म पहनने के लिए मैंने इतने जतन स सुरक्षित रखा था — वह पहन चुकी थी ! मैं आपे स बाहर हो गई। उस वस्त्र का सिरा पकडकर मैं जोर लगाकर उसे खीचने लगी।

शर्मिष्ठा क्रोध स मेरी ओर देखती हुई बोली, 'यह कहा का तरीका है देवयानी ! शत हारने का गुस्सा मुझपर क्यो उतारे जा रही हो ? लगडी सो लगडी

मैंने भी तपाक स उत्तर दिया, मैं लगडी हू या लूली यह तो बाद म देखा जाएगा। पहले अपने अधेपन का इलाज करो। किसका वस्त्र पहन लिया है तूने ?

मेरा !'

'आखें फूटी है शायद ? यह वस्त्र मेरा है !

'युद्ध समाप्त होने के बाद इद्राणी ने यह मेरी मा को उपहार म भेजा था।

बस रात ही उसने मुझसे कहा था कि मेरे लिए यह निकालकर रख रही है !"

तेरी मा को इन्द्राणी की ओर से उपहार आते होंगे या किसी चुडैल की ओर से, मुझे कोई मतलब नहीं। इधर तो बडी-बडी डीगें हाकती है, और उधर दूसरे का वस्त्र चल, चुपचाप मेरा वस्त्र मुझे लौटा दे "

मैं नहीं दूगी ! तुम क्या कर लोगी ?'

वस्त्र खीचते हुए मैंने कहा, 'क्या कर लूगी ? जानती हो मैं कौन हू ?"

'हा, हा अच्छी तरह से जानती हू ! महाराज वृषपर्वा के दानो पर पल रहे एक भिक्षुक की बेटी हो तुम !"

शर्मिष्ठा ने पिताजी को भिक्षुक कहकर उनका भयकर अपमान किया था। क्या करू, क्या न करू बस उसका बदला चुका दू इसी सोच म मैं बेचैन हो उठी। किन्तु अत्यत क्रोध के कारण मेरे मुह से शब्द ही नहीं निकल पा रहे थे।

मुझे मौन देखकर वह और अधिक बौखला उठी। कहने लगी भिखमगी ! करती रह गुस्सा, पटकती जा अपना सिर पटक हाथ-पाव, इतने से भी जी नहीं भरता तो धरती पर उलट पुलट होती जा नहीं तो जीवन भर मुझसे जलती बैठ। तेरे क्रोध-लोभ का यहा किसे परवाह है ? आखिर मैं एक राजकन्या हू राजकन्या ! तू मेरे पिता के एक आश्रित की लडकी है। वह तो मेरे पिता की सज्जनता है जो तेरे बाप को 'गुरुदेव' कहते हैं। राज्यसभा म मेरे पिता सिंहासन पर बैठते हैं जब कि तेरा बाप मृगछाल पर ! इस अन्तर को फिर कभी न भुलाना समझी ?'

जी तो कर रहा था कि उसके बाल पकडकर उसे घसीटते घसीटते ले जाऊ और जगल के किसी पुराने कुए म ढकेल दू। किन्तु क्रोध के कारण मेरे हाथ-पाव कापने लगे थे। लगने लगा शायद मैं बेहोश होकर

हम दोनो म झगडा शुरू हुआ देखकर सखिया पास आ गई थी। मेरी रूप रूपी बधी देखकर वे मेरी खिल्ली उडाकर हसने लगी। मैं आग-बबूला हो उठी। उनके साथ-साथ शर्मिष्ठा भी ठहाका मारकर हसने लगी। मेरे मन मे अपमान का दावानल सुलग उठा। सोचा अभी इसी अवस्था म भागकर नगर म जाऊ ? पिताजी को सारा किस्सा सुना दू और कह दू उनसे कि अब इस नगर म पानी तक नहीं पिऊगी

मैं दौड पडी। पीछे से शर्मिष्ठा आवाज लगाती रही देवयानी ! रुको देवयानी ! देवयानी अरी सुनो तो !"

नीच दुष्ट उन्मत्त !

मैंने पीछे मुडकर भी नहीं देखा। घायल हिरनी की तरह जिधर राह मिली मैं जगल म भागने लगी।

शर्मिष्ठा भी मेरे पीछे दौडने लगी। शायद उसकी सारी सखिया भी पीछे-पीछे चली आ रही थी। उनके परो की आहट मुझे सुनाई दे रही थी किन्तु मैंने एक बार भी मुडकर नहीं देखा। मैंने मन ही मन निश्चय कर लिया था कि यह उद्दण्ड

और घमण्डी शर्मिष्ठा मेरे सामने नाक रगड़े तब भी उसे क्षमा नहीं करूंगी। अपना यह निश्चय मैं बार बार मन ही मन रट रही थी।

किन्तु थोड़े ही क्षणों में मेरा वेग मंद पड़ गया। मैं जान गई कि अब शर्मिष्ठा मुझे पकड़ लेगी। कुछ समय पूर्व तैरने में उसने मेरा पराभव किया था! अब दौड़ने में भी! नहीं! प्राण चले जाएं तब भी मैं उसके हाथ नहीं आऊंगी। लेकिन कैसे सूझ नहीं रहा था।

मैंने मुड़कर देखा। मुझमें और शर्मिष्ठा में अब बहुत ही थोड़ा अन्तर रह गया था। दौड़ती रहने से अब कोई लाभ न था। मैंने इधर उधर देखा। पास ही एक काफी चौड़े मुंह वाला और घास लताओं से ढका हुआ एक कुआं दिखाई दिया। उसमें पता नहीं पानी कितना था! मैं उसके किनारे पर जा खड़ी हुई। शर्मिष्ठा मेरे पास आई। गिड़गिड़ाती अनुनय करने लगी। मेरा हाथ पकड़ने लगी। मैंने हाथ झिटकाकर कहा तुम राजकन्या हो मैं एक भिक्षुक की बेटी हूं। मुझे तो तेरे द्वार पर भीख मांगने आना चाहिए था है न? फिर अब क्या?'

उसने कहा देवयानी मैं मैं '

मैं हिरनी बनकर भागी थी अब शेरनी बन गई! आवेग और जोश से मुड़कर मैंने अपना वह वस्त्र जो उसने पहन लिया था जोर में खींच लिया और कहा मेरा वस्त्र पहनकर मेरा ही अपमान करती हो? मेरे पिताजी के बूते पर जीकर उन्हें भिक्षुक कहती हो? चल उतार उतार दे यह मेरा वस्त्र! मेरा है वह! दे दे मुझे उतार

अरी लेकिन ऐसा हो वह कुछ कुनमुना रही थी। शायद डर रही थी कि कहीं वस्त्र कमर से छूटकर गिर न जाए!

मैं वस्त्र को खींचकर जोर से चिल्लाई उतार उतार दे इसे! उतारती है या नहीं?

अगले दस पांच क्षणों में मैं क्या-क्या बोलती रही क्या-क्या करती रही शर्मिष्ठा ने क्या कहा क्या किया मुझे याद भी नहीं है। एकदम कोई मां की चीख मुझे सुनाई दी। क्या वह चीख शर्मिष्ठा की थी? क्या मैंने उसे उस कुएं में धकेल दिया था? नहीं! वह तो मेरी अपनी चीख थी! उस चाण्डालिनी ने मुझे कुएं में धकेल दिया था!

बीच में कितना समय गुजर गया नहीं जानती! मैं घास लताओं से ढके उस कुएं में गिरी हूं नहीं! शर्मिष्ठा ने मुझे कुएं में धकेल दिया है इस बात का चेत आया तब मैं पानी में खड़ी थी। कुआं काफी गहरा था। किन्तु उसमें पानी कमर तक ही था। घने जंगल में एक बीहड़ स्थान पर था वह कुआं! लताओं ने उसे आधे से अधिक ढक रखा था। इसलिए भीतर ठीक से दिखाई भी नहीं देता था। हो सकता है इस वीरान कुएं में नाना तरह के जहरीले सांप हों। मन में यह कल्पना आते ही मेरे रोंगटे खड़े हो गए। तभी किसी के कुएं में कूद पड़ने की आवाज आई! अब तो मेरे काटो तो खून नहीं! आखिर जान मुट्ठी में किए मैंने

उम तरफ गया जिधर स वह आवाज आई थी। ध्यान स दखा वह एक मढकी थी।

म जार स चिल्लाई, अरे काइ मुझ बाहर निकालो।" एक बार दो बार तीन बार मैं चिल्लाइ। कुछ रुककर फिर चिल्लाइ, 'देवयानी कुए म गिर गई है। शुक्राचाय की कया दवयानी कुए म गिरी है।' बडी आशा से मैंने ऊपर दखा। किसान भी ऊपर स नहीं झाका। कोई उस कुए क पास स गुजरा तक नही। मुझे कुए म धकलकर शर्मिष्ठा अपनी सहेलिया क साथ नगर चली गई थी शायद। वह बहुत ही निलज्ज है। किन्तु अय लडकियो को क्या नही चाहिए था कि वे थोडी मनुष्यता दिखाती? अपनी एक सखी कुए म गिरी है वह जिन्दा है या नही यह बिना दख ही सबकी सब चली गइ।

मरा मन जल रहा था। कुए स शायद कभी किसीने पानी निकाला ही न था। वह बहुत ही ठण्डा था। उसम खडी होने क कारण मुझे जाडा लगन लगा। मैं कापने लगी। मन म एक ओर तो प्रतिशोध की आग जल रही थी और दूसरी ओर भय का घना अधेरा छा गया था।

मैं बार बार चिल्लाई। लकिन उस बीहड जगल म कस कोई मरी गुहार सुन पाता! अब तो लगन लगा कि मैं इसी तरह इस पानी म ठिठुरती रहूगी थाडी दर बाद बहोश हो जाऊगी और फिर इसी पानी म डूबकर मर जाऊगी। इस कल्पना मात्र स मैं छोटी बच्ची की तरह फूट फूटकर रोने लगी।

बीच ही म सुनाई दिया, भीतर कौन है?"

वही दुष्ट बहया शर्मिष्ठा शायद बडी कृपालु बाकर आई थी। मैंन तुरन्त रोना बद कर दिया, किन्तु उस प्रश्न का कोई उत्तर नही दिया।

कुए के कगार पर खडे होकर उसक मुह पर घिर आई बेलिया के झखाड को दोनो हाथो स हटात हुए कोई भीतर झाककर पूछ रहा था 'भीतर कौन है?

वह आवाज मर्दानी थी। पिताजी की? नही। महाराज वृषपर्वा की? ज ह। आवाज तो निश्चय ही किसी पुरुष की थी। किन्तु सवथा अपरिचित थी। मैंन भीतर स ही प्रश्न किया कौन पूछ रहा है?"

ययाति!'

मैं कोई सपना तो नही देख रही थी? अत्यत उत्सुकता स मैंने पूछा 'हस्तिनापुर के महाराज ययाति?'

जी हा! हस्तिनापुर का राजा ययाति हू मैं। शिकार खेलते खेलत बहुत दूर निकल आए हम इस बीहड जगल म। प्यास बहुत लगी थी सो पास ही रथ रोककर हम पानी की खोज म निकल पडे। मरा सारथी दूसरी ओर गया है। दूर स लगा कि शायद यहा कुआ है। इसलिए इधर आ गए। अच्छा छोडो इन बातो को आप कौन ह?"

'आप नही, तुम कहिए!'

क्या मतलब?'

वह तो मैं बाद म बता दूगा। पहल महाराज मुझ कुए से बाहर तो निकाल। जाडे के मारे मैं बुरी तरह स ठिठुरती जा रही हू। कि तु किन्तु आप भला इस कुए म क से उतर पाएगे ?'

ऊपर स ठहाका मारने की आवाज़ सुनाई दी और उसके पीछे पीछे ही मीठे शब्द आए ययाति बचपन से ही धनुर्विद्या सीख चुका है। उसके चमत्कार भी।

वन्मन्त्र का-सा कुछ उच्चारण ऊपर से सुनाई दिया। उसके पीछे पीछे ही आभास हुआ कि पानी म कुछ आ गिरा है। जल्दी जल्दी तरगे उठने लगी। दूसरे ही क्षण लगा कि मैं एक कमल के अन्दर खडी हू। यह तो धनुर्विद्या का सजीवनी विद्या जसा ही चमत्कार था। ऊपर आते आते मैंने देखा कि बाणा का कमल जसा एक पलना सा बना लिया गया है और उसने खडी होकर मैं ऊपर आ रही हू।

वह तीर कमल कुए के मुह तक आकर रक गया। सामने खडे महाराज ययाति की ओर मैंन ध्यान स देखा। कच के अलावा इतना सुन्दर पुरुष मैंने पहल कभी देखा नही था। उनके रोबदार शरीर के कारण राजवस्त्रो की शोभा बढी थी। मुझे लगा कि पुरुष क गले म रुद्राक्ष की माला की अपक्षा रत्नमाला ही अधिक सुहाती है।

यह ध्यान म आत ही कि महाराज ययाति मरी ओर एकटक देख रहे है मैं शरमा गई। गदन झुकाकर धरती की ओर देखने लगी। मेरा गीला वस्त्र बदन से एकदम चिपक सा गया था जो अनजाने ही मेरे सौदय को और भी निखार रहा था। शर्मिष्ठा ने कुए म धकेलकर मुझपर कितना बडा उपकार किया था। मैं सद्य स्नाता न होती तो क्या इतन पराक्रमी और ऐश्वय सपन्न राजा से आखें चार होते ही उसकी नजरो म यो समा जाती

मैं गरदन झुकाए नीचे ही देखती खडी थी। महाराज न हसत हसत पूछा क्या इस अप्सरा का नाम हम जान सकते है ?

'अप्सरा नही हू मैं।'

मानो। इस धरती पर भी इतनी सुन्दर स्त्री '

मेरे सौन्दय न महाराज का मन जीत लिया था। इस सौन्दय के पलडे म थोडा और भार डालन की आवश्यकता थी। कुछ सिर उठाकर मैंन महाराज पर एक तिरछी चितवन डाली और फिर नीचे देखती हुई बोली मैं शुक्राचाय की कन्या देवयानी हू।'

शुक्राचाय की ? दैत्य गुरु शुक्राचाय की कन्या हो ?'

जी।

मैं आज आपक

'उ हू। तुम्हार '

महाराज न हसत हुए कहा मैं आज शुक्राचाय जी के थोडे काम तो आया! शिकार का सारा कष्ट सफल हो गया।"

किन्तु मैं आपका यानी कष्ट और न पानी हूँ।'

बहुत आनंद होगा। कहिए ?'

मैं इस कुएँ से बाहर कैसे आऊँ ?"

'मतलब ?'

मुझे डर लग रहा है। बाहर आते जाते मैं गलती से फिर कुएँ में गिर गई तो ?'

'मैं तुम्हें फिर ऊपर ले आऊँगा।

तो मैं फिर गिर पड़ूँगी।'

मैं तुम्हें फिर निकाल लूँगा।

हम दोनों हँसने लगे। हँसते-हँसते मैंने धीरे से गर्दन उठाकर देखा। भीगे वस्त्रों के कारण अधिक ही निखरी मेरी आकृति पर उनकी आँखें गड़ी थीं।

मैंने धीरे से अपना दायाँ हाथ आगे बढ़ाया। महाराज ने भी अपने दायें हाथ से उसे पकड़ा। मैं बाहर कुएँ के कगार पर आ गई। वे मेरा हाथ छोड़ने लगे। पैर के नाखून से मिट्टी कुरेदते हुए मैंने कहा हम तरह आप हाथ छुड़ा नहीं सकते अब। आपने मेरा पाणिग्रहण किया है।

वे चौंक गए यह कैसे संभव है ? तुम ब्राह्मण कन्या हो मैं क्षत्रिय-कुमार हूँ। इस तरह का विवाह "

इस तरह के अनेक विवाह इससे पहले भी हुए हैं महाराज। लोपामुद्रा का उदाहरण '

नहीं।'

मैंने हँसकर कहा, "भाग्य को यही मंजूर है महाराज कि मैं आपकी रानी बनूँ। वरना आज आप इस जंगल में क्या आते ? बिलकुल इसी कुएँ के पास क्या आते ? पूर्वजन्म के संबंधों के बिना ऐसी बातें क्या कभी होती हैं ?'

किन्तु सुन्दरी '

किन्तु-परन्तु कुछ नहीं। महाराज आपका दर्शन हुआ उसी क्षण अपना हृदय मैं आपके चरणों में अर्पण कर चुकी हूँ। आप उसे स्वीकार कीजिए या ठुकरा दीजिए। आपने मुझे अपनाया नहीं तो मैं हिमालय की किसी गुफा में जा बैठूँगी और आपके नाम की माला जपती हुई अपना जीवन बिता दूँगी। स्वप्न में भी जिसने पराये पुरुष का स्पर्श नहीं किया हो ऐसी मेरे जैसी कुआरी लड़की क्षण भर के लिए भी अपना हाथ किसके हाथ में भला क्या देगी ?'

'किन्तु देवयानी तुम्हारे पिता त्रिभुवन में पूज्य महान ऋषि हैं। उन्हें यह बात पसन्द न हो तो

उसकी चिंता आप बहुत-बहुत पहली बातें याद कर मैं रुक गई और बोली मैं भी क्या पागल हूँ। यह तो भूल ही गई कि आपको प्यास लगी है। पास ही में बड़ा अच्छा मीठे पानी वाला झरना है

मेरी ओर लुभावनी नजर से देखते हुए उन्होंने कहा 'तुम्हारी तरफ देखते

दगत भूख प्यास सब कुछ भुला बैठा हूं मैं ! निकला तो था मैं किसी सुदर हिरनी का शिकार करने ! लेकिन हो गई बात उल्टी ही ! उसीने मेरा शिकार कर लिया !'

मैं हंसी और शरमा गई। नीचे देखती हुई मैं मन ही मन बोली पिताजी जैसे लोगों को केवल तपस्या ही करनी चाहिए ! उन्हें क्या मालूम कि दुनिया किस कील पर घूमती है ? कल रात ही पिताजी मेरे विवाह की चिन्ता कर रहे थे ! अब जब मैं देवयानी के नाते नहीं हस्तिनापुर की महारानी के नाते उनके चरण छूने जाऊंगी तो उनकी मुद्रा कैसी दर्शनीय होगी !

काश ! वह छलिया कच भी आज यहां होता ? मैंने उससे आज यह जो प्रतिशोध ले लिया है उसे देखकर कैसा जल भुनकर रह जाता ! वाकई प्रतिशोध भी कितना सुन्दर हो सकता है !

o

महाराज कह रहे थे कि रथ में बैठकर चलें और यह सारा मामला पिताजी को सुना दें। किन्तु मैं वहां कदम तक रखना नहीं चाहती थी जहां शर्मिष्ठा राजकन्या के नाते अब भी शान बघारती घूम रही है ! उसने मेरा अक्षम्य अपमान किया था। महर्षि को भिक्षुक कहकर पिताजी का भी असहनीय अपमान किया था। मैं बहुत चाहती थी कि उसे बता दूं मैं भिक्षुक की लड़की नहीं हस्तिनापुर की महारानी हूं ! किन्तु उतने मात्र से उससे प्रतिशोध पूरा नहीं होगा ! उसका अपराध कड़ा था। जैसा अपराध वैसा ही दंड ! मैंने निश्चय कर लिया शर्मिष्ठा को ऐसा दण्ड जिसे वह जीवन भर याद रखे लिए बिना नगर में कदम नहीं रखूंगी। महाराज के सारथी के साथ सन्देशा देकर पिताजी को ही यहां क्या न बुला लिया जाए

किन्तु सारथी से यह सन्देशा कहने की आवश्यकता ही न पड़ी। ठीक उसी समय धूल उड़ाता एक रथ जल्दी-जल्दी वहां आ पहुंचा। हमसे थोड़ी ही दूरी पर वह रुका। रथ से पिताजी और महाराज वृषपर्वा उतरे। बहुत दिनों बाद मिली मां से लिपटने के लिए बच्चा जिस फुर्ती से दौड़ता है न उसी फुर्ती से पिताजी आगे बढ़े। मुझे सीने से लगाकर मेरा माथा सहलाने लगे। अभिमान और आनन्द से मैंने आंखें मूंद लीं। तभी लगा कि मेरा एक गाल शायद गीला हो गया है। मैंने धीरे से पलकें उठाकर देखा पिताजी की आंखें छलकने लगी थीं। अपनी लाडली बेटी को सुरक्षित पाकर तपस्वी शुक्राचार्य मान खो बैठे थे और आनन्द के आंसू बहा रहे थे। ययाति महाराज यह दृश्य भावविभोर होकर देख रहे थे। मैंने अपने आपको कितना धन्य समझा उस समय !

बड़ी कष्ट से अपनी सिसकी रोककर पिताजी ने कहा देव "

ऊपर देखते हुए आंखें कुछ तरेरकर मैंने कहा अं हूं देवी

पिताजी ने क्षीण मुस्कराहट से कहा अच्छा अच्छा देवी '

उनसे दूर होते हुए मैंने कहा "देवी अब आपकी नहीं रही पिताजी!
मतलब?"

मैंने महाराज ययाति की ओर लजीला और अर्थपूर्ण कटाक्ष फेंका और तुरन्त सिर झुकाकर खड़ी रही।

महाराज ययाति ने आगे बढ़कर पिताजी का अभिवादन किया। महाराज ने और मैंने मिलकर पिताजी को सारा हाल सुनाया कि वे कौन हैं, ठीक समय पर यहां कैसे पहुंच गए और उनके आने से हो मेरे प्राणों की रक्षा किस तरह हो पाई! सुनकर पिताजी को परम हर्ष हुआ। हम दोनों को हार्दिक आशीर्वाद देते हुए वृषपर्वा की ओर मुड़कर उद्धत ढंग से कहा "कभी-कभी भाग्य भी संकट का रूप लेकर आता है। आज का यह मंगल अवसर भी उसी तरह का है। राजा इनके विवाह-समारोह की तैयारियां करो। सारे नगर को सजाओ। दानवों के लिए परम आनन्द का दिन है यह! इस ससुराल विदा किया कि यह शुक्राचार्य फिर नई तपस्या के लिए मुक्त हो जाएगा। लगता है बीच में रूठ गया भाग्य फिर प्रसन्न हो रहा है। चलिए ययाति महाराज इसी रथ में बैठकर हमारे नगर में पधारिए। देवी तुम आओ चलो!"

मैं टस से मस न हुई। एक शब्द भी मुंह से नहीं निकला।

वृषपर्वा आगे आकर मुझसे कहने लगे "बीती बात बिसार कर"

मैंने बल्लाकर कहा "घाव करने वाले के लिए उसे बिसारना आसान हो सकता है किन्तु जिसके मन पर घाव हो जाता है वह उसे कदापि बिसार नहीं सकता! प्राणान्तक वेदनाओं में वह तड़पता रहता है। आपकी बेटी ने आज मुझे कुएं में धकेलकर मेरी जान लेने की कोशिश की। इस बात को भी मैं शायद सह लेती। किन्तु पिताजी के बारे में उसने जो अनाप-शनाप बकवास की है उसी को ठेस पहुंचाने वाली जो बातें कीं हैं"

पिताजी ने कड़कते हुए पूछा "क्या कहा शर्मिष्ठा ने?"

मैंने कहा "पिताजी वह सब मैं आपको किस मुंह से सुना सकती हूं? उसने उपहास भरा उलाहना देकर मुझसे कहा "तेरा बाप एक भिक्षुक मात्र है जबकि मैं एक राजकन्या हूं। तेरा बाप मेरे पिताजी की राजसभा में एक भाट, एक याचक और एक चापलूस के नाते खड़ा होता है। मेरे पिताजी के सामने हाथ जोड़कर वह गिड़गिड़ाता'"

वृषपर्वा आगे आकर अत्यंत नम्र भाव से बोले "गुरुदेव शर्मिष्ठा भी अभी तुम्हारी तरह ही छोटी है। एक वस्त्र को लेकर तुम दोनों में झगड़ा कैसे आरम्भ हो गया यह सारा हाल उसने भी मुझे बताया है। छोटों को लिहाज नहीं हुआ करता। भान नहीं रहता और बात में बात बढ़ जाती है"

उसने मुझे कुएं में धकेल दिया इसमें भी क्या उसका कोई अपराध नहीं

एसा किसन कहा है ? किंतु क्रोध अधा हुआ करता है ! शर्मिष्ठा के अपराध के लिए म हाथ जोड़कर तुमसे क्षमा-याचना करता हूं ! '

क्षमा-याचना तो मेरे पिताजी जसे भिक्षुक को करना चाहिए आप जसे राजा को नही ! पिताजी को जरूरत होगी तो वे नगर म वापस जा सकते हैं। लकिन जहा उनका और मेरा इतना घोर अपमान किया गया वहा मैं तो अब कदम रखने से रही !' तुरत महाराज ययाति की ओर मुडकर मैंने कहा चलिए महाराज अब यहा पल भर भी रुकने का कोई मतलब नही। बचपन से मैंने सुन रखा था कि मायके स विदा होते समय लडकियो के आसू थामे नही थमते। किंतु मुझे मायका छोडते समय बडी खुशी हो रही है। जहा मेरे प्राण लेने की कोशिश की गई तपस्वी के नाते त्रिभुवन म विख्यात मेरे पिताजी को भिक्षुक कहकर जहा ऐश्वय के नशे म चूर एक छोकरी ने अपमानित किया वहा पानी तक पीने के लिए रुकने को भी अब मैं कतई तयार नहीं !'

और राजा मैं भी ! अब तक स्तब्ध रहे पिताजी भी उबल पडे तपस्या करने वाले के लिए इस हिमालय म हजारो गुफाए पडी हैं। उसे तुम्हारे इस राज्य की ही आवश्यकता हो सो बात नही ! जिसके बल पर तुम दानव लोग आज तक जीत रहे और जिसकी तपस्या के बल पर फिर अपना सिर उठा सकने की आस तुम लोगो ने सजाई है उसीका अपमान करते समय और उसकी बेटी के प्राण लेने का प्रयत्न करते समय '

वृषपर्वा ने बीच म ही उन्ह रोककर कहा गुरुदेव देवयानी को कुछ गलत फहमी

पिताजी ने गरजकर कहा यह लो मैं चला। न्याय-अन्याय का निणय करने के लिए मेरे पास समय नही है !

वृषपर्वा ने घुटने टेककर पिताजी के पाव पकडते हुए कहा गुरुदेव ने ही हमसे इस तरह मुह फेर लिया तो हम समुद्र म डूब मरने के अलावा चारा ही क्या रह जाएगा ? शर्मिष्ठा ने भयकर अपराध किया है। गुरुदेव उसे जो चाहे दण्ड दें ! चू तक न करते हुए मैं उस दण्ड का पालन करवाऊगा। अभी इसी क्षण मैं उसे यहा बुलवा लेता हू। आपके और गुरुकन्या के सामने सौ बार हाथ जुडवाता हू। दोनो से क्षमा मागने के लिए कहता हू। यह दण्ड पर्याप्त नही है तो उसे इसी क्षण दानवो के राज्य से निकाल बाहर करता हू !'

उसने देवयानी का अक्षम्य अपराध किया है। यह उसे जो भी दण्ड देती है वह तत्काल भोगने के लिए शर्मिष्ठा तयार हो जाए तभी मैं वापस नगर आऊगा !

वृषपर्वा मेरी ओर मुडकर बोले 'गुरुकन्ये तुम दोगी वही दण्ड

मैंने उन्ह बीच म रोककर कहा महाराज वचन वही दिया जाए जिसका पालन किया जा सके। मैंने दण्ड सुना दिया और आप उसे अमान्य कर गए तो ?

जो भी हो तुम आखिर शर्मा की सन्तान हो। बचपन से तुम दोनो साथ साथ

बनी हो। यह कैसे सम्भव है कि तुम उसे कोई ऊटपटांग सजा दोगी ? मैं गुरुदेव के चरणों की सौगन्ध उठाकर तुम्हें वचन देता हूं कि शर्मिष्ठा को तुम जो भी दण्ड दोगी वह मैं आनन्द के साथ

शर्मिष्ठा के वे उद्दण्ड शब्द— मैं राजकन्या हूं तुम एक भिक्षुक की बेटी हो' अब तक मेरे कानों में गूज रहे थे। मन कह रहा था उस घमण्डी लड़की को अच्छी खासी सजा मिलनी चाहिए। राजकन्या होने की मस्ती चढ़ी है न उसपर ? अपने ऐश्वर्य के मद में वह गरीबों का उपहास करती है न ? ठीक है ! उसकी सारी मस्ती उसका वह सारा मद क्षण भर में नष्ट कर सकने वाली ही सजा उसे

मेरे मुंह से निकल गया शर्मिष्ठा को मेरी दासी बनाना होगा !

क्या कहा ? दासी ? ' एकदम काले स्याह पड़े वृषपर्वा महाराज के मुंह से अत्यंत कष्ट में बस यही शब्द निकल पाए !

मैं जीत गई थी। मैंने ऊंची आवाज़ में कहा हां शर्मिष्ठा को मेरी दासी बनना होगा ! हस्तिनापुर की इस महारानी की दासी बनना पड़ेगा ! जीवन-भर दासी बनकर मेरी सेवा करती रहने के लिए उसे अभी इसी समय मेरे साथ ही हस्तिनापुर चलना पड़ेगा !

एमा किसने कहा है ? किन्तु न्याव जवा हुआ करता है। शर्मिष्ठा के अपराध के लिए मैं हाथ जोडकर तुमसे क्षमा-याचना करता हू।

क्षमा याचना तो मेरे पिताजी जसे भिक्षुक को करनी चाहिए, आप जसे राजा को नही। पिताजी को जरूरत होगी तो व नगर म वापस जा सकते है। लेकिन जहा उनका और मेरा इतना घोर अपमान किया गया वहा मैं तो अब कदम रखने स रही। तुरत महाराज ययाति की ओर मुडकर मैंने कहा चलिए महाराज अब यहा पल भर भी रुकने का कोइ मतलब नही। बचपन स मने सुन रखा था कि मायके से विदा होते समय लडकियो के आसू थामे नही थमते। किन्तु मुझे मायका छोडते समय बडी खुशी हो रही है। जहा मेरे प्राण लेने की कोशिश की गई तपस्वी के नाते त्रिभुवन म विख्यात मेरे पिताजी को भिक्षुक कहकर जहा ऐश्वय के नशे म चूर एक छाकरी ने अपमानित किया वहा पानी तक पीने के लिए रुकने को भी अब मैं कतई तयार नही।

और राजा, मैं भी। अब तक स्तब्ध रहे पिताजी भी उबल पडे तपस्या करने वाल के लिए इस हिमालय म हजारो गुफाए पडी हैं। उसे तुम्हारे इस राज्य की ही आवश्यकता हो सो बात नही। जिसके बल पर तुम दानव लोग आज तक जीत रहे और जिसकी तपस्या के बल पर फिर अपना सिर उठा सकने की आस तुम लोगो ने सजोई है उसीका अपमान करते समय और उसकी बेटी के प्राण लेने का प्रयत्न करते समय '

वपपर्वा ने बीच म ही उन्हे रोककर कहा गुरुदेव देवयानी को कुछ गलत फहमी '

पिताजी ने गरजकर कहा यह लो मैं चला। न्याय-अन्याय का निणय करने के लिए मेरे पास समय नही है।

वपपर्वा ने घुटने टेककर पिताजी के पाव पकडते हुए कहा गुरुदेव ने हा हमसे इस तरह मुह फेर लिया तो हम समुद्र म डूब मरने के अलावा चारा ही क्या रह जाएगा ? शर्मिष्ठा ने भयकर अपराध किया है। गुरुदेव उसे जो चाहे दण्ड दें। चू तक न करते हुए मैं उस दण्ड का पालन करवाऊगा। अभी इसी क्षण मैं उसे यहा बुलवा लेता हू। आपके और गुरुकन्या के सामने सौ बार हाथ जुडवाता हू। दोनो से क्षमा मागने के लिए कहता हू। यह दण्ड पर्याप्त नही है तो उसे इसी क्षण दानवो के राज्य स निकाल बाहर करता हू।'

उसने देवयानी का अक्षम्य अपराध किया है। यह उसे जो भी दण्ड देती है वह तत्काल भागने के लिए शर्मिष्ठा तयार हो जाए तभी मैं वापस नगर आऊगा।

वपपर्वा मेरी ओर मुडकर बोले गुरुकन्ये तुम दोगी वही दण्ड '

मैंने उन्हे बीच म रोककर कहा महाराज वचन वही दिया जाए जिसका पालन किया जा सके। मैंने दण्ड सुना दिया और आप उसे अमान्य कर गए तो ?"

जो भी हो तुम आखिर क्षमा की सहती हो। बचपन म तुम दोनो साथ साथ

बनी हो। यह कैसे सम्भव है कि तुम उसे कोई ऊटपटांग सजा दोगी ? मैं गुरुदेव के चरणों की सौगंध उठाकर तुम्हें वचन देता हूं कि शर्मिष्ठा को तुम जो भी दण्ड दोगी, वह मैं आनन्द के साथ '

शर्मिष्ठा के वे उद्दण्ड शब्द— मैं राजकन्या हूं, तुम एक भिक्षुक की बेटी हो' अब तक मेरे कानों में गूंज रहे थे। मन कह रहा था उस घमण्डी लड़की को अच्छी खासी सजा मिलनी चाहिए। राजकन्या होने की मस्ती चढ़ी है न उसपर ? अपने ऐश्वर्य के मद में वह गरीबों का उपहास करती है न ? ठीक है ! उसकी सारी मस्ती, उसका वह सारा मद, क्षण भर में नष्ट कर सकने वाली ही सजा उसे

मेरे मुंह से निकल गया शर्मिष्ठा को मेरी दासी बनाना होगा !'

'क्या कहा ? दासी ?" एकदम काले स्याह पड़े वृषपर्वा महाराज के मुंह से अत्यंत कष्ट से बस यही शब्द निकल पाए।

मैं जीत गई थी। मैंने ऊंची आवाज में कहा हां, शर्मिष्ठा को मेरी दासी बनना होगा ! हस्तिनापुर की इस महारानी की दासी बनना पड़ेगा। जीवन भर दासी बनकर मेरी सेवा करती रहने के लिए उसे अभी इसी समय मेरे साथ ही हस्तिनापुर चलना पड़ेगा।"

শর্মিষ্ঠা

शर्मिष्ठा

ये घटे चले। इन घटिकाओं में से एक बीत गई! अब केवल एक घटिका शेष है। इसी एक घटिका में—इतने कम समय में—मुझे जीवन का निर्णय करना है! देवयानी की दासी बनूं या

पिताजी का यह पत्र सामने पड़ा है। अपनी लाडली बेटी को लिखा उनका यह पहला पत्र है! आज तक उनकी शर्मा उन्हें छोड़कर कहीं दूर गई ही नहीं! फिर भला उन्हें पत्र लिखने का अवसर उन्हें मिलता कैसे? वह अवसर आज मिला। लेकिन कितने विचित्र ढंग से मिला। उस तरफ वाले महल में पिताजी और इस तरफ वाले महल में शर्मिष्ठा! हम दोनों इतने समीप थे फिर भी मुझे उन्हें यह पत्र भेजने के लिए विवश होना पड़ा है! लगता है, यह प्रसंग पूर्वजन्म के बैरी की तरह वैमनस्य पूरा करने आया है!

आज वसंतोत्सव के पहले दिन

आज का अरुणोदय बचपन की भांति खिड़की में से मुझपर गुलाल उछालता ही तो आया था। शय्या पर पड़े पड़े मैं उसे जी भर कर देख रही थी। तभी मन ही मन में शरमा गई! लगा कि वह अरुण विवाह के पवित्र हवन की ज्वाला है। फिर रात को सोने के लिए जाते समय मां ने जो ठिठोली की थी उसका स्मरण हो आया। मुझे प्यार से सहलाते हुए मां ने कहा था, "शर्मा, चलो यह अच्छा ही हुआ कि यह युद्ध समाप्त हो गया! अब आर्यावर्त का कोई अच्छा सा राजा ढूंढकर... सुना है हस्तिनापुर के राजा ययाति बहुत शूर और गुणवान हैं! बचपन में ही अश्वमेध का घोड़ा लेकर वे दिग्विजय के लिए गए थे। कहते हैं देखने में भी वह बहुत सुंदर हैं, मेरे इस नाजुक फूल के लिए एकदम अनुकूल!" उसकी ये बातें सुनकर, "हटिए मां, ऐसा भी क्या!" कहकर मैंने सिर पर चदरिया ओढ़ ली। किंतु सारी रात मधुर मधुर स्वप्नों के हिंडोलों पर मैं झूलती घूमती रही थी। उनमें से एक हिंडोला तो मुझे सीधे हस्तिनापुर ही ले गया था—महाराज ययाति की पटरानी बनाकर!

अरुणोदय के समय मैं जाग गई तब भी इसी स्वप्न का नशा सा मुझपर छाया हुआ था।

किंतु जीवन भी कितना भीषण है! परस्पर कितना विरोधपूर्ण! स्वप्न की अपेक्षा सत्य कितना कठोर होता है! आज प्रातः प्रांगण में उदित सूर्य अभी

पश्चिम की ओर झुका भी नही कि मुझे हस्तिनापुर जाना पड़ रहा है! उसी महाराज ययाति के राजमहल म—किंतु उनकी पटरानी बनकर नहीं बल्कि उनकी महारानी की दासी बनकर!

सुबह जल क्रीडा के समय मेरे मुह से ऐसी ऐसी बातें निकल गई जो नही निकलनी चाहिए थी! देवयानी के दिल को ठेस पहुचाने वाली काफी बातें मैंने कही थी! लेकिन मैं भी क्या करू? मन जीभ सभी कुछ उस समय बेकाबू हो गया था! मैं बचपन से ही देख रही हू देवयानी ने मुझे अपमानित करने का एक भी अवसर हाथ से जाने नहीं दिया है! वह मेरे जैसी राजकन्या न होकर एक ऋषि कन्या बनी इसमे मेरा तो कोई अपराध नहीं। किंतु जब और जहा भी देखो कदम कदम पर वह हमेशा यही सिद्ध करने की जिद करती रही है कि देवयानी शर्मिष्ठा से श्रेष्ठ है।

हम दोनो तीन चार वर्ष की थी। दासिया हम नौका विहार के लिए ले गई थी। देवयानी मुह झुकाकर पानी मे झाकने लगी। फिर तालिया पीटती हुई मुझसे कहने लगी अली छमा देखो तो य कौन छोटी सी सुदर लडकी मुझे अपने साथ खेलने के लिए बुला रही है! मैंने भी झुककर पानी म झाका। मुझे भी मेरे जसी ही एक लडकी हसकर बुला रही थी। मैंने कहा देखो मुझे भी एक खूबसूरत लडकी बुला रही है! देवयानी ने नाक सिकोडकर कहा ऊह! तेरी लडकी घटिया है मेरी बढिया ह!

हम दोनो आठ दस वर्ष की हो गइ। वसतोत्सव म खेले जाने वाले एक प्रहसन म गुरुजी ने हम दोनो को भूमिकाए दी। प्रहसन म उन्होने मुझे वन रानी बनाया था उसे फूल रानी। देवयानी बचपन म सुदर थी नाचती भी अच्छी थी इसीलिए उसे फूलो की रानी बनाया गया था। प्रहसन म उसको तीन नृत्य करने थ। एक कली-नृत्य फिर अधखिले फूल का नृत्य और अत म पूर्ण विकसित पुष्प का नृत्य। वन रानी के लिए कोई नृत्य नही था। वस भी नृत्यकला म मेरी कोई गति नही थी। किंतु फूलो की रानी का वनो की रानी की अपेक्षा प्रहसन म सम्मान शायद कुछ कम था। इसीलिए देवयानी ने वन रानी बनने की जिद की थी। आखिर गुरुजी को प्रहसन म उस वन रानी क लिए भी नृत्यो की व्यवस्था करनी पडी। फूलरानी के लिए निर्धारित नृत्य करने लायक नृत्य मुझे आता ही नही था। परिणाम यह हुआ कि प्रहसन का सारा मजा किरकिरा हो गया।

हम पद्रह सोलह की हो गई। उस वर्ष वसतोत्सव म बडे-बडे नागो की लडकियो क लिए कई प्रतियोगिताए रखी थी। नृत्य गीत काव्य आदि कई प्रतियोगिताओ का आयोजन था। नृत्य गान सौदर्य की सभी प्रतियोगिताओ म देवयानी ने प्रथम पुरस्कार जीत लिए! किंतु काव्य-गायन म मेरी कविता सबसे अच्छा घोषित की गई। इसपर देवयानी तुरत ही रूठ गई नाराज हो गई और गिर धमाता हुई सभा से उठकर जाने लगी। उसका कहना था मैं शुक्राचार्य की कन्या हू। मेरे पिता त्रिभुवन म विद्वान व्यक्ति है। मेरी ही कविता सबसे अच्छी

है। लेकिन क्योंकि शर्मिष्ठा एक राजकन्या है, परीक्षक उसकी कविता श्रेष्ठ बताकर अन्याय कर रहे हैं! आखिर परीक्षकों ने हारकर उस पुरस्कार को हम दोनों में समान रूप में बांट दिया, तब जाकर कहीं वह शांत हुई। उस समय मुझे प्रथम पुरस्कार मिला केवल चित्रकला प्रतियोगिता में और वह भी इसलिए कि देवयानी को चित्र बनाना आता ही नहीं था!

उसके पिता संजीवनी के लिए तपस्या करने बैठे थे! संजीवनी की सहायता से दानव देवताओं पर विजय पाने जा रहे थे! इसीलिए मेरे पिताजी की नीति हमेशा यही रहती थी कि जो भी हो, देवयानी को नाराज न किया जाए। मुझे भी उनकी इस नीति पर ही चलना पड़ा।

दो-चार नहीं, उसकी अहंकारी मनोवृत्ति की अनेक घटनाएं मेरे मन पर गहरी अंकित थीं—भीतर ही धुधुवा रही थीं। सुबह मेरा पहना हुआ वस्त्र वह उतारने लगी तब वे सारी स्मृतियां विस्फोट के साथ फट पड़ीं! लेकिन यह सब मैं किसे सुनाऊं? किस और कैसे समझाऊं?

मेरे मुंह से चार अपशब्द अवश्य निकल गए! किन्तु वे आज मेरे समूचे जीवन का ध्वंस करने जा रहे हैं! इस एक गलती के लिए राजकन्या को दासी बनने की सजा दी जा रही है!

मैं दासी बन जाऊं? शर्मिष्ठा दासी बन जाए! दिन-रात अपनी ही पूजा में खोई रहने वाली उस सुंदर पाषाण मूर्ति की मैं दासी बन जाऊं? नहीं! यह संभव नहीं!

नहीं! मेरे मुंह से केवल अपशब्द ही नहीं निकले। मां कह रही थी, यह वस्त्र देवयानी का ही है। कच ने उसे उपहार के रूप में दिया था। मुझे उसे पहनना नहीं चाहिए था। अब भी मैं उसे ही पहने हुए हूं! लेकिन जिस कच ने अपनी जान जोखिम में डालकर देव-दानवों का युद्ध बंद कराया, उसी के द्वारा दिए गए उपहार को लेकर इतना भयंकर झगड़ा क्यों हो? क्या महामाता ने रात को ही मुझे अपने वस्त्र ठीक तरह से दिखाकर रखे? मुझे क्या पता हो कि यह वस्त्र मेरा नहीं है? धुन! मैं राजकन्या बनी यही गलती है! इसी कारण सब बातों को दासियों पर ही छोड़ देने की आदत मुझे पड़ गई। उसी का यह फल—देवयानी का यह दुराग्रह है कि शर्मिष्ठा को जीवन भर उसकी दासी बनकर रहना होगा!

कहा जा रहा है कि मैंने उसे कुएं में धकेल दिया! वह जंगल में सिरफिरी बनकर भागती जा रही थी! मुझे डर लगा कि कहीं यह जिद्दी और गुस्सैल लड़की क्रोध में ऐसा कुछ कर गुजरेगी जिससे उसे जान से हाथ धोना पड़ेगा। इसीलिए उसे पकड़कर वापस ले आने के लिए मैं उसके पीछे-पीछे भागी थी, उसकी जान लेने के लिए नहीं! मैं थोड़े ही घसीटकर उसे उस कुएं की कगार पर ले गई थी। वह तो पहले ही वहां जा खड़ी हो गई थी! हम दोनों की छीना-झपटी में उसका संतुलन खो गया और वह कुएं में जा गिरी! मुझे तो अब भी यही लग रहा है! यदि मैं ऐसा न करती तो आज तक मेरे मन में उसके प्रति जो

क्रोध लगातार जमा होता गया उसीका एकदम विस्फोट हुआ और मन ही उस उन्मत होकर कुएं में धकेल दिया ? क्रोध का शिकार बन जाने पर मनुष्य बहुत ही क्रूर बन जाता है पशु हो जाता है !

क्या सचमुच मैं अपना आपा खो बैठी थी ? मुझे कुछ भी याद नहीं आ रहा। कच कहा करता था कि भले बुरे सत्य असत्य पाप पुण्य के साक्षी इस दुनिया में केवल दो ही होते हैं — अपनी आत्मा और सर्वसाक्षी परमात्मा। आज प्रातः मेरी आत्मा क्रोध के मारे अंधी हो गई थी ! और परमात्मा ? माना कि वह सर्वसाक्षी है ! किन्तु बेगुनाह का गवाह बनने के लिए क्या वह कभी दौड़कर आता है ?

कम से कम हर बार तो वह नहीं आता ! उसके आने की थोड़ी भी संभावना होती तो पिताजी ने मुझसे यह जो भयंकर प्रश्न किया है उसका उत्तर मैं उसी से पूछती। देवयानी ने जीवन भर मुझे अपनी दासी बनाने की शर्त रखी है मैं उसे स्वीकार करूं या न करूं ?

०

पिताजी ने पत्र में लिखा है

बेटी पिताजी के नाते मुझसे पूछो तो मैं तुझे दासी बनाने की बात को कभी स्वीकार न करूंगा।

किन्तु मनुष्य को इस संसार में अनेक नाते निभाने होते हैं। मैं केवल तुम्हारा पिता नहीं हूं। दानवों का राजा भी हूं। कच ने संजीवनी का हरण कर लिया इसीलिए हमारा संपूर्ण पराभव हो गया है।

इस प्रतिकूल परिस्थिति से उभरकर दानव फिर सिर उठाकर खड़ा होना चाहते हैं। शुक्राचार्य को अपना गुरु बनाए रखना हमारे लिए परमावश्यक है। उन्हें देवयानी से बहुत प्यार है। उसके द्वारा रखी गई शर्त पूरी न हुई तो वे नगर में कदम नहीं रखेंगे। उनके बिना हमारा सारा राज्य धूल में मिलते देर नहीं लगेगी। अनंत आकाश में स्वच्छंदता से संचार विहार करने की इच्छा रखने वाले दानवों को तुच्छ जीवजंतुओं की तरह जमीन पर ही रेंगते रहना पड़ेगा।

शर्मा तुम दासी बन गई तो तुम्हारा सारा जीवन मिट्टी में मिल जाएगा। मेरी नाजों की शर्मा शर्मा दूसरे की दासी बनेगी ? नहीं बेटी ! एक दासी के रूप में तुम्हारी मूर्ति आंखों के सामने नहीं ! तुम्हें एक दासी के रूप में देखने के बजाय यह कल्पना भी असह्य है ! उससे तो अच्छा है कि अपनी आंखें फोड़ लूं !

शर्मा तुमने देवयानी की शर्त का अस्वीकार कर दिया तो भी मैं तुमसे नाराज नहीं होऊंगा ! भगवान करे ऐसी उलझन में शत्रु भी न फंसे ! किन्तु बेटी तुम्हारे इस अभागे पिता को आज उसी उलझन का सामना करना पड़ रहा है ! कोई भी रास्ता न सूझी तो घर हो घर में तुम्हें यह पत्र लिखा है। चाहिए तो यह था कि मैं तुमसे मिलकर स्वयं सारी बात बताता। किन्तु कैसे बता पाता ? किस मुंह से

बताता ? बताने आ भी जाता तो मुह मे एक शब्द भी शायद न निकल पाता ! कर्तव्य प्रेम के हाथा हार जाता !

शमा मरी लाडली बच्ची ! बेटी, भगवान शकर तुम्हे ऐसी बुद्धि द जिससे तुम अपने-आपको सदा सुखी रख सकनेवाला निणय कर सको !'

बला आ गई ये शब्द विवाह मडप म बचपन स सुनती आई हू। किन्तु उन शब्दा मे जो काव्य समाया है उस अभी अभी मैं समझने लगी थी। 'दो प्रणयी जीवो क मगल मिलन की बला अब बिलकुल आ ही गई' की सूचना देनेवाल व मनभावने दो शब्द इन दिना उन दो शब्दा से मुझे गुदगुदी-सी होने लगी थी।

किन्तु इस क्षण तो व दो शब्द बहुत ही अमगल लग। मैं नही चाहती थी कि कोई आकर कह कि बला आ गई ! 'बार बार मन म आता कि काश ! इस समय कोई काल पुरुष का गला घोट देता ! वह बला कभी न आती ! बला पूरी होत ही मा द्वार खोलकर भीतर आएगी। आख पोछती मरे पास खडी हो जाएगी ! पिताजी को एक निश्चित उत्तर की मुझसे अपेक्षा होगी !

भगवान ! क्या उत्तर दू मैं ? आनद के साथ दासी हो जाऊ ? उस दुष्ट दवयानी की दासी बन जाऊ ? यह कस सभव है ? आज तक मैं दूसरो से अपने पर धुलवाती रही। अब क्या दूसरा क पर धोता रहू ? हीरे जडे माणिक मोतियो के आभूषण उतारकर एक भिखारिन सी रहने लगू ? दिन रात सबको को आज्ञा दनेवाली मैं राजकन्या हू अब क्या दूसरा की आज्ञा सिर-आखो पर धर लू ? उनकी डाट डपट खाऊ ? मालकिन जो भी दे द उसी अन्न वस्त्र पर चू तक न करत हुए जीवन बीताती रहू ? प्रणय प्रीति पति सुख वात्सल्य सबक आनन्द स वचित रह जाऊ ?

नही ! मैं पिताजी स कह दूगी—देवयानी की दासी बनने की अपेक्षा मैं जोगन बन जाऊगी ! दवयानी मुझसे प्रतिशोध लेना चाहती है न ? ठीक है। उस यहा बुलवा लीजिए। वह आ जाए तब आप अपने हाथ म खड्ग लेकर एक ही बार म शर्मिष्ठा का सिर धड से अलग कर दीजिए ! लकिन ध्यान रह, मेरा कटा हुआ मस्तक भी उसके चरणो पर नही गिरगा। प्राण जाए तब भी मैं दासी नही बनूगी ! स्वप्न म भी दवयानी की दासी नही बनूगी !

मैं एकदम चौंक गई। कोई आवाज

बेला आ जान का सकत ! घटा फिर बज चुका था। मैंने डरते डरत द्वार की ओर देखा। वह नही खुला न मा भीतर आई। मुझे अच्छा लगा !

गदन लटकाए मैं विचारा म खो गई थी !

विचार विचार विचार कलेजे पर घन चल रहे थे। मस्तक की धज्जिया उड रही थी।

और यह सब क्या ? इसलिए कि मै गलती से उसका वस्त्र पहन चुकी थी !

कच द्वारा उपहार म देवयानी को दिया गया वह रशमी वस्त्र ! वह मैंन गलती से पिताजी की सौगध गलती से पहन लिया था।

क्रोध लगातार जमा होता गया उसीका एकदम विस्फोट हुआ और मैंने ही उसे उन्मत्त होकर कुएं में धकेल दिया? क्रोध का शिकार बन जाने पर मनुष्य बहुत ही क्रूर बन जाता है पशु हो जाता है!

क्या सचमुच मैं अपना आपा खो बैठी थी? मुझे कुछ भी याद नहीं आ रहा। कच कहा करता था कि भले बुरे सत्य असत्य पाप पुण्य के साक्षी इस दुनिया में केवल दो ही होते हैं—अपनी आत्मा और सर्वसाक्षी परमात्मा। आज प्रातः मेरी आत्मा क्रोध के मारे अंधी हो गई थी! और परमात्मा? माना कि वह सर्वसाक्षी है! किन्तु गुनाह का गवाह बनने के लिए क्या वह कभी दौड़कर आता है?

कम से कम हर बार तो वह नहीं आता! उसके आने की थोड़ी भी संभावना होती तो पिताजी ने मुझसे यह जो भयंकर प्रश्न किया है उसका उत्तर मैं उसी से पूछती। देवयानी ने जीवन भर मुझे अपनी दासी बनाने की शर्त रखी है मैं उसे स्वीकार करूं या न करूं?

०

पिताजी ने पत्र में लिखा है

बेटी पिताजी के नाते मुझसे पूछो तो मैं तुझे दासी बनाने की बात को कभी स्वीकार न करूंगा।

किन्तु मनुष्य को इस संसार में अनेक नाते निभाने होते हैं। मैं केवल तुम्हारा पिता नहीं हूं। दानवों का राजा भी हूं। कच ने संजीवनी का हरण कर लिया इसीलिए हमारा संपूर्ण पराभव हो गया है।

इस प्रतिकूल परिस्थिति से उभरकर दानव फिर सिर उठाकर खड़े होना चाहते हैं। शुक्राचार्य को अपना गुरु बनाए रखना हमारे लिए परमावश्यक है। उन्हें देवयानी से बहुत प्यार है। उसके द्वारा रखी गई शर्त पूरी न हुई तो वे नगर में कदम नहीं रखेंगे। उनके बिना हमारा सारा राज्य धूल में मिलते देर नहीं लगेगी। अनंत आकाश में स्वच्छन्दता से संचार विहार करने की इच्छा रखने वाले दानवों को तुच्छ जीव-जन्तुओं की तरह जमीन पर ही रेंगते रहना पड़ेगा।

शर्मा तुम दासी बन गई तो तुम्हारा सारा जीवन मिट्टी में मिल जाएगा। मेरी लाडली शर्मा शर्मा दूसरे की दासी बनेगी? नहीं बेटी! एक दासी के रूप में तुम्हारी मूर्ति आंखों के सामने नहीं! तुम्हें एक दासी के रूप में देखने के बजाय वह कल्पना भी असह्य है! इससे तो अच्छा है कि अपनी आंखें फोड़ लूं!

शर्मा तुमने देवयानी की शर्त को अस्वीकार कर दिया, तो भी मैं तुमसे नाराज नहीं होऊंगा! भगवान करे ऐसी उलझन में शत्रु भी न फंसे! किन्तु बेटी तुम्हारे इस अभागे पिता को आज उसी उलझन का सामना करना पड़ रहा है! कोई भी राह न सूझी तो घर के घर में तुम्हें यह पत्र लिखा है। चाहिए तो यह था कि मैं तुमसे मिलकर स्वयं सारी बात बताता। किन्तु क्या बता पाता? किस मुंह से

बताता ? बताने जा भी जाता तो मुँह में एक शब्द भी शायद न निकल पाता ! वक्तव्य प्रेम के रास्ते रोक जाता !

'क्षमा मेरी लाड़ली बच्ची ! बेटी, भगवान करे तुम्हें ऐसी बुद्धि दे जिससे तुम अपने-आपको सदा सुखी रख सकनेवाला निर्णय कर सको !'

बेला आ गई ! ये शब्द विवाह मंडप में बचपन से सुनती आई हूँ। किन्तु उन शब्दों में जो काव्य समाया है उसे अभी अभी मैं समझने लगी थी। दो प्रणयी जीवों के मधुर मिलन की बेला अब बिलकुल आ ही गई की सूचना देनेवाले वे मतवाले-से शब्द ! इन दिनों उन शब्दों से मुझे गुदगुदी-सी होने लगी थी।

किन्तु इस समय तो वे दो शब्द बहुत ही अमंगल लगे। मैं नहीं चाहती थी कि कोई आकर कहे कि 'बेला आ गई !' बार-बार मन में आता कि काश ! इस समय कोई काल पुरुष का गला घोंट देता ! वह बेला कभी न आती ! बेला पूरी होते ही माँ द्वार खोलकर भीतर आएगी। आँखें पोंछती मेरे पास खड़ी हो जाएगी ! पिताजी का एक निश्चित उत्तर भी सुनना अब रह गया होगा !

भगवान ! क्या उत्तर दूँ मैं ? आनंद के साथ दासी हो जाऊँ ? उस दुष्ट देवयानी की दासी बन जाऊँ ? यह कैसे संभव है ? आज तक मैं दूसरों से अपने पैर धुलवाती रही। अब क्या दूसरों के पैर धोती रहूँ ? हीरे-जड़े माणिक-मोतियों के आभूषण उतारकर एक भिखारिन-सी रहने लगूँ ? दिन-रात सेवकों को आज्ञा देनेवाली मैं राजकन्या—अब क्या दूसरों की आज्ञा सिर-आँखों पर धरूँ ? उनकी डाँट-फटकार खाऊँ ? मालकिन जो भी दे दे, उसी अन्न-वस्त्र पर चूँ तक न करते हुए जीवन बिताती रहूँ ? प्रणय, प्रीति, पति-सुख, वात्सल्य, सबके आनंद से वंचित रह जाऊँ ?

नहीं ! मैं पिताजी से कह दूँगी—देवयानी की दासी बनने की अपेक्षा मैं जोगन बन जाऊँगी ! देवयानी मुझसे प्रतिशोध लेना चाहती है न ? ठीक है। उसे यहाँ बुलवा लीजिए। वह जो आए तब आप अपने हाथ में खड्ग लेकर एक ही वार में शर्मिष्ठा का सिर धड़ से अलग कर दीजिए ! लेकिन ध्यान रहे, मेरा कटा हुआ मस्तक भी उसके चरणों पर नहीं गिरेगा। प्राण जाएँ तब भी मैं दासी नहीं बनूँगी ! स्वप्न में भी देवयानी की दासी नहीं बनूँगी !

मैं एकदम चौंक गई। कैसी आवाज

बेला आ जाने का संकेत ! घंटा फिर बज चुका था। मैंने डरते-डरते द्वार की ओर देखा। वह नहीं खुला, न माँ भीतर आई। मुझे अचंभा लगा !

शायद तत्काल मैं विचारों में खो गई थी !

विचार, विचार, विचार, कलेजे पर घन चल रहे थे। मस्तक की धमनियाँ उछल रही थीं।

और यह सब क्यों ? इसलिए कि मैं गलती से उसका वस्त्र पहन चुकी थी !

कच द्वारा उपहार में देवयानी को दिया गया वह रेशमी वस्त्र ! वह मैंने जल्दी में [illegible] गलती से पहन लिया था।

क्या इस विलक्षण संयोग में भी भाग्य का कोई संकेत निहित है ? संजीवनी के लिए कच यहां आया था। या तो वह हमारा शत्रु। किन्तु उसकी विद्या उसकी श्रद्धा आस्था उसका त्याग उसका स्वभाव यह सब देख लेने के कारण मैं मन ही मन उसे पूजने लगी थी। अनेक बार मन में आता कि काश मेरे भी ऐसा बड़ा भाई होता ! तो मैं कितनी अच्छी हो गई होती !

देवयानी ने कभी मुझे कच से खुलकर बातें नहीं करने दी न मनोनुकूल आचरण ही करने दिया ! पता नहीं क्या वह मुझसे इतना जल रही थी ! किन्तु कच की तरफ केवल देखने मात्र से भी मेरा मन प्रसन्न हो जाता था। मेरी ओर देखकर उसने मंद मुस्करा भी दिया तब भी मन बाग बाग हो उठता था। सहज संभाषण में वह कुछ ऐसी बातें करता कि बाद में कितने ही दिन मैं उसी पर सोचते बैठी रहती थी।

राक्षसों ने तीन बार घोर यन्त्रणाएं देकर उसकी हत्या की। किन्तु हर बार जीवित होने पर उसने हंसते हुए मुझसे कहा था कोई चीज दूर से जितनी डरावनी लगती है न उतनी भयंकर वह वास्तव में होती नहीं है। मृत्यु की बात भी ऐसी ही है। राजकन्ये यह मैं अपने अनुभव की बात बता रहा हूं ! इतना कहकर वह कितना दिल खोलकर हंसता था !

क्या है उसके इन उद्गारों का अर्थ ? क्या कच भविष्य जानता था ? दासी बनना और क्या है ? मृत्यु ही मनुष्य के अभिमान की मृत्यु ! उसके बड़प्पन की मृत्यु !

राजवंश में पैदा होने के कारण दासी बनना मुझे बड़ा ही भयंकर लग रहा है। किसी दासी की कोख से पैदा हुई होती तो क्या मैं आनन्द से दासी जीवन न बिताती ? उसी में सुख न मानती ? संसार की हर लड़की राजकन्या के नाते थोड़े ही जन्म लेती है !

और गुण दोष क्या जाति पर निर्भर होते हैं ? कच ब्राह्मण ! देवयानी भी ब्राह्मण किन्तु उसके स्वभाव में कच का एक भी गुण क्या आ पाया है ? नहीं। इस संसार में जन्म या जाति पर कुछ भी निर्भर नहीं करता ! एक राजकन्या दुष्ट हो सकती है एक दासी सज्जन हो सकती है !

ब्राह्मण कच ने संजीवनी पाने के लिए दानव-नगरी में आते समय कितनी वीरता का परिचय दिया ! अपने साहस से उसने सभी क्षत्रियों को लज्जित कर दिया। दानवों ने उसे बार बार मार डाला। किन्तु वह डरा नहीं सहमा नहीं भागा नहीं। संजीवनी प्राप्त होने तक वह यहीं निडरतापूर्वक रहा।

यह वस्त्र—सोचती हूं अनजाने कच ने मुझे ही उपहार में दिया है ! उसके इस उपहार को जीवन भर सम्भाल कर रखना होगा ! कच की स्मृति ही मुझे इस संकट में

संकटों ने आज तक किसे छोड़ा है ? बस देखा जाए तो संकट सदा सज्जनों के हिस्से में ही अधिक आते हैं। कच कितना सज्जन था कितना स्नेहशील कितना

निस्वार्थी और बुद्धिमान था ! फिर भी क्या उसे कम दुख झेलने पड़े ? किन्तु देवयानी द्वारा शाप दिए जाने के बाद मुझसे विदा लेने के लिए कच आया तो कितना हँसमुख था ! प्रेम भग का दुख उसे था ! प्रेयसी द्वारा शाप दिए जाने का भी दुख उसे था ! फिर भी उसके चेहरे पर किसी दुख की धुंधली छाया तक नहीं था !

मुझसे ही नहीं रहा गया ! मैंने उससे कहा विवाह करके आप दोनों देवलोक जाने के लिए निकले होते न, तो मैं आपको अत्यंत हर्ष से विदा करती। किन्तु "

उसने शांत चित्त से कहा राजकन्ये, जीवन हमेशा अधूरा ही होता है। उसके अधूरेपन में ही उसका आकर्षण समाया हुआ है !"

एक दार्शनिक सिद्धांत के नाते शायद उसकी यह बात सच होगी ! किन्तु मैंने अनेक काव्यों में पढ़ा था प्रेम भग का दुख कितना दारुण होता है ! उन काव्यों को पढ़ते पढ़ते मैं घटों रोई थी। मैंने कहा, अन्त में प्रेम भग होने से तो कहीं अच्छा है कि किसी से प्रेम ही न हो है न ?"

उसने हँसते हुए कहा नहीं ! प्रेम मनुष्य को अपने से परे देखने की शक्ति देता है। प्रेम किसी से भी हो गया हो, मनुष्य से अथवा वस्तु से किन्तु वह प्रेम सच्चा होना चाहिए। अन्तःकरण की तह से उठता हुआ आना चाहिए ! वह स्वार्थी लोभी या धोखेबाज नहीं होना चाहिए। राजकन्ये, सच्चा प्रेम हमेशा निस्वार्थी होता है निरपेक्ष होता है। फिर वह फल से किया गया हो या किसी जीव से। प्रकृति की सुन्दरता से हो या माता पिता से। प्रीतम या प्रेयसी से किया हो अथवा वश, जाति या राष्ट्र से ! निःस्वार्थ निरपेक्ष, निरहंकार प्रेम ही मनुष्य की आत्मा के विकास की पहली सीढ़ी होती है। इस तरह का प्रेम केवल मनुष्य ही कर सकता है !

उस समय तो उसकी ये बातें ठीक तरह से मेरी समझ में नहीं आई थीं। किन्तु इन बातों को उसने जिस आत्मीयता से किया था, वह मुझे इतनी अच्छी लगी कि मैंने तुरन्त उसका एक एक शब्द लिख रखा। फिर न जाने कितनी बार उन शब्दों को मैंने पढ़ा था ! उनका अर्थ अब जाकर कहीं मेरे ध्यान में आने लगा है।

उस दिन कच जाने की जल्दी में था। किन्तु उस जल्दी में भी उसने मुझसे कहा शर्मिष्ठा मेरा और देवयानी का प्रेम सफल न रहा इसका तुम दुख न करना। मुझे प्रेम न मिला न सही किन्तु प्रेम क्या होता है इसे मैंने अनुभव तो किया ही है। उसकी स्मृति मैं जीवन भर सजाकर रखूँगा। देवयानी तुम्हारी सहेली है। वह जिद्दी है गुस्सेबाज है अहंकारी भी है ! उसके इन सभी दोषों को मैं अच्छी तरह से जानता हूँ ! मैंने उसके सौन्दर्य पर मोहित होकर उससे केवल अथवा प्रेम कभी नहीं किया। प्रिय व्यक्ति को उसके दोषों के साथ स्वीकार करने की शक्ति सच्चे प्रेम में होती है होनी चाहिए ! देवयानी से मैंने ऐसा ही प्रेम करने का

प्रयास किया। किंतु अपने लाखों के लिए मुझे देवयानी का दिल तोड़ना पड़ा। मैं भी क्या करता ? प्रेम जीवन की एक उच्च भावना है। किंतु कर्तव्य उससे भी श्रेष्ठ भावना है ! कर्तव्य कठोर ही होता है। उसे कठोर बनना ही पड़ता है। किंतु कर्तव्य ही धर्म का मुख्य आधार है। कभी देर-सबेर देवयानी तुमसे दिल खोलकर बोली तो उससे इतना ही कह देना— कच के हृदय पर हमेशा कर्तव्य का ही स्वामित्व है किंतु उसका एक छोटा सा कोना केवल देवयानी का ही था। वह सदा उसका ही रहेगा।'' —

इतनी देर तक कच से हुई इस आखिरी मुलाकात और उनके इन उद्‌गारों का मुझे कैसे विस्मरण हो गया पता नहीं। शायद मैं दुख से अंधी हो गई थी। अंधेरे में टटोल रही थी। प्रकाश की कोई किरण मुझे दिखाई नहीं दे रही थी। अब वह दिखाई दी। कच ने ही उसे दिखाया था। मैं दौड़कर द्वार के पास गई। तभी बेला आ पहुंचने की सूचना देने वाले घण्टे बजे। मैं भीतर से कुंडी खोलने ही वाली थी कि मां ने बाहर से दरवाजा धकेला। मैंने हंसते हंसते मां के गले में बांह डालते हुए कहा मां पिता जी से कहिए मेरी तैयारी करें।'

तैयारी ? किस बात की तैयारी ?'

हस्तिनापुर जाने की तैयारी ! देवयानी के साथ उसकी दासी बनकर जाने के लिए शर्मिष्ठा तैयार है ! — You must go.

पत्थर के बुत के समान मां निश्चल अवाक खड़ी रही ! फिर एकदम फफक फफक रोते हुए उसने मेरे कंधे पर अपना माथा रख दिया। अनजाने मैं मां का माथा सहलाने लगी। मैं अपनी मां की मां बन गई थी।

o

हस्तिनापुर के राजप्रासाद में कदम रखते ही मुझे अजीब-सी बेचैनी लगने लगी। किंतु मैंने तुरंत अपने आपको सम्भाला। दासी की हैसियत से ही मैं सारे व्यवहार करने लगी।

देवयानी राजमाता का दर्शन करने गई तो मैं भी उसके पीछे पीछे वहां गई। मेरा प्रणाम स्वीकारते हुए राजमाता ने कहा आओ बेटी इधर आओ।

मैं थोड़ा आगे गई और सिर झुकाकर खड़ी रही। मेरा चिबुक उठाकर मेरी ओर देखते हुए राजमाता ने देवयानी से कहा बहू तुम्हारी यह सहेली तुम्हारे जैसी ही सुंदर है !

देवयानी तपाक से बोली यह मेरी सहेली नहीं है।

तो ?'

'यह मेरी दासी है !

जब महाराज का दूत यह सन्देशा लेकर आया कि नववधू के साथ राजकन्या शर्मिष्ठा आ रही है तो मैंने सोचा शर्मिष्ठा तुम्हारी सौनहार बनकर आनी होगी ! यह भीतर आई तुम्हारे साथ तो मुझे लगा कि यही शर्मिष्ठा है

देवयानी ने बड़े घमण्ड से कहा, "माजी यह राजकन्या शर्मिष्ठा ही है। किन्तु मैं इसे गौनहार बनाकर साथ नहीं लाई हूं न हो यह अब राजकन्या है। यह एक दासी है, मेरी दासी।"

"मतलब ?"

"मतलब आप महाराज से पूछिए, तब पता चल जाएगा कि मेरे पिता कितने बड़े ऋषि हैं।"

"तुम्हारे ससुरजी महाराज नहुष भी बहुत बड़े वीर पुरुष थे। किन्तु उनके इस महल में एक क्षत्रिय-कन्या दासी बनकर रहे यह मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"यह सवाल आपका नहीं, मेरा है।" कहकर देवयानी महल से चली गई।

इस प्रकार मेरे कारण सास और बहू में अनजाने पहली झड़प हुई। मुझे इसका बहुत खेद रहा। किन्तु शीघ्र ही मेरे ध्यान में आ गया कि कोई कारण हो या न हो, ऐसी कहा-सुनी अब होती ही रहेगी।

देवयानी बचपन से ही बहुत लाड़-प्यार में पली थी। मां के मार्ग-दर्शन में लड़की को जो आदतें पड़ जाती हैं, कामकाज का जो तौर-तरीका सिखाया जाता है, वह दुर्भाग्य से उसे नहीं मिल पाया था। अब तो वह बड़ी धूमधाम के साथ हस्तिनापुर की महारानी बनकर, हस्तिनापुर राज्य की स्वामिनी बनकर आई थी। नम्रता और प्यार से राजमाता को अपने वश में कर लेने की उसे क्या जरूरत थी? शायद राजमाता का स्वभाव भी कुछ-कुछ देवयानी का सा ही था। आकाश में दो बिजलियां एक-दूसरी से टकरा जाती हैं न, उसी प्रकार से भाग्य ने इन दोनों को मिलाया था।

महाराज और राजमाता में क्या अनबन हो गई थी, मैं कभी जान न सकी। किन्तु उन दोनों को परस्पर खुलकर बातें करते मैंने न कभी देखा न सुना। पुत्र से भी जहां इतना ही मेलजोल हो वहां बहू से भला क्या बनती?

राजमाता को क्षत्रिय जाति का बड़ा अभिमान था। ब्राह्मण-कन्या होने के नाते देवयानी को भी अपनी जाति का पूरा घमण्ड था। दोनों में बातचीत का विषय कुछ भी हो, उसे लेकर जाति का उल्लेख आ ही जाता था। फिर सास अप्सरा पर मोहित किसी ऋषि की कहानी सुनाती और कह देती, "ये सारे विद्वान ब्राह्मण एक-से ही होते हैं! तपस्या करते हैं मुए! स्त्री देखी और लगे पिघलने!" सास के 'तपस्या करते हैं मुए' शब्द बहू को तिलमिला देते। वह समझती सासजी ने यह उलाहना मेरे पिता को ही दिया है। फिर शुक्राचार्य द्वारा संजीवनी के लिए की गई घोर तपस्या का वर्णन शुरू हो जाता। उसमें वृषपर्वा महाराज और सभी दानवों की खिल्ली उड़ाई जाती। अन्त में एक क्षत्रिय राजकन्या नाक रगड़ती हुई एक ब्राह्मण कन्या की दासी बनकर किस तरह आई इस आख्यान पर बातचीत समाप्त हो जाती। देवयानी की ये बातें मेरे मन में चुभतीं, गड़ती, कलेजा चीरती, जलाती चली जाती थीं। किन्तु मैं कुछ ऐसे अन्दाज से वहां खड़ी रहती जैसे बहरी हूं। दिन-रात मैं एक ही मन्त्र जपती थी—मैं दासी हूं। दासी के हाथ होते हैं, पांव

होते है किन्तु मुह नही होता ! और मन ? वह तो होता ही नही !

सास-बहू की ऐसी झडपो मे कभी कभी बिलकुल ही अनपेक्षित ढग से मुझे लाभ हो जाता था ! ममता दुलार से पीठ सहलाती मा के हाथ की कभी कभी मुझे यू ही याद आती थी। फिर मन बेचैन हो उठता था। कुढ़न लगता था। किन्तु इन दोनो मे कुछ खटपट हुई नही कि राजमाता ने किसी बहाने से मुझे अपने पास बुलाया और शायद देवयानी को खिझाने के लिए या मैं क्षत्रिय कन्या थी इसलिए मेरी पीठ पर हाथ फेरना शुरु किया। उनके उस स्पश से मेरे मन की बेचैनी कम हो जाती यह जानकर कि परदेस मे इस अनाथ लडकी से प्यार और ममता करनेवाला इस राजमहल मे भी आखिर कोई तो है मन को धीरज बध जाता। हो सकता है वह प्रेम का मात्र आभास था ! किन्तु जिस जीने की अभिलाषा है उसे इस दुनिया मे कभी कभी आभास भी बडा सहारा दे देते है।

राजमाता के मन मे मेरे प्रति यह जो माया ममता थी एक दिन कुछ निराले ही ढग से प्रकट हो गई। कोई बडा सामुद्रिक शास्त्र जाननेवाला पडित नगर मे आया था। देवयानी ने उसे राजमहल मे बुलवा लिया। उसने अपनी हथेली उसे दिखाई। ज्योतिषी ने कहा कि वर्ष के अन्दर अन्दर उसके पुत्र होगा। सुनकर हम सभीको बहुत आनन्द हुआ।

मैं पास ही खडी थी। हाथ पकडकर मुझे नीचे बिठाते हुए राजमाता ने पण्डितजी से मेरा हाथ देखने को भी कहा। मैं काफी मनाकर रही थी। अनुभव भी कर रही थी कि देवयानी आखें फाड फाडकर मेरी ओर देख रही है। किन्तु राजमाता के आगे मेरी एक न चली !

काफी देर तक मेरा हाथ देखने के बाद पडित ने कहा वडी अभागिन है यह लडकी !

देवयानी ने कहा पडितजी यह दासी है दासी ! कोई राजकन्या नही !'

पडितजी चौके। उन्होने देवयानी की तरफ देखा। फिर मेरी हथेली का ध्यान से निरीक्षण करते हुए बोले इसके भाग्य मे बहुत कष्ट लिखे हैं किन्तु इसका लडका

देवयानी ठहाका मारकर हसते हुए बोली अजी यह जीवन भर मेरी दासी रहने वाली है। इससे विवाह कौन करेगा ? और इसके लडका होगा भी कैसे ?

शायद यह समझकर कि उसके ज्ञान की खिल्ली उडाई जा रही है पडितजी बहुत बिगडे। देवयानी की ओर मुडकर बोले महारानी जी क्षमा करें। मैं अपनी विद्या अच्छी तरह जानता हू। दासी रानी से मुझे क्या लेना देना है ? इस हथेली पर मैं जो भी देख रहा हू वही बता रहा हू ! इसके साथ विवाह कौन करेगा यह मैं भला कैसे बता सकता हू ? किन्तु इसका पुत्र सिहासन पर बठेगा '

देवयानी ने गभीरता से कहा सिहासन यानी सिह की खाल होगी ! व्याघ्रासन होना है न ? वैसा ही ! जरा ठीक ध्यान से देखिए इसका हाथ !

उसने यह ताना ऐसा मारा कि मेरा मन लहूलुहान हो गया ! मैंने उस

उन्होंने देवयानी को पुकारा। वह उठना नहीं चाहती थी। किन्तु महाराज लगातार पुकार जा रहे थे। आखिर तनिक नाराज होकर ही वह उनके पास गई और पूछने लगी "जी क्या चाहिए अब आपको ?"

"मेरा मुंह तो देखो जरा !"

"ऐसा भी क्या मजाक ! मुझे ऐसी बचकानी हरकत बिलकुल पसंद नहीं !"

"यह कोई मजाक नहीं ! आदर से मुंह देखने के लिए कहने की अब क्या आवश्यकता है ? उस दिन तुम कुएं से ऊपर आईं तभी देख लिया था वह तुमने ! मैं कह रहा हूं जरा भीतर से देखो उसे !"

उन्होंने बिलकुल छोटे बच्चे के समान अपना मुंह देवयानी के सामने खोलकर दिखाया। वह एकदम लाल ही लाल हो गया था। ताम्बूल का रंग गहरा चढ़ा था।

महाराज ने देवयानी से कहा "मैं छोटा था न ? तब इस पान के बारे में हम सभी लड़के-लड़कियों में एक धारणा फैली थी। जानती हो तुम ?"

"मेरे पिता एक महान तपस्वी हैं। जब देखो तब पान चबाते नहीं बैठते थे वह। इसलिए मुझे क्या पता ऐसी बातों का ?"

"वह धारणा थी कि ताम्बूल बनाने वाले का प्रेम जितना ज्यादा होता है उतना ही उसका रंग खाने वाले पर ज्यादा चढ़ता है।"

"अच्छा ! तो यह बात है ? इसका मतलब यह कि मुझसे ज्यादा शर्मिष्ठा आपसे प्रेम करती है ? है न ? तो साफ साफ क्यों नहीं कहते ? उसके लिए बचपन की पहेली की आड़ क्यों ले रहे हैं आप ? वह आपसे इतना प्रेम करती थी तो उसीसे विवाह किया होता ? आपकी माताजी को भी वह अधिक पसंद आती। क्षत्रिय राजकन्या जो है वह !"

पहले तो महाराज को देवयानी से ऐसा मजाक करना नहीं चाहिए था। किन्तु उसको भी अर्थ का अनर्थ करते हुए इस तरह आपे से बाहर नहीं होना चाहिए था। उस दिन उसने सारा राजमहल सिर पर उठा लिया। सभी दास दासियों तक बात पहुंच गई। शरम के मारे मेरा बहुत ही बुरा हाल था !

उसके बाद मैंने कभी भी महाराज को ताम्बूल बनाकर नहीं दिया ! किन्तु देवयानी कहीं आसपास न दीखती तो वे पूछ ही लेते "पान मिलेगा ?" बना बनाया पान मेरे पास भला कहां से होता ? मजबूर होकर मुझे 'नहीं है' कहना पड़ता। दस पांच बार मैंने यों 'नहीं है' कह दिया। फिर स्वयं मुझे ही 'नहीं' कहने में शर्म आने लगी। मैं एक बढ़िया-सा ताम्बूल बनाकर हमेशा अपने पास रखने लगी। महाराज को अकेला देखकर मैं चुपके से वह उन्हें देने लगी। फिर महाराज किसी समय देवयानी को सम्बोधित करते हुए किन्तु मेरे ध्यान में आ जाए इस अन्दाज से कहते "तुम्हारे कल वाला पान बहुत ही रंगा था, हं !"

स्मृतियां क्या होती हैं ? मानो उस बासी निर्माल्य की तरह ? आग

निगोड़ा गगन के पानी लहरियों की तरह? धीरे-धीरे आपस में मिलकर चित्र की सुन्दरता बढ़ाने वाले रंगों की तरह? वर्षा ऋतु में आकाश में चमकने वाली बिजली की तरह? क्या पता!

मदन पन्द्रह दिन जिस तरह बीते थे, उसकी स्मृति अब भी मेरे मन में मुर्दा सी पड़ी है।

हस्तिनापुर में विवाह का उत्सव बड़ी धूमधाम और शान के साथ सम्पन्न हो गया था। महाराज और देवयानी पर बारातियों की पुष्प-वर्षा के मिलन के बाद सुहागरात आई। फूल उपवन में खिलते ही मात और मदन की। अपने आदेश बार-बार सता-समझाकर कि देवयानी के सुख से सुख, क्षण भर के लिए भी दुखी नहीं होना है, स्वप्न में भी उसके मन को नहीं दुखाना है, उसके ऐश्वर्य से मन ही मन भी द्वेष नहीं रखनी है, मैं उस कठिन परीक्षा का सामना कर रहा था। जिस भाग्य ने देवयानी को सिंहासन पर बिठाया था और उसी ने मुझे सिंहासन से नीचे उतारा था! भाग्य के सामने संसार में किसी का कोई वश नहीं चलता। फिर क्या न शर्मिष्ठा भी उसके सामने बिना विचार नतमस्तक हो जाए?

किन्तु मनुष्य का सबसे बड़ा भाग्य तो स्वयं मनुष्य ही है। मुझे इस तरह शांत और संयत देखकर देवयानी चौंक उठी। शायद वह चाहती थी कि इस आनंदोत्सव को देखकर मैं आँसू बहाऊँ, उसका ऐश्वर्य देखकर ठंडी आह भरूँ, उसका सुख देखकर पागल हो उठूँ! किन्तु उस रात जब तक वह महाराज के महल में जाने को निकली, तब तक तो मैंने उसे यह आनंद प्राप्त नहीं होने दिया। मुझे लगा कि मैंने बहुत बड़ी विजय पा ली है। किन्तु उसके पास जो ब्रह्मास्त्र था उसकी मुझे कतई कल्पना न थी। महल जाते-जाते उसने मुझे आज्ञा दी, "शर्मिष्ठे, महाराज को तुम्हारे बनाए पान बहुत पसंद हैं। इसी तरह के बीस पान लगाकर सुवर्ण की थाली में रखो और वह थाली लिए हमारे महल के द्वार पर बाहर ही खड़ी रहो। मैं बुलाऊँ तभी द्वार पर आना। वरना दरवाजे से काफी दूर ही खड़ी रहना। बड़ों की बातें छुपकर सुनने और शरारत से उन्हें बाहर फैलाने की आदत बहुत बुरी आदत होती है। इसीलिए तुम्हें चेतावनी दे रही हूँ। महाराज और मैं सम्भवतः काफी देर तक—शायद आधी रात तक—बातें करते रहें। उस बीच बीच में ताम्बूल अवश्य लिए जाएँगे। महाराज जब गाढ़ी नींद सो जाएँगे मैं तुम्हें जाने की अनुमति दूँगी। तुम्हारे अलावा अन्य कोई दासी आज हमारे कक्ष पर न रहे!"

पानदान को कक्ष के भीतर रख लेना देवयानी के लिए क्या आसान न था? किन्तु ।

देवयानी महाराज के शयनमन्दिर में गई। मैंने जल्दी-जल्दी पान लगाए। महल के द्वार से दूर पानदान लेकर खड़ी हो गई। थोड़ी देर बाद महाराज आए। झट से पानदान में से ताम्बूल उठाकर मैंने उनके सामने किया। उन्होंने उसे ग्रहण किया। शायद मेरी ओर उनका ध्यान न गया था। उन्होंने यही सोचा होगा

ययाति

पहली रात का एकांत मिलन। इतनी उन्मादक, इतनी काव्यमय, इतनी रहस्यपूर्ण रात पति पत्नी के जीवन में पहले कभी आई नहीं होती है! दो नदियों का आलिंगन—धरती और आकाश का चुंबन—नहीं! मिलनातुर मनों का वर्णन करना महाकवियों के भी बस की बात नहीं!

सांझ हो गई। दीपोत्सव देखने के लिए नागरिकों के झुंड राजमार्ग पर चलने लगे। यह सारा दृश्य देखता मैं राजमहल की छत पर खड़ा था।

मैंने ऊपर आकाश की ओर देखा। एक एक तारा टिमटिमाता हुआ बहुत ही आहिस्ता आहिस्ता निकल रहा था, पर्णों के संपुट से धीरे से झांकने वाली कली की तरह!

मुझे लगा शायद काफी देर से मैं वहां खड़ा हूं। किन्तु अभी अंधेरा पूरा फैला नहीं था। पता नहीं शायद आकाश रजनी के चषक में तमिस्रा को ऐसे घोल रहा था जैसे प्याले में बूंद-बूंद मदिरा ढाली जा रही हो! उसकी यह सुस्ती मुझे बुरी तरह अखर रही थी।

देवयानी भले कितने पास थी! किन्तु जितनी पास उतनी ही दूर भी! उस कुएं से ऊपर आई उसकी भीगी भीगी मूर्ति से लेकर आज प्रातः हवन के समय आभूषणों और अलंकारों से सजकर मेरे पास बैठी उसकी शर्मीली मूर्ति तक—उसके कितने ही रूप मेरे मन में चक्कर काट रहे थे। उन सबके सौंदर्य का जी भर कर प्राशन करने के बाद भी मेरी आंखें अतृप्त हो रही थीं। उन सब रूपों के परे की देवयानी को मैं चाहता था।

एक एक क्षण मुझे युगसमान लगने लगा। अभी और एक पहर काटना था! और वह भी इस तरह तड़पते हुए! मन माधव को बुला भेजा। रथ में बैठकर नगर में घूमने के लिए हम निकले। राजमार्ग पर सैकड़ों छोटी बड़ी स्त्रियां चल रही थीं। कोई किशोरी थी कोई मुग्धा कोई प्रमदा तो कोई प्रौढ़ा! उनमें से कइयों पर विधाता ने मुक्त हस्त से अपनी कला का सिंचन किया था। किन्तु एक का भी सौंदर्य मेरे मन में समाया नहीं! मन तो देवयानी के सौन्दर्य से परिपूर्ण हो गया था। दूसरे किसी के भी रूप को वहां स्थान कैसे मिलता?

माधव के सहवास में चार छः घड़ियां मजे में गुजारकर मैं राजमहल वापस आ गया। फलाहार करने बैठा। किन्तु खाने को जी नहीं कर रहा था। मन लगा

तार दवयानी क ही सोच म डूबा था। उसका नाजुक तार पल पल तनता जा रहा था।

मैं महल म गया। दरवाजा बन्द किया। मुडकर देखा। पलग पर बैठी दवयानी कुछ उत्सर भरी और भावभीनी नजर स देख रही थी। उसका रोम रोम लज्जा म लीन रभा क समान खिलमिला रहा था। अधीरता से मैं आग बढा और पलग पर जाकर बठ गया। वह खडी हो थी। मैंने हसत हुए कहा कुए स निकालने क लिए किसीका हाथ पकडना पडता है उस पलग पर बिठान क लिए नही!

सोचा था वह हसेगी कुछ मजदार उत्तर देगी। किन्तु वह वही स्तब्ध खडी रही। उसके माथ पर कुछ शिकन दिखाई द रही थी। नाक की चपाकली तनिक खिन्नी-सी लग रही थी। समझ नहा पाया कि यह गुस्सा असली है या नकली।

उस प्रसन्न करने क लिए मैंने कहा मर पिताजी ने एक बार इद्र का पराभव किया था। आज मैं फिर उसका पराभव करन जा रहा हू।

मैं आशा कर रहा था कि वह चमककर सामने आएगी और कहगी ऐस समय भी कोई युद्ध की बात करता है! शायद कुछ एसी भी कहगी कि उस अभियान म मैं आपकी सारथी बनूगी।

किन्तु वह टस स मस न हुई। कुछ समय पहल भावभीनी लग रही उसकी नजर अब भावशून्य लगने लगी। मैं जानता था कि मा स उसकी जरा भी नही बनती। पर मैंने पहल दिन स ही तय कर रखा था कि सास बहू के मामल म कतई कोई ध्यान नही दूगा। लगा शायद इस समय उसका रूठना भी मा स हुई किसी खटपट स सबध रखता होगा।

मैं इद्र पर विजय पान वाला हू तुम्हारी सहायता से दवयानी! — उसस यह पूछकर कि तुम्हारे स्वग म एसी एक भी अप्सरा है? कुछ ऐसा ही मैं कहन जा रहा था किन्तु उसने मुझे बोलन का अवसर ही नहीं दिया।

रूठी रमणी अधिक सुदर दीखन लगती है। उसकी ओर देखत देखत मैं होश खो बठा। पलग पर झुककर मैंने उस अपनी ओर खीच लिया। दोनो हाथों स उसका मुख ऊपर को उठाया। उसका चुबन लने क लिए तनिक झुक गया।

मर हाथ झिटककर बौखलाई हुई नागिन-सी वह मुझस एकदम दूर जाकर खडी हो गई। उसकी इस अजीब हरकत का अथ मेरी समझ म नहा आया। शर्मिष्ठा को दासी बनाकर लात समय उसका जिद्दी और क्रोधी स्वभाव भली भाति प्रकट हो चुका था। मैंने उस अपनी आखो से देखा था। किन्तु मुझस — प्रत्यक्ष अपन पति स — इस समय वह इस तरह स पश आएगी!

अपन-आपको सयत रखकर मैंने कहा दवयानी! तुमस किसीने कुछ कहा सुना?

मुझस किसीने कुछ कहा-वहा नही है!'

अगर किसी न तुम्हारा अपमान किया है

हा किया है!

किसने ?

आपने !'

मैंने ?'

जी आपने !"

'कब ?'

अभी !'

'मैं इसका अर्थ '

इसमें क्या खाक अर्थ है सारा अनर्थ ही है ! आज यहां इस मंगल अवसर पर मेरे जीवन के अत्यंत आनंद के समय मदिरा पीकर आने में आपको आपके मुंह से आ रही यह बदबू "

मदिरा ? क्या मैं मदिरा पीकर आया था ? नहीं ! अभी माधव के साथ उसके घर गया था। किसी ने उसे माध्वी बहुत बढ़िया माध्वी उपहार में भेजी थी। मेरे स्वागत में उसने उसे मेरे सामने रखा था। बहुत ही उत्कृष्ट था वह पेय ! इसीलिए यूं ही मजाक में थोड़ी ली थी मैंने।

मैंने कहा देवयानी मैंने मदिरा नहीं पी है ! थोड़ी-सी माध्वी

मदिरा के सारे नाम कण्ठस्थ हैं मुझे। आप उन्हें गिनाने की चेष्टा न करें ! कभी राक्षसों के राज्य में भी उसका बड़ा बोलबाला था। इस मदिरा के कारण ही पिताजी को संजीवनी से हाथ धोना पड़ा तब जाकर कहीं उन्होंने मदिरा पीना छोड़ दिया। ब्राह्मण मदिरा प्राशन करे तो उसके गले में पिघला सीसा उड़ेल देने का नियम बना दिया उन्होंने तब से ! गनीमत है, मेरे नियम [illegible]

मेरा अहोभाग्य कि मैं ब्राह्मण नहीं हूं ! उलाहना भरे स्वर में मैंने कहा। इस आनंद के समय किसी मामूली बहाने से रंग में भंग करनेवाली देवयानी पर मुझे क्रोध हो आया था।

उसने कहा आप ब्राह्मण नहीं हैं लेकिन मैं तो हूं। मैं अपने पिता की बेटी हूं तपस्वी शुक्राचार्य की कन्या हूं ! मैं दूर से भी मदिरा की महक बर्दाश्त नहीं कर सकती !

तुम जैसे अपने पिता की पुत्री हो, वैसी ही मेरी पत्नी भी हो ! मैं क्षत्रिय हूं और क्षत्रिय के लिए मदिरा वर्जित नहीं है !'

किंतु पिताजी ने मदिरा छोड़ दी है। वह तो मदिरा का वैरी ही था।

वह ? कौन वह ?" मेरे मन पर क्रोध का भूत सवार था ही, अब उसपर संशय का पिशाच भी चढ़ बैठा। मैंने जोश खरोश से पूछा वह कौन ?'

देवयानी स्तब्ध हो गई। अब तक वह मुझपर हावी थी, मुझे ताने मार रही थी भला-बुरा कह रही थी ! अब उसको बदला लेने का अच्छा अवसर हाथ आया जानकर मैंने उछलकर पूछा बताती क्यों नहीं वह कौन था ? अब क्या बोलती बंद हो गई ?"

हाट चबाती हुई वह बोली — उसका नाम लेने के लिए मैं किसीस डरता नहीं ! कच को भी मदिरा पसन्द नहीं थी !

सूक्ष्म मत्सर की भावना दिल को छू गई। मैंने कहते हुए कहा — यह हस्तिनापुर का राजप्रासाद है ! यह न तो शुक्राचार्य का आश्रम है, न ही कच की पर्णकुटी ! समझी ? जिसे मदिरा पसन्द न हो, वह चाहे तो उसे स्पर्श भी न करे ! किन्तु किसीकी पसन्दगी-नापसन्दगी मुझपर क्यों थोपी जा रही है ? मैं क्या किसीका सेवक हूँ ? मैं राजा हूँ ! हस्तिनापुर का राजा ययाति हूँ मैं ! यहाँ का स्वामी हूँ मैं ! यहाँ कच का कोई काम नहीं और शुक्राचार्य को भी यहाँ के मामले में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं ! तुम मेरी धर्मपत्नी हो। मेरे सुख की ओर ध्यान देना तुम्हारा

आप शौक से अपने सुख की तरफ ध्यान देते हुए बैठिए — कहते हुए उसने अग्निबाण-सा जलता कटाक्ष मेरी ओर फेंका। क्षण भर विलक्षण क्रोध से मेरी ओर देखती रही और बाद में किसी पिशाचग्रस्त स्त्री की तरह जोर से दरवाजा खोल कर वह चली गई।

मैं धम्म से अपनी शय्या पर गिर पड़ा। पिताजी को दिया गया वह भयंकर अभिशाप ! बिल से फुफकारते निकले क्रुद्ध नाग की तरह मेरे स्मृतिकोष से वह बाहर निकला — नहुष के ये पुत्र कभी सुखी नहीं होंगे !

हमारी प्रीति की सफलता की वह पहली रात थी ! इस पहली रात में ही उस अभिशाप का अनुभव इतने विपरीत ढंग से करने को मिलेगा, इसकी कल्पना तक मैं नहीं कर सकता था। मेरी अवस्था तो ऐसी हो गई थी जैसी मूसलाधार वर्षा से बचने के लिए कोई पथिक वृक्ष के नीचे जा खड़ा हो और उसी वृक्ष पर गिरती गाज की चकाचौंध से उसकी आँखें अँधिया जाएँ ! अतृप्त तन और संतप्त मन के पाटों के बीच रात भर मेरा मन पिसता रहा !

क्या-क्या आशाएँ लेकर मैं महल में आया था ! मुझे देवयानी की चाह थी। पूरी की पूरी देवयानी को मैं चाहता था। देवयानी का केवल शरीर नहीं, उसका मन भी चाहता था। इसीलिए शरीर से और मन से भी मेरी बनी देवयानी की मुझे चाह थी। अलका की मृत्यु ने हम माता-पुत्र के बीच आकाश जितनी ऊँची दीवार खड़ी कर दी थी ! मुकुलिका के कारण मेरा शरीर कुछ क्षण सुख पा गया था। किन्तु उस सुख में कितना पशुता था, यह आगे चलकर अलका के सहवास में अच्छी तरह जान सका था। उस प्रकार के क्षुद्र और क्षणिक सुख की अपेक्षा अधिक उच्च और उत्कट प्रीति का आस्वाद लेने के लिए मैं अत्यंत आतुर हो गया था ! किन्तु

०

अलका की मृत्यु के बाद नाम से राज्याभिषेक समारोह हुआ। माँ ने मुझे शान्ति-शान्ति आशीर्वाद दिया। राजसभा में और राजभवन में सजकर बैठे ययाति

का उस ने जीभरकर देखा और उसपर कहीं उनि चली गई। किन्तु उसी समय अलका भी मा क निकट आकर पोछती खडी थी। उस अलका की याद आ गई थी। उसका स्थान ही भरा कलेजा धम सा गया। एक ही स्थान पर एक महत्त्वाकांक्षी हत्यारिणी मा राजमाता के ऐश्वय म फूल न समा रही थी और एक बहुत ही भली निरीह मा अपनी इकलौती बेटी के लिए कोने म आसू बहा रही थी। किसीने उस मह तक मालूम नहीं होने दिया था कि उसकी बेटी कहा मरी कब मरी। राजप्रासाद—राजप्रासाद ही क्या सत्ता और सपत्ति का प्रत्यक्ष केंद्र एक प्रचण्ड अजगर जैसा होता है। वह भीषणतम राज को अत्यत सहजता म निगल जाता है। जिस राजमहल ने पिताजी का मिले अभिशाप के राज का राज ही रहने दिया था यति के रूप म वह अभिशाप प्रत्यक्ष म बस आ गया है इस बात का भी जिसने सहजता से छिपा रखा था उस राजमहल के लिए एक दासी की मृत्यु को छिपाना कौन बडी बात थी ? कलिका की यह धारणा पक्की करा दी गई थी कि उसकी बेटी महामारी म मर गई। आज किसीने यो ही कह दिया था कि राज्यारोहण समारोह के इस अवसर पर अलका का यहा होना चाहिए था। उन शब्दों के कारण उस बेचारी के दिल का घाव फिर से हरा हो गया था। यह नहीं कि उसे मालूम न था कि ऐसे मगल अवसर पर राजमहल म कोई आसू नहीं बहाया करता किन्तु हजार कोशिशें करने पर भी वह अपने आसुओं को रोक नहीं पा रही थी।

मा ने उसे रोती देखा तो बहुत बुरी तरह डाट पिलाई। उसने कहा अभी इसी समय यहा से अपनी बहन के घर चली जा। निकल। यहा रोकर अपशकुन न कर।' यह सुनकर तो मेरे रोगटे खडे हो गए।

मुझे मा पर बडा क्रोध हो आया। उसी समय मैंने निश्चय किया जैसे भी हो अलका की मृत्यु का बदला लेना ही होगा।

वह बदला लेने के लिए ही मैंने मा से बात करना छोड दिया। मदिरा और मृगया म अपने-आपको डुबोए रखने लगा। एक से एक सुदर राजकन्याओं के चित्र मा ने मुझे दिखाने के लिए प्रस्तुत किए तो उनम से हरेक का किसी-न किसी प्रकार का दोष दिखाकर मैंने अस्वीकार कर दिया। इस तरह के प्रतिशोध से मेरे मन को थोडा समाधान अवश्य मिला किन्तु मेरी अतरात्मा पहले जैसी ही भूखी-प्यासी रही।

इसी अवस्था म एक बार मृगया की धुन म मैं हिमालय की तलहटी म पहुच गया। शिकार का पीछा करते-करते राक्षसों के राज्य म प्रवेश कर गया और देवयानी को धर्मपत्नी बनाकर हस्तिनापुर लौट आया था।

उस दिन एक घडी म—घडी भी कहा एक पल म ही—मैंने देवयानी को स्वीकार कर लिया। कितनी अद्भुत कितनी विलक्षण घटना थी वह। किन्तु मानना पडगा कि उस क्षण तो मुझे यह घटना बहुत ही काव्यमय लगी थी।

कुए से बाहर आने वाली देवयानी मुझे समुद्रमथन से निकली लक्ष्मी की तरह लगने लगी थी।

किन्तु क्या मैं केवल उसका सौन्दर्य देखकर ही उसपर मोहित हो गया? नहीं! मुझे लगा मां का वह क्रूर रूप मन एक क्षत्रिय राजकन्या की खोज है मैं ब्राह्मण ऋषिकन्या से विवाह कर लूं तो यह बात जीवन भर मां को चुभती रहेगी। एक निरीह लडकी की हत्या करने की सजा भाग्य किस तरह देता है उसको समझ म आ जाएगा। इसलिए मैंने देवयानी को स्वीकार किया था—मां से अच्छा खासा बदला लेने के लिए!

किन्तु किसी भी तरह की आनाकानी न करते हुए देवयानी को मैंने केवल इन्हीं दो विचारों से स्वीकार किया हो ऐसा भी नहीं था। और भी एक आशा मेरे मन म जाग गई थी। यह मालूम होते ही कि यह सुन्दर कन्या शुक्राचार्य की पुत्री है वह मुझे अधिक ही कमनीय लगने लगी। मेरे मन म विचार आया कि एक महान ऋषि के अभिशाप का साया मेरे वंश पर पडा है। उससे उबरने के लिए उतने ही महान ऋषि के आशीर्वाद की मुझे आवश्यकता है। शुक्राचार्य ने संजीवनी विद्या प्राप्त करने योग्य तपस्या की थी। यदि उन्हें ज्ञात हो जाए कि अगस्त्य ऋषि का अभिशाप उनकी कन्या और दामाद की गृहस्थी म विष घोल रहा है तो क्या वे चुप बैठेंगे? घोर तपस्या करके वे उस शाप से हमें मुक्ति दिला देंगे। इस दुनिया के अत्यंत ऐश्वर्यसम्पन्न राजा का दामाद बनकर भी मैं सुखी न हो पाऊंगा—किन्तु शुक्राचार्य ठान लेंगे तो—कौन ससुर है जो अपने दामाद का कल्याण नहीं चाहता? दामाद का सुख यही कन्या का सुख। किस पिता को अपनी कन्या के सुख-दुख की चिन्ता नहीं होती?

आगे पीछे की कोई बात न सोचकर किसी की सलाह न लेकर देवयानी ने जिस उत्साह से मेरी पत्नी बनना स्वीकार किया उतनी ही तत्परता से मैंने उसे धर्मपत्नी बनाना स्वीकार कर उसका पाणिग्रहण कर लिया।

किन्तु प्रत्यक्ष म शुक्राचार्य को मैंने बिलकुल ही भिन्न रूप में जाना! अपनी कन्या के प्रति उन्हें बहुत ही ममता थी फिर भी इतना बड़ा राजा दामाद के रूप में मिलने की कोई खुशी उन्होंने प्रकट नहीं की। एक शब्द से भी वैसा भाव उन्होंने व्यक्त नहीं किया। मानो चूंकि वे एक बड़े तपस्वी हैं उनकी कन्या का मुझपर अधिकार हो या! मेरे सुख-दुख की बातें करना तो रहा राजा के नाते भी उन्होंने मेरा कोई क्षेम-कुशल तक नहीं पूछा! सारा समय वे अपनी कन्या को मनाते रहे और उसके विछोह की कल्पना कर करके आहें भरते रहे! सुना कि वे फिर कोई घोर तपस्या करने जा रहे हैं! उनके उस संकल्प का विस्तारपूर्वक वर्णन भी मैंने सुना है। किन्तु शुक्राचार्य के मन यह ध्यान म ही न था कि ययाति भी आखिर एक मनुष्य है। उसने किसी भी तरह की कोई झिझक दिखाए बिना ही उनकी कन्या को स्वीकार कर लिया है उसके सुख-दुख के साथ एकरस होना और अपने बारे म उसके मन में आत्मीयता जगाना नितांत आवश्यक है!

शर्मिष्ठा ने देवयानी की दासी बनना क्षण भर में ही स्वीकार कर लिया! राधवन शुक्राचार्य राज्य छोड़कर बाहर न चले जाएं, अपने कारण अपनी जाति का

अधिक मनस्ता का सामना न करना पड़े यही सोचकर उसने देवयानी की क्रोधाग्नि में स्वयं आत्माहुति दे दी। यह उसके मन की महानता थी। एक तपस्वी होने के नाते एक प्रौढ़ और अनुभवी व्यक्ति के नाते कम से कम महाराज वृषपर्वा के गुरु और मित्र होने के नाते तो शुक्राचार्य को नहीं चाहिए था कि वे शर्मिष्ठा को दासी नहीं बनने देते?

किन्तु वे रहे महान ऋषि। सामान्य लोगों के सामान्य दुःखों को भला वे कैसे देख पाते? वे तो बस अपनी ही तपस्या, बड़प्पन और जिद्दी बेटी के सम्मान की धुन में मगन थे। वैसे तो मैं राक्षसों के राज्य में बहुत ही थोड़े समय ठहरा था। किन्तु उस अल्पकाल में भी एक बात मेरे ध्यान में आ गई—इन पिता पुत्री की एक अलग ही आत्मकेंद्रित दुनिया है। देवयानी की दृष्टि में शुक्राचार्य से महान कोई ऋषि त्रिभुवन में है ही नहीं। शुक्राचार्य की दृष्टि में देवयानी जैसी सुन्दर और गुणवती लड़की कहीं ढूंढ़े भी नहीं मिलेगी।

लड़की को ससुराल विदा करते समय हर पिता की आंखों में आंसू आ जाते हैं, वैसे ही वे शुक्राचार्य की आंखों में भी आ गए थे। किन्तु तुरन्त मुझे एक ओर बुलाकर उन्होंने कहा, "राजन, देवयानी मेरी इकलौती बेटी है। कभी न भूलना कि उसका सुख ही मेरा सुख है। उसे हमेशा प्रसन्न रखना। मैं फिर से घोर तपस्या कर संजीवनी जैसी अलौकिक सिद्धि प्राप्त करने वाला हूं। दिन रात याद रखना कि मेरा आशीर्वाद इस संसार में एक महान शक्ति है। किन्तु मैं जितना महान हूं उतना ही क्रोधी ब्राह्मण भी हूं। विचारवान पुरुष जहरीले महासर्पों की अपेक्षा अत्यंत नुकीले शस्त्रों की अपेक्षा या लपलपाती ज्वालाओं से चहुं ओर फैलती जाने वाली प्रज्वलित अग्नि की अपेक्षा तपस्वी ब्राह्मणों से अधिक डरा करते हैं। सर्प एक को दंश करता है, शस्त्र शायद अनेकों को मौत के घाट उतार देते हैं, अग्नि सारा गांव जलाकर ढेर कर सकती है, किन्तु तपस्वी ब्राह्मण का क्रोध समूचे राष्ट्र का संहार कर सकता है। तुमने अभी देखा ही है, वृषपर्वा को किस तरह मेरे चरणों पर लोटना पड़ा, कैसे शर्मिष्ठा जैसी राजकन्या रोती हुई देवयानी की दासी बनी। इसीलिए ऐसा कुछ भी कभी मत करना जिससे देवयानी को दुःख पहुंचे। कभी न भूलना कि उसका दुःख मेरा भी दुःख है।"

मैंने सोचा था कि मेरे समान वे देवयानी को भी उपदेश की चार बातें सुनाएंगे। मैंने सुन रखा था कि ऐसे अवसर पर राजमहल जाने वाली नववधू को घर के बड़े बुजुर्ग यह समझाते हैं कि बड़ों की सेवा कैसे करनी चाहिए, पति को सुख मिले ऐसा व्यवहार कैसे करना चाहिए और बड़ी पत्नी का धर्म क्या माना गया है, बाद में सौतें हों भी तो उनसे बिना किसी मत्सर के मिलजुलकर कैसे रहना चाहिए आदि आदि। किन्तु शुक्राचार्य ने अपनी कन्या को ऐसा कोई उपदेश देने की सूझी तक नहीं। बड़े तपस्वी जो थे! आखिर बड़ों की सारी बातें निराली ही होती हैं, ऐसा मानकर मैंने संतोष कर लिया था।

आधी रात कभी की बीत चुकी थी। दूसरे पहर के घंटे अभी अभी मैंने सुन

किन्तु क्या मैं केवल उसका सौन्दर्य देखकर ही उसपर मोहित हो गया? नहीं! मुझे लगा मा को बहू के रूप में एक क्षत्रिय राजकन्या की खोज है मैं ब्राह्मण ऋषिकन्या से विवाह कर लूं तो यह बात जीवन भर मा को चुभती रहेगी। एक निरीह लड़की की हत्या करने की सजा भाग्य किस तरह देता है उसकी समझ में आ जाएगा। इसीलिए मैंने देवयानी का स्वीकार किया था—मा से अच्छा खासा बदला लेने के लिए!

किन्तु किसी भी तरह की आनाकानी न करते हुए देवयानी को मैंने केवल इन्हीं दो विचारों से स्वीकार किया हो ऐसा भी नहीं था। और भी एक आशा मेरे मन में जाग गई थी। यह मालूम होते ही कि यह सुन्दर कन्या शुक्राचार्य की पुत्री है वह मुझे अधिक ही कमनीय लगने लगी। मेरे मन में विचार आया कि एक महान ऋषि के अभिशाप का साया मेरे वंश पर पड़ा है। उससे उबरने के लिए उतने ही महान ऋषि के आशीर्वाद की मुझे आवश्यकता है। शुक्राचार्य ने संजीवनी विद्या प्राप्त करने योग्य तपस्या की थी। यदि उन्हें ज्ञात हो जाए कि अगस्त्य ऋषि का अभिशाप उनकी कन्या और दामाद की गृहस्थी में विष घोल रहा है तो क्या वे चुप बैठेंगे? घोर तपस्या करके वे उस शाप से हमें मुक्ति दिला देंगे। इस दुनिया के अत्यंत ऐश्वर्यसम्पन्न राजा का दामाद बनकर भी मैं सुखी न हो पाऊंगा—किन्तु शुक्राचार्य ठान लें तो—कौन ससुर है जो अपने दामाद का कल्याण नहीं चाहता? दामाद का सुख यही कन्या का सुख। किस पिता को अपनी कन्या के सुख-दुख की चिन्ता नहीं होती?

आगा पीछा की कोई बात न सोचकर किसीकी सलाह न लेकर देवयानी ने जिस उत्साह से मेरी पत्नी बनना स्वीकार किया उतनी ही तत्परता से मैंने उसे धर्मपत्नी बनाना स्वीकार कर उसका पाणिग्रहण कर लिया।

किन्तु प्रत्यक्ष में शुक्राचार्य को मैंने बिलकुल ही निराले रूप में जाना! अपनी कन्या के प्रति उनके मन में ही ममता थी फिर भी इतना बड़ा राजा दामाद के रूप में मिलने की कोई खुशी उन्होंने प्रकट नहीं की। एक शब्द से भी वैसा भाव उन्होंने व्यक्त नहीं किया। मानो चूंकि वे एक बड़े तपस्वी हैं उनकी कन्या का मुझपर अधिकार ही था! मेरे सुख-दुख की बातें करना तो रहा राजा के नाते भी उन्होंने मेरा कोई क्षेम-कुशल तक नहीं पूछा! सारा समय वे अपनी कन्या को मनाते रहे और उसके बिछोह की कल्पना-भर करके आहें भरते रहे! सुना कि वे फिर कोई घोर तपस्या करने जा रहे हैं! उनके उस संकल्प का विस्तारपूर्वक वर्णन भी मैंने सुना है। किन्तु शुक्राचार्य के जरा यह ध्यान में हो न था कि ययाति भी आखिर एक मनुष्य है। उसने किसी भी तरह की कोई शिकायत किए बिना ही उनकी कन्या को स्वीकार कर लिया है। उसके सुख-दुख के साथ एकरूप होना और अपने बारे में उसके मन में आत्मीयता जगाना नितान्त आवश्यक है!

शर्मिष्ठा ने देवयानी की दासी बनना क्षण भर में ही स्वीकार कर लिया! आधे वन में शुक्राचार्य राज्य छोड़कर बाहर न चले जाएं अपने कारण अपनी जाति को

अधिक सकटो का सामना न करना पड़े यही सोचकर उसने देवयानी की क्रोधाग्नि म स्वय आत्माहुति दे दी ! यह उसके मन की महानता थी। एक तपस्वी होने के नाते एक प्रौढ़ और अनुभवी व्यक्ति के नाते कम स कम महाराज वृषपर्वा का गुरु और मित्र होने के नाते तो शुक्राचार्य को नहीं चाहिए था कि वे शर्मिष्ठा को दासी नहीं बनने देते ?

किन्तु वे रहे महान ऋषि ! सामान्य लोगों के सामान्य दुःखों को भला वे कैसे देख पाते ? वे तो बस अपनी ही तपस्या बड़प्पन और ज़िद्दी बेटी को समझाने की धुन म मगन थे ! वैसे तो मैं राक्षसों के राज्य म वस्तुत ही थोड़े समय ठहरा था। किन्तु उस अल्पकाल म भी एक बात मेरे ध्यान म आ गई — इन पिता पुत्री की एक अलग ही आत्मकेंद्रित दुनिया है ! देवयानी की दृष्टि म शुक्राचार्य से महान कोई ऋषि त्रिभुवन में है ही नहीं ! शुक्राचार्य की दृष्टि म देवयानी जैसी सुन्दर और गुणवती लड़की कहीं ढूँढ़े भी नहीं मिलगी ! यह प्रेम अद्भुत लगता है।

लड़की को ससुराल बिदा करते समय हर पिता की आखों म आसू आ जाते हैं वैसे ही वे शुक्राचार्य की आखों म भी आ गए थ। किन्तु तुरन्त मुझे एक ओर बुलाकर उन्होंने कहा राजन देवयानी मेरी इकलौती बेटी है। कभी न भूलना कि उसका सुख ही मेरा सुख है। उसे हमेशा प्रसन्न रखना। मैं फिर से घोर तपस्या कर सजीवनी जैसी अलौकिक सिद्धि प्राप्त करने वाला हू। दिन रात याद रखना कि मेरा आशीर्वाद इस ससार म एक महान शक्ति है। किन्तु मैं जितना महान हू उतना ही क्रोधी ब्राह्मण भी हू। विचारवान पुरुष ज़हरीले महासर्पों की अपेक्षा अत्यंत नुकीले शस्त्रों की अपेक्षा या लपलपाती ज्वालाओं से चहु ओर फैलती जाने वाली प्रज्वलित अग्नि की अपेक्षा तपस्वी ब्राह्मणों स अधिक डरा करते हैं। सर्प एक को दश करता है शस्त्र शायद अनेकों को मौत के घाट उतार देते हैं अग्नि सारा गाव जलाकर ढेर कर सकती है किन्तु तपस्वी ब्राह्मण का क्रोध समूचे राष्ट्र का सहार कर सकता है। तुमने अभी देखा ही है वृषपर्वा को किस तरह मेरे चरणों पर लोटना पड़ा, कैसे शर्मिष्ठा नाक रगड़ती हुई देवयानी की दासी बनी। इसीलिए ऐसा कुछ भी कभी मत करना जिससे देवयानी का दुःख पहुचे। कभी न भूलना कि उसका दुःख मेरा भी दुःख है !'

मैंने सोचा था कि मेरे समान वे देवयानी को भी उपदेश की चार बातें सुनाएग। मैंने सुन रखा था कि इस अवसर पर राजमहल जाने वाली नववधू को घर के बड़े बुजुर्ग यह समझाते हैं कि बड़ों की सेवा कैसे करनी चाहिए पति को सब सुख मिले ऐसा व्यवहार कैसे करना चाहिए और वहाँ पत्नी का धर्म क्या माना गया है कोई सौत हो भी तो उनसे बिना किसी मत्सर के मिल जुलकर कैसे रहना चाहिए आदि-आदि। किन्तु शुक्राचार्य को अपनी कन्या को ऐसा कोई उपदेश देने की सूझी तक नहीं वह तपस्वी जो थ ! आखिर बड़ों की सारी बातें निराली ही होती हैं ऐसा मानकर मैंने सबसे बिदा ली थी।

आधी रात कभी की बीत चुकी थी ! दूसरे पहर के घटे अभी अभी मैंने सुने

थ। न्ही सब पुरानी यात्रा म प्रति क्षण करवटें बदलता हुआ मैं बेचन था।

मनुष्य भी कितना लालची होता है।

कभी लगता देवयानी न आज जो कुहराम मचाया उससे सारा राजमहल असमजस म पड गया होगा। दास दासिया आपस म कानाफूसी करती रही होगी। शायद सुहागरात की बेला म इतनी उन्मतता स पति को छोडकर शयन मन्दिर से चली जान वाली युवती उन्होने कभी देखी नही होगी। ऐश्वय जितना बडा हो, उतने ही शिष्टाचार क बधन अधिक कठोर होते है। किन्तु आज राजमहल म वह सब हो गया जो किसी गरीब की झोंपडी म भी नही होना चाहिए---वही भी नही होना चाहिए। एसा क्यो हुआ किसीको मालूम न था। कौन बताता? किसे बताता? और क्स बताता? कौन देवयानी को समझाता?

और कुछ ही समय बाद सबत्र सन्नाटा हो जाएगा फिर अब तक अपने महल म तडपती रही देवयानी दबे पाव मेरे महल म वापस आएगी द्वार बद कर वह पलग पर आ बठेगी मरे पाव दबान लगेगी मैं एकदम उसका हाथ पकड लूगा और कहूगा पगली कही की! अजी विधाता ने य सुदर हाथ क्या पाव दबाने के लिए बनाए है? फिर वह मेरी तरफ भीगी पलकें उठाकर देखेगी और मेरी गोद म अपना सिर छुपाती हुई नन्ही बच्ची की तरह कहेगी भूल मुझसे हुई है गुस्से क आवेश म अनाप शनाप बक गई मैं। मुझे क्षमा किया जाए। करेंगे न क्षमा?

फिर उसका माथा सहलाते हुए मैं कहूगा मैं तुम्हे क्षमा करू? यानी तुम और मैं क्या भिन्न है? नही! अरी पगली तुम और मैं भिन्न नही। सगम म लीन हो चुकी नदियो क प्रवाह क्या फिर स अलग-अलग बहते हुए किसीन देखे है? तुम्हे क्षमा करना यानी अपने-आपको क्षमा करना है। तुम मुझस क्षमा मागो और मैं तुम्हे क्षमा करू इसका अथ तो यही होगा कि मैंने अपने आपसे क्षमा मागी और अपने-आपको क्षमा कर भी दिया। यह सुनकर वह धीरे से मुस्करा देगी और स्वय होकर

काश! भगवान न हवाई किले बाधने की शक्ति मनुष्य को न दी होती!

देवयानी अब आएगी बस आती ही होगी। वह आ जाए तो मैं भी बीती गई सी बात गई मानकर सारा मामला भुला दूगा। उससे कहूगा तुम भिन्न प्रकार क सस्कारो म पली हो। यह बात पहले ही मरे ध्यान म आनी चाहिए थी लेकिन न आई। आज की गलती क लिए मुझे माफ कर देना। अब स आगे फिर कभी मदिरा पीकर आया तो शयन मन्दिर म तुम न दिखोगी। इसपर भी तुम्हे सन्तोष न होता हो तो तुम्हारी सौगध उठाकर इसी क्षण स मैं मदिरा पीना छोड देता हू। फिर कभी किसी भी प्रकार की मदिरा का होंठो का स्पश नही होने दूगा। वह मरे गल म बाहें डालकर कहेगी मरे समान आप भी भिन्न सस्कारो म पले है। यह बात मरे भी ध्यान म आ जानी चाहिए थी। आप क्षत्रिय है वीर है राजा है। आपको राजकाज चलाना होता है युद्ध करने पडते है। मदिरा स प्राप्त

होन वाले उन्माद की आपका आवश्यकता भी है। आपके इस मामूली सुख म बाधा डालना मेरे लिए उचित नही है किन्तु म भी क्या करू ? मदिरा की महक मुझे कतई भाती नही। मेरी आपसे इतनी ही प्रार्थना है कि हमारे एकान्त मिलन के समय आप नशे म न हो।''

तीसरे पहर के घटे भी बजे। मैं तडपता ही रहा। यो ही कान लगाकर देवयानी के आने की आहट लेता रहा। किन्तु मेरे महल की ओर कोई भी फटका तक नही। आता भी कौन ? देवयानी के इस आततायी आचरण से मा को भी काफी क्रोध आया होगा। किन्तु वह इतनी व्यवहार चतुर अवश्य है कि वह को उपदेश की बातें सुनाने जाकर अपना अपमान करा लेने की अपेक्षा चुप रहना ही भला समझे। शर्मिष्ठा तो देवयानी की अपने साथ लाई आखिर एक दासी ही है। सहेली के नाते देवयानी से कुछ कहने का उसे अब अधिकार ही कहा है ? और उससे रहा न गया और वह देवयानी से कुछ कहने के लिए चली भी गई तो वह शेरनी क्या उसे कच्चा खाए बिना छोडेगी ? अन्य दास दासिया और सेवक तो बचारे ऐसे है कि आख होकर भी अधे कान होकर बहरे और जुबान होकर गूगे है। वे सब लोग अपने-अपने स्थान पर बहुत ही दबी आवाज म काना-फूसी करते बेचैन अवसाद अनुभव करते सो गए होगे।

सत्रस्त मन से मैं पलग से उठ गया। अतृप्त तन और अपमानित मन की चुभन बडी विचित्र हुआ करती है—बिलकुल साप के विष जैसी। बाहर से देखने में बहुत ही सूक्ष्म किन्तु भीतर अत्यन्त तीखा प्रभाव करने वाली।

महल की खिडकी से बाहर के अधकार को देखते देखते मुझे मुकुलिका का स्मरण हो आया। अलका की याद आ गई। मुकुलिका ने मुझे जो कुछ दिया था अलका से मुझे जो कुछ मिला था उससे भी अधिक उदात्त अधिक उत्कट प्रेम पाने के लिए मैंने देवयानी का पाणिग्रहण किया था किन्तु उस सेज से जिसे मैंने फूलो की सेज मानकर सुख से सोने के लिए चुना था साप के सरसराते बच्चे निकल पडे थे।

मेरे भीतर का मनुष्य जाग उठा। मेरे भीतर का पुरुष जाग उठा। मेरे भीतर का राजा जाग उठा। मैं अपने आपको ही देखता रहा मुझे जिस किसी सुख की चाह है उसे मैं इस धरती पर कही भी, किसी भी समय प्राप्त कर सकता हू। मैं असाधारण मनुष्य हू पराक्रमी पुरुष हू वैभवशाली राजा हू चाहा तो अन्त पुर म रोज एक से एक नई अप्सरा ला सकता हू।

o

दूसरे दिन प्रात जब मैं उठा तब भी मेरा गुस्सा उतरा नही था। मन एक प्रकार की लज्जा अनुभव कर रहा था। सोचने लगा चलो कही दूर मृगया के लिए निकल पडू। तभी शर्मिष्ठा जल्दी जल्दी महल म आई और हाथ जोडकर कहने लगी रात से महारानी की तबीयत अचानक खराब हो गई है। राजवै

ऊपरी हँसी हँसते हुए मैंने कहा इन मुलायम हाथों का स्पर्श-लाभ निरंतर होता रहे इस हेतु एक ही क्या सौ वचन दे सकता हूँ मैं ! '

ऊँ हूँ । इतनी आसान बात नहीं है वह ! मेरे पिताजी के चरणों की सौगंध खाकर आपको मुझे वचन देना होगा !

मुझे उसके पिता पर बड़ा क्रोध आया। देवयानी अब मेरी पत्नी हो चुकी थी। उसके मन में पिता की अपेक्षा मेरे प्रति अधिक प्रेम अधिक आत्मीयता का होना आवश्यक था। किन्तु उसके मन पर अभी तक उसके पिता का ही साम्राज्य था।

अब की बार मन को संयत करने में मुझे बहुत कष्ट हुआ। किन्तु जैसे-तैसे मैंने उसपर काबू पा ही लिया। मैंने उसे वचन दे दिया।

देवयानी हँसने लगी। वह हँसी मात्र एक प्रेयसी की हँसी नहीं थी। वह एक मानिनी की भी हँसी थी ! अपने सौंदर्य के बल पर पुरुष को भी चरणों में झुका सकने के अहंकार में मदहोश रमणी की हँसी थी वह !

प्रीति के राज्य में हुए इस प्रथम युद्ध में मैं पूरी तरह हार गया था !

मद्यपान के बारे में देवयानी को दिए वचन को मैंने पूरी तरह निभाया। हमारा दांपत्य जीवन सुचारु रूप से शुरू हो गया।

आज भी वे दिन याद आते हैं ! दिन क्या थे ? उन्हें दिन तो महज इसलिए कहना चाहिए क्योंकि बीच में सूरज उगता था और चार पहर मेरा और देवयानी का वियोग कर फिर डूब जाता था। अन्यथा रात यदि आठ पहर की हो सकती, तो ययाति कमल के भीतर बंदी बने उस भौंरे की घुटन से भी अधिक मतवाला सुखसागर में डूबता-उतराता रहता !

सवेरे ही उद्यान में पंछी चहचहाने लगते तो मुझे उनपर बड़ा क्रोध आता। लगता सारे के सारे पक्षी अरसिक हैं ! उनका कलरव सुनते ही देवयानी अपने महल में जाने के लिए जल्दी मचाने लगती। मैं उससे कहता ठहरो भी ! ये पंछी भी पागल होते हैं। दूधिया चाँदनी देखकर इन्हें सवेरा होने का भ्रम हो जाया करता है। अभी काफी रात बाकी है आराम से सो जाओ !'

किन्तु वह नहीं मानती। जल्दी-जल्दी जाने को निकलती। तो मैं कह देता लगता है अब तो मुझपर बड़ा भारी प्रसंग बीतने जा रहा है !

वह पूछती कौन-सा ?

तुम्हारे बिना चार-पाँच पहर काटने का ! '

वह हँसती खड़ी-खड़ी मेरे आलिंगन में आ गिरती ! इससे मेरा अंग-अंग पुलकित हो जाता ! वसंत के नवीन पल्लवों की तरह तन-मन पुलकित हो जाता।

मेरा कहीं भी मन न लगता। जब मैं कहता तुम्हीं बताओ तुम्हारा ऐसा लम्बा विरह कैसे सहूँ ? उसकी गायन की धुन थी तो मेरे चरणों में लिपटकर उसका पायल की झंकार सी ... तो ... होती थी ... मेरी प्रिया कहाँ है ? नाना-बनियों की उसकी सलामी भाव के आलिंगन में

लते फिर थे। आज यदि राजप्रासाद में मैं भी कुछ वैसा ही कर बैठूं तो '

वह बीच ही में कहती, 'हटिए भी! आप तो कमाल करते हैं।"

मैं कहता 'नहीं! इतने समय का विरह मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता। यह समय आखिर मैं किस तरह काटूं? तुम अपनी कुछ निशानी मुझे दे दो। उसीको ओर देखता "

मैं काफी चाहता था कि इस बात पर वह तुरंत लपककर आगे बढ़ती और स्वयं ही रसमग्न कर मेरा चुंबन ले लेती होठों या गालों पर उसके दांतों की निशानी उठ जाए इतना दीर्घ, उत्कट चुंबन ले लेती। किंतु मेरी यह चाह उसने कभी पूरी नहीं की! फिर मैं ही उसके चुम्बन लेने लगता। एक-दो-तीन चार किसी भी तरह मन भरता ही नहीं था मन तृप्त होता ही नहीं था।

वह धीरे से मेरे हाथों से अपना चेहरा छुड़ा लेती और कुछ चिढ़कर कहती 'अब बस भी कीजिए न! वरना अजीर्ण हो जाएगा!' नहीं होगा

मैं उत्तर देता 'अहं! एक और'

वह बनावटी हंसी हंसकर कहती 'अहं! सारे फूल समाप्त हो गए!'

'झूठ! एकदम झूठ!'

'वह कैसे ?'

'अरी सारे संसार में यही तो एक ऐसी अद्‌भुत लता है जो चाहे जितने भी फूल तोड़ लें तब भी सदा बहार रंगी रहती है! इसके फूल समाप्त होते ही नहीं!'

'किंतु आप कहते तो हैं एक और किन्तु सौ-सौ "

'महर्षि के आश्रम में पली लड़की हो तुम प्रेम का यह गणित समझ पाना तुम्हारे बस की बात नहीं। इस गणित में एक का अर्थ एक हजार, एक लाख, एक करोड़ भी हो सकता है। प्रसंग के अनुसार बदलता रहता है यह अर्थ!'

वह थोड़ा सा हंसने का अभिनय करती और वैसी ही चली जाती। मैं अतृप्त नजर से उसके सुडौल पृष्ठाकृति को देखता रहता।

अन्य स्मृतियों के रंग समय के साथ फीके पड़ जाते हैं किंतु प्रीति की यादों के रंग हमेशा चमकदार बने रहते हैं। मैं नहीं जानता ऐसा क्यों होता है किंतु होता है अवश्य!

विवाह के बाद के कुछ महीनों की अनेक रातें मेरे मन पर अप्सराओं की सुडौल आकृतियों की तरह अंकित हो गई हैं! चांदनी की पायल खनकाती मेरे रंगमहल में आई वे रातें अनगिनत मधुघट अपने साथ लाई। मैं उन सबको एक सांस में पी गया और फिर भी प्यासा ही रहा! वे रातें मानो सुंदर ताल तलैयाएं थीं और उनमें जल क्रीडाओं के शतरंगी कमल खिले थे

लेकिन अब वे सारी बातें बताने की आवश्यकता भी क्या रही!

किंतु इसका मतलब यह नहीं कि शरीर-सुख और संभोग की बातें स्वीकार करना शिष्टाचारसम्मत नहीं है इसलिए मैं उन्हें टाल रहा हूं। ब्रह्मानंद प्राप्त कराने

उस वह सदूकी खोलकर दिखा दी। वह सुनहरा बाल हाथ में लेकर उसने मुझसे पूछा "आपकी यह प्रेयसी आजकल कहाँ पर है ?"

मैंने कहा "वह मेरी प्रेयसी नहीं, बचपन की सहेली थी।"

उसने मशयी भाव से पूछा "इन दिनों कहाँ है वह ?"

मैंने ऊपर आकाश की ओर देखा।

उसने हँसते-हँसते कहा "फिर यह बाल किसलिए सँभालकर रखा है ?"

"उसकी याद के लिए।"

उसने व्यंग्य भरे स्वर में पूछा "कल मैं मर गई तो मेरी मामूली याद भी आप नहीं रखने वाले हैं। बहुत प्यार था शायद इससे ? तभी इतना सँभालकर रखा है यह बाल।"

वह तो उस बाल को फेंक ही देना चाहती थी। मैं ही जानता हूँ उससे वह बाल वापस लेकर उस सुवर्ण मंजूषा में रखने के लिए मुझे कितना कष्ट उठाना पड़ा।

एक दिन मुझे लगा कि शायद वह नींद में ही कुछ बोल रही है। पता नहीं वह किससे बातें कर रही थी।

क्या वह स्वप्न में मुझसे ही बात कर रही होगी ? तो क्या देवयानी मुझे इतनी उत्कटता से प्रेम करती है कि मैं उसे स्वप्न में दिखाई दूँ ? मेरा रोम-रोम आनन्द से नाच उठा। कानों में प्राण समेटकर मैं सुनने लगा।

वह नींद में कह रही थी "...जय...शायद चुंबन की माँग को ठुकराने वाला यह उसका इनकार ही था। निश्चय मैं ही उसके स्वप्न में आया होऊँगा।

उसने आगे कहा "कितने सुंदर हैं ये फूल ! किन्तु..." कुछ रुककर उसने आगे कहा "नहीं भई, मैं नहीं डालूँगी।"

कुछ क्षण फिर स्तब्धता छा गई। वह अभी भी नींद में ही थी। मानो नींद में कोई नाटक खेला जा रहा था और वह अपने संवाद बोले जा रही थी। उसने कहा "...जय ! मेरे बालों में आप अपने हाथों से ...दें।"

फिर कुछ स्तब्धता। उसने कहा "नहीं ? आप नहीं डालेंगे ? तो मैं इन्हें कुचल मसल डालूँगी।"

उसके चेहरे पर उभरी मुस्कान गायब हो गई। उसका बोलना एकदम बंद हो गया। मेरी समझ में नहीं आ रहा था नींद में यह सब वह किससे कह रही थी। निश्चय ही अपनी सखी से नहीं। वह 'तू' या 'तुम' नहीं कह रही थी 'आप' कह रही थी। डालने का रहा था।

यह देखने के लिए कि उसे दूसरे दिन रात वाला स्वप्न याद आता है या नहीं मैंने कहा "आज कुछ धार्मिक विधि सम्पन्न करनी है। स्नान करने के बाद तुम..."

"धार्मिक विधि ? आज तो कोई त्योहार नहीं है।"

"यह एक नया उत्सव है।"

'नाम तो मालूम हो उसका ?

उसका नाम है — नाम है गौरी पूजन !"

वह ता राज ही होता है !"

अ ह यह गौरी अलग ही है। सूय वरुण, मारुत आदि के समान नही है वह ! वह स्वग म निवास नही करती।'

फिर कहाँ ?

वह तो घर घर म होती ह। उसीके कारण हर घर स्वग बन सकता है। पत्नी पूजा इस उत्सव का मुख्य भाग है।'

उसने हसत हसत पूछा, इस पूजा की विधि क्या हाती ? ऐसा तो कुछ उसम नही है कि देवता को भक्त स ही डर लगे ?

नही ! नही ! विधि बहुत सरल और आसान है। पति अपनी पत्नी क बालो म सुदर खुशबूदार फूल गूथ !'

बस इतना ही ?'

ज ह। और उन फूलो को जी भरकर सूघे ! प्रसाद ग्रहण किए बिना कोई पूजा कही पर भी पूरी हाती है ?

'देखिए मैं हू हस्तिनापुर की महारानी। आप ह महाराज ! हमारी य बचकानी हरकतें दास-दासिया देख लें ता हमारी कोई प्रतिष्ठा रहगी ?'

प्रतिष्ठा ! जहरील तीर जसा यह शब्द पहल काना म और बाद म कलजे म घुसा। मा ने भी इसी शब्द का प्रयोग किया था ! —अलका को जालिम जहर देने के बाद ! राजमहल की प्रतिष्ठा ! राजवश की प्रतिष्ठा ! मनुष्य को जमीन म जिदा गाडकर उस स्थान पर उसकी सुदर समाधि खडी करने वाली यह प्रतिष्ठा !

क्या देवयानी मा का ही अगली पीढी वाला सस्करण है ? जमाना बदल जाता है पीढिया उलट जाती हैं किन्तु आदमी ? क्या वे कभी नही बदलते ?

□

बार बार लग रहा है जो कुछ बताना था मैं ठीक तरह स बता नही पा रहा हू ! क्या मानव अपना दिल पूरी तरह स खोलकर बता ही नही सकता ? इस दिल म कितन द्वार हाते है ? लज्जा सकोच लिहाज प्रतिष्ठा—सभीको ताक पर रखकर अपने और देवयानी के सहजीवन क प्रथम वष का वणन करना चाहता ह किन्तु

नही ! यह मुश्किल है ! बहुत-बहुत कठिन है। किन्तु एक बात निश्चित है कि अपनी अपूणता मुझे चुभ रही थी तग कर रही थी। मैं पूणता का प्यासा था। वह प्यास शरीर की थी और मन की भी !

देवयानी न मुझे थोडा-बहुत शरीर सुख दिया। उस ऋण को मैं अस्वीकार नही करता। किन्तु उस समय भी उत्कटता का उफान उसम नही था। अनेक बार

वह थकान का बहाना बनाकर पलंग पर पड़ी रहती। महल में कदम रखने के बाद
यह बात मेरे ध्यान में आती। मैं दबे पाँव चुपके से उसके पास जाता और उसका
चुम्बन ले लेता। किन्तु उस चुम्बन से मैं ही जम ठिठुर जाता। उसकी तरफ से कतई
कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न होती। ऐसे समय बरबस ही मुझे अश्वमेध के पर्यटन में
पाषाणमूर्ति रति का मेरे द्वारा लिया गया वह चुम्बन याद आता। इस चुम्बन से मेरे
बदन में कोई बिजली नहीं दौड़ती। मेरा अकेलापन, अधूरापन और आधापन वैसा
ही तड़पता रह जाता—सूर्यप्रकाश में घूमने वाले अंधे के समान! बार-बार मन
में आता कि हम दोनों शरीर से नजदीक हैं किन्तु मन से नहीं।

मैंने मुकुलिका से सीखा था कि किसी भी भय अथवा दुःख से मुक्त अनुभव
करने का एक सहज सुलभ मार्ग प्रीति ही है। उसकी प्रीति जंगल की काँटोंभरी
और कुछ अपरिचित पगडण्डी जैसी थी। क्या पता! उसपर मुझे डसने के लिए
विषैले साँप भी लोट रहे होंगे। किन्तु देवयानी की प्रीति ऐसी नहीं थी। उसका
लुकने-छिपने या पाप की कल्पना से रत्ती भर भी संबंध नहीं था। वह पवित्र
मंगल और धर्मसम्मत प्रीति थी। वह एक सुंदर राजमार्ग था जिसे विविध रंगो
लियों से सजाया गया था और जिसपर जवाकुसुमों का पावड़ा बिछाया गया था!

किन्तु इस राजमार्ग पर भी मैं अकेला ही भटक रहा था! —

मैं फूलों की खुशबू-सी प्रीति चाहता था, आँखों से न दिखाई देने वाली किन्तु
चारों ओर मन्द मधुरता का सिंचन करने वाली! वैसी प्रीति देवयानी से मुझे कभी
मिली ही नहीं!

समुद्र में तैरने का आनन्द जी भर कर लेना हो तो किनारा छोड़कर गहरे पानी
में काफी दूर भीतर जाना पड़ता है। कभी चारों-ओर से लहरों का आलिंगन मिलता
है तो कभी उनके थपेड़े भी खाने पड़ते हैं। पल-पल प्रतिक्षण नमकीन चुम्बनों का
मिठास चखनी पड़ती है। नीले पानी पर तैरते रहकर दूर दिखाई देने वाले नील
क्षितिज को अपनी बाँहों में भरने की चेष्टा करनी पड़ती है। मौन के मुँह में हँसते-
हँसते सागर के अमर गीत का साथ देना पड़ता है। प्रीति की रीत भी ऐसी ही है।
उसके राज्य में अपने आपको भुलाना पड़ता है। म[illegible]शों से अपने-आपको झार
देना पड़ता है। क्षण-क्षण में खिले फूलों को कुचल-मसलकर उनकी खुशबू का
त्याग प्रेमी को करना पड़ता है।

देवयानी ने इस बात को कभी जाना नहीं, समझा नहीं, समझ लेने का प्रयास
भी नहीं किया। पहले-पहल—शायद अनजाने ही—मेरे उत्कट सुख की गंगा
उ[illegible] ही थी! मेरे मन में हमेशा चुभने वाली अकेलेपन की, पराएपन की चुभन
उसके सहवास में भी बनी रही।

[illegible] एकरूप हो पाई? नहीं!

वह तो हमेशा [illegible] आचरण करती जो धीरे से अपने [illegible] में
उतना ही [illegible] निकालता है जितनी आवश्यकता हो। यह [illegible]
[illegible] नहीं बल्कि [illegible] भी था। हमें जब भी किसी चीज की आवश्यकता होती

या उसपर कोई सनक सवार हो जाती वह उतने मात्र के लिए कवच में बाहर आती किंतु चाहती थी वह प्राप्त होते ही तुरंत वापस कवच में घुस जाए - प्राप्त सिद्धि के बल पर अंतर्धान हो जाने वाले किसी हठयोगी की तरह ! उसके मानसिक कवच में केवल एक ही व्यक्ति के लिए स्थान था—वह व्यक्ति था उसका पिता शुक्राचार्य ! काश ! वहां वह मेरे लिए भी स्थान बना देती ! यदि ऐसा होता तो इस ययाति का सारा जीवन एकदम निराला ही हो गया होता !

ये यदि और तो केवल आकाश-पुष्प है। देवयानी जैसी सुंदर पत्नी पाकर भी मैं मन से भूखा ही रहा यह सत्य है—त्रिकाल सत्य !

प्रीति की भूख—भूख ही तो है ! —दोपहर की भूख की तरह आधी रात की नींद की तरह ग्रीष्म में लगने वाली प्यास की तरह बड़ी विचित्र होती है यह भूख ! जितनी सूक्ष्म उतनी ही प्रखर !

प्रेम में शरीर की जो भूख होती है उसका वर्णन तो आसानी से किया जा सकता है। यौवन में कदम रखते ही हर कोई उसे अनुभव करने लगता है। किंतु प्रेम में जो एक मानसिक क्षुधा होती है उसका हाल ही निराला होता है। मैं भी उसका स्वरूप स्पष्ट नहीं कर पा रहा हूं। पलंग पर देवयानी पास ही सोई रहती थी और फिर भी कई बार अपना एकाकीपन मुझसे सहा नहीं जाता था।

लगता कि शायद मैं किसी निर्जन द्वीप पर आया हूं। इस द्वीप की रेत पर मानव के पदचिह्न कभी उठे नहीं ! पशु पक्षी, वृक्ष, लता, यहां कुछ भी नहीं ! एकदम सुनसान वीरान विशालकाय चट्टानों से भरा द्वीप ! इन चट्टानों पर उत्तुंग लहरों के कोड़े जमाते जा रहे प्रक्षुब्ध सागर से घिरा हुआ द्वीप ! यहां सांय सांय करती है केवल श्मशान में गाने वाले भूतों के समान तरह तरह की अजीब आवाज करती वह रही काट खाने वाली तेज हवा ! सूरज के प्रकाश में इस द्वीप की वीरान तनहाई असहनीय बन जाती। रात के अंधेरे में उसकी भयानकता दूनी हो जाती !

ऐसी भीषण तनहाई में मुझे जीवन बिताना था। वहां मुझे आठों पहर सहचरी की आवश्यकता थी। ऐसी सचहरी की जिसे मैं अपने दिल की बात कहकर अपना दुख हलका कर पाता जिसके साथ हास परिहास कर सकता, जिसकी जांघ पर यदि मैं सिर रखकर सोता तो उसका बिच्छू के काट खाने पर भी वह मेरी नींद को निर्विघ्न बनाए रखने के लिए टस से मस न होती। मैं एक ऐसी सहचरी चाहता था जिसे मैं अपने सारे सुनहरे सपने बता पाता और उनका वर्णन करते-करते अपनी सारी गलतियों को स्वीकार कर सकता। मैं ऐसी सचहरी की खोज में था, जो मुझमें यह आत्मविश्वास जगाती कि इस निर्जन द्वीप पर भले ही खाने-पीने को कुछ भी न मिले हम एक-दूसरे का अधरामृत पीकर जी लेंगे ! मृत्यु मुझे ले जाने के लिए आ जाए तो जो हंसते हंसते यमराज से कह सके कि मेरे प्रियतम के साथ मुझे भी ले चलो !

देवयानी मेरी इस भूख को कभी मिटा न सकी।

एक बार मैंने देवयानी से ऐसे ही कहा, 'मेरी एक इच्छा है, किन्तु शायद वह इस जन्म में पूरी होने से रही।'

उसने हँसते-हँसते कहा, 'संसार में ऐसी कौन-सी बात है जो हस्तिनापुर के महाराज को उनके चाहने पर भी प्राप्त न हो सकेगी?'

मैंने उत्तर दिया, 'गरीबी।'

'यानी? क्या दरिद्री होने की इच्छा है आपकी?'

'हाँ! कभी-कभी मेरे मन में आता है, कोई तगड़ा शत्रु हमारे राज्य पर आक्रमण करे, उस युद्ध में मेरा पराभव हो जाए, फिर वेश बदलकर तुम और मैं छुपते-छिपते जंगल में कहीं निकल जाएँ, वहाँ पहाड़ी गुफाओं में जाकर रहें। मैं शिकार मारकर लाऊँ, तुम मांस को भूनकर उसका स्वादिष्ट भोजन बनाकर मुझे खिलाओ। मैं पेड़ पर चढ़कर फल तोड़कर नीचे डालूँ और तुम पेड़ के नीचे खड़ी होकर उन्हें चुनकर इकट्ठा कर लो। पास से साँप सरसराता निकल जाए तो तुम डरकर मुझसे चिपक जाओ और मैं सोचूँ कि उस आलिंगन में भय की अपेक्षा प्यार ही अधिक है। रात में अपनी गुफा में हम एक-दूसरे पर प्रदीर्घ चुम्बनों की बरसात कर रहे हों और तभी कहीं से एकाध जुगनू हमारे मुख के पास जगमगा जाए और यह देखकर कि वनदेवी ने अपने इस नन्हे-से दीपक की रोशनी में हमारा राज जान लिया है, तुम शरमा जाओ...'

शायद मैं और भी काफी समय तक इसी तरह कुछ बोलता रहता, किन्तु देवयानी ने उकताहट से कहा, 'लगता है, आप नहुष महाराज के घर गलती से पैदा हो गए! आपको तो किसी कवि के घर...'

किन्तु मैं नहुष महाराज का पुत्र था, हस्तिनापुर का राजा था, इसीलिए तो उसने मुझसे विवाह किया था! उसको राजवैभव से प्रेम था, महारानी के पद से प्रेम था, ययाति से नहीं! ययाति तो उसकी इच्छापूर्ति का मात्र एक साधन था!

यह अनुभूति मुझे बार-बार बेचैन बना देती। फिर भी देवयानी को प्रसन्न रखने के लिए जो भी करना संभव था, मैंने किया। वह माँ का अपमान करती, शर्मिष्ठा का जीना हराम कर देती, दिन-रात अपनी ही सनक के अनुसार मनमाना आचरण करती, किन्तु मैंने कभी इसका विरोध नहीं किया। यह मेरी सज्जनता नहीं, कोरी दुर्बलता थी! झगड़ा मुझे पसन्द नहीं था, दुःख मैं चाहता नहीं था। मैंने निश्चय किया था, यथासंभव अधिकतम सुख में लीन रहूँगा। दिन में देवयानी के सारे शाप मेरे प्यार में आते, किन्तु साँझ ढलने पर रात होते ही मैं उससे मिलने के लिए आतुर हो उठता। हमेशा महसूस करता कि यह दो मनों का मिलन नहीं है। किन्तु जो सुख मिल रहा था उसे छोड़ने के लिए भी मन तैयार नहीं था। जाने-अनजाने उसने मुझे अपने सौन्दर्य-पाश में उलझा रखा था। किन्तु अपना एक भी दुःख दिल खोलकर मैं उसे बता न सका।

हमारे विवाह के बाद दिनों बाद ही वृद्ध अमात्य का देहावसान हो गया।

उनके बड़े लड़के को अमात्य बना दिया गया। किन्तु उसकी कार्यक्षमता में मुझे विश्वास नहीं था।

कभी-कभी समाचार आने लगे थे कि उत्तरी सीमा पर दस्यु लोग उपद्रव मचाने लगे हैं। कभी टाल देता कभी इन समाचारों से व्यग्र हो उठता। किन्तु देवयानी ने एक बार भी मुझसे इस व्यग्रता का कारण जानना नहीं चाहा। मैंने भी उसे बताया नहीं। किसी के मन में अपनत्व जमाने के लिए पहले उसके दिल को जीतना होता है। किन्तु देवयानी यह बात जानती ही नहीं थी।

जो निरंतर अपने ही बारे में सोचा करते हैं आठों पहर आत्मपूजा में ही लीन रहते हैं दिन रात अपनी ही दृष्टि से दुनिया को देखा करते हैं यही नहीं, बल्कि अपने से परे किसी दुनिया का अस्तित्व मानने से भी इन्कार करते हैं उनकी समझ में यह बात शायद कभी आती ही नहीं है। यह तो एक ऐसी हकीकत है जैसे बहरा व्यक्ति संगीत का आनंद नहीं ले सकता और अंधा प्रकृति की सुंदरता पर मोहित नहीं हो सकता। आत्मपूजन में लगे व्यक्ति भी मन से अंधे और अंतःकरण से बहरे हो जाते हैं।

देवयानी हर चीज के बारे में पहले से ही कोई धारणा बना लेती थी कोई राय कायम कर लेती थी। इस राय को बदलने के लिए वह कभी तैयार नहीं होती। और किसी भी बात की तह में उतना ही जाती जितना कि उसकी इस पहले से ही बनी बनाई धारणा या राय के लिए पोषक होता।

हमारे विवाह के बाद पहले नगरोत्सव की बात है। वह उत्सव बहुत ही धूम धाम से मनाया गया। कदम-कदम पर नई महारानी पर प्रशंसा के फूलों की बरसात होती रही। हर रात नाना प्रकार के मनोरंजन के कार्यक्रमों का आयोजन रहता। हम दोनों उन्हें देखने के लिए उपस्थित रहते।

पहले ही दिन मेरे परदादा पुरूरवा के जीवन पर आधारित नाटक खेला गया। मूल कथावस्तु शृंगार और करुणा से परिपूर्ण थी। इसीलिए दर्शक नाटक में खो-से गए। पुरूरवा का अभिनय करनेवाला अभिनेता जितना रोबदार था उतना ही संगीत निपुण और अभिनय का माहिर था। फलस्वरूप नाटक के प्रत्येक प्रसंग के साथ दर्शक एकरस होते गए।

किन्हीं शर्तों पर उर्वशी ने पुरूरवा के साथ रहना स्वीकार किया होता है। अनजाने में ही पुरूरवा उन शर्तों को भंग कर बैठता है। उर्वशी उसे छोड़कर चली जाती है। उसके वियोग में राजा पागल हो जाता है। उसकी खोज में जंगल-जंगल घूमता हुआ अंत में वह एक जलाशय के पास आता है। वहां उसे अपनी प्रियतमा नहीं दिखाई देती है। राजा अपने साथ लौट चलने के लिए उसकी काफी मिन्नतें करता है। किन्तु उर्वशी की कठोरता भंग नहीं होती। निराश होकर राजा आत्म हत्या के लिए प्रवृत्त हो जाता है और कहता है "हे उर्वशी! तेरे साथ क्रीडा कर चुके तेरे पति का शरीर इस कगार से नीचे गिर जाए। या वहां पर पड़ा रहने पर जंगल के हिंस्र भेड़िये उसे फाड़ फाड़कर खा जाएं।" उर्वशी उत्तर देती है "हे

पुरुरवा आप प्राण त्याग न करें। इस प्रकार से व्यथ ही न करें। अपने शरीर को अमंगल भेड़ियों का भक्ष्य न बनाएं। राजन् एक बात हमेशा ध्यान में रखिए स्त्रियों के साथ हमेशा स्नेह बना रहना असंभव है क्योंकि उनका दिल भी भेड़िया के दिल के समान ही होता है।' इतना कहकर उर्वशी अदृश्य हो जाती है। राजा उस स्थान को जहां वह खड़ी थी अपनी बाहों में समेटने की कोशिश में मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है।

इस अंतिम दृश्य को देखकर सारे दर्शक व्याकुल हो गए और अफसोस करने लगे। महिला दर्शकों को भी उर्वशी का वह अंतिम वाक्य बहुत कठोर प्रतीत हुआ। कुछ ने उसे सुनकर अपना माथा झुका लिया। उस वाक्य पर ताली पीटने वाली अकेली देवयानी ही थी। उसकी तालियों की आवाज सुनकर दर्शक अपनी करुण तंद्रा से जाग और घूरकर एकटक महारानी की ओर देखने लगे। देवयानी हंसते हुए विजयी मुद्रा से मेरी ओर देख रही थी। उस क्षण एक विचित्र कल्पना मन को डस गई कि इस पोथी की उर्वशी वह है और पुरूरवा मैं हूं! इस दशा को जलन नहीं! उस दशा की याद भी न आए सो ही अच्छा!

दूसरे दिन के कार्यक्रम में ऋग्वेद में वर्णित अगस्त्य-लोपामुद्रा के संभाषण पर आधारित एक प्रहसन रखा गया था। अगस्त्य ब्राह्मण थे और लोपामुद्रा क्षत्रिय राजकन्या थी। देवयानी को मैंने कुएं से बाहर निकाला था तब उसने इसी लोपामुद्रा का उल्लेख किया था। इसलिए मैंने मजाक में उससे कहा क्या ही अच्छा होता कि प्रहसन में अगस्त्य का अभिनय मैं और लोपामुद्रा का तुम करतीं!

प्रहसन शुरू हुआ।

विवाहित होते हुए भी अगस्त्य ने दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य का पालन किया था। किन्तु अब उसे लोपामुद्रा से शरीर सुख की चाह थी। वह उससे संभोग सुख पाने के लिए मचल रहा था। वह उससे कह रहा था प्रतिदिन उषा नया सवेरा लेकर दुनिया में आती है किन्तु वही हर सवेरा तुम्हें और मुझे बुढ़ापे के नजदीक खींच कर ले जाता है। बुढ़ापे में मनुष्य की सभी इंद्रियां शिथिल हो जाती हैं। उसके शरीर का सौन्दर्य कुम्हला जाता है। प्रिय लोपामुद्रा इस कटु सत्य के परिवेश में अब हम दोनों का एक दूसरे से अलग रहना बेकार नहीं लगता तुम्हें? इस तरह के अलगाव में कौन-सी बुद्धिमानी है? उसमें क्या सुख धरा है? अगस्त्य की इन बातों पर लोपामुद्रा शंका उपस्थित करती है। उसकी शंका का समाधान करने के लिए अगस्त्य कहता है पति-पत्नी के संभोग-सुख में अनुचित कुछ भी नहीं। यह सुख इतना निषिद्ध होता तो आदि शक्ति ने स्त्री और पुरुष को अलग अलग क्यों बनाया होता?'

इसपर भी लोपामुद्रा उसे आलिंगन नहीं देती। फिर अगस्त्य उसे बताता है कि कैसे उसका सारा शरीर काममय हो गया है और कैसे उसकी अवस्था उस महानद जैसी हो गई है जो उसकी धारा को रोकने के लिए बनाए गए सभी बाधाओं को तोड़-ताड़कर बाहर निकल आता है। अंत में लोपामुद्रा उसके कंधे पर गिर

रखकर इतना ही कहती है पुरुष कहकर बताते हैं स्त्रियां कहकर नहीं बताती किन्तु दोनों का एक ही सुख का आस्वादन रहता है।'

इस प्रहसन का स्वागत न बड़ी रसिकता से—कुछ रंगीनी से भी—स्वागत किया। किन्तु देवयानी प्रहसन पर रुष्ट हो गई विशेषकर उसके अंतिम दृश्य से। उसने मुझसे कहा 'यह लोपामुद्रा भी महामूर्खा है। उसको चाहिए था कि इस दम्पिल का वैसा ही टका-सा कोई उत्तर दे देती जैसा कल उर्वशी ने पुरूरवा को दिया था।'

तीसरे दिन के कार्यक्रम में देवयानी को अवश्य बहुत आनंद आया। एक राजा शत्रु का भेद पाने के लिए नर्तकी का स्वांग रचकर जाता है और भेद पाने में सफल होकर लौट आता है। नर्तकी का अभिनय एक कुशल नर्तकी ने ही किया था किन्तु उसे देखते-देखते देवयानी ने मुझसे कहा 'इस राजा का नर्तकी का यह स्वांग कितना माकूल लगता है! कब से मैं यही सोच रही हूं कि आपके लिए किसका स्वांग इतना ही माकूल रहेगा! कुछ देर सोचने के बाद उसने कहा 'आप ऋषि का स्वांग लें तो वह खूब माकूल रहेगा। जटा और दाढ़ी लगाकर गले में रुद्राक्ष की माला पैरों में खड़ाऊं हाथ में कमण्डलु और बगल में मृगाजिन दे दिया तो आपका स्वांग देखकर मैं भी धोखा खा जाऊंगी।'

इतना कहकर वह जोर से कहकहा लगा बैठी।

रंगमंच पर नर्तकी का अंतिम नृत्य चल रहा था। वह बेहद दर्शनीय था किन्तु उसमें हंसने लायक क्या बात है एक भी दर्शक की समझ में नहीं आ रहा था।

मैंने उसे चुप रहने का इशारा किया। उसने अपनी हंसी रोक ली। उसके द्वारा किए गए अपने मज़ाक का मज़ाक में ही उत्तर देने के लिए मैंने कहा 'बचपन में ही वचन दे रखा है मैंने मां को।'

'किस बात का?'

'यही कि मैं कभी संन्यासी नहीं बनूंगा।'

'अच्छा देखती हूं आप कैसे नहीं बनते!'

'क्या मतलब है तुम्हारा?'

मेरी ओर देखकर वह फिर से जोर-ज़ोर से कहकहे लगाने लगी।

o

दूत लगातार समाचार लेकर आने लगे कि उत्तरी सीमा पर दस्युओं का उपद्रव बढ़ता जा रहा है। बीच के समय में पिताजी के पराक्रम के कारण—विशेषतः उनके द्वारा इन्द्र का पराभव हो जाने के कारण—इस तरह की सभी वनवासी कबायली जातियों के लोग हमारे राज्य पर किसी भी तरह से आक्रमण नहीं कर रहे थे। फिर से एक बार पिताजी की तरह अपना आतंक और धाक जमाए बिना ये

उपद्रव शायद कम नहीं। यही सोचकर मैंने स्वयं सेना लेकर सीमा पर जाने का निश्चय कर लिया।

मेरे प्रयाण का मुहूर्त तय हो गया। दिन बीतने के साथ वह समीप आने लगा। मैंने सोचा था कि मेरे वियोग की कल्पना से देवयानी व्याकुल हो जाएगी किन्तु प्रयाण के एक दिन पहले रात में भी वह शांत थी। मेरे यह कहने पर कि तुम्हें यहाँ छोड़कर अकेला जाने को कतई जी नहीं कर रहा है उसने हँसकर मसखरी करते हुए कहा आप अश्वमेध के घोड़े के साथ वाकई गए थे या महज किसी पास वाले देहात में जा बैठे थे और घोड़ा वापस आ गया तो दिग्विजयी वीर कहलाने के लिए उसके साथ हो लिए और राजधानी आ गए?

उसकी यह बात मेरे दिल को बहुत बुरी लगी। हँसी मजाक करने का भी कोई समय होता है या नहीं? देवयानी ने कोई युद्ध शायद देखा नहीं था! उसकी भीषणता का भी शायद उसे कोई कल्पना नहीं थी! युद्ध की विभीषिका से भी लगता था वह अपरिचित ही थी किन्तु यह जानकर कि मैं उससे दूर जा रहा हूँ शायद युद्ध में मैं घायल भी हो सकता हूँ उसकी आँखों में आँसू आने चाहिए थे! अपने लिए किसी की आँखों में आँसू भर आए देखने में एक अपूर्व आनन्द होता है। केवल आनन्द ही नहीं धीरज बढ़ाने की बड़ी शक्ति भी हुआ करती है उन आँसुओं में! किन्तु देवयानी ने मेरे लिए ऐसे आँसू नहीं बहाए—कभी नहीं बहाए!

अरुणोदय होते ही मैंने माँ के चरण छूकर आशीर्वाद माँगा। अब देवयानी हाथों में कुमकुम थाल लिए मेरे भाल पर टीका लगाकर मेरी आरती उतारे और मुझसे विदा कहे बस इतना ही कार्यक्रम शेष रहा था। शर्मिष्ठा कुमकुम थाल लिए आ पहुँची। थाल देवयानी के हाथों में देने के लिए वह आगे बढ़ी। तभी एक दासी जल्दी जल्दी भीतर आई और उसने देवयानी से कहा बाहर एक दूत आया है।

दूत? किसका दूत?

महाराज वृषपर्वा का! महर्षि शुक्राचार्य का पत्र लेकर

पिताजी का पत्र? यानी? उनका स्वास्थ्य तो ठीक है न?

देवयानी बाहर जाने लगी।

पुरोहित महारानी जी मुहूर्त बुदबुदाते रहे। पता नहीं देवयानी ने सुना या नहीं। वह जल्दी-जल्दी महल से बाहर चली गई।

मुहूर्त टला जा रहा था। इसलिए पुरोहित भुनभुनाने लगे। आखिर माँ ने शर्मिष्ठा से मेरी आरती उतारने के लिए कहा। उसने मुझे कुमकुम तिलक किया।

शर्मिष्ठा का वह पहला स्पर्श - क्या मनुष्य का स्वभाव उसके स्पर्श से भी प्रकट हो जाता है? देवयानी शर्मिष्ठा से निःसन्देह सुन्दर थी—किन्तु उसके स्पर्श में मुझे हमेशा किसी पाषाणमूर्ति का स्मरण हो आता था। शर्मिष्ठा के इस स्पर्श से मुझे एकदम किसी पुष्पलता की याद आ गई!

[illegible] मेरे मस्तक पर अक्षत डालते समय उसने [illegible] इतने क्षीण और कोमल स्वर में कहा, "सँभलकर रहिएगा!"

उन तीन शब्दों से मेरा संतप्त मन शांत हो गया। मैंने शर्मिष्ठा की ओर देखा। उसकी आंखों में आंसू भर आए थे। देवयानी मुझे जो नहीं दे सकी, वह शर्मिष्ठा मुझे दे रही थी!

देवयानी किसी [illegible] के समान नाचती हुई पिता का पत्र लेकर भीतर आई। मुहूर्त टल जाने की बात को लेकर पुरोहित की भुनभुनाहट अब भी जारी थी। लेकिन उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं था।

मेरे माथे पर कुमकुम तिलक लगा देखकर देवयानी ने कहा, "अरे! मैं कभी ही चली गई थी! है न? बिना आरती उतारे!" तुरंत वह मां की ओर मुड़ी और बोली, "माताजी, महाराज निश्चय ही विजय पाकर आएंगे! ठीक इसी समय पिताजी का आशीर्वाद मिला है उन्हें!"

उसने वह पत्र पढ़ने के लिए मेरे हाथों में दे दिया। मैं पढ़ने लगा।

"तुम्हारा कुशल-क्षेम जानकर प्रसन्नता हुई। अब मैं तपस्या करने के लिए वास्तव में मुक्त हो गया हूं। कई बार मन में विचार आया कि धवल का मुख अवलोकन करने के बाद ही तपस्या करने के लिए बैठूं! किन्तु...।

तुम्हारे जाने के बाद आश्रम जैसे मुझे खाने को दौड़ता है। यहां मन लगाकर मेरी सेवा में लगे रहनेवाले शिष्य हैं। वृषपर्वा तो मुझे अपनी आंखों का तारा मानता है। बस देखा जाए तो सभी दृष्टियों में सुखी दिखाई देता हूं। मुझे किसी बात की कमी नहीं है।

किन्तु फिर भी मन के किसी गहरे कोने में लगातार लगता रहता है कि जरूर कोई कमी हो गई है। पता नहीं ससुराल जानेवाली हर लड़की के पिता की ऐसी ही अवस्था होती है या नहीं! शायद मेरे इन वचनों का कारण यह भी हो सकता है कि तुम मेरी इकलौती बेटी हो! किन्तु तुम्हें प्यारे लगनेवाले कुंजों की लताओं को फूलों से लदी देखकर मन में आता है, काश आज मेरी देवयानी यहां होती! कितनी तत्परता से उसने ये सारे फूल तोड़कर मेरे पूजा के थाल में रख दिए होते! तुमने खास मेरे लिए जो मृगाजिन बनवाया, मैं उसीपर बैठता हूं तो मुझे काफी अच्छा लगता है। तुम्हारी पायल यहीं—आश्रम के कोने में—पड़ी है। कोई शिष्य झाड़ू लगाने आता है तो उन्हें इधर से उधर रख देता है, तब वह छमछमाती है। तब मुझे लगता है, शायद यह पायल मुझसे पूछ रही है, 'हमारी स्वामिनी कब आएगी?'

ऐसी मनःस्थिति में व्यर्थ समय खोने के बजाय सोचा है, तपस्या करने बैठ ही जाऊं। संजीवनी विद्या की रक्षा मुझसे ठीक ढंग से नहीं हो पाई। भगवान शंकर जी इसलिए मुझपर नाराज भी हुए होंगे। शायद अब पहले से अधिक कठोर तपस्या करनी पड़े! किन्तु विश्वास करो बेटी! तुम्हारा पिता किसी अपूर्व विद्या को प्राप्त किए बिना तपस्या-पूर्ति का समापन नहीं करेगा।

नहीं ! कच को इस यज्ञ के लिए यहाँ बुलाने की कोई आवश्यकता नहीं।

मैंने शर्मिष्ठा को देखा। कच का उल्लेख आते ही उसकी मुरझाई मुद्रा पर बहार खिल गई थी। उसने भी एक बार मुझसे कहा था कि कच ने ही उसे प्रेम करना सिखाया था। उसका क्या अर्थ था ? जो भी हो ! कच यहाँ आता है शर्मिष्ठा से उसकी मेल मुलाकात हो जाती है तो एक बन्दिनी का जीवन जीनेवाली इस अभागिनी युवती को थोड़ा तो सुख मिल ही जाएगा।

मैंने देवयानी से कहा "अमात्य के परामर्श से तुम सभी प्रमुख ऋषियों को निमन्त्रण भिजवा देना। हाँ ध्यान रहे उनमें अंगिरस ऋषि का नाम अवश्य हो।'

इस तरह अंगिरस की अचानक याद आ जाने के कारण या उत्तर सीमा पर से हिमालय के सुंदर शिखर दिखाई देने लगे थे इस कारण— उन शिखरों में शंकर जी के त्रिशूल के आकार का वह शिखर इतना सुंदर था कि बार बार देखते रहने पर भी जी नहीं भरता था—इस अभियान में बार-बार मुझे यति की याद आने लगी। पिछले वर्ष मैं उसे लगभग भूला बैठा था। राक्षस राज्य में जाकर शुक्राचार्य की कन्या का पाणिग्रहण करके मैं लौट तो आया किन्तु इस बात की मामूली पूछताछ करने का कि यति भी क्या वाकई में इष्ट सिद्धि प्राप्त करने के लिए उनके पास गया था यदि गया था तो फिर आगे क्या हुआ भान मुझे नहीं रहा। अनजाने मनुष्य किस तरह अपने ही चारों ओर चक्कर काटता रहता है। कुछ भावों को अपनी चपेट में ले लेने वाली दूर की याद की अपेक्षा उसे अपनी आँखों के आँसुओं का महत्त्व अधिक प्रतीत होता है ! ऐसा न होता तो दिन रात देवयानी और मेरे सहजीवन को चिंदियों का कोयला घिसने वाले मेरे मन को यति की याद कभी तो आनी चाहिए थी ! आज दस्युओं के उपद्रव के बहाने इन गिरि कन्दराओं में वह याद आ गई थी। क्षण भर तो मन में विचार आया भी कि ऐसा ही सीधे हिमालय की तलहटी में पहुँच जाऊँ और यति की खोज निकालूँ। यह जानकर कि महाराज ययाति स्वयं सेना लेकर आए हैं सारे कबायली दस्यु जंगलों में भाग गए। परिणामतः मुझे युद्ध करना ही न पड़ा !

अब यदि इच्छा जाए तो यति की खोज करने के लिए मैं काफी फुरसत में था। किन्तु हर दिन देवयानी की याद मुझे बहुत सताती। यह बात नहीं कि मैं यह नहीं जानता था कि देवयानी से मेरा प्रेम केवल शारीरिक ही है ! फिर भी उसका आकर्षण दुर्निवार हो रहा था। इस बात का ख्याल और पूरा प्रबंध करके कि सीमा पर फिर दस्युओं का कोई उपद्रव न हो पाए मैं राजधानी लौट गया।

०

शुक्राचार्य के गुरुकुल प्रवेश समारोह में उपस्थित रहकर देवयानी मुझसे पहले ही राजधानी लौट आई थी। राजधानी में यज्ञ की तैयारियाँ विशाल पैमाने पर हो रही थीं। सब कुछ उसके मन के मुताबिक हो रहा था। फिर भी उसने प्रसन्न मन से मेरा स्वागत नहीं किया।

उसके क्रोध का कारण रात में मालूम हुआ। पहला कारण तो यह था कि अंगिरस ने पत्र भेजकर लिखा था इस यज्ञ में भाग लेने के लिए मैं नहीं आ सकूंगा जब तक यह पूरा विश्वास नहीं कराया जाता कि शुक्राचार्य की नई तपस्या का हेतु सात्त्विक है और उससे प्राप्त होने वाली सिद्धि का विनियोग केवल विश्व कल्याण के लिए ही किया जाएगा उनकी अभीप्ट सिद्धि के लिए किए जाने वाले यज्ञ में मैं सहभागी नहीं हो सकता।

उस पत्र को मेरे सामने नचाते हुए देवयानी ने कहा 'कोई बूढ़ा खूसट होगा यह अंगिरस! मेरे पिताजी के बड़प्पन से जलता है मुआ!'

जब मैंने जानबूझकर उसे बताया कि अंगिरस कच के गुरु हैं तो क्षण भर तो वह अवाक् रह गई।

फिर कच के बारे में वह शिकायत करने लगी। पत्र वाहक दूत कच से मिल ही नहीं पाया था। मालूम हुआ कि वह तीर्थ यात्रा पर कहीं निकल गया है! उसकी प्रतीक्षा किए बिना निमंत्रण पत्र को उसकी कुटिया में छोड़कर ही दूत लौट आया! हस्तिनापुर के सभी लोग शायद इसी तरह दिमाग से खाली होते हैं!'

यह सोचकर कि कच न आया तो शर्मिष्ठा को बहुत ही निराश होना पड़ेगा मैंने कहा कच आ जाए तो बहुत अच्छा रहेगा! मेरा भी वह बचपन का मित्र है!"

उसने बड़े अभिमान से कहा लेकिन वह आएगा तो मेरे लिए ही आएगा। पिताजी के पैरों पर गिर गिर कर तीन बार मैंने ही उसे जीवित कराया है!'

मन शर्मिष्ठा के बारे में कभी से सोच रहा था। आने के बाद से मैंने उसे कहीं भी देखा नहीं था। इसीलिए मैंने सहज भाव से देवयानी से उसके बारे में पूछा। उसने बताया उसे अशोक वन में भेज दिया है।'

भला क्यों?'

इसलिए कि अब वहां काफी ऋषि मुनि पधारेंगे उनकी देखभाल भी तो करनी होगी न?'

उसकी बात मुझे जंच गई। किन्तु मुझे चुप होता देखते ही वह बोली इसके बाद भी मैं उसे वहीं रखूंगी!"

वहां? नहीं! लोगों की चहलपहल से भरे-पूरे राजमहल में पली लड़की है वह! उस एकान्त स्थान में उसे अच्छा नहीं लगेगा।'

उसे अच्छा नहीं लगेगा या आपको उसके बिना यहां अच्छा नहीं लगेगा?'

क्या बक रही हो?

जो सच है वही तो कह रही हूं! भला बताइए आप जब युद्ध के लिए जा रहे थे तब आपका कुमकुम तिलक कर आपकी आरती उतारने का उसे क्या अधिकार था?'

शुक्राचार्य का पत्र आया है यह सुनते ही तुम दौड़कर बाहर चली गई थी '

यानी आपका मतलब यह है कि मैं अपने पिताजी के प्रति ममता न दिखाऊ? वह पत्र लेकर मैं हिमालय में भाग जानेवाली तो नहीं थी।'

'ओफ़, स्वयं माँ ने उससे वैसा करने को कहा था।'

'क्या नहीं? सासजी क्या नहीं बताती उसे? क्षत्रिय-कन्या जो है वह।' उन्हें तो वह मुझसे ज्यादा करीब की लगती है न? एकदम एक ही रक्त की जो है! शायद उसे आपकी पटरानी बनाने का इरादा होगा माताजी का।'

मैंने हँसकर कहा, 'माँ भले ही वैसा इरादा रखती होंगी, किन्तु तुम उसे पूरा थोड़े ही होने दोगी?'

'अ! उसमें कौन बड़ी मुश्किल है? विष देकर रास्ते से मुझे हटा देना सासजी के बायें हाथ का खेल है।'

'ऐसी ऊटपटांग बातें नहीं किया करते।'

'आप हैं पुरुष! आपको तो इसका भी पता नहीं होता कि पाँव तले क्या जल रहा है! किन्तु हम नारियाँ यानी धुएँ में भी आग को सूंघ लेती हैं। अजी आप मुझसे पूछिए! आपने इसी राजमहल में आपकी माता रानी ने एक दासी को विष देकर मार डाला है! सारा मामला मैं जानती हूँ!'

बातचीत का रुख अत्यंत अप्रिय विषय की ओर मुड़ता देखकर मैं चुप हो गया।

वास्तव में चाहिए तो यह था कि इस कटु संभाषण के कारण मेरी रात की नींद हराम हो जाती! किन्तु हुआ ठीक इसके विपरीत! उस रात जैसी सुंदर सपनों की बारात से सजी रात शायद ही कभी मेरे जीवन में आई होगी!

देवयानी ने अपना एक गोपनीय बात मुझे बता दी थी। बहुत ही मीठा राज था वह! नारी के जीवन का अद्भुत राज! वह गर्भवती हो चुकी थी!

सुनकर मैं पुलकित हो गया। देवयानी के बच्चा होने वाला था! देवयानी माँ बनने वाली थी! मैं पिता बनने जा रहा था! पुत्र होगा या कन्या? पुत्र हुआ तो उसका रूप किसके समान होगा? कहते हैं कि मातृमुखी पुत्र बड़े सुखी होते हैं! देवयानी के कुछ भी हो—लड़का या लड़की! लेकिन हम दोनों को अब प्रतिदिन प्रार्थना करनी होगी कि वह मातृमुखी न हो!

यह और है कि हमारे मन एकरूप नहीं हुए हैं। किन्तु इस संतान के होने ही हम दोनों की प्रेम की गाँठ और भी मजबूत हो जाएगी! पोते को देखकर माँ हर्ष से फूली न समाएगी। आजकल बहुत उदास रहता है वह! नहीं! मुझे उनके साथ इस तरह मौन व्रत धारण नहीं करना चाहिए था! अब उनके हाथों में उनका पोता देते हुए मैं उनसे कहूँगा—क्या कहूँगा? हाँ, कुछ इसी तरह का मजाक करूँगा कि...।

मैं पिता बनने वाला हूँ। ताल बजाने वाला हूँ। तो तत्पश्चात कोई मुझे पुकारने वाला है। देवयानी माँ बनने वाली है! वह नन्हा सा जीव उसे माँ कहकर पुकारने वाला है!

उस रात क्षण-क्षण प्रतिपल मेरी नींद की बेल पर नित्य नूतन मधुर सपनो के फूल खिलते रहे। सपनो की उन लहरो पर मैं हस के समान आनन्दविभोर होकर तैरता रहा।

सपनो का रचयिता कौन है ? कितने दुःख की बात है कि सपनो को हकीकत बनाने की शक्ति उसके पास नहीं होती ! Marvellous

०

यज्ञ यथाविधि सम्पन्न हो गया। अगस्त्य अंगिरस आदि कुछ प्रमुख ऋषियो की अनुपस्थिति ही एकमात्र कमी रही। बाकी सारा समारोह उत्तम रीति से पूरा हो गया। देवयानी बार बार सोचती रही कि कच आज आएगे कल आएगे। किन्तु वे नहीं आए न ही उनकी ओर से कोई सन्देशा आया।

यज्ञ के लिए आए महाजनो को विदा करने के लिए राजसभा बुलाई गई। वह समारोह देखने के लिए मा भी जानबूझकर आ गई। वह सिंहासन के पीछे परदे की ओट मे बैठी।

शस्यश्यामला धरती के समान गर्भवती स्त्री के शरीर पर एक निराली ही कान्ति छा जाती है। यह बात मेरे ध्यान मे तब आई, जब मैंने देखा कि सभा मे देवयानी के आ पहुचते ही सभी नागरिक महिलाओ की सराहना भरी आखें उसी पर टिकी है। मैंने अपने-आपको बड़ा धन्य समझा।

देवयानी को साथ लिए सभी ऋषि मुनियो का अभिवादन करते समय और फिर उसके साथ सिंहासन पर विराजमान होते समय मेरे मन मे आनद का सागर ठाठे मार रहा था।

देवयानी ने आज शर्मिष्ठा को अशोक वन से खास तौर पर बुलवा लिया था। पहले तो मुझे लगा कि यह निमत्रण उसे इसलिए भेजा गया है ताकि वह भी इस समारोह को देख सके। किन्तु दरबार मे देवयानी का उद्देश्य मेरे ध्यान मे आया। शर्मिष्ठा को अपने पास खड़ी करके उससे वह पखा झलवाना चाहती थी।

हम आशीर्वाद देने के लिए ऋषि मुनियो ने अक्षत हाथ मे लेकर मत्र पाठ आरम्भ किया। तभी अमात्य ने मेरे कान मे कहा बाहर कचदेव पधारे है। देवयानी ने भी बात सुन ली और कहा अमात्य आप उन्हें सम्मानपूर्वक भीतर ले आइए और ऋषिगणो मे उचित स्थान पर बठाइए।

शायद वे भीतर आना नहीं चाहते हैं।

देवयानी ने क्रोध से पूछा क्यो ? क्या उसे अंगिरस की हवा उन्हे भी लग गई है ? राजधानी मे आकर वे हमारा अपमान करना चाहते हैं ? यदि ऐसा है तो

वसी कोई बात नहीं है देवी। उनके साथ एक और तपस्वी है। वह उन्माद अवस्था मे है। इसीलिए कचदेव बाहर ही

देवयानी ने कहा वह मैं कुछ भी सुनना नहीं चाहती। उस जोगन के साथ उन्हे भीतर ले आओ। और देखो मैं उनकी गुरु भगिनी लगती हू। उनके यहा

आन पर उन्हें प्रणाम किए बिना सिंहासन पर बैठी रहना मेरे लिए उचित नहीं होगा। महारानी सिंहासन से उठकर ऋषिगणों के बीच जाकर उनका अभिवादन करें यह भी अच्छा नहीं लगता। इसीलिए आप उन्हें लेकर सीधे सिंहासन के पास आइए। मैं उन्हें प्रणाम करूँगी उनका आशीर्वाद ग्रहण करूँगी फिर आप उन्हें ऋषिगणों के बीच उचित स्थान पर बैठा दीजिए।

लोग समझ नहीं पा रहे थे कि अमात्य और महारानी में इतनी देर तक क्या बातें हो रही हैं! न केवल सामान्य पारजनों में बल्कि ऋषिगणों में भी इसके बारे में कुनकुनाहट शुरू हो गई।

अमात्य जल्दी जल्दी बाहर गए। थोड़ा ही देर बाद कच और दूसरा कोई तपस्वी भीतर आए। सारी सभा की आँखें उनपर टिकी थीं। पधारिए कचदेव स्वागत कचदेव ऋषि-गण स्पष्ट अस्पष्ट बहुत सुनाई दिए। दर्शक स्त्री-पुरुष कच की ओर उंगली दिखाकर आपस में कानाफूसी करने लगे। वह नाटकीय कहानी कि कैसे अतीव साहस से कच ने संजीवनी विद्या प्राप्त की और कैसे दानवों का पासा उन्हीं पर पलटा दिया बच्चा-बच्चा जानता था। इसीलिए कच के दर्शन से सबको अतीव आनन्द और आश्चर्य हो रहा था। सबके मन पुलकित हो गए थे।

कच के तनिक आगे आने ही मैंने उसके साथ आए उस वैरागी की ओर देखा। अपनी आँखों पर मुझे विश्वास नहीं हो रहा था! मैं समझ नहीं पा रहा था कि मैं सपना देख रहा हूँ या मुझे भ्रम हो गया है।

वह यति था। वह उन्मन अवस्था में है यह बात कच ने अमात्य को बता दी थी। उसकी यह उन्मनावस्था किस प्रकार की है? आत्मज्ञान प्राप्त होने के कारण वह शरीर की सुधबुध खो बैठा है या तरह-तरह की सिद्धियों का पीछा करने के कारण उसका सिर फिर गया है?

कच और यति को साथ लिए अमात्य सिंहासन के सामने आकर खड़े हो गए। देवयानी कच को वंदन करने के लिए खड़ी हो गई। उसके खड़ी हो जाने पर बैठे रहना मेरे लिए अच्छा नहीं दीखता। अतः मैं भी हँसते-हँसते खड़ा हो गया। फिर कच मेरा भी तो मित्र था।

देवयानी कच को प्रणाम करने ही वाली थी कि कच का ध्यान उसके पीछे चलती शर्मिष्ठा की ओर गया। वह चकित था! एकदम बोल पड़ा राजकन्ये तुम? और यहाँ?

प्रणाम के लिए तनिक झुकी देवयानी ने एकदम गरदन उठाई और कच से कहा, कचदेव अब यह राजकन्या नहीं है।

मतलब?

दासी है यह! मेरी दासी है यह!

दासी? तुम्हारी [illegible]

उत्तर में देवया

एक पलना थी और यति उसम रखा दुधमुहा शिशु ! अब यकायक वह बोलने लगा। शर्मिष्ठा की ओर उगली दिखाकर उसने देवयानी से पूछा ए तुम्हारी यह दासी मुझे लोगी ?'

एक जोगन उसे ऐ कहकर सबोधित कर इसपर देवयानी कोई और समय होता तो गुस्सा कर बठती ! किन्तु उसे शायद इस बात का मजा आया कि एक पागल वैरागी भरी राजसभा म शर्मिष्ठा को माग रहा है !

उसने यति स पूछा इसका आप क्या कीजिएगा स्वामी जी ? क्या इसे आप अपनी पत्नी बनाएग ?"

वच यति को आग्रह दिखाकर डाट रहा था। किन्तु उसका सारा ध्यान शर्मिष्ठा पर टिका था। मैं समझ नही पा रहा था कि इस सारे मामले का अत क्या होगा ! मैं बुत बना बठा रहा।

हम दो भाई किस अवस्था म एक दूसरे स मिल रह थ ! यति की वह अवस्था देखकर मुझे फिर वह शाप याद आया— तम तरुण व पुत्र कभी सुखी नही होग !'

अट्टहास करते हुए यति ने कहा पत्नी ? नही ! मैं इस पुरुष बनाऊगा !'

सारी सभा हसी से गूज उठी फिर तुरत शात हो गई और सवत्र भय का वातावरण छा गया।

परदे के पीछे से मा क्रोध स चिल्ला उठी अमात्य, उस पागल को बाहर ले जाने का प्रबंध करो। वह इस तरह फिर अनाप शनाप बकने लग तो उसे कोडे लगवाओ !

अमात्य ने इशारा किया। सेवक यति को पकडने के लिए आगे बढे।

मैं समझ नही पा रहा था राज सभा म आखिर यह सब क्या हो रहा है। मेरा मन तो उसी अभिशाप के विवत म डूबा जा रहा था ! यति की यह विडम्बना मुझसे देखी नही जा रही थी। मैं एकदम उठ खडा हुआ और जोर से चिल्लाया, खबरदार जो किसीने इन्हे छुआ ! इस सिंहासन पर उसका ही अधिकार है !'

देवयानी फटी फटी आखो म मेरी ओर देखने लगी। शायद उसके मन म स देह पदा हो गया था कि कही मैं पागल तो नही हो गया हू ! मैंने तुरत शात सयत स्वर म सबको सुनाई दे इस ढग से कहा यह मेरा बडा भाई है ! इसका नाम है यति !

यति ! परदे के पीछे स आत चीत्कार करती हुई मा शिष्टाचार के सभी बधन तोडकर दौडकर सामने आ गई। उसने यति की ओर क्षण भर देखा। उसका वह भयानक रूप उससे देखा नही जा रहा था ! उसने आख मूद ली। यति ? मेरा यति ? ' कहती हुई बाह फलाकर वह धडाम से नीचे गिर गई !

जान पर उन्हें प्रणाम किए बिना सिंहासन पर बैठी रहना मेरे लिए उचित नहीं होगा। महारानी सिंहासन से उठकर ऋषिगणों के बीच जाकर उनका अभिवादन करें यह भी अच्छा नहीं लगता। इसीलिए आप उन्हें लेकर सीधे सिंहासन के पास आइए। मैं उन्हें प्रणाम करूँगी उनका आशीर्वाद ग्रहण करूँगी फिर आप उन्हें ऋषिगणों के बीच उचित स्थान पर बठा दीजिए।

लोग समझ नहीं पा रहे थे कि अमात्य और महारानी में इतनी देर तक क्या बात हो रही है! न केवल सामान्य पौरजनों में बल्कि ऋषिगणों में भी दरबार में कुलबुलाहट शुरू हो गई।

अमात्य जल्दी जल्दी बाहर गए। थोड़ी ही देर बाद कच और दूसरा कोई तपस्वी भीतर आए। सारी सभा की आँखें उनपर टिकी थीं। पधारिए कचदेव स्वागत कचदेव ऋषिगण स्पष्ट अस्पष्ट बहुत सुनाई दिए। दर्शक स्त्री पुरुष कच की ओर उंगली दिखाकर आपस में कानाफूसी करने लगे। वह नामरूपक कहानी कि कैसे अतीव साहस से कच ने संजीवनी विद्या प्राप्त की और कैसे दानवों का पासा उन्हींपर पलटा दिया बच्चा बच्चा जानता था। इसीलिए कच के दर्शन से सबको अतीव आनंद और आश्चर्य हो रहा था। सबके मन पुलकित हो गए थे।

कच के तनिक आगे आते ही मैंने उसके साथ आए उस वैरागी की ओर देखा। अपनी आँखों पर मुझे विश्वास नहीं हो रहा था! मैं समझ नहीं पा रहा था कि मैं सपना देख रहा हूँ या मुझे भ्रम हो गया है।

वह यति था। वह उन्मन अवस्था में है यह बात कच ने अमात्य को बता दी थी। उसकी यह उन्मनावस्था किस प्रकार की है? आत्मज्ञान प्राप्त होने के कारण वह शरीर की सुधबुध खो बैठा है या तरह-तरह की सिद्धियों का पीछा करने के कारण उसका सिर फिर गया है?

कच और यति को साथ लिए अमात्य सिंहासन के सामने आकर खड़े हो गए। देवयानी कच का वन्दन करने के लिए खड़ी हो गई। उसके खड़ी हो जाने पर बैठे रहना मेरे लिए अच्छा नहीं लगता। अतः मैं भी हँसते हँसते खड़ा हो गया। फिर कच मेरा भी तो मित्र था।

देवयानी कच को प्रणाम करने ही वाली थी कि कच का ध्यान उसे पंखा झलती शर्मिष्ठा की ओर गया। वह चकित था! एकदम बोल पड़ा राजकन्या तुम? और यहाँ?

प्रणाम के लिए तनिक झुकी देवयानी ने एकदम गरदन उठाई और कच से कहा कचदेव अब यह राजकन्या नहीं है!

मतलब?

दासी है यह! मेरी दासी है यह!

दासी? तुम्हारी दासी?

उत्तर में देवयानी केवल मुस्कराई।

अब तक यति केवल इधर उधर टुकुर-टुकुर देख रहा था। मानो राजसभा

एक पलना थी और यति उसमे रखा दुधमुहा शिशु ! अब यकायक वह बोलने लगा। शर्मिष्ठा की ओर उगली दिखाकर उसने देवयानी से पूछा, 'ऐ तुम्हारी यह दासी मुझे दोगी ?"

एक जोगडा उसे 'ऐ' कहकर सबोधित करे इसपर देवयानी, कोई और समय होता तो गुस्सा कर बैठती ! किन्तु उसे शायद इस बात का मजा आया कि एक पागल बैरागी भरी राजसभा मे शर्मिष्ठा को माग रहा है !

उसने यति से पूछा 'इसका आप क्या कीजिएगा स्वामी जी ? क्या इसे आप अपनी पत्नी बनाएगे ?

कच यति को आखें दिखाकर डाट रहा था। किन्तु उसका सारा ध्यान शर्मिष्ठा पर टिका था। मैं समझ नही पा रहा था कि इस सारे मामले का अत क्या होगा ! मैं बुत बना बैठा रहा।

हम दो भाई किस अवस्था मे एक दूसरे से मिल रहे थे ! यति की वह अवस्था देखकर मुझे फिर वह शाप याद आया— इस नहुष के पुत्र कभी सुखी नही होगे !'

अट्टहास करते हुए यति ने कहा पत्नी ? नहा ! मैं इसे पुरुष बनाऊगा !

सारी सभा हसी से गूज उठी फिर तुरत शात हो गई और सर्वत्र भय का वातावरण छा गया।

परदे के पीछे से मा क्रोध मे चिल्ला उठी अमात्य उस पागल को बाहर ले जाने का प्रबन्ध करो। वह इस तरह फिर अनाप शनाप बकने लगे तो उसे कोडे लगवाओ !'

अमात्य ने इशारा किया। सेवक यति को पकडने के लिए आगे बढे।

मैं समझ नही पा रहा था राज सभा मे आखिर यह सब क्या हो रहा है। मेरा मन तो उसी अभिशाप के विवर मे डूबा जा रहा था ! यति की यह विडम्बना मुझसे देखी नही जा रही थी। मैं एकदम उठ खडा हुआ और जोर से चिल्लाया, खबरदार जो किसीने इसे छुआ ! इस मेहमान पर उसका ही अधिकार है !

देवयानी फटी फटी आखो से मेरी ओर देखने लगी। शायद उसके मन मे से यह पता हो गया था कि कहा मैं पागल तो नही हो गया हू ! मैंने तुरत शात सयत स्वर मे सबको सुनाई दे इस ढग से कहा यह मेरा बडा भाई है ! इसका नाम है यति !

यति ?' परदे के पीछे से आते चीत्कार करती हुई मा शिष्टाचार के सभी बधन तोडकर दौडकर सामने आ गई। उसने यति की ओर क्षण भर देखा। उसका वह भयानक रूप उससे देखा नही जा रहा था ! उसने आखे मूद ली। यति ? मेरा यति ?" कहती हुई बाहे फैलाकर वह धडाम से नीचे गिर गई।

देवयानी

कहीं यह कच मेरा पूर्व जन्म का बैरी तो नहीं? सारा समारोह कितनी अच्छी तरह से सम्पन्न हो गया था—नजर लगने लायक! किन्तु अंतिम क्षण यह न्‍टखट म आ धमका! मानो आकाश से टपका हो! देखते ही देखते सारे किए-कराए पर पानी फिर गया! रंग में भंग हो गया!

मुझे शाप देकर कच चला गया था। इस यज्ञ के बहाने मैंने उसे जानकर इसलिए निमन्त्रण भिजवाया था कि यहां आकर वह अनुभव करे कि उसके अभिशाप से मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ा है। उलटे मैं इतने ऐश्वर्य में डूब रही हूं कि कुबेर की आंख भी चौंधिया जाए। वह अपनी आंखों से देखे कि वही देवयानी जो उसकी कुटिया बुहारते रहने को तैयार थी आज महारानी बनकर सिंहासन पर विराजमान है। यह सब देखकर वह मन ही मन लज्जित होकर मुझसे क्षमा याचना करे।

मेरा ख्याल था कि महारानी बनी अपनी प्रेयसी को देखना उसे भाएगा नहीं और शायद इसीलिए वह आएगा ही नहीं। किन्तु मैं जानती थी कि कभी उसने देवयानी से अत्यंत प्रगाढ़ प्रेम किया था। मनुष्य प्रेम को ठुकरा तो सकता है किन्तु क्या वह उसे भुला भी सकता है?

मेरा मन कह रहा था कच आएगा अवश्य आएगा। किन्तु यज्ञ आरम्भ होने पर भी वह आया नहीं समाप्त होने पर भी वह नहीं आया। मेरे भीतर की महारानी हरषाई। किन्तु मेरे अन्दर जो देवयानी था उसे दुःख हुआ।

ऐन राजसभा के समय अमात्य ने उसके आने का समाचार दिया। मेरा आनंद मन में समा नहीं रहा था। लगा शर्मिष्ठा ने मेरे वस्त्र पहन लिए थे तब से भाग्य मेरे लिए कितना अनुकूल रहा है। लक्ष्मी को भी लजाने वाला साज सिंगार कर आज मैं सिंहासन पर विराजमान हूं। हजारों आंखें मुझपर टिकी हैं। राजकन्या शर्मिष्ठा दासी बनकर मुझे पंखा झल रही है। बड़े बड़े ज्ञानी मानी ऋषिगण मन्त्रोच्चारण सहित हमें आशीर्वाद दे रहे हैं। यह सारा माहौल अब कच को देखने को मिलेगा! देवयानी के प्रेम को ठुकराकर उसने कितनी बड़ी भूल की है उसके ध्यान में अब आ जाएगा।

कच ने प्रेम की सफलता का संताप मुझे नहीं मिलने दिया। न सही। अब तो मैं इसलिए खुश हो रही थी कि कम से कम प्रतिशोध की सफलता का संतोष तो

मुन मिल ही जाएगा। किन्तु—बिलकुल आखिरी क्षण—मरा शन्त्र मुझही पर उलट गया ! प्रतिशोध का सन्ताप मिला अवश्य। किन्तु किस ? दययानी का नही कच का !

सास जी, महाराज सवक सब उस समय एकदम पागल जमा आचरण कर गए ! महाराज को ठीक उसी समय वधु प्रेम का उबाल उठा। थोडी दर चुप बठ रहत ता उनका क्या जाता था ? ल जात सवक उस पागल का बाहर ! लगात चार कोड उसकी पीठ पर ! काडा का वदना पीठ स निकलकर उसक मस्तिष्क म पहुचता ता उस कम स-कम थाडा ता भान हा ही जाता कि वह कहा है और क्या कर रहा है !

सासजी हमशा घुन्ना रहती हैं। गहर कुए जसा है उनका मन ! बाहर स किसीका कभी पता नही चलगा कि भीतर क्या चल रहा है ! लकिन उन्होन भी सार रीति रिवाज ताक पर रख दिए। यह भी भुला दिया कि व राजमाता ह। एकदम परद क बाहर दौड आइ यति ! मरा यति ! कहकर पागल जसी चिल्लान लगी और हजारा लागा क सामने बहाश हाकर धरती पर गिर गइ ! छि छि ! राजमाता क लिए क्या यह शाभनीय था ?

उनक बहाश हात ही सार दरबार म गडबडी मच गई ! महाराज न भी निरा पागलपन दिखाया। उन्होन घोषणा कर दी, यह मरा बडा भाई है और सिंहासन पर इसीका अधिकार है ! फिर क्या था ऋषिया का आशावाद आदि सब कुछ धरा का धरा रह गया ! छि ! छि ! इस कच न आकर पिताजी की तपस्या क लिए बडा अपशकुन कर डाला !

वह यति तो आखिर पागल हा है ! किन्तु महाराज ता थाडा अक्ल स काम लत ! उनक अलावा किसीको मालूम नहा था कि वह उनका भाई है उस साथ लान वाल कच का भी क्या पता था कि वह कौन है !

किसी गाव म लोग पत्थर मारकर यति का पीछा कर रहे थ ! इधर आते समय कच न माग म इस दख लिया। उस दया आ गइ। इसलिए उसे भी अपने साथ ल आया। कच ता क्या, सास जी न भी उस नही पहचाना था। काश महाराज थोडी दर चुप्पी साधे बठे रहत ! रग म भग तो न होता !

या कहीं एसा ता नही कि इस सार वश को हा पागलपन का अभिशाप मिला है ? वह यति भी क्या अजीब है ! और महाराज का आचरण भी—अब यह पागल यदि यहीं रह जाता है ता क्या-क्या अनथ होगा मरी तो समझ म नहा आ रहा था ! हा सकता है कि सासजी इस बात पर तुल जाए कि राज-काज उसीके नाम स चल ! पुत्र प्रेम का उबाल जो उठा है उनके मन म ! और लग हाथ बहू की नाक भा अच्छी तरह से काटी जा सकती है ! जिधर दखा उधर महारानी क नात शान बघारती फिरती हू उनपर भी आए दिन ज्यादा रोब जमाती हू यह बात उन्ह कतई नही भाती ! मैं रही ऋषिकन्या ! ब्राह्मण की बटी ! अनचाही का नमक भी अलाना जो होता है ! महारानी क नात मुझ प्राप्त सम्मान को समाप्त

करने के लिए यति को राजा बनाने की भी कोशिश किए बिना व नहीं रहती। बड़ा लम्बा जो है वह! स्वयं महाराज ने भी भरी सभा में कह दिया : उसका इस सिंहासन पर अधिकार है!

धत! निरा पागलपन कर बठे महाराज दरबार में! यह सारा वंश ही

इस खानदान को केवल पागलपन का ही शाप नहीं है! कामुकता भी सवार है सबपर! नारी मोह भी आनुवंशिक ही लगता है! कहते हैं मेरे ससुरजी ने इंद्र का भी पराभव किया था! किया होगा! किंतु इंद्राणी के सौन्दर्य पर वे बुरी तरह में मोहित हो गए थे और—सामजी ने यह सारा मामला मुझसे छिपाया है! किन्तु राजमहल की दासियों को कोई कम न समझे! एक बूढ़ी दासी ने पहले ही दिन यह बात मुझे बता दी थी!

तो उस सम्प महाराज की यह सन्तान! जटाजूट बढ़ाकर कफनी डाले घूमने वाला वह यति शर्मिष्ठा को घूरकर देखने लगा के सामने— यह औरत मुझे दे दो कह बैठा! आगे भी उसने कुछ वाहियात सी बकवास की। किन्तु उसकी इस माँग से लोग ताड़ गए ही गए कि इसका पागलपन किस प्रकार का है!

इसमें उसका भी भला क्या दोष है? वह बचपन में ही घर से भागकर जंगल चला गया एक पागल है। किन्तु इतने पराक्रमी ययाति महाराज! अश्वमेध के समय दिग्विजय करके आए हैं। अब राजा के नाते प्रत्यक्ष में सिंहासन पर विराजमान हुए हैं! किन्तु जंगल के किसी कुएं से बाहर आई सुन्दर युवती को देखते ही वे तो फिसल ही गए न! स्त्री पुरुष को कितनी जल्दी पहचान लेती है! पुरुष की आँखों में उसके सारे गुण मानो आप उसे साफ दिखाई देते हैं! मैं कुएं से ऊपर आई तब कितनी भूखी और ललचाई नजर से घूर रहे थे महाराज मुझे!

पुरुष की आँखों से ही स्त्री फौरन जान लेती है कि वह कामुक है या नहीं! उसकी लुभावनी नजर से वह तुरंत अंदाज कर लेती है कि यह शिकार आसानी से अपने जाल में फंसने वाला है। कुएं से ऊपर आने के बाद "मुझे डर लग रहा है मेरा हाथ पकड़कर मुझे किनारे पर ले लीजिए" कहती हुई मैं वैसी ही भीगी भीगी खड़ी रही सो क्या यूं ही?

उनकी जगह कच होता तो? तो एक तो मेरा हाथ थामिए कहने की मेरी हिम्मत ही न होती। और जैसे तैसे हो भी जाती तो वह तपाक से कह देता — तुम कुएं में गिरी थी। तुम्हें बाहर निकालना मेरा धर्म था! उस धर्म का पालन मैंने किया है। अब चाहो तो तुम स्वयं किनारे पर आ जाओ या वापस कुएं में कूद जाओ। मुझे इससे कुछ भी लेना-देना नहीं है!'

कच की ऐसी बातों से ही तो मेरे मन में उसके प्रति आकर्षण पैदा हुआ था! आश्रम में आते ही बराबर यदि वह मुझपर डोरे डालने के लिए मेरे आस-पास नाचना शुरू कर देता, मेरे स्पर्श की लालसा जताता, मेरे सौन्दर्य की ओर अतृप्त दृष्टि से देखता रहता, तो मैं उसकी ओर कभी झांकती तक नहीं! किन्तु उसकी नजर में मैंने कभी लालसा नहीं पाई! मैंने उसके क्रियाकलाप में कभी

कामुकता का आभास तक नहीं दखा। स्त्रियां एस ही पुरुषों को पसंद करती हैं। जो पुरुष उनका पीछा किया करते हैं, उनसे पीठ छोड़कर व मुख मोड़ लेती हैं। किन्तु जो पुरुष उनसे मुह फेर लेते हैं उनका पीछा व करती रहती हैं। कितनी विचित्र बात है यह। किन्तु होना तो यही है।

जान जोखिम म डालकर कच जगलो म घूमकर मेरे प्रिय पुष्प तोड़कर ल आता था। उन फूलो न कई बार मुझे बताया था कि कच को मुझसे कितना प्रेम है। आधी रात म भी बताया था एकान्त म मेरे कानो म। किन्तु कच ने स्वय बात कर कभी कमी नहीं जताया।

एक बार बगीचे म मेरे पर म काटा चुभ गया। उससे मजाक करने के लिए मैंने उससे कहा मुझे साप ने काट खाया है।' उस समय उसकी आखो मे आसू आ गए थ और उन आसुओ ने मुझे उसका दिल खोलकर बता दिया था।

शाम ने पहले बगीचे के कोने म स्थित लता-कुज म जाकर वह आदि शक्ति की प्रार्थना किया करता था। एक बार उसकी वह प्रार्थना मैंने कुछ अस्पष्ट-सी सुन ली। देवयानी को सुखी रखना य शब्द उसम थे। मैंने सुन लिया तो मेरा रोम रोम पुलकित हो उठा। उन शब्दो न भी बार बार मुझे बताया कि कच को मुझसे कितना प्यार है। आगे चलकर कई दिन तक वे शब्द मेरे कानो म गूजते रहे थ किसी मधुर गीत क सुरो की तरह।

मैं ऐसा प्रेम चाहती थी। किन्तु किसी सुदर युवती का दर्शन ही उसपर मोहित होने वाला भी क्या कोई प्रेमी होता है? वह तो निरी लपटता है। कोई भी स्त्री एसे प्रेम पर अपने आपको न्योछावर कर उस स्वीकार नहीं करती।

लेकिन मैं नहीं चाहती थी कि प्रेम भग की माला फेरती दुखी प्रणयिनी बनकर जीवन बिता दू। कच न मेरे अन्तःकरण पर गहरा घाव किया था। मैं उस घाव की वेदनाओ को भुलाना चाहती थी। इसीलिए मेरे भीतर की प्रणयिनी को मैंने मन के तहखाने म हमेशा के लिए बन्दिनी बनाकर रख दिया था। स्वामिनी बनकर उसीकी मस्ती म सारा जीवन बिताने का निश्चय मैंने किया था। सयोग की बात तो यह थी कि इस प्रकार से मेरा निश्चय करना शर्मिष्ठा द्वारा मुझे कुए म धकेल दिया जाना और महाराज ययाति का अचानक उसी कुए पर आ जाना सब एक साथ ही हो गया। कुए म गिरी देवयानी और कुए से निकली देवयानी कितनी भिन्न थी। कुए के कगार पर खड़ा पुरुष हस्तिनापुर का राजा ययाति है यह मालूम होते ही

उसी क्षण मैंने निश्चय कर लिया कि उसकी रानी—केवल रानी नहीं, महारानी बनूगी।

भग्न प्रीति की वेदनाओ को भुलाने के लिए मुझे ऐश्वर्य की मस्ती की आवश्यकता थी सत्ता का उन्माद चाहिए था हमेशा मेरे इशारो पर नाचने वाला एक पति चाहिए था। लपट पति हो पत्नी की मुट्ठी म रहता है।

यह सारा मैंने प्राप्त कर लिया—एक क्षण म।

किन्तु कच के साथ आए उस जोगट ने

यह मरा देवर बना देवर यानी जेठ हस्तिनापुर के सिंहासन का सच्चा उत्तराधिकारी है ? यानी

यह पागल यहा रहे या कही चला जाए ! मैं महारानी हू और अत तक महारानी ही रहूगी। उस दावरे को शायद शर्मिष्ठा पसद आएगा ! यह देखकर कि वही राज्य का सच्चा उत्तराधिकारी है यह राजकन्या उसके साथ विवाह करने के लिए भी तयार हो जाएगी ! ना कौन कह ?

इस यति के बच्चे का बोलवाला न हो इसी हेतु मैंने जिद की कि उसे राज महल म न रखा जाए। मासजी का वह लाडला बेटा बहुत दिनो काफी वर्षों बाद घर लौटकर आया था ! व खूब चाहती थी कि उसे लेकर यही रहे। किन्तु मैं जब सिर धुनकर मायके जाने के लिए तयार हो गई और तपस्या के लिए बठे पिताजी के सामने सीधे जाकर खडी होने की धमकी दी तब जाकर कही महाराज मा की इच्छा के विरुद्ध निणय करने को तयार हुए।

वे सब लोग अशोक वन म चले गए अच्छा ही हुआ वरना पता नही वह पागल यहा क्या गुल खिलाता ? अगर वह आते जाते दासियो के चुबन ही लेने लगता—बूढी दासियो को भी न छोडता—तो ?

यह मालूम करते रहने के लिए कि अशोक वन म वह क्या क्या ऊधम मचाता है मैंने उस बूढी दासी को जानकर हो अन्य दासियो के साथ वहा भेजा है—सासजी की सेवा के बहाने ! वह आकर कितने मजेदार किस्से सुनाती है उसके। अभी तक उसने मा को पहचाना नहीं है ! मासजी बार बार उसके पास जाकर आखो म आसू लिए कहती हैं यति एक बार मुझे मा कहकर पुकार दे ! वह उत्तर देता है तुम मा हो है न ? तो फिर तुम दुष्ट हो नीच हो ! दुनिया की सारी माताए स्त्रिया लडकिया नीच है ! मैं उन सबका नष्ट करना चाहता हू ! तुम बाप बन जाओ फिर मैं तुम्हे पुकारूगा !

तीर्थयात्रा करते करते ईश्वर क्या ही प्रसन्न हुआ है कच पर ! क्या ही वस्तु हाथ लगी है उसके ! और कच भी ऐसा कि उसको लेकर सीधे यही आ पहुचा !

०

लगता है इस यति का पर ही अच्छा नही है ! उस विदाई-समारोह के लिए हम रथ म बठकर दरबार गए तो सब ओर स्वच्छ सुनहरी धूप थी। आकाश के किसी कोने म भी नाम के वास्ते भी कोई बादल न था। यह वर्षा ऋतु न होकर वसत ही है ऐसा लगता था। किन्तु दरबार मे इस यति महाराज के कदम रखने की देर थी कि भीतर बाहर सब तरफ बडी गडबडी मच गई।

उस दिन हम लोग लौटे तो सारा आकाश काले स्याह बादलो से भर गया था। वह किसी भीषण सुरग-सा लग रहा था ! शीघ्र ही बिजलिया भी कडकने लगी। बिजलिया क्या थी उस सुरग की नागिनें ही थी ! नही ! नागिनें नही व

चुन्ल ी टारिनें थी। वान खुन छान्कर मुह स अनुभ शन्ा का उच्चारण करता न्ई इस छार स उस आर तक व ऊधम मचाती जा रही थी।

उसक वाद मूसनाधार वर्षा शुरू हुइ —चार न्नि तक उसकी झडी लगी रही। यमुना मया म भीषण वान्आ गई। नगर का सारा कारावार अन्त यस्त हो गया। अमात्य चिन्ता म पड गए कि वही इसी तरह पानी वरसता रहा ता यमुना क किनार पर वसे गावा म अनथ हो जाएगा। मन उनस कहा उस न्नि आपके वह यति महाराज आए न न? व इस वषा को अपन साथ लाए है। जब तक व यहा स चल नही जात वारिश रकन वाली नही।

चौथे न्नि आधी रात की वात है। वषा हा ही रही थी। पहले एकाध बडी बौछार आ जाती। धीरे धीरे वह कम हो जाती। उसके रकते ही पत्ता की उपर वाली शाखाआ स नीचे वाल पत्ता पर पानी की वूद टप टप आवाज करती गिरने लगती। थाडी दर म फिर जारदार बौछार शुरू हो जाती।

महाराज को नीद लगी थी किन्तु मैं जाग ही रही थी। अपन हान वान बच्चे क रगरूप के बार म मेरा मात हृदय तरह तरह की कल्पनाए कर रहा था। उन कल्पनाआ के साथ खल रहा था। क्या वह एसा होगा न कि उस देखत ही लोगा को मेरी यान् आ जाए? उसका नाक-नक्शा किसके समान होगा? उसक वाल कस हाग? उसका मुह विल्कुल सकरा सा होगा न? इतना सा? तव कहकर महाराज का पुकारन स पहन वह भागा भागा आकर ममा कहकर मुझस लिपट जाएगा न?

पता नही कितनी देर मैं इन्हा कल्पनाआ क साथ खेलती रही। अचानक घोडो की टापा की आवाजे सुनाई दी। मैंन चौककर आखें खोली। कही मैंने कोई सपना ता नहा दखा था? किन्तु वह आवाज—मैं समझ न पाइ कि यहा पर क्या हा गया है।

महन का द्वार खालकर मै जल्दी जल्दी वाहर आ गई। मेरी सुनी हुई वह टापा की आवाज सच थी। सामजी न एक सवक का भजा था।

वह जल्दी जल्दी मुझस पूछने लगा ऋषि महाराज क्या राजमहल आए है?"

कही दूर एकान्त म जाकर ध्यान लगाकर वठने की कच की आन्त मैं जानती थी। आधी रात हो जान क वाद भी शायद वह अशाक वन म लौटा नही होगा। मामजी इसलिए चिन्ता म पड गई हागी। वह शायद इधर आया हा इस कल्पना स ही उन्हान पूछताछ करन क लिए शायन् इस सेवक को भेजा था।

मन उत्तर न्यिा नहा तो कचदेव इधर नही आए।"

हकलाता हुआ वह कहने लगा कचन्व तो वही है किन्तु वे दूसरे ऋषि-महाराज—व यति महाराज।'

उ ह क्या हा गया?

जान व कहा भाग गए?

वध ?

डर पहर रात हात तक ता व अशाक वन म ही थ। फिर सब लाग सा गए। बीच ही म राजमाता जाग गइ। उहान उठकर देखा तो यति महाराज गायब थ।'

मैंने महाराज को जगाया। व तुरत घाडा लकर अशाक वन गए। दूसरे दिन प्रात व लौट। उ हान सवत्र यति की खोज की थी। अनक सैनिक और सेवक सारी रात बाढ स उफनी यमुना क किनारे गश्त लगात रह थ। किन्तु किसीने भी उस नही देखा।

दूसर दिन नगर म हर किसीके मुह पर यह बात थी कि किसाने यति को बाढ भरी यमुना के पानी पर से चलत हुए उस पार जात देखा था।

यति क भाग जान का असली भद मेरी उस बूढी दासी से दूसरे दिन मुझे मालम हुआ ता हसत हसते मेरे पट म बल पड गए। उसने सुनाया कि अशोक वन म वह निरतर शर्मिष्ठा के पीछे पडा रहता था। शायद उस पगले का शर्मिष्ठा स प्यार हो गया था। इस तरह पहली ही नजर म किसीसे प्यार होत हुए किसीन शायद ही कभी दखा होगा। चार दिन तक वह दशन सुख लेता रहा। किन्तु भला खाली दखत रहन से किसी प्रमी को सन्तोष हुआ है ? फिर ये महाशय स्पशभक्ति की ओर मुडे। आधी रात का जब सब लोग सो गए वह दब पाव शर्मिष्ठा की शय्या क पास गया। उसका स्पश होत ही वह जागकर चिल्लायी या कोई और भी जागकर उस देख रहा है इस भय स चीख उठी यह नही मालूम। लकिन वह चीखी अवश्य। उसकी चीख सुनत ही इन बाबाजी क छक्के छट गए। खिडकी स बाहर कूदकर व चम्पत हा गए। किसीको पता न चला कि यति अधेरे म कहा छिपकर बठा है या खोजन वालो का झासा दकर वह कस सटक गया या मूसलाधार वर्षा म आग वह किस तरफ निकल गया या यमुना के पानी पर से चलता गया या कि बाढ म डूबकर वह गया।

मैंन मन ही मन कहा चलो अच्छा ही हुआ बिना साठ के खाभी गई।'

सासजी स कुशल पूछन मैं अशोक वन गई। मैंने उनस राजमहल वापस चलने के लिए काफी आग्रह किया किन्तु व इस बात स मुझस नाराज थी कि मैंन ही यति का राजमहल म नही रहन दिया था। उनका वह गुस्सा अभी गया नही था। हा इतना अवश्य हुआ कि उन्होने अपना गुस्सा प्रकट नही किया। मुझे यही अच्छा लगता है। कहकर व अशोक वन म ही रही।

अशाक वन म मरी कच स भेंट हुई। थोडी बातचीत भी हुई। किन्तु वह बिलकुल मामूली और सतही थी। कच कभी राजमहल की ओर फटका तक नही। किन्तु उसकी वहा का सारी बातें मुझे रोज मालूम हो जाती। आज सानचम्प के पड पर चढकर किसी अपरिचित न ही कर्णिका क लिए सानचम्पा के फूल तोड लाया तो कल दिन भर किसी बीमार बछड की सवा म ही लगा रहा। महाराज प्रतिदिन सायकाल माताजी को सात्वना दन के लिए अशाक वन हा जात थ।

लौटने पर बिना चूके मुझसे कहने, बातें करने के लिए कच जैसा पुराना साथी मिल गया इसलिए मुझे बहुत अच्छा लग रहा है। उसकी बात सुनते रहने में समय किस तरह गुजर जाता है पता ही नहीं चलता। मगर साथ बातें करने के लिए बिलकुल क्षुद्र और मामूली-से काम करने के लिए कच के पास समय था, केवल देवयानी के पास जाने के लिए — फुरसत नहीं

अशोक वन में मैंने उससे पूछा था राजमहल कब आ रहे हो? उसका रूखा-सा उत्तर था देखो कब मौका मिलता है। उसका अहंकार कायम था। अभी अब भी उसने देवयानी को पहचाना नहीं था।

मेरा मन रोज मुझसे कहता जो भी हो कच स्वयं ही मुझसे मिलने आएगा। प्रतिदिन प्रात हँसती उषा मेरे कानों में गुनगुनाती — आज कच आएगा। अचानक आकर तुम्हें चकित कर देने का इरादा है उसका। फिर मैं अत्यंत हर्ष से उसके स्वागत की तैयारियाँ करने लगती। दूर से सिंहासन के समान लगने वाला सुंदर आसन सुवर्णपात्र में आकर्षक ढंग से रखे रसीले फल उसके प्रिय फूलों की नन्ही-नन्ही मालाएँ मयूर-पंखों के बने बड़े-बड़े पंखे—सारी सामग्री मैं अपने महल में तैयार रखती। आखिर कच है एक मनमौजी ऋषि। वह अचानक आकर सामने खड़ा हो जाए, कौन जानता है?

फूलों की वे सुकुमार मालाएँ कुम्हला जातीं फल बासी हो जाते, लेकिन वह नहीं आता। पश्चिम की ओर की खिड़की से सूरज की किरणें भीतर झाँककर देखतीं और सारी स्वागत सामग्री ज्यों की त्यों पड़ी देखकर उदास अकुलाहट से धीरे धीरे अदृश्य हो जातीं।

यति को गायब हुए एक एक कर सात दिन बीत गए। महाराज प्रतिदिन साथ अशोक वन जाते। उनसे बातें करने के लिए कच के पास समय होता य सारी बातें मुझे मालूम होतीं। किन्तु मुझसे मिलने के लिए उसको फुरसत नहीं मिलती थी। मन ही मन इस बात पर मैं उससे बहुत नाराज हो गई थी। वह हस्तिनापुर से आया? यह क्या निमंत्रण पाकर हो न? वह निमंत्रण मैंने भेजा था। महाराज को तो शायद उस बुलाने की याद भी न आती। मुझे याद आई इसीलिए वह यहाँ आ सका। किन्तु राजमहल आकर उसने मुझसे मिलने के मामूली शिष्टाचार का भी पालन नहीं किया। शायद वह चाहता है कि देवयानी नाक मुट्ठी में पकड़कर बार बार उस बुलवाने के लिए जाए। किन्तु कच्चू

किन्तु अवश्य ही मुझे बार-बार लगता—कम से कम एक बार वह मेरे पास आए खुलकर मुझसे बातें करे मेरा कुशल क्षेम पूछे एक-दूसरे के साथ हम दोनों ने जो सुख के दिन बिताए थे उनकी स्मृतियाँ जगाए सुनकर मैं व्याकुल हो जाऊँ मेरी आँखों में आँसू भर आएँ उन आँसुओं में महारानी बना देवयानी बह जाए।

नहीं नहीं! कच मुझे शाप देकर चला गया तब कितने ही दिनों तक मेरे आँसू नहीं थमे थे। उसके बाद मैं अवश्य सतर्क हो गई समझदारी से मैंने काम लिया और पक्का निश्चय कर लिया कि फिर कभी आँखों में आँसू नहीं आने दूँगी।

हो गया मुझसे! अब सचमुच मुझे उसपर बड़ा पछतावा हो रहा है। मेरा वह कृत्य एक ऋषिकुमार को शोभा देने वाला कतई न था! एक भाई के लिए तो वह सर्वथा अशोभनीय ही था! उस अपराध के लिए मैं तुमसे हार्दिक क्षमा मांगता हूं।'

कहते-कहते उसने हाथ जोड़ लिए। उसकी मुद्रा कितनी शांत, कितनी गंभीर थी! मुझे यह कुछ अटपटा सा लगने लगा कि वह मुझसे क्षमा याचना करे, मेरे महल में आकर मेरे सामने हाथ जोड़े! मैं बड़े असमंजस में पड़ गई, क्या करूं क्या न करूं! आश्रम में रहते उसने ऐसा किया होता, तो मैं दौड़कर उसके पास पहुंच जाती और उसके जोड़े हुए हाथों को अपने हाथों में अलग कर कहती— भला क्या कहती?

किन्तु मैं ययाति महाराज की पत्नी थी। कच एक पराया पुरुष था। मैं हस्तिनापुर की महारानी थी। कच एक सामान्य संन्यासी था। मैं कुछ, कुछ भी नहीं कर सकती थी। उसने प्रश्न किया, 'कर दी न मुझे क्षमा?'

मैंने गर्दन से हां-हां कह दिया। किन्तु तुरंत मन में विचार आया कि कहीं यह सारा इसका नाटक तो नहीं? देवयानी से इसे इतना लगाव था, उससे यह क्षमा मांगना चाहता था, तो इतने दिन हो गए, वह इधर फटका भी क्यों नहीं?

मैंने हंसकर पूछा, 'कचदेव, आपको हस्तिनापुर आए इतने दिन हो गए, फिर भी आप इधर महल में नहीं आए! तो मैंने सोचा, भाई ने बहन को कहीं भुला तो नहीं दिया?'

'धनी भाई गरीब बहन को शायद भुला भी सकता है, किन्तु गरीब भाई रईस बहन को कैसे भुला सकता है?'

'अच्छा, यह बात है! तो क्या राजमहल का रास्ता नहीं मिला उसे?'

'वह किसी दूसरे ही रास्ते की खोज में था!'

'कहां जाने वाला?'

'राजमहल की स्वामिनी के हृदय तक जाने वाला!'

इन शब्दों का अर्थ मेरी समझ में नहीं आया। किन्तु मेरा मन उस नन्हें पखेरू के समान मूक आक्रोश करने लगा, जो अंधेरा हो जाने पर भी अपने घोंसले की राह भूलकर क्रन्दन करता फड़फड़ाता रहता है।

कच कुछ चुप रहा। मेरे मन में शंका उठी कि कहीं महाराज ने इसे मेरे बारे में कुछ पूछ तो नहीं डाला? कुछ बता तो नहीं दिया? उनका पक्षधर होकर यह मुझे उपदेश करने तो नहीं आया?

उसने अत्यंत शांत भाव से कहा, 'मैं तुमसे एक चीज मांगने आया हूं!'

मैं हकलाने लगी। अटकते-अटकते पूछा, 'क्या मांगते हैं?'

'यही कि शर्मिष्ठा को तुम अपनी दासता से मुक्त कर दो!'

मैंने क्रोध से पूछा, 'और मुक्त करके उसे क्या बना दूं? महारानी? अपना

स्थान उसे दे दूं ? या सौत बनाकर अपनी छाती पर मूंग दलवाऊं उससे ? और स्वयं उसकी दासी हो जाऊं ?"

वह फिर भी शांत था। उसने कहा, "क्रोधवश तुमने जिद की होगी कि उसे तुम्हारी चेरी बनना ही पड़ेगा। उसके लिए मैं तुम्हें कोई दोष नहीं दूंगा। दुनिया में कौन है जिसे क्रोध नहीं आता ? किन्तु विचार से मात्र वह बदला बड़प्पन नहीं है। विचार की सहायता से विकार पर विजय पाना ही सच्चा मनुष्य धर्म है।"

मुझे अब भी चुप ही देखकर उसने आगे कहा, "देवयानी, क्षण भर के लिए केवल कल्पना करके देखो। शर्मिष्ठा के स्थान पर तुम होतीं, उसकी दासी बनकर सारा जीवन बिताने की नौबत तुमपर आती..."

तिरस्कार भरे स्वर में मैंने कहा, "मैं ? और दासी होती ? मैं दासी बनूंगी ? इस शर्मिष्ठा की ?"

उसी शांत भाव से उसने कहा, "भाग्य की गति अत्यंत विचित्र और निर्मम होती है देवयानी ! कभी वह रंक को आकाश का तारा बना देती है, कभी धरती का पाषाण बनाकर छोड़ता है ! कोई भरोसा नहीं, वह कब किसे दासी बना देगी और कब किसी दासी को रानी..."

मैंने हेठी भरे स्वर में कहा, "मैं इन सारी बातों को अच्छी तरह से समझ रही हूं कचदेव !"

"तुम्हें दुख पहुंचाने वाली कोई बात मेरे मुंह से निकल गई हो तो मुझे क्षमा करना। इस दुनिया में किसीका दुख जान लेने का एक ही मार्ग होता है कि हम अपने आपको उसके स्थान पर रखकर सोचें। विगत बारह-तेरह दिनों से मैं शर्मिष्ठा के दुख को इसी प्रकार से समझने की कोशिश करता रहा। आज तक कच ने देवयानी से कुछ भी मांगा नहीं है ! सोचा था कि शायद अपने भाई को वह इतनी भिक्षा..."

मैं जानती थी कि कच से बहस में जीतना असंभव है। मैं गूंगी, बहरी, अंधी होकर बनी रही। बोलते बोलते कच रुका और मेरी तरफ पागल सा टुकुर-टुकुर देखने लगा। उसकी नजर से नजर मिलाना—न हो ! वह बहुत ही टेढ़ी खीर था ! उसकी नजर में कठोरता नहीं थी, करुणा भी नहीं थी। कुछ भी नहीं था। किन्तु सारी मन्त्रविद्याओं और जादू-टोनों का सार उसकी नजर में उतर आया था। बचपन में जंगल के भयंकर अजगरों के किस्से मैंने सुन रखे थे। वह अजगर अपनी नजर से पथिक को बांध रखता था। कहते हैं कि उस अजगर ने देखा नहीं कि पथिक की अपने स्थान से हिलने तक की शक्ति समाप्त हो जाती थी ! कच की नजर बिलकुल वैसी ही थी !

उससे झगड़ने के लिए मैं अपनी सारी शक्ति और साहस बटोरने लगी।

"यति को राजसभा में अपने साथ लाकर मेरे समारोह के रंग में भंग इसीने किया ! आप पिताजी की तपस्या के लिए ध्यान कितना चाहे अपना अपशकुन कर दिया ! उसके बारे में यह एक शब्द भी बोलने को तैयार नहीं ! आखो

वा चौंधिया देने वाला मेरा सारा राजभवन इसने देखा किन्तु मेरी सराहना का एक शब्द भी इसके मुह से न निकला ! और ऊपर से यह शर्मिष्ठा को दासता से मुक्त करने का उपदेश देने के लिए आज यहां आया है। इसके सम्मोहन का शिकार देवयानी कदापि नहीं बनेगी। मेरा दिल तो इसने बखिमक तोड दिया ! नहीं कच देवयानी का कुछ भी नहीं लगता देवयानी उसे कोई भिक्षा नहीं देगी !

उसकी तरफ देखे बिना ही मैं महल से बाहर जाने के लिए उठी।

कच भी मेरे साथ ही उठ खड़ा हो गया। उसने शांत सयत भाव से कहा महारानी मैं कल भृगु पर्वत जा रहा हूं। वहा एकांत मे तपस्या और चिंतन मे समय बिताने का मैंने निश्चय किया है ! अब भी बहुत बहुत अधूरा हू मैं ! यह अधूरापन यह अपूर्णता कुछ घट जाए— एक क्षण से भी कम हो जाए दुनिया का दुःख कम करने का रास्ता मिल जाए

उसका बोलना पूरा होने से पहले ही मैंने उसे नमस्कार किया। आशीर्वाद देते हुए उसने कहा फिर हमारी भेट कब होगी किस अवस्था मे होगी आदि शक्ति ही जाने ! मेरी यही इच्छा है कि वह आदिशक्ति महारानी को सुबुद्धि दे और देवयानी तुम्हें हमेशा सुखी रखे !

०

दूसरे दिन प्रात ही सासजी का संदेशा आया। कच के साथ भृगु पर्वत पर जाने का उन्होने भी निश्चय कर लिया था। संदेश सुनकर महाराज हक्का बक्का रह गए। उन्होंने मा जी को काफी मनाया कि पोते का मुख अवलोकन करने के बाद ही जाए। विवाह के बाद मन उन्हें सासजी के साथ दिल खोलकर बातें करते या कभी उनकी मिन्नतें करते नहीं देखा था। किन्तु यह ध्यान मे आते ही कि मा जो वानप्रस्थ लेने जा रही है महाराज की अवस्था किसी नन्हे बालक-सी हो गई। मैंने सोचा था कि महाराज के आसू देखकर शायद सासजी पसीजेंगी। लोग भी कही यह न कहने लग जाए कि बहू से ऊबकर सास चल दी मैंने भी उनसे रुक जाने का काफी आग्रह किया। किन्तु सबको वे एक उत्तर देती बीमार को खाने पीने का एकदम अरुचि हो जाती है न वैसा ही मेरा मन घर गृहस्थी से अब उचट गया है ! बीमार को आग्रह करके खिलाने मे क्या धरा है ? ऐसे खाने से तो उसको नुकसान ही पहुंचेगा !

वे अशोक वन से ही सीधी चली गई। जाने से पूर्व उन्होंने मुझे एक बार बुलाकर कहा नहीं मेरा मन किसी चीज मे अटका नहीं है। किन्तु ययु की बरबस ही चिन्ता रहती है। उसका मन नन्हे बालक के मन जैसा है ! जितना सरल उतना ही जिद्दी ! *किन्तु छोड़ो यह सब। इस एक बात बाती बूढ़ी से गृहस्थी का एक* अनुभव सुनो और उसे हमेशा याद रखो। पते की बात है कि एक युवती के लिए अपने पति की केवल पत्नी बनना काफी नहीं है। उसे तो उसकी सखा उसकी

बहन, उसकी क या—यही क्या, मौका आने पर उसकी मा भी बनना पडता है।"

उनकी यह बात बडी ही भेद भरी लगी मुझे। किन्तु उनके प्रस्थान का समय हो चुका था और

और उस बूढी दासी ने महाराज और सामजी की जो बातचीत चोरी चोरी सुन ली थी और आकर मुझे बता दी थी उससे तो मुझे विश्वास हो गया था कि उनका यह सारा उपदेश मात्र एक ढकोसला है नाटक है।

उस दासी ने मा बेटे के बीच हुआ सभाषण ज्यो का त्यो मुझे बता दिया—महाराज से मिलकर रत्न को देखकर सामजी ने कहा था मेरे जब पोता हो जाए तो समाचार देना! यह भी लिखना कि उसका नाम क्या रखा है। उसका नाम यदि तुम अपने पिताजी के नाम पर रखो तो मुझे बहुत अच्छा लगेगा। और सुनो मेरे साथ जरा बगीचे मे आ सकते हो?'

महाराज ने पूछा, 'वह किसलिए?'

एक पौधा दिखा जाती हू तुम्हे!'

क्या वह कोई औषधि का पौधा है?

हा।'

तो राजवैद्य को दिखा दो न मैं क्या करूगा जानकर?

वह राजवैद्य को दिखाने लायक नहीं है!'

मतलब?'

वह औषधि स्वय मा ही लेती या देती रहती है।'

किस रोग की दवा है वह?'

उस रोग का कोई निश्चित नाम नहीं होता! किन्तु मनुष्य को कभी कभी जीवन से भी उकताहट हो जाती है—अपने या किसी दूसरे के! ययु मैं नहीं चाहती कि तुम्हारे सामने कभी यह नौबत आए। किन्तु बेटे तुम्हे शर्मिष्ठा जसी पत्नी मिल जाती न तो मैं बिलकुल निश्चिन्त होकर वन म चली जाती।"

जसी सामजी वसा ही कच! दोनो एक ही माला के गुरिया। ढोंगी नाटकीय और कपटी! जाते समय वह महाराज के लिए शर्मिष्ठा को एक पत्र देकर गया। उसने वह पत्र राजमहल भेज दिया। पत्र पढकर महाराज काफी देर तक सोच म डूबे रहे थे। मेरी समझ म नहा आया कि आखिर कच ने महाराज को कौन सा राज लिख भेजा है! कहीं उसने मेरे बारे म महाराज के मन को कलुषित करने का प्रयास तो नहीं किया है? या शर्मिष्ठा को दासता से मुक्त करने का महाराज से ही अनुरोध किया है?

किन्तु कचजी शर्मिष्ठा देवयानी की दासी है महाराज की नहीं! उसपर सत्ता देवयानी की चलेगी!

अन्त म साहस करके मैंने महाराज से पूछ ही लिया उस पत्र म क्या कोई विशेष बात लिखी है?"

पत्र मेरे हाथ में देते हुए महाराज ने कहा वैसी कोई विशेष बात नहीं है किन्तु बार बार मेरे मन में आता है कि काश ईश्वर ने मुझे कच जैसे तपस्वी का जन्म दिया होता !"

उनके कंधे पर माथा रखकर मैंने कहा ईश्वर समझदार है ! और उसे देवयानी की भी चिन्ता है !

उन्होंने हँसकर पूछा यह तुम कैसे कह सकती हो ?

आप ऋषि होते तो मुझे ऋषि पत्नी बनना पड़ता और फिर मेरी वह दुर्दशा होती वह दुर्दशा होती कि "

मेरे बालों को सहलाते हुए उन्होंने पूछा देवयानी ययाति की पत्नी होकर क्या तुम वास्तव में सुखी हो ?

मैं शरमा गई और गरदन हिलाकर ही हाँ कहा।

पूरी सुखी हो ?

फिर मैंने गरदन हिलाकर ही हाँ कहा और धीरे से सिर उठाकर देखा। क्षण भर में ही उनकी मुद्रा अत्यंत प्रफुल्लित हो गई थी। मासजी ने ठीक ही कहा था कि नन्हे बालक के मन जैसा मन है उनका !

कच का पत्र मैं पढ़ने लगी

हम बहुत दिनों के बाद मिले। हस्तिनापुर के महाराज से बात करते समय मुझे यही आभास रहा कि मैं अंगिरसजी के आश्रम में युवराज ययाति से ही बातें कर रहा हूँ। अतः बहुत खुशी हुई।

प्रिय अथवा अपरिचित व्यक्ति से होने वाली भेंट और उसके साथ दिल खोलकर की जाने वाली बातें केवल व्यावहारिक नहीं हुआ करती। उनमें आत्मिक सहानुभूति का हिस्सा भी काफी बड़ा होता है। ऐसे अवसर पर घड़ी भर के लिए ही सही वद्ध आत्मा को मुक्तता का आनन्द मिलता है। इसी आनन्द की शाश्वत प्राप्ति के लिए ही ऋषि मुनिगण तपस्या किया करते हैं। आपके सहवास में मुझे उस आनन्द की आंशिक प्राप्ति हो गई। आनन्द के उन क्षणों की स्मृतियों को मैं हमेशा संजोए रखूँगा।

आप दोनों से प्रार्थना है कि एक बात के लिए मुझे क्षमा करें। यहाँ आते तक यति को मैं जानता तक नहीं था। तीर्थयात्रा के लिए भ्रमण करते समय संयोग से वह मुझे मिला ! लोग उसकी बड़ी बुरी गत किए जा रहे थे। एक गुमनाम और बुद्धि भ्रष्ट संन्यासी के नाते उसपर मुझे दया आ गई। उसकी दुर्गति मुझसे देखी नहीं गई। मैंने निश्चय कर लिया कि उसका निर्वाह मैं कर लूँगा। मैं अनुभव करने लगा कि धीरे धीरे उसके मन में मेरे प्रति विश्वास की भावना जाग रही है। ऐसी अवस्था में उसे दरबार में मुझे नहीं लाना चाहिए था। किन्तु अमात्य ने महारानी का तकाज़ा का सन्देश बताया। मैंने सोचा भीतर काफी ऋषि मुनि

पचार है उनमे यति का मन रम जाएगा और वह उनम जाकर चुपचाप बैठ रहेगा।

'किन्तु जो कुछ हुआ वह एकदम भिन्न ही था! बहुत ही अजीब! मेरे कारण आपके समारोह के रग म भग हो गया। शायद स्त्री-पुरुषो को देखने के कारण अथवा पारिवारिक जीवन की प्रतिक्रिया के कारण यति की उन्मनता यहा आकर बढ ही गई। उसके अचानक गायब हो जाने के कारण राजमाता को अत्यत दुख हुआ!

अनजाने आप सबको मेरे कारण बहुत परेशानी हुई। मैं सुनता आया हू कि स्नेह क्षमाशील हुआ करता है। इसलिए मैं आप दोनो से क्षमा माग रहा हू।

यति की कहानी आपसे ही मुझे सबसे पहले मालूम हुई। उसकी आज की दशा बहुत ही अनुकम्पनीय है। बचपन म ही वह ईश्वर की खोज के लिए घर छोडकर निकल पडा और आज जवानी म अपने भीतर के मनुष्य को ही खो बैठा है। मैंने काफी सोचा कि आखिर यति पर यह मुसीबत क्या आई होगी? शायद उसकी उन्मन अवस्था की जड म उसकी अत्यत एकागी और दोषपूर्ण विचारधारा है। हमारा जीवन शरीर और आत्मा स्त्री और पुरुष आदि कितने ही द्वद्वो पर खडा होता है। मानव के इन बुनियादी अधिष्ठानो के विरुद्ध यति विद्रोह कर उठा है। ऐसा विद्रोह सफल हो भी तो कैसे? अपने परो को काटकर कौन इस दुनिया म चल सका है? अपनी आखो को फोडकर कौन देख पाया है?

ससार अनगिनत द्वद्वो से भरा पडा है। यह सच है कि एक सन्यासी निद्रा अवस्था म ही ब्रह्मानद का अनुभव करता है! इसी अनुभव के लिए उसके सारे परिश्रम होते हैं। अनेक यम नियमो का पालन भी वह इसी अनुभव की प्राप्ति के लिए करता है। फिर भी यह सब करते हुए भी जीवन के द्वद्वो का स्वीकार करना ही पडता है। आत्मा के अस्तित्व का साक्षात्कार दुनिया तभी पाती है जब वह आत्मा शरीर धारण कर लेती है! स्त्री नौ मास तक गर्भ धारण न करे तो मनुष्य पैदा भी कैसे हो सकेगा? इतनी सरल और आसान बातें ये सारी सामान्य आदमी इन्हे मानकर ही चलता है। वह अपने-आपको सहज रूप म प्रकृति का ही एक हिस्सा मान लेता है। इसीलिए वह उसका स्वामित्व भी स्वीकार कर लेता है।

किन्तु यति ने न केवल प्रकृति के स्वामित्व को बल्कि उसके अस्तित्व को भी मानने से इकार कर दिया है! यह उसकी बडा भारी भूल है! मनुष्य केवल प्रकृति की उपज नहीं है यह तो सच है। उसका आधा भाग—यानी उसका शरीर—प्रकृति के कितने ही नियमो से नियत्रित रहता है। उस शरीर के द्वारा ही उसकी आत्मा का भी विकास सभव होता है। इस तरह विकसित मनुष्य प्रकृति से काफी बडा होता है। वह प्रकृति पर अधिकार कर सकता है। किन्तु ऐसा वह प्रकृति से मुख मोडकर या प्रकृति को ठुकराकर नहीं उसके अस्तित्व को स्वीकार करके ही कर पाता है! जीवन को केवल आत्मा या केवल शरीर मानना

दोनो एकदम आत्यन्तिक सिरे वाली कल्पनाए है सवथा गलत विचार है। इस तरह की एकागी कल्पनाओ के कारण ही मनुष्य विकृत हो जाते है अपना सवनाश कर लिया करते है।

मनुष्य प्रकृति और परमात्मा के बीच की सवश्रेष्ठ कडी है। परमात्मा द्वद्वातीत है और प्रकृति को द्वद्व की कोई कल्पना तक नही होती है। उसकी कल्पना केवल मनुष्य ही कर सकता है! वही नदी जो प्यास से तडपते मनुष्य की तपा को शात करती है गहरे पानी म उतरने पर उसकी जान भी ले लेती है!

जीवन के इन द्वद्वो का ज्ञान केवल मनुष्य के मन मे ही जागता है। विकास की हर अवस्था के साथ यह ज्ञान सूक्ष्म और व्यापक होता जाता है। जीने की अदम्य इच्छा और उसके लिए हर प्राणी द्वारा जारी कोशिश मनुष्य को मिली प्रकृति की विरासत है। किन्तु मनुष्य निपट पशु बनकर जीना नही चाहता। वह एक इसान की तरह भली प्रकार जीना चाहता है। अतएव वह स्वाभाविक ढग से अच्छे बुरे का विचार करने लगता है। किन्तु प्रकृति धम और अधम का भेद नही करती वह केवल मनुष्य ही कर सकता है। किसी मा की इकलौती सतान डूबने लग जाए तो नदी उसपर जरा भी दुःख नही करेगी। किन्तु उसके किनारे पर बैठा मनुष्य —केवल जीने की इच्छा की अपेक्षा जिसकी अन्य भावनाए भी विकसित हो गई हैं ऐसा मनुष्य—अपने प्राणो को खतरे म डालकर भी उस बच्चे को बचा लेने की कोशिश अवश्य करेगा।

नही! इतना सारा लिखने के बाद भी वह बात स्पष्ट नही हो पाई है जो मैं आपको बताना चाहता था। कितना अधूरा और अपूण है मेरा चिंतन! सत्य की खोज म निकला मैं एक यात्री हू। किन्तु शायद अभी मुझे काफी लम्बी राह चलनी होगी!

आपसे बातचीत करते समय मैंने आत्मा शब्द का प्रयोग काफी बार किया। आपने इसपर कई बार मुझसे हसकर पूछा भी कि यह आत्मा आखिर रहती कहा है?' उस समय मैं आपकी शका का समाधान नही कर पाया। किन्तु मेरा आपसे अनुरोध है कि आप हमारे आद्य ऋषियो द्वारा चित्रित यह रूपकात्मक स्वरूप हमेशा स्मरण रखें। रूपक इस प्रकार है—

मानव जीवन म आत्मा रथी शरीर रथ बुद्धि सारथी और मन लगाम है। विविध इद्रिया घोडे है। उपभोग के सभी विषय उसके रास्ते है और इद्रिया और मन से युक्त आत्मा उसका भोक्ता है।

"रथ ही न रहा तो धनुधर कहा बैठेगा? जल्दी से समरभूमि म कैसे पहुचेगा? वह शत्रु से कैसे लड पाएगा? इसीलिए शरीर रूपी इस रथ का महत्त्व कभी कम नही मानना चाहिए। यति ने वही अक्षम्य भूल की है!

इद्रिया जब इस शरीर रूपी रथ के घोडे है तो उनके बिना रथ क्षण भर के लिए भी चल नही सकेगा। इसी प्रकार रथ का ध्यान घोडे जोत दिए तो वे स्वच्छदता से इधर उधर भागकर भगदड मचा देंगे और पता नही कब यह रथ

किसी गहरी खाई में गिरकर चकनाचूर हो जाएगा। इसीलिए इंद्रिय रूपी घोडा के लिए मन की लगाम का बंधन हमेशा आवश्यक है। किन्तु यह भी परम आवश्यक है कि यह लगाम भी हमेशा सारथी के हाथों में रहे वरना तो लगाम का होना न होना बराबर हो हो जाएगा। इसीलिए मन पर बुद्धि का नियंत्रण चाहिए। बुद्धि और मन दोनों मिलकर ही इस रथ को संयम के साथ सुचारु ढंग से चला सकेंगे।

"इस तरह चलाए जाने पर रथ तो सुचारु ढंग से चलेगा, किन्तु उसमें रथी ही न रहा तो आखिर रथ कहा जाएगा? उसकी दिशा क्या होगी? गंतव्य क्या होगा? कार्य क्या होगा? सभी मानवों में बसने वाला, और आप-हममें मैं के रूप में हमेशा जागृत रहने वाला न केवल मन और बुद्धि से बल्कि जन्म और मृत्यु से भी परे देख सकने वाला जो ईश्वरीय अंश होता है वह आत्मा ही इस शरीर रूपी रथ का रथी है।

"मैं काफी लम्बा पत्र लिख गया। मुझ जैसे योगी धर्म का पालन करने वाले का तो ऐसी बातों में बड़ा रस है किन्तु मैं भूल गया कि अन्य लोगों के लिए यह सब शायद बकवास ही है। वैसे भी आप जैसों के लिए इस सारी दार्शनिक माथा पच्ची की आवश्यकता भी क्या है? राजधर्म और पतिधर्म का पालन करते समय आपको और गृहिणीधर्म तथा पत्नी धर्म का पालन करते समय महारानी को जो बातें सहज ज्ञात हो चुकी होंगी उन्हीको मैंने शायद कुछ जटिल बनाकर इस पत्र में प्रस्तुत किया है। है न?

"मुझे विनय का बहाना बनाकर नहीं लिखता किन्तु वास्तव में कई बार मुझे लगता है कि योगी धर्म की अपेक्षा गृहस्थी का धर्म निभाना बहुत कठिन है। हर मनुष्य की आत्मा शरीर के पिंजड़े में बंदी बनी पड़ी होती है। इस बंदिनी आत्मा की निरंतर यही चेष्टा रहती है कि इस अभिन्न बंधन को वह पूरी तरह से भुला कर शरीर में रहकर भी उससे अधिक तरल और विशाल बन जाए, शरीर सुख की अपेक्षा कहीं श्रेष्ठ कोटि का आनन्द लेते हुए मुक्ति को अनुभव करे। मुक्ति के लिए आत्मा की यह चेष्टा दुनिया में अनंत रूप लेकर व्यक्त होती है। योगी धर्म भी इसी चेष्टा का एक उग्र रूप है।

इसके विपरीत स्त्री पुरुष की प्रीति भी इसी मुक्ति की चेष्टा का दूसरा रमणीय रूप है। किन्तु यह प्रीति केवल शारीरिक आसक्ति नहीं हुआ करती। उस आसक्ति से केवल शरीरों का मिलन होता है। सच्ची प्रीति में मनों का भी मिलन हो जाया करता है। कुछ समय बाद वह आत्माओं का मिलन भी हो सकता है। आत्म मिलन का यह रमणीय मार्ग ईश्वर प्राप्ति के उग्र मार्ग के समान ही कठिन होता है। गृहस्थी इस तरह से एक श्रेष्ठ और पवित्र यज्ञ है। सहस्र अश्वमेधों का पुण्य उसमें समाया हुआ है। किन्तु इस गार्हस्थ्य यज्ञ की सफलता के लिए पति पत्नी दोनों को उसमें सबसे पहली आहुति अपने अहंकार की देनी होती है।

देवयानी शीघ्र ही मा बन जाएगी। कहते हैं मां का हृदय संसार के सभी दर्शनों का आगर हुआ करता है। सभी काव्य और दर्शन मां के हृदय में अपने आप प्रस्फुरित होते हैं। आप देवयानी से अवश्य कह दीजिए कि कच उसके पुत्र को प्यार करने के लिए किसी दिन अवश्य आएगा। मुझे उसके निमंत्रण की आवश्यकता नहीं। आखिर उसका भाई ही तो हूं! शुक्राचार्य के आश्रम में उसके सहवास में बिताए सुख के दिन आज भी मुझे याद आते हैं! उसकी मां बचपन में ही चल बसी। मुझे भी अपनी मां की कोई स्मृति नहीं है! हम दोनों इस मामले में सम दुखी थे। शायद इसीलिए हममें इतनी जल्दी स्नेह बढ़ता गया। पता नहीं शायद सुख की अपेक्षा दुख में ही आदमी एक दूसरे के अधिक निकट आ जाते हैं!

देखा न आपने? फिर चालू हो गई मेरी तोता रटन! इसीलिए अब यहीं पर समाप्त करता हूं।

आशीर्वाद आपपर और महारानी पर अपनी कृपा हमेशा बनाए रखें!

इस पत्र को पढ़ते पढ़ते मैं बिल्कुल ऊब गई। लगा यह कच भी उस यति के समान पागल होकर एक दिन मेरे सामने आकर खड़ा हो जाएगा।

नहीं री मां! कच कितना ही कठोर क्यों न हो उसके बारे में यह अमंगल कल्पना मुझे किसी तरह बिल्कुल ही बर्दाश्त नहीं होती!

किंतु उसका इस तरह का पत्र पढ़ लेने के बाद आखिर मेरे जैसी के मन में दूसरा विचार आता भी क्या?

आत्मा आत्मा आत्मा! स्त्री पुरुष प्रीति में भी उसे आत्मा ही दिखाई देती है! स्वयं विवाह कर लेता तो पता चलता महाशय को कि इस प्रेम में आत्मा कितनी होती है! आत्मा शरीर और स्त्री के सौंदर्य पर मोहित होने वाला पुरुष—दोनों एक से ही होते हैं! ऐसा पुरुष लावण्य चाहता है तारुण्य चाहता है शरीर का सुख चाहता है बस उसे केवल मन्मथ का करने वाले उन्माद की ही चाह होती है! वीणा-वादक को भी शायद अपनी वीणा के प्रति दया आती होगी किंतु सौंदर्यलोलुप पुरुष को

महाराज ने वह पत्र मुझसे मांग लिया। शायद वे उसे फिर से पढ़ना चाहते थे! मैंने हंसते हंसते पूछा "क्या यह पत्र मुझसे भी अधिक सुंदर है?"

मेरी ओर गौर से देखते हुए उन्होंने कहा "विधाता तो इस समय चिंता में पड़े हैं कि तुमसे अधिक सुंदर कोई चीज वे अब बना ही नहीं पा रहे हैं!"

बस इस तरह मुंह देखी बात कर दी और हो गए विजयी! शरमाकर मैंने कहा। मेरा चिबुक उठाकर मेरी आंखों की गहराई नापते हुए उन्होंने कहा "सच कहता हूं देवयानी तुम अब तो पहले से अधिक सुंदर दीखने लगी हो!"

'किंतु इसका कारण जानते हैं क्या आप?'

नहीं तो!

उनकी गोद में मुंह छिपाते हुए मैंने कहा "पुरुष तो बस बुद्धू के बुद्धू ही रहते हैं! अजी महाराज अब मैं मां जो बनने वाली हूं!"

तब जाकर वही सारी बात उनके ध्यान में आई। मेरे लाख मना करने पर भी उन्होंने मेरा चेहरा ऊपर उठाया। बड़ी देर तक मेरी ओर एकटक देखते रहे। फिर बोले "यह तुम स्त्रियों पर भगवान की कितनी बड़ी कृपा है। प्रकृति का सबसे बड़ा और अत्यंत मधुर राज वह तुम लोगों के कानों में आकर धीरे से कह देता है।" कुछ रुककर उन्होंने कहा "अब तो तुम्हारी दोहदें[1] शुरू हो जाएगी न?"

"हो जाएगी क्या, अजी शुरू हो भी गई है।"

"फिर तुमने मुझे यह भी नहीं बताया?"

"आप इसी भागदौड़ में व्यस्त थे और फिर मेरी दोहदें हैं बड़ी कठिन!"

"यह भी कोई बात हुई? तुम अपनी जो भी इच्छा हो कहके तो देखो! तुम्हारे मुँह से बात निकलने भर की देर है कि इधर वह पूरी हो गई समझो!"

"कहती हूँ सुनिए! मेरी पहली इच्छा है कि आपके मित्र का यह जो पत्र है न, उसे फिर से आप कभी न पढ़ें!"

"लेकिन क्यों?"

"पागल हो जाएगा कोई ऐसा पत्र बार बार पढ़कर! मैं तो उसका अर्थ भी ठीक तरह से समझ नहीं पाई हूँ!"

"किन्तु"

"किन्तु परन्तु कुछ नहीं चलेगा। आपने अपनी बचपन की किसी सहेली का वह सुनहरा बाल एक संदूक में सुरक्षित रखा है न? चाहो तो उसी संदूक में—अपने मित्र का यह पत्र भी रख दीजिए। बुढ़ापे में हम दोनों इस पत्र के जितना चाहे पारायण कर लिया करेंगे! किन्तु आज! कदापि नहीं। आज जबकि शीघ्र ही माँ बनने की खुशी में मेरा तन मन क्षण-क्षण खिलता निखरता जा रहा है, दुनिया के सारे सुख हाथ जोड़कर हमारे सामने नतमस्तक खड़े हैं, आत्मा के बारे में यह वाहियात बकवास"

उन्होंने हँसते हँसते कहा "अच्छा-अच्छा, जैसी तुम्हारी मर्जी!"

०

उसके बाद का महीना डेढ़ महीना सुख से बीता। दोहदों का कष्ट मुझे कभी नहीं हुआ। मैं जो भी इच्छा प्रकट करती, अविलंब पूरी कर दी जाती थी। महाराज की खुशी का तो ठिकाना ही न था। मेरी हर बात को वे एकदम मान लिया करते थे।

इच्छा हुई कि नगरोत्सव में खेले गए नाटकों को फिर एक बार देख लूँ। महाराज ने तुरंत प्रबंध करवा दिया। उन नाटकों को देखते समय हम दोनों के बीच हुए पिछले संभाषणों की याद हो आई। उस समय मैंने उनसे कहा था 'आप ऋषि के वेश में काफी अच्छे जँचेंगे!' उस दिन कच का पत्र पढ़ लेने के

[1] गर्भवती की इच्छाएं।

बात उन्होंने ही स्वयं कहा था वाश म भी कच के जमा तपस्वी हो गया होता !

मैं बार बार कल्पना करने लगी कि आखिर महाराज ऋषि के वेश म कसे लगेंगे।

क्या ही मजेदार कल्पना थी ! किन्तु वह चरितार्थ हो भी तो कसे ? अत म मुझे एक तरकीब सूझी। मैंने उनसे कहा जी बहुत कर रहा है कि किसी ऋषि के साथ यमुना किनारे चादनी म सैर कर आऊ !

उन्होंने हसकर कहा चादनी म यमुना किनारे तो किसी भी समय जाया जा सकता है किन्तु किसी ऋषि के साथ जाने की तुम्हारी इच्छा बडी अजीब सी लगती है !

एक महर्षि के आश्रम म पली लडकी जो हू ! महारानी बन गई तो क्या हुआ ? वे सस्कार अभी मिट थोडे ही न है ?

किन्तु इसके लिए तुम्हारे परिचय का ऋषि कहा से लाया जा सकता है ? तुम्हारे पिता तपस्या के लिए बठे है ! कच यहा होता तो

अजी मैं कौन उन ऋषि महाराज से वेदात की चर्चा करने जा रही हू ? यह तो बस मेरा एक पागलपन का हठ ही समझ लीजिए ! आप स्वय ऋषि बन कर मेरे साथ चलें तो मुझे कोई आपत्ति नहा होगी !

धत् ! तुम भी कमाल करती हो !

आप मुझ हृदय से चाहते ही नहो ! मुझस सच्चा प्रेम ही नहीं करते ! मैं बुदबुदाई और रूठकर बैठ गई। फिर दो एक दिन महाराज से मैंने बातें करना भी छोड दिया। प्रयत्नपूर्वक उनस दूर दूर ही रहने लगी।

मैं इसस पहल भी अनेक बार अनुभव कर चुकी थी कि मेरे रुष्ट होने पर महाराज हमेशा हथियार डाल दिया करते है। इस समय भी उस ब्रह्मास्त्र ने अपना काम बराबर किया। काफी आनाकानी और झिझक के बाद महाराज आखिर ऋषि बनने को तैयार हो गए। नगरोत्सव म काम करने वाले एक कुशल अभिनेता की सहायता स उनपर ऋषि का स्वाग रचाने का सारा प्रबंध मैंने किया। एक चादनी रात भी तय कर ली और उस दिन साय हम रगशाला म गए। बाहर आए तो वह एक तजस्वी ऋषि के रूप म हाथ म दण्ड-कमण्डलु लिए मेरे साथ चल रहे थे !

मैंने सारथी से रथ यमुना किनारे ले चलने को कहा। मैंने उस सारथी को पहले से ही अपने इस षडयत्र म शामिल कर लिया था वरना वह बार बार मुड कर देखता कि महारानी किसी ऋषि के साथ इतनी घनिष्ठता स व्यवहार कर रही है और देखकर शायद भौंचक्का रह जाता !

यमुना के घाटों पर जी भरकर चादनी का आनन्द लेने के बाद मैंने महाराज स कहा आज मैंने एक भारी विजय प्राप्त की है !

कसी विजय ?

'याद है आपको ?—नागरिकवेश में नाटक के समय मैंने आपसे कहा था कि ऋषि का वेश आपपर खूब फबेगा ! आपने उत्तर दिया था कि मैं किसी हालत में ऋषि बनने वाला नहीं हूं ! किंतु आज—कहिए ? किसने शर्त जीत ली ?

और इसपर कितनी ही देर तक हम दोनों दिल खोलकर हंसते रहे।

यमुना के तट से लौटते समय एक और भी मज़ेदार कल्पना मेरे मन में आई। वहां से अशोक वन कोई दूर न था। मैंने सोचा इस वेश में शर्मिष्ठा महाराज को कतई नहीं पहचान पाएगी। तो क्या हर्ज है उससे थोड़ा मज़ाक किया जाए ?

महाराज मना करते रहे थे किंतु फिर भी मैंने सारथी से रथ अशोक वन ले चलने को कह ही दिया।

रथ के रुकते ही दो सेवक दौड़कर बाहर आए यह पूछने के लिए कि इतनी रात बीते कौन आया है। मैंने उनसे कहा "आज राजमहल में महात्मा पधारे हैं। आप हमारे अतिथि हैं। मैं इन्हें यहां इसलिए लाई हूं ताकि शर्मिष्ठा भी इनका पवित्र दर्शन कर सके। चार घड़ी बाद मैं इन्हें लेने के लिए फिर आ जाऊंगी। इन्हें ठीक से भीतर ले जाओ और शर्मिष्ठा को इनका दर्शन करने दो।

महाराज न तो हां कर सकते थे न ना कर सकते थे ! यहीं कमीज़ भेद खुल जाता तो सारा मामला चौपट होने का भय जो था ! मन ही मन झल्लाते वे चुपचाप भीतर चले गए।

मुझे शर्मिष्ठा पर बार-बार हंसी आ रही थी। आज वह बड़े भक्ति भाव से इन ऋषि महाराज की आवभगत करेगी। आगे चलकर कभी उसे इस घटना की याद दिलाऊंगी और सारा नाटक भी उसे बता दूंगी ! फिर वह कितनी शरमाएगी शरम के मारे मर-सी जाएगी !

दो चार घड़ी बाद फिर से यमुना किनारे चांदनी में सैर कर मैं महाराज को लेकर वापस नगर में आ गई।

महल लौटते समय महाराज ने मुझसे कहा "चार घड़ी ऋषि का वेश क्या बनाया इसे निभाते निभाते भगवान याद आ गए मुझे ! ओफ ! आज कल्पना कर सका मैं कि समुद्र मंथन के समय मोहिनी का रूप लेकर देव दानवों को अमृत परोसने वाले भगवान विष्णु पर क्या गुजरी होगी !

इतना कहकर वे चुप हो गए। किंतु उनकी मुद्रा पर अपूर्व उल्लास उमड़ रहा था। मेरी समझ में नहीं आया कि उन्हें इतना हर्ष किस बात पर हो रहा है ! उनके उल्लसित चेहरे की ओर देखते समय मुझे उषा के रंग में रंग जाने वाली प्राची के समान हो संध्या की विविध रंगीन छटाओं में नहाने वाली प्रतीची की याद हो आई।

मैंने पूछा "शर्मिष्ठा को हमारे ऋषि महाराज ने आखिर कोई आशीर्वाद भी दिया ?

वाद उन्होंने ही स्वय कहा था काश मैं भी कच के जसा तपस्वी हो गया होता !

मैं वार वार कल्पना करने लगी कि आखिर महाराज ऋषि के वेश म कसे लगेंगे।

क्या ही मजेदार कल्पना थी ! किन्तु वह चरितार्थ हो भी तो कसे ? अत म मुझे एक तरकीब सूझी। मैंने उनसे कहा जी बहुत कर रहा है कि किसी ऋषि के साथ यमुना किनारे चादनी म सैर कर आऊ !

उन्होंने हसकर कहा चान्दनी म यमुना किनारे तो किसी भी समय जाया जा सकता है किन्तु किसी ऋषि के साथ जाने की तुम्हारी इच्छा बडी अजीब सी लगती है !'

एक महर्षि के आश्रम म पली लडकी जो हू ! महारानी बन गई तो क्या हुआ ? वे सस्कार अभी मिटे थोडे ही न है ?

किन्तु इसके लिए तुम्हारे परिचय का ऋषि कहा से लाया जा सकता है ? तुम्हारे पिता तपस्या के लिए बठे है ! कच यहा होता तो

अजी म कौन उन ऋषि महाराज से वेदान्त की चर्चा करने जा रही हू ? यह तो बस मेरा एक पागलपन का हठ ही समझ लीजिए ! आप स्वय ऋषि बन कर मेरे साथ चल तो मुझ कोई आपत्ति नही होगी !

धत ! तुम भी कमाल करती हो !

आप मुझे हृदय से चाहते ही नही ! मुझसे सच्चा प्रेम ही नही करते ! ' मैं बुदबुदाई और रूठकर बठ गई। फिर दो एक दिन महाराज से मैंने बातें करना भी छोड दिया। प्रयत्नपूवक उनसे दूर दूर ही रहने लगी।

मैं इसस पहले भी अनेक वार अनुभव कर चुकी थी कि मेरे रुष्ट होने पर महाराज हमेशा हथियार डाल दिया करते है। इस समय भी उस ब्रह्मास्त्र ने अपना काम बराबर किया। काफी आनाकानी और झिझक के बाद महाराज आखिर ऋषि बनने को तयार हो गए। नगरोत्सव म काम करने वाले एक कुशल अभिनेता की सहायता से उनपर ऋषि का स्वाग रचाने का सारा प्रबध मैंने किया। एक चादनी रात भी तय कर ली और उस दिन साय हम रगशाला म गए। बाहर आए तो वह एक तेजस्वी ऋषि के रूप म हाथ म दण्ड-कमण्डलु लिए मेरे साथ चल रहे थे !

मैंने सारथी से रथ यमुना किनारे ले चलने को कहा। मैंने उस सारथी को पहले से ही अपने इस षडयत्र म शामिल कर लिया था वरना वह बार बार मुड कर देखता कि महारानी किसी ऋषि के साथ इतनी घनिष्ठता स व्यवहार कर रही है और देखकर शायद भौचक्का रह जाता !

यमुना के घाटो पर जी भरकर चादनी का आनन्द लेने के बाद मैंने महाराज स कहा, आज मैंने एक भारी विजय प्राप्त की है !

कसी विजय ?

याद है आपको ?—नागरिकों के एक वर्ग के समय दिन प्रतिदिन [illegible] कि ऋषि का यश आपपर खूब फबेगा ! आपने स्वयं लिया था कि मैं किसी हालत में ऋषि बनने वाला नहीं हूं ! किन्तु आज—कहिए ? किसने [illegible] ला ?'

और इसपर कितनी हो देर तक हम लोग खिलखिलाकर हंसते रहे।

यमुना के तट से लौटते समय एक और भी मजेदार कल्पना मेरे मन में सूझी। वहां से अशोक वन कोई दूर न था। मैंने सोचा क्यों न उस वन में शर्मिष्ठा महाराज को कतई नहीं पहचान पाएगी। तो क्या हर्ज है उससे थोड़ा मजाक किया जाए।

महाराज ना-ना कर रहे थे किन्तु फिर भी मैंने सारथी से रथ अशोक वन में चलने को कह ही दिया।

रथ के रुकते ही, दो सेवक दौड़कर बाहर आए। वह [illegible] राज कौन आया है। मैंने उससे कहा—आज राजमहल में [illegible] है। आप हमारे अतिथि हैं। मैं इन्हें यहां इसलिए लाई हूं ताकि शर्मिष्ठा भी इनका पवित्र दर्शन कर सके। चार घड़ी बाद मैं इन्हें लेने के लिए फिर आ जाऊंगी। इन्हें ठाठ से भीतर ले जाओ और शर्मिष्ठा को इनका स्वागत करने दो।

महाराज न तो 'हां' कर सकते थे न 'ना' कर सकते थे। [illegible] घुल जाना तो सारा मामला चौपट होने का भय जो था। मन ही मन [illegible] चुपचाप भीतर चले गए।

मुझे शर्मिष्ठा पर बार-बार हंसी आ रही थी। आज वह [illegible] इन ऋषि महाराज की आवभगत करेगी। आगे चलकर [illegible] याद दिलाऊंगी और सारा नाटक भी उसे बता दूंगी। फिर वह [illegible] शरम के मारे मर-सी जाएगी।

दो चार घड़ी बाद फिर से यमुना किनारे चांदनी में सैर कर मैं [illegible] लेकर वापस नगर में आ गई।

महल लौटते समय महाराज ने मुझसे कहा—'चार घड़ी ऋषि का [illegible] बनाया, स्वांग निभाते निभाते भगवान याद आ गए मुझे! [illegible] सका मैं कि समुद्र मंथन के समय मोहिनी का रूप लेकर [illegible] परोसने वाले भगवान विष्णु पर क्या गुजरी होगी!'

इतना कहकर वे चुप हो गए। किन्तु उनके मुख पर [illegible] रहा था। मेरी समझ में नहीं आया कि उन्हें इतना हर्ष किस बात पर हो रहा है। उनके उल्लसित चेहरे की ओर देखते समय मुझे उषा के [illegible] प्राची के समान ही संध्या की विविध रंगीन छटाओं में [illegible] याद हो आई।

मैंने पूछा—'शर्मिष्ठा को हमारे ऋषि महाराज ने [illegible] भी दिया ?'

क्या नही देता ? ऋषि की भूमिका जो निभानी थी ! अच्छा खासा हार्दिक आशीर्वाद दे आया।

आखिर वह रही एक तुच्छ दासी। उसे आपने ऐसा भला क्या आशीर्वाद दिया होगा ?

वही जो हर कुमारी को दिया जाता है— अनुरूपवरप्राप्तिरस्तु !'

महाराज द्वारा शर्मिष्ठा को दिए गए इस आशीर्वाद पर मैं इतनी हसी इतनी हसी ! क्या खूब ! क्या कहने है ! अब इनके आशीर्वाद से उसे अनुरूप पति मिलने वाला है। यानी अशोक वन के ही किसी सेवक के साथ उसका विवाह होने वाला है !

०

पिताजी को गुफा मे प्रवेश किए तीन महीने होने को आए थे। उनके दर्शन करने का दिन पास आ रहा था। मैं वहा जाने की जल्दी करने लगी। महाराज का कहना था कि अब इतनी लम्बी यात्रा मुझसे नही हो सकेगी। किन्तु मैं तो पिताजी को देखने के लिए बडी उतावली हो रही थी। बार बार मन मे आता था कही इस पुरश्चरण का उनके स्वास्थ्य पर कोई विपरीत परिणाम तो नही हुआ होगा ? एक बार उन्हे अपनी आखो से देखे बिना मुझे चैन मिलना असभव था !

मैं पिताजी के स्थान पर पहुच गई। उन्हे स्वस्थ पाकर मुझे बहुत हर्ष हुआ किन्तु इस प्रवास का मुझे इतना कष्ट हुआ कि वहा जाकर मैं बीमार हो गई। आशा के विपरीत महाराज से मुझे काफी अधिक समय दूर रहना पडा।

स्वच्छन्दता से छलागे भरते जाने वाले हिरन की तरह समय गुजर गया !

यथासमय मैं मा बनी। मेरे पुत्र हुआ। न केवल नगर मे बल्कि समूचे राज्य मे सर्वत्र आनन्द छा गया।

पुत्र के नामकरण का प्रश्न उपस्थित हुआ। महाराज ने प्रथम तो अपने पिता के नाम पर नामकरण करने का सुझाव दिया। फिर अपने परदादा का नाम सुझाया। किन्तु मुझे इस तरह किसी का उधार लिया नाम पसद नही था। मैंने अपनी पसद का नाम खोज लिया— यदु।

नामकरण समारोह के लिए शर्मिष्ठा राजमहल आई। उसका सारा रग-ढग बदल गया था। शरीर पर अपूर्व कान्ति छा गई थी। मुद्रा पर अनोखा तेज चढा था। मैंने सपने मे भी न सोचा था कि उसे यह दासता इतनी रास आ जाएगी। मेरा तो अनुमान था कि अशोक वन के वीरान मे घुट घुटकर आखिर हारकर वह मेरे चरणो मे आ गिरेगी और गिडगिडाकर प्रार्थना करेगी कि कृपा कर मुझे इस दासता से मुक्त करो ! किन्तु प्रत्यक्ष मे मैंने जो कुछ देखा वह एकदम विपरीत था। वह नितात सुखी सन्तुष्ट और प्रसन्न दिखाई दे रही थी।

उसकी मुद्रा से तो मुझे ऐसा ही लगा। किन्तु उसकी चलने फिरने की हरकत से मुझे कुछ और ही सन्देह हो गया ! मैंने अपनी उस बूढी दासी से उसपर थोडी

देर तक नज़र रखने के लिए कहा। आधी घड़ी जाते ही वह बूढ़ी दासी आई और मेरे कान में कुछ फुसफुसाई। मन में तर्क वितर्क की जबरदस्त उधेड़बुन होने लगी। एक राजकन्या होकर भी इसने व्यभिचार किया होगा? किसी मामूली सेवक के साथ?

जो भी हो! जाहिर था उसने व्यभिचार किया था! पाप भी भला कहीं छिप सकता है?

वह अब फिर से मेरे चंगुल में फँस गई थी। अगतिक होकर मेरे पाँव पर नाक रगड़ने के सिवा उसके लिए अब कोई चारा नहीं था। उसका अपराध था ही इतना भीषण!

अन्य दासियों को महल से बाहर भेजकर मैंने शर्मिष्ठा को भीतर बुलवा लिया। वह आई और सिर झुकाकर खड़ी रही। मुझे फिर भी चुप ही देखकर उसने पूछा "कहिए क्या आज्ञा है?"

"केवल ऊपर देखो!"

उसने नज़र उठाई।

"मेरा एक सवाल है! उसका सही-सही उत्तर देना। अपने माता पिता के चरणों की सौगंध खाकर उत्तर देना।'

वह मौन ही खड़ी रही।

काफी कठोर स्वर में मैंने पूछा, 'क्या तू गर्भवती है?'

उसके होंठ कुछ हिले। किन्तु मुँह से शब्द निकला नहीं। अंत में उसने गर्दन हिलाकर हाँ कहा।

'यह व्यभिचार'

'मैं व्यभिचारिणी नहीं हूँ एक बड़े ऋषि के आशीर्वाद से'

'ऋषि के आशीर्वाद से? कौन हैं ये ऋषि? किसने यह कृपा की है तुझ पर? क्या कच ने?'

वह फिर भी कुछ बोली नहीं। हँसी नहीं। डरी भी नहीं। बस पत्थर का बुत बनी केवल खड़ी रही!

हस्त स अपना मवस्व दे देता है, वही सच्चा प्रेम है।

वह नही सकती, मैं व्यभिचारिणी नही। एक ऋषि के आशीर्वाद स ये शब्द अचानक कम मुने सूझ पड! किन्तु उन शब्दो न मुझे काफी धीरज दिया। उन्होंने मेरी लाज रख ली। ये शब्द झूठ भी थे और सच भी!

मैंने सोचा था, चूकि सूय जस देवता या बडे बडे ऋषियो क आशीर्वाद से अविवाहिताओ के भी सतान होने की कई कथाए सरन सुनी हैं मेरा वह उत्तर सुनकर देवयानी को हाथ मलत रह जाना पडगा। किन्तु स्वभाव की भी कहीं दवा होती है? तुरन्त ही कडककर उसने कितन कटु शब्द कह दिए किसने यह कृपा की है तुमपर? क्या कच न?" यह वही देवयानी है जिसन कभी कच का हृदय स प्रेम किया था! किन्तु कितना आश्चय कि उसी कच पर इतना अमगल सन्देह करत यह जरा भी न अघाई न थोडी भी हिचकिचाई!

'किसन की यह कृपा तुमपर?' कितने सन्दिग्ध, किन्तु कितन कुशील कितन जहरीले थे य शब्द! कच की पवित्र मूर्ति पर इस तरह कीचड उछालत

शुभ्र कमला से जिस दवता का पूजन किया जाना चाहिए उसपर कहीं कोई तालाब का कीचड निकालकर पोतता है? किन्तु सौन्दय की रानी देवयानी न ठीक वही किया था!

मैंने तो बस 'एक ऋषि के आशीर्वाद से' इतना ही कहा था! देवयानी को मुझसे क्रूर मजाक ही करना था तो उस पागल यति का ही नाम ले लेती! फिर मुझे इतना दुख भी न हुआ होता।

बस भी उस दिन भरे दरबार म देवयानी न मेरी क्या कम बेइज्जती की थी? वह बावरा यति मेरी ओर देखता हुआ उससे पूछ बठा, 'ए तुम्हारी यह दासी मुझे दोगी?' वास्तव म यह पहचानकर कि वह सिरफिरा है देवयानी को चाहिए था कि चुप बठती। किन्तु मेरे जल पर नमक छिडकने के लिए उसने उससे ही पूछा 'इसका क्या कीजिएगा स्वामीजी? क्या इस आप अपनी पत्नी बनाएगे? वह तो अच्छा ही रहा कि वह यति सचमुच पागल था और महाराज का भागा हुआ भाई था वरना मेरी खर नही थी। उसके स्थान पर कोई लफगा वैरागी होता तो उसन देवयानी क प्रश्नपर तुरत हा भर दी होती और यह चुडल भी बे झिझक मुझे उसकी झोली म डाल देती! दरबार म देवयानी का वह बेहयाई से भरा प्रश्न सुनकर कुछ क्षण क लिए तो मेरा खून जस जम गया था! ठीक-से सास लत भी नही बन रहा था मुझसे!

किन्तु इसम शक नही कि यति वास्तव म पागल था। मुझे कभी पता नही चला कि उसक पागलपन की वजह क्या थी! किन्तु बार बार एक विचार मन को सताए जा रहा था कि आखिर घरबार छोडकर जगल म तपस्या करन के लिए गए मनुष्य की इस तरह दुदशा क्या होनी चाहिए? उसके साथ कच भी अशोक वन रहने क लिए आया था! दोनों जप-तप करने वाल योगी थ। किन्तु दोनो म आकाश पाताल का अतर था! कच कितना स्नेहशील कितना विवेकी और कितना सभ्रात

था। और वह यति—कभी कभी तो मेरी ओर वह इतनी आखें गडाकर देखता रहता—उसकी नजर मे अभिलाषा नही थी। किन्तु उससे भी भयकर कुछ था। उसकी उस नजर की वेषभूषा की, बर्ताव और बातचीत के ढग की इतना ही नही उसकी किसी भी बात की मैंने किसीसे शिकायत नहा की ताकि राजमाता का व्यय ही म अधिक दुख न पहुचे। किन्तु फिर भी होना था सो होकर ही रहा।

एक रात मैं गाढी नीद सो रही थी। किसीके वर्षी के स्पश स मैं एकदम चौक कर जाग गई। मरे गले पर किसीका हाथ था। हाथ केवल रखा हुआ नही था। कोई दोनो हाथो से मेरा गला दबा रहा था। मरा दम घुट रहा था मैं बहुत डर गई थी।

थरथर कापते हुए मैंने आख खोलकर देखा यति मेरे पास बठा था। मरा गला दबाते समय उसकी आख अजीब तज स चमक रही थी कोटर म बठे उल्लू की तरह। वह अपने से ही हस रहा था। कितनी डरावनी हसी थी उसकी। मैं जी जान से एकदम चीख उठी। वह तपाक से उठा दौडता हुआ खिडकी की तरफ गया और बाहर कूदकर भाग गया। भगवान जाने कहा चला गया।

तो मेरे गभ म पल रहा शिशु उस पगले का है ऐसा भी देवयानी कह देती तो भी शायद मैं उसकी बात को बरदाश्त कर लती। उसम अपमान था भी ता मुझ अकेली का था किन्तु उसने कच का नाम लकर जो अधम उदगार निकाले

क्या कल किया हुआ प्रेम मनुष्य आज भुला देता है? हा भुलाता ही होगा। इसीलिए तो देवयानी कच के बारे मे इतने अजीब और विपल उदगार निकाल सकी।

देवयानी ने भले ही कल किए गए प्रेम का आज भुला दिया होगा किन्तु शर्मिष्ठा ऐसी भुलक्कड नही है। कल किए गए प्रेम को वह आज किसी भी हालत म नही भुलाएगी बल्कि आने वाले कल भी—बिलकुल सष्टि के अन्त तक भी—उस प्रेम के साथ कभी प्रतारणा नहा करेगी।

कच को यदि उसके बारे मे देवयानी की य कुत्सित उदगार मालूम हो जाए तो वह क्या सोचेगा? नही। वह कुछ भी न बोलेगा। केवल हस देगा। वह देवयानी के स्वभाव को अच्छी तरह पहचानता है।

अशोक वन से राजमाता को साथ लकर जाते समय वह मुझस बिना मागन आया तो मैंने उसस पूछा कचदेव फिर आपसे भेंट कब हागी?

उसने हसकर कहा क्या मालूम? भाग्य बडा मनचला हाता है। शायद वह कल हा मुझे फिर यहा ले आएगा। शायद दस बीस वष मैं इस ओर आऊगा भी नही।

उसका यह अतिम वाक्य सुनकर मेरा मन बहुत उदास हो गया। अब दस बीस वष कच का दशन भी नही होगा। कोई कह द कि दस बीस वष सूय का दशन नही हागा तो कसा लगेगा?

कच अशोक वन म कितने थोडे दिन रहा। किन्तु उतनी अवधि म उसने मरे

मन को कितना धीरज बंधाया ! मुझे कितना सहारा दिया ! मानो शर्मिष्ठा की आत्मा का पुनर्जन्म ही उसने कर दिया !

इसीलिए मैंने पूछा 'इस बीस वर्ष आप कहां रहेंगे ?

'हिमालय में ! तपस्या करने ।'

'किस लिए तपस्या करने जा रहे हैं आप ?

किसी कारण की क्या आवश्यकता है ? मेरी तपस्या के फलस्वरूप देवयानी का स्वभाव बदल पाना संभव होता न तो मैं उस बात के लिए भी तपस्या एक दम कठोर तपस्या करने बैठ जाऊंगा !

देवयानी से मैंने कभी—स्वप्न में भी—ईर्ष्या नहीं की थी। वह हस्तिनापुर की महारानी बन गई तब भी नहीं ! किन्तु उसके बारे में कच के ये विचार जानकर मुझे लगा देवयानी कितनी भाग्यशालिनी है ! उसे इस दुनिया में किस बात की कमी हो सकती है, जिसके लिए कच जैसा तपस्वी अपनी आज तक की सारी तपस्या पर सहर्ष पानी फेरने के लिए तैयार हो ? ऐसे उत्कट और निरपेक्ष प्रेम के बराबर मूल्यवान इस संसार में दूसरा क्या हो सकता है ?

कच ने यह हंसते हंसते कहा। किन्तु किन्तु उसकी उस हंसी से ही मुझे उसके दिल की व्यथा भी मालूम हो गई। देवयानी के स्वभाव से—उसके उद्दण्ड आचरण से—वह दुखी था। फिर भी देवयानी के प्रति उसकी आत्मीयता रत्ती भर भी कम नहीं हुई थी।

प्रीति के इस मूक दुख से बढ़कर दूसरा दुख इस संसार में नहीं है। किन्तु इस मूक व्यथा की वेदना को कोई दूसरा कम करना चाहे भी तो कैसे ?

यह देखकर कि मैं कुछ भी बोल नहीं रही हूं कच ने कहा शुक्राचार्य ने फिर उग्र तपस्या आरम्भ की है। संजीवनी के समान ही कोई निश्चित विद्या अब वे प्राप्त करेंगे। तब फिर देव दानवों में युद्ध छिड़ जाएगा ! यह संसार देव दानव, दस्यु, मानव सबका है। किन्तु इस संसार में हमेशा इनमें से किन्हीं दो में कलह चलते रहते देखकर मुझे नींद नहीं आती। लगता है पीढ़ी दर पीढ़ी क्या यह सिलसिला इसी तरह चलता रहेगा ? क्या भगवान उमाशंकर की यही इच्छा है कि इस विश्व में युद्ध, कलह दुख संघर्ष का ही साम्राज्य रहे ? मेरे मन में तो प्रबल इच्छा है कि कठोर तपस्या कर उन्हें प्रसन्न कर लूं और उनके चरणों में एक ही जिद कर बैठूं कि भगवन मुझे कोई वरदान मत देना बस एक वह मंत्र दे देना जिसमें इस विश्व में शान्ति का साम्राज्य फैला सकूं ! इसीलिए मैंने तुमसे अभी कहा कि शायद दस बीस वर्ष हमारी भेंट नहीं होगी।'

०

उस दिन कच और राजमाता को लेकर रथ भृगु पर्वत की ओर चला गया। अशोक वन एकदम सूना-सूना सा लगने लगा ! मेरे मन में तो अब दिन रात यही भूत नाचने थे कि मैं एक अभागिन दासी हूं मानसिक यंत्रणा सहने के लिए ही

देवयानी ने जानबूझकर मुझे अशोक वन म रखा है यहा के एकान्त विजनवास म कुन्ते घुटते एक दिन मरा अन्त हो जाएगा देवयानी इस बात के लिए सतकता बरतगी कि एसा कोई भी सुख जिससे नारी जीवन खिल जाय मेरे जीवन म भूल से भी न थाक्न पाए अपने पूरे यौवन म ही जब मैं बूढी दीखने लगू तभी देवयानी को प्रतिशोध का पूरा सन्तोष मिलगा किन्तु कच ने मेरे मन के इन भूतो को कितने थोडे समय म और कितने थोडे शब्दो म ही बिल्कुल एकदम निकाल बाहर किया और दूर दूर भगा दिया था !

भरी सभा मे देवयानी न क्या ही अकडकर कच स कहा था कि शर्मिष्ठा मरी दासी है ! विष बुझे तीर के समान वे शब्द मेरे कलेजे म गहरे घुस गए थे ! किन्तु वे शब्द अभी हवा म विलीन हुए भी न थे कि कच ने मेरी ओर करुणाभरी स्नेह पूर्ण दृष्टि से देखा । उसकी उस नजर ने मानो मेरे घायल मन पर अमृतवर्षा की। उन शब्दो के कारण हो रही तीव्र जलन एकदम शात कर दी !

अशोक वन आते ही कितनी तत्परता मे वह मेरा कुशल क्षेम पूछने के लिए अतिथि शाला के बिल्कुल पीछे की ओर स्थित मेरे महल म आया। उसे देखते ही मैं उठ खडी हो गई । वह मुझसे बार बार बठ जाने का आग्रह करने लगा । अत म मैंने कहा *कचदेव आपके सामने बठी रहने के लिए अब शर्मिष्ठा राजकन्या थोडे ही है ?* वह तो अब दासी है !

मुझपर अपनी स्निग्ध दृष्टि गडाकर उसने हसकर कहा शर्मिष्ठे, क्या कस्तूरी मृग को कभी पता भी होता है कि उसके अतरग म सुगधित कस्तूरी है ? तुम्हारा हाल भी वैसा ही गया है । यह ठीक है कि तुम्हारे शरीर का आज दासी के काम करने पड रहे है। किन्तु तुम्हारी आत्मा किसी की भी दासी नही ! वह पूर्णरूपेण मुक्त है। इस ससार म ईश्वर का दशन वही कर पाता है जिसकी आत्मा मुक्त होती है। बडे बडे ज्ञानी ऋषि मुनियो को बरसो तपस्या करने पर भी जो मोक्ष नही मिलता

लाज से लाल होकर सिर झुकाकर मैंने कहा कचदेव मैं देवयानी की एक अप्रिय दासी हू। मुझ जसीकि समझ म आपकी आत्मा वात्मा की बातें कस आ सकती हैं ! '

पहले तुम आसन पर बठो तो सही ! बठने का सबध शरीर स है आत्मा से नही । अत उतना करने म तो तुम्हे कोई कठिनाई नही होनी चाहिए ! '

आपके सामने मैं नीचे बठ गई और किसीने जाकर देवयानी से चुगली खाइ तो मुझे उसकी और डाट खानी पडेगी । मैं दासी हू इसे

तुम दासी नही हो ! '

तो फिर मैं कौन हू ? कभी मैं राजकन्या थी ! किन्तु आज ? आज न तो मैं किसीकी कन्या हू न किसीकी पत्नी न किसीकी माता ! इस ससार म मैं कुछ भी नही हू !

एसा कौन कहता है ?

मैं।"

तुमने अभी अपने आपको नहीं पहिचाना। तुम बहन भी तो हो!"

'बहन? किसकी बहन?'

मेरी! कच की दो बहिनें हैं। एक देवयानी और दूसरी शर्मिष्ठा।

कितने मामूली शब्द थे वे! किन्तु उन्होंने मन में कितनी चेतना जगा दी! मैं कच की बहन हूं। इतना बड़ा विरक्त, त्यागी, तपस्वी और पवित्र भाई मुझे मिला है! तो क्या केवल इसलिए कि मेरे शरीर पर दासता आरोपित है मैं रोती कुढ़ती, घुटती मरती रहूं? नहीं—मैं कदापि कुन्ती नहीं बनूंगी!

कच आगे कहने लगा, तुम मेरी केवल बहन नहीं हो मेरा गुरु भी हो। मेरी मान्यता थी कि संजीवनी प्राप्त करते समय मैंने अपनी जाति के लिए बड़ा त्याग किया है। किन्तु तुमने मुझसे भी कहीं श्रेष्ठ कोटि का त्याग किया है। तुम्हारे इस शिष्य की तुमसे प्रार्थना है कि तुम अपनी दासता के दुःख का चिन्तन या घोटती न रहो! दुनिया की नजरों में शायद तुम दासी होगी किन्तु मेरी दृष्टि में तुम महारानी हो। दासी तो वास्तव में देवयानी है! वह ऐश्वर्य प्रतिष्ठा और अहंकार की दासी हो बैठी है! अपनी आत्मा का स्वार्थ वासना और भोगों का शिकार बनाने वाला हो इस संसार में हमेशा दासता में सड़ता रहता है! स्वार्थ पर, अपने सारे सुखों पर अंगारे रखकर तुम यहां आ गई हो। मनुष्य का नाता सीधे भगवान से जोड़ने वाला अत्यंत कठिन त्याग का मार्ग तुमने अपनाया है। तुम ही वास्तव में स्वामिनी हो दासी कदापि नहीं! शर्मिष्ठे मैं जानता हूं कि बड़ा भाई छोटी बहन का अभिवादन करने लगे तो वह उसे अच्छा नहीं लगेगा, किंतु उम्र में तुम मुझसे छोटी होती हुई भी तपस्या से मुझसे बहुत बहुत बड़ी हो। इसलिए

लगा कि बोलते बोलते वह मेरा अभिवादन करने के लिए अपने हाथ जोड़ने जा रहा है

तभी मैं कहां हूं और क्या कर रही हूं इसका कुछ भी होश न रखकर मैं लपक कर आगे बढ़ी और उसके दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिए। दूसरे ही क्षण मन में आया कि शायद ऐसा करना उसे छेड़छाड़ लगेगी, वह नाराज हो जाएगा और मेरे हाथों को झटकार देगा। आश्रम में रहते वह देवयानी के स्पर्श को कितनी दक्षता से टालता रहता था, इसकी याद आते ही मैं शरमाई असमंजस में पड़ गई। उसके हाथों से अपने हाथ छुड़ाने लगी मैं! शायद यह सब उसके ध्यान में आ गया था। मेरे हाथों को थामे रखकर हंसते हुए उसने कहा सभी स्पर्श एक से नहीं हुआ करते बहन! आज मेरी मां होती, और उसे लगता कि मैं हिमालय में न जाऊं तो क्या अपनी ममता का अधिकार जताने वह मुझे इसी तरह से नहीं थाम लेती?

क्षण भर बाद उसने मेरे हाथ छोड़ दिए और पुकारा दीदी!'

मैं उसकी ओर पागल की तरह मुंह बाये खड़ी देखती रही। उसने दुबारा मुझे दीदी कहकर पुकारा। कच मुझे दीदी कह रहा था। मैं कच की बहन हो गई थी तो अब दुःख करने का मेरे लिए क्या कारण था?

कच कह रहा था दीदी पत्नी बनने से पहले ही तुम मां बन गईं। समूचे दानव-कुल की मां बन गईं। वह आत्मशक्ति जिसके बल पर तुमने इतना बडा त्याग किया है तुम्हारे भीतर हमेशा बढती रहे यही मेरा आशीर्वाद है।

उसके एक एक शब्द को कोई मेरे मन पर अंकित करता जा रहा था।

जबतक कच अशोक वन में था उसके साधारण सरल शब्दों से निर्माण होने वाला सात्त्विक उन्माद मन पर छाया रहता था। किन्तु उसके चले जाते ही सारा उन्माद एकदम गायब हो गया। मन की अवस्था तो ऐसी हो गई जैसे चौथ का चांद डूब जाने के बाद उदास आकाश की हो जाती है। कच के आने से पहले अशोक वन के निष्क्रिय और नीरस जीवन क्रम से मैं ऊब गई थी। अब तो इसीकी चिन्ता रहती कि आने वाला हर पल आखिर कैसे बीतेगा।

राजमहल में मैं चित्र बनाया करती थी। अब फिर से उसी शौक में मन को रमाने का प्रयास करने लगी। पहले कुछ दिनों तक तो मैं पेड पौधों और विभिन्न वस्तुओं के चित्र बनाती रही किन्तु कुछ दिनों बाद प्रकृति की विविधता से मन को प्रेरणा मिलनी बंद सी हो गई। आखिर बाहर के सौंदर्य के प्रतिबिम्ब मन के दर्पण में ही तो दिखाई देते हैं न? मेरे मन का दर्पण तो उसी दिन चूर-चूर हो गया जिस दिन मैं दासी बनी! फिर कितने ही दिनों तक उस टूटे हुए दर्पण के टुकडों को सजोकर उसमें दिखाई देने वाले टेढे मेढे विम्ब प्रतिबिम्बों को ही मैं देखती रही थी। किन्तु अब उन टुकडों को ठीक तरह से जोडना भी असम्भव सा हो चला था! मेरा दिल एक श्मशान-सा हो गया था! इस श्मशान की लताएं और फूल भी अधजले और धुएं से काले होकर भूतों जैसे दिखाई दे रहे थे!

फुरसत का समय मुझे शेर की तरह खाने को दौडता। फिर जिन बातों और स्मृतियों को मैंने जानकर मन के कबाडखाने में फेंक रखा था वे वहां से चुपके से बाहर निकलकर मेरे मानस मंदिर में पलंग पर आकर बैठ जातीं। युद्ध के लिए रवाना होते समय मैंने महाराज को कुमकुम तिलक किया था उस समय उनका वह छूटता सा स्पर्श! कच के हाथों का भी स्पर्श मुझे हुआ था! किन्तु इन दोनों स्पर्शों में कितना अन्तर था! कच के स्पर्श का स्मरण होते ही अरण्य में स्थित किसी ऋषि के सुंदर शांत और पवित्र आश्रम की याद हो आती। किन्तु महाराज के स्पर्श की स्मृति से उद्यान का कोई उन्मादक लता कुंज आंखों के सामने आ जाता।

महाराज का वह स्पर्श मन के कबाडखाने से अकेला बाहर नहीं आता! फिर तो महाराज और देवयानी के मधु मिलन की वह रात भी याद आती। महल के बाहर ताम्बूल का थाल लिए खडी शर्मिष्ठा दिखाई देती। झगडा करके महल से जानेवाली देवयानी के स्थान पर मैं होती तो ऐसी शर्मनाक घटना कभी न हुई होती। मैं तो महाराज को क्षण भर के लिए भी दुःख न पहुंचने देती। मुझे मदिरा पसंद न भी होती तब भी उनके लिए उसकी महक मैं बरदाश्त कर लेती

नहीं वह रात मुझे हर रात को याद आने लगी। मेरा मन बहुत बेचैन हो उठता। फिर दोपहर रात बीत जाने पर भी मुझे नींद न आती। सागर में मिलन

के लिए उत्सुक मन की आतुरता मेरे रोम रोम में थिरकने लगती। मन हुआ से बातें करने लगता। शरीर का प्रत्येक कण प्यासा होकर 'प्रेम! प्रेम!' कहकर आक्रोश करने लगता!

इसी तरह एक रात जब नींद आ ही नहीं रही थी मैं चित्र बनाने बैठी। पुरूरवा और उर्वशी का वह नाटक याद आया। सोचा कि उसी प्रसंग का चित्र बनाया जाए। पुरूरवा की मैं कल्पना करने लगी। क्षण भर में मेरी आंखों के सामने महाराज की मूर्ति खड़ी हो गई। वाह! पुरूरवा तो बनते ही उन्हें मिल गया - सोचकर मैं मन ही मन हरषाई। फिर उर्वशी कौन हो, इस दूसरा विचार करने लगी। एकदम देवयानी की मूर्ति आंखों के सामने आ गई। अप्सरा का चित्र बनाने के लिए अप्सरा के समान लावण्यवती मित्र का आनन्द मुझे हुआ। किन्तु दूसरे ही क्षण आभास हुआ कि देवयानी भी जैसे महाराज का उस नाटक की उर्वशी के समान ही काम कर जाता रहा हो... राजा एक बात ध्यान में रखो स्त्रियों के साथ निरंतर स्नेह बना रहना असम्भव है क्योंकि उनका दिल भेड़िये के दिल के समान होता है!'

कैसा चित्र बनाने की मेरी हिम्मत नहीं हो रही थी। किन्तु पुरूरवा के रूप में खड़ी महाराज की मूर्ति किसी भी तरह आंखों से हटती नहीं थी। अंत में मैंने अकेले महाराज का ही चित्र बनाने का निश्चय किया।

उस चित्र को बनाने में कुछ दिन तो बड़े आनन्द से बीते। आखिर चित्र पूरा हो गया। उसे दीवार में सटाकर रखकर मैंने दूर खड़ी होकर उसको ठीक तरह से देखा। चित्रकला में मैं कोई निपुण तो थी नहीं। फिर भी चित्र में बनी महाराज की आकृति कितनी सजीव और साकार लगती थी!

चित्र पूरा होने की वह पहली रात थी। मैंने उसे दीवार से सटाकर एक कोने में रख दिया था। नींद नहीं आ रही थी इसलिए मैं उसकी ओर ऐसे ही एकटक देखने लगी। थोड़ी देर बाद मुझे आभास हुआ कि महाराज मुझसे कुछ बात रहे हैं! वे मुझसे मजाक कर रहे थे— ईश्वर ने तुम्हें इतने सुंदर बाल दिए हैं किन्तु तुम तो किसी वियोगिनी की तरह एक ही वेणी बांधे रहती हो! यह भई हम बिल्कुल पसंद नहीं। सिंह के लिए जैसे अयाल वैसे स्त्री के लिए केश भूषा!'

यह भी कोई मजाक की बात है! मैं शरमा गई। नीचे देखने लगी। काफी देर बाद उस मजाक का वैसा ही कोई उत्तर देने के लिए मैंने गरदन उठाई और मुंह खोला। किन्तु

किन्तु मैं उत्तर देती किसे? महाराज उस महल में थे ही कहां? और वे भी भला इस अशोक वन में क्यों आने लगे? मेरे सामने मेरे द्वारा बनाया गया महाराजा का वह चित्र ही खड़ा था।

○

यौवन में मेरे नख-शिख और काले काले बालों पर मां को कितना नाज था।

काम कितने ही क्यों न हों उन्हें छोड़कर वह स्वयं मेरी चोटी बांध दिया करती थी। हर रोज़ नये ढंग से! दासियों से शर्मा की चोटी बंधवाना उसे कतई पसंद नहीं था। बचपन में किसी मंगल दिन सिर से नहाकर मैं बाल सुखाने खड़ी रहती। घुटनों तक बल खाते अपने बालों को देखकर मुझे बड़ा मजा आता। मन में विचार आता कि मोर अपने पंख फैलाकर नाचता है उसकी तरह मैं भी अपने इन बालों को फुला-फैलाकर नाचूं तो कितना मजा आएगा? किन्तु देवयानी नृत्य में निपुण थी। लाख कोशिशें करने पर भी मुझे नृत्य करना ठीक से आता ही नहीं था। और बालों को कैसे फुलाया-फैलाया जाए, इसका जादू तो कभी किसीने मुझे सिखाया ही नहीं।

चोटी बांधते समय मां हमेशा कहा करती, "शर्मा, कितनी भाग्यशालिनी हो तुम! घुटनों तक पहुंचने वाले बाल तो लाखों में एकाध लड़की के ही नसीब होते हैं! कहते हैं कि ऐसी लड़की को अचानक भाग्य-लाभ होता है!"

कभी पागलपन की धारणा थी यह मां की? आखिर मेरा भाग्य जागा। किन्तु जिस संदूक से हीरे-मोती निकलने थे, उसीमें से कंकड़-पत्थर निकलकर वह बाहर आया! अशोक वन में देवयानी की अप्रिय दासी बनकर मैं रोती-कुढ़ती सड़ रही थी! केश-भूषा करने को मन नहीं करता, इसीलिए किसी बैरागिन जैसी रहती थी मैं!

साज-सिंगारकर, बन-ठनकर रहने की इच्छा किस युवती को नहीं होती? किन्तु स्त्री का सारा साज-सिंगार क्या केवल उसके लिए ही होता है?

रात को करवट बदलते समय सहज ही मेरा हाथ अपनी वेणी की ओर जाता। फिर किशोर अवस्था में पढ़ा वह मधुर काव्य याद आ जाता।

उस काव्य की नायिका भी मेरे जैसी रात में जागती रहती है। नायक गहरी नींद सो गया होता है। सामने वाली खिड़की से चांद दिखाई देने लगता है। नायिका अपने सोए हुए पति की ओर देखती है। उसका मुख-चंद्रमा उसे आकाश के उस चंद्रमा से अधिक सुन्दर लगता है। वह चाहती है कि उस बाहर वाले चंद्रमा की अपने प्रीतम के मुख-चंद्रमा को नजर न लगे। इसलिए प्रीतम के मुख को वह ढक लेना चाहती है। किन्तु उसे मालूम है कि पति को मुख पर अत्यंत झीना और महीनतम वस्त्र भी ढकना पसंद नहीं। इस प्रकार कोई वस्त्र उसके मुंह पर डालते ही उसकी नींद टूट जाती है। इसीलिए वह अपने अत्यंत नाजुक आंचल से भी उसका मुख ढकना नहीं चाहती। तो अब क्या किया जाए? आकाश के ईर्ष्यालु चंद्रमा की नजर से कैसे अपने प्रीतम की रक्षा की जाए? अचानक उसे एक कल्पना सूझती है। उस रात उसने बहुत ही सुंदर केश-भूषा की होती है। उसकी सराहना करने के बाद ही उसका पति अब सो गया होता है। अब उस साज-सिंगार का उसके लिए कोई उपयोग नहीं है। वह फुर्ती के साथ केश-भूषा बिखरा देती है और बालों को खुला छोड़ देती है। उसके लम्बे घने बाल खुलकर मुक्त हो जाते हैं। उन खुले बालों में झुककर वह अपने पति की ओर गौर से देखने

लगती है। स्वाभाविक ढग से उसके बाद चद्रमा और पति के मुख के बीच आ जाते हैं। पति के मुख को वह दूर से ही ढक देते हैं। उस आकाश के चद्रमा की नजर लगने की सभावना समाप्त हो जाती है।

इस काव्य को पढ लेने के बाद सोलह सत्रह वर्ष की शर्मिष्ठा कई दिना तक मन-ही मन कह रही थी मेरे बाल भी उसी तरह लम्बे और घने हैं। कल मेरा विवाह हो जाने के बाद चद्रमा यदि मेरे प्रीतम के मुख चद्रमा से ईर्ष्या करने लगा तो मैं भी उसकी रक्षा इसी तरह करूगी।'

मन-ही मन ऐसा कहते समय उसे कितनी गुदगुदी होती थी। किन्तु अब— अब उस काव्य की याद उसके कलेजे को नोच-नोचकर खाए जा रही थी।

कहा है उसका प्रीतम? कहा है उसका पति? कहा है उसका यह मुख चद्रमा? अब क्या रखा है सुन्दर वेश भूषा करने मे। किसके लिए करना है अब साज सिंगार? देवघर से देवता की मूर्ति ही न हो तो जगलो मे घूम घूमकर फूल किसकी पूजा के लिए तोडकर लाए जाए?

कच की सारी बातो को मैं बार बार याद करके देखती तो घडी भर के लिए मन को बडी शाति मिलती। दिन जसे तसे बीत जाता किन्तु रात!

रात की भीषण नीरवता मे महाराज का वह चित्र मेरा साथ देने लगता। मैं उसके सामने बैठ जाती। पुष्पमाला चढाकर उसकी पूजा किया करती। फिर ध्यान लगाकर बैठती। आखें मूदकर महाराज के और मेरे बीच होते सभाषण को सुनती बैठी रहती। आखें खोलती तो महल की दीवार कहती, 'बडी चालाक हो शर्मिष्ठा! अपने प्रीतम से घण्टो बातें करती रहती हो! लेकिन उस बातचीत का एक शब्द भी हमें सुनाई नहीं देता!"

एक दिन की बात है। मैंने चित्र पर फूलमाला चढा दी। ध्यान धारणा के लिए आखें मूद ली। किन्तु महाराज आज मुझसे बोल ही नहीं रहे थे। सोचा शायद मुझसे वे नाराज हो गए हैं। मैंने आख खोली और उनके होठो पर अपने होठ रखते हुए पूछा अब तो कहो रूठोगे न?' पाच दस क्षण बाद मेरे ध्यान मे आया कि वे महाराज नहीं महाराज का केवल चित्र था।

उस चुबन पर मुझे अपने-आपसे शर्म लगने लगी। कच को यदि यह बात मालूम हो जाती है तो वह क्या कहेगा? उसकी बहन उसकी प्यारी दीदी शर्मिष्ठा अपने मन को इतना भी काबू मे नहीं रख सकती?

बहुत देर तक मैं तडपती पडी रही। अधेरे मे कहीं प्रकाश की किरण खोजती रही। मन के दरवाजे और खिडकिया बन्द करके रखना बहुत मुश्किल जरूर होता है किन्तु असम्भव नहीं होता। आज तक प्रयत्नपूर्वक मैं वही तो करती आई थी। किन्तु किसी झरोखे में खपरैल की छत के किन्हीं कवलुओं के बीच से और बन्द किए दरवाजों की किसी सध से चुपके से भीतर आने वाली चान्दनी की किरण को कैसे रोका जा सकता है? मेरे द्वारा उस चित्र का लिया गया चुबन चादनी की ऐसी ही किरण था।

साचन मोचत मैं अनुभव करन लगी कि कच क कदमो पर कदम रखकर उसकी राह पर चलना कितना मुश्किल है। वह पवित्र है स्नेहशील है प्रामाणिक भी है। किन्तु वह पुरुष है! उसकी पवित्रता उसका स्नेह उसकी प्रामाणिकता शर्मिष्ठा के लिए पूजनीय है। किन्तु

किन्तु शर्मिष्ठा एक स्त्री है। स्त्री के शरीर और पुरुष के शरीर म स्त्री और पुरुष के मन म स्त्री और पुरुष के जीवन म कितना अन्तर होता है! पुरुष अमूत के पीछे सहज दौडता है। इसीलिए उसे कीर्ति, आत्मा, पराक्रम, परमेश्वर आदि बातो म तुरन्त आकर्षण लगने लगता है। किन्तु स्त्री इन बातो पर आसानी से मोहित नही होती। उसे प्रीति पति सन्तान सेवा घर गृहस्थी आदि मूत बातो का अधिक आकर्षण होता है। वह सयम बरतती है त्याग भी करती है किन्तु वह सब मूत बातो क लिए! उसे अमूत क प्रति उतना लगाव नही होता जितना पुरुष को। अपना सवस्व देकर पूजा क लिए अपने आसुओ का अभिषेक करने क लिए स्त्री को एक मूर्ति की आवश्यकता हुआ करती है। पुरुष स्वभावत आकाश का पुजारी है! स्त्री को धरती की पूजा अधिक प्यारी है!

बडी देर तक यही विचार चक्र मन मे घूमता रहा! मैं नही जानती उसके घुमाव की कोई दिशा थी या वह यू ही स्वच्छन्दता से दिशाहीन घूम रहा था! लेकिन यह सच है कि इन विचारो न मेरे मन को कुछ शान्ति अवश्य दी।

दिन निकलत थ ढलत थ। रात आती थी जाती थी। चादनी रातें पूनम मेरे लिए सब बराबर और नीरस था! नहा जानती थी मेरी इस ऊबी उकताई जिन्दगी का अन्त आखिर क्या होने जा रहा है! कभी कभी मन म ख्याल आता कि कही देवयानी मेरे साथ वही खिलवाड तो नही कर रही है जो बिल्ली मारने से पहले एक चूहे के साथ करती है? क्या वह मन ही मन यही चाहती होगी कि मैं जीवन स ऊबकर आत्म हत्या कर लू?

इस विचारमात्र स मेरा रोम रोम सिहर उठता। लगता जाग चलाकर कभी आत्म हत्या ही करना है तो क्यो न आज ही कर ल? यमुना मैया अच्छी खासी नजदीक ही तो है! सहज यू ही टहलते टहलते उसके किनारे चली जाऊ और

एक चादनी रात म इसी कान कनूने विचार म डूबी चुपचाप बैठी थी। बाहर स रथ के पहियो की और बाद म रथ आकर रुकने की अस्पष्ट सी आहट सुनाई दी। इतनी रात बीते मेरा जसी दासी क यहा रथ म बैठकर कौन आ सकता है? मैं तो पूरी तरह स जानती थी कि शर्मिष्ठा मर गई या जिन्दा है इसकी पूछताछ करने के लिए भी देवयानी इस ओर फटकेगी नही। होगा कोई अतिथि! या कोई ऋषि या मुनि! भेज दिया होगा देवयानी ने ही उसे इधर। मुझे उससे क्या लेना देना है? कोई आया होगा तो सेवक उसका सारा प्रबध अतिथि शाला म कर देंगे।

ऐसा सोच ही रही थी कि एक सेवक किसी ऋषि को लेकर मेरे महल म

आया। मेरे इस पिछवाड़े व । मह्न मे क्च आकर मुझसे बातें करते बैठा रहता था। किन्तु उसकी जात ही निराली थी ! इस पराए अपरिचित ऋषि को इस तरह मेरे महल म ले आना सेवक के लिए उचित नहीं था।

मैंने डपटकर सेवक से कहा, 'तेरा दिमाग खराब तो नहीं हो गया ? यह अतिथि शाला तो नहीं है ! फिर इन ऋषि महाराज को यहां क्यों ले आया तू ?

आप ही के पास इन्हें ले जाने के लिए कहा था मुझे उसने कहा।

किसने कहा था ?'

'महारानी जी ने !

'महारानी जी ने ? कहां हैं वे ?

वे तो रथ में बैठकर अभी-अभी चली गई है। चार घडी बाद वे इन ऋषि महाराज को राजमहल ले जाने के लिए फिर आने वाली हैं। आपको भी इनका दर्शन कराने के लिए ही

मैंने ऋषि महाराज की ओर देखा। लगा कि शायद उन्हें पहले भी कहीं देखा है, फिर मुझे अपने पर ही हँसी आ गई। भला मैं इन्हें पहले कहां देख सकती थी ? किन्तु यह सच है कि वैसा आभास मुझे हुआ अवश्य !

ऋषिवर्य का शरीर बड़ा ही रोबदार था किसी राजा के जैसा ! गले में पड़ी रुद्राक्ष की मालाएं रत्नमालाओं की तरह उनके शरीर पर शोभा देती थीं। किन्तु फिर भी महाशय बड़े ही सहम-सहमे से और लजीले लग रहे थे। वे मुझे दर्शन देने आए थे। किन्तु मेरी समझ में नहीं आ रहा था कैसे उनके दर्शन किए जाएं ? मुझसे आखें चार होते ही वे नजर फेर लेते थे। मेरे मन में सन्देह खड़ा हो गया कि कहीं देवयानी ने मेरा भद्दा मज़ाक उड़ाने के लिए उस यति के समान ही किसी नारीद्वेषी तपस्वी को तो मेरे पास नहीं भिजवा दिया है ? मैंने मन ही मन तय कर लिया कि इस बाबाजी के साथ बहुत ही सावधानी से पेश आऊंगी।

मैंने उन्हें बैठने के लिए महल के बीचोंबीच आसन प्रदान किया। किन्तु वे उस आसन पर बैठने को तैयार नहीं थे। भराए स्वर में बोले हम हैं जोगी ! हमेशा गुफाओं में रहने वाले ! मैं वहां उस कोने में बैठूंगा !

महल जी मैं छप्पर पर बैठूंगा वह देते तो भी मैं क्या कर सकती थी ! उससे तो कोने में बैठना काफी अच्छा है ऐसा मैंने सोचा और आसन उठाकर उस कोने में रख दिया। महाशय तुरन्त उसपर जम गए। उनके बैठते ही मुझे काफी अटपटा सा लगने लगा। उसी कोने में महाराज का वह चित्र रखा था। अभी अभी मैंने उस पर फूलमाला चढ़ाई थी ! बाबाजी ने उसे देखा और जाकर देवयानी से कुछ उल्टा सीधा कह दिया तो ?

हे भगवान ! वे तो उसी चित्र को देख रहे हैं एकदम घूरकर ! मैं पसीने से तर बतर हो गई। किन्तु उन्होंने चित्र के बारे में कुछ भी नहीं कहा ! कुछ देर ध्यानस्थ बैठकर वे बोलने लगे। उनकी आवाज कितनी भर्रायी और बड़ी अजीब सी थी ! किन्तु मुद्रा अब पहले से अधिक प्रसन्न दिखाई देने लगी थी।

मैंने प्रणाम किया। तब उन्होंने कहा "आखिर क्या चाहती हो?"

"कुछ भी तो नहीं।"

"तुम झूठ बोल रही हो।"

मैं चुप रही।

उन्होंने हँसकर कहा "तुझे किसीसे प्यार हो गया है। वह व्यक्ति तेरे बिल्कुल पास है। किन्तु तुझे निरंतर लगता है कि वह तुमसे दूर है तेरे लिए दुर्लभ है।"

हाँ ना कहने की हिम्मत ही नहीं हुई मेरी। किन्तु बार बार मन में आने लगा कि इन्हें मेरे मन की बात कैसे मालूम हो गई? क्या वाकई ये कोई त्रिकालज्ञ ऋषि हैं?

"तो बताओ जिससे तुझे प्यार हो गया है उसके लिए तू क्या कर सकती है?"

एकदम मेरे मुँह से निकल गया "मैं अपने प्राण तक दे सकती हूँ।" फिर आजाने अपनी जीभ चबा गई। किन्तु तीर हाथ से छूट जाने के बाद पछताने से क्या लाभ था?

ऋषि महाराज केवल हँस दिए। फिर थोड़ी देर ध्यानस्थ होकर बैठे। मैं पागल की तरह उनकी ओर देखती खड़ी रही।

थोड़ी देर बाद आँखें खोलकर उन्होंने कहा "लगता है अब भी तुझे मेरा विश्वास नहीं हो रहा है। अच्छा अपने महल का द्वार बंद कर लो फिर मैं तुझे दिखाता हूँ मेरे मंत्र में कितना सामर्थ्य है।"

महल का द्वार बंद कर लूँ? और उस यति के समान यह भी कहीं मेरा गला घोटने लग गया तो?

मुझे असमंजस में पड़ी देखकर ऋषि महाराज स्वयं उठे। यह सोचकर कि शायद वे गुस्सा होकर चले जा रहे हैं मैं डर गई। किन्तु वे बाहर नहीं गए। पास आकर मेरे माथे पर हाथ रखकर बोले "जा द्वार बंद कर ले। तेरे जीवन का सुनहरा क्षण अब आ गया है। जा"

उनके उस स्पर्श में कोई बात थी जो धीरज बंधाती थी आश्वस्त कर रही थी शांति दे रही थी।

द्वार बंदकर मैं लौट आई।

कोने में रखे महाराज के चित्र की ओर उंगली दिखाते हुए उन्होंने पूछा "क्या इस ययाति से तुम्हें प्यार हो गया है?"

मैं फिर सिर लटकाए चुप रही। उन्होंने फिर कहा "अब भी तुम्हें मुझपर विश्वास नहीं हो रहा है? अंतर्ज्ञान से हम तीनों लोकों की सारी बातें मालूम हो जाती हैं। ठहरो अभी प्रत्यक्ष में तुम्हें यकीन दिलाने वाली बात बताता हूँ। क्या इस महल से किसी सुरंग में जाने का रास्ता है?"

"नहीं।"

व हमे। फिर पलग के पास वाली दीवार के पास गए। वहा एक सूक्ष्म कल थी। उन्होने उसे दबाया। खट से दीवार के बीचोबीच का कोई दो एक गज ऊचा भाग अलग हो गया। साफ दिखाई दे रहा था कि वह सुरग म जान का माग था। किन्तु अशोक वन मे रहने वाले एक व्यक्ति को भी वह मालूम नही था। फिर इन ऋषि महाराज को इसका पता कैसे चला ?

उन्होने फिर वह कल दबा दी और दीवार पट से पूववत हो गई।

ऋषि महाराज न मुझस पूछा तू कहा सोती है ?'

'यही।"

अकेली ?'

कभी-कभी अकेली। कभी कोई दासी मेरा साथ देन के लिए सोती है यहा।'

आज से एक नियम बना लो। यहा अकेली ही सोना—महल का दरवाजा बद करके। मुझे मालूम हो गया है कि तुझे ययाति से प्यार हो गया है। मैं प्रयत्न करूगा कि तुम्हारा प्रेम सफल हो जाए। उसके लिए आवश्यकता हुई तो अपनी सारी तपस्या की बाजी भी लगा दूगा। सच्चे प्रेम को ऋषि मुनियो का हमेशा आशीर्वाद ही प्राप्त होता है। ध्यान म रखो किसी न किसी दिन ययाति स्वय तेरे पास आएगा। इसी सुरग स वह आएगा। वह तुम्हे आवाज देगा। तेरे माता पिता तुम्हे किस नाम स पुकारते थ "

'शमा

हा वह भी शमा कहकर ही तुम्हे आवाज देगा। उसकी पुकार सुनकर डर मत जाना घबराना भी नहीं। इस कल को दबाकर यह द्वार खोल देना। सावधान रहकर ऐसा प्रबध करो कि महल के बाहर हमेशा तुम्हे जिनपर अटूट विश्वास है वही दासिया सोए। तुम्हारे प्रेम का माग काटो भरा है। किन्तु मत भूलना कि उन काटो के नीचे खुशबूदार फूल है।'

समझ म नहीं आ रहा था मैं क्या सुन रही हू। कहा देवयानी ने ही किसी अभिनेता को ऋषि के वेश म यहा मेरी परीक्षा लेने के लिए तो नही भेजा है ? इस शका के साथ ही भय की एक विलक्षण सिहरन मेरे सिर से पैरो तक दौड गई।

नहीं। इस महल म भी कोई सुरग है इसका किसी अभिनेता को भला क्या पता हो सकता है ?

मैं उस ऋषि को ओर एकटक देखन लगी। उसने तुरत ही दूसरी ओर देखना आरभ किया। महल का द्वार खोलने के लिए वह जाने लगा। उसकी चाल जानी पहिचानी लगी। तुरत याद आया पुरूरवा और उवशी पर खेला गया वह नाटक। उस नाटक मे पुरूरवा की भूमिका करने वाला अभिनेता भी बडा रोबदार था। कही उसीको तो देवयानी ने मेरा मजाक उडाकर मुझे जाल म फसाने के लिए नही भेजा ?

मुझे लगने लगा कि उस कोने म रखे महाराज के चित्र ने आज मुझसे पूरा

वर भजा लिया है । इसीलिए उन ऋषि महाराज से यह कहने के लिए कि मैंने आपको धोखा दिया है आपको योंही कह दिया कि ययाति महाराज से मुझे प्रेम हो गया है ! वह सब झूठ है ! मैं आगे भी बढ़ी ।

किन्तु तभी उन्होंने महल का दरवाजा खोल दिया । मेरी बात मन मे ही रह गई । देखते ही देखते अशोक वन की सभी दास दासियां ऋषिवर्य की चरणधूलि माथे से लगाने के लिए मेरे महल में जमा हो गईं । मुनि महाराज प्रत्येक को मुंह भरकर आशीर्वाद देते गए ! तभी देवयानी का रथ बाहर आकर खड़ा हो गया । वह रथ से उतरी नहीं ! किन्तु मुझे उसकी अगवानी के लिए बाहर जाना जरूरी था । उसकी दासी जो थी मैं !

ठीक बचपन की भांति मुझे शर्मा जीजी' कहकर सम्बोधित करते हुए देवयानी ने मुझसे पूछा कहो शर्मा जीजी कैसे लगे हमारे ऋषि महाराज ?

ओफ कितने दिनों नहीं कितने वर्षों बाद देवयानी ने मुझे शर्मा जीजी कहा था ! कृतज्ञता से मैंने कहा बड़े अच्छे हैं । महारानी जी अनुमति दें तो मैं जीवन भर इनकी सेवा करूंगी ! '

देवयानी केवल हंस दी । उसकी हंसी में ही सारथी द्वारा घोड़े को मारे गए चाबुक की आवाज भी मिल गई ।

वह सारी रात—वही नहीं उसके बाद की प्रत्येक रात मैंने उत्कण्ठा भय कुतूहल चिन्ता के मिश्रित साथ में काटी । कभी लगता उस सुरंग से देवयानी ही आएगी ! आवाज की नकल करते हुए वही शर्मा शर्मा कहकर पुकारेगी । कल दरवाजे मैंने द्वार खोला कि उपहास की हंसी हंसकर अनाप शनाप बककर मेरा जीना हराम कर देगी ।

दिन बीतते जाते । मुझे लगता कि वह ऋषि उनका वह आशीर्वाद सारा एक स्वप्न था । स्वप्न में क्या जो जी चाहे वही दीखता है ।

किन्तु फिर भी मैं नियमपूर्वक रात में महल का द्वार बंद कर लेती । महल के बाहर घर से अपने साथ लाई दासी भरोसे की दासियों को ही सुलाती । महल के अन्दर अकेली सोती और आधी रात तक जागती रहकर उस दीवार से किसी के पुकारने की आवाज की आहट लेते रहती । इस नियम को मन कभी टूटने नहीं दिया । उम्मीद पर दुनिया कायम है । उम्मीद कितनी भी निराधार क्यों न हो ! मनुष्य सपनों पर जाता है । सपने कितने भी असंभव क्यों न हों !

जब मालूम हुआ कि देवयानी दो चार दिन में ही अपने पिता का दर्शन करने जाने वाली है मैं डर गई । कहीं दासी के नाते मुझे भी अपने साथ चलने को उसने कह दिया तो ? मुझे भी बहुत इच्छा हो रही थी कि मां और पिताजी से एक बार मिल आऊं । किन्तु मैं देवयानी के साथ चली गई और इधर उस साधु महात्मा के आशीर्वाद के अनुसार महाराज आ गए तो ?

किन्तु देवयानी मुझे अपने साथ नहीं ले गई । वह प्रवास के लिए निकली वह दिन मुझसे काटे नहीं कटा । बार बार मां की और पिताजी की याद सताती रही । मैं

बहुत बेचन रही। किन्तु रात होते ही वह बेचनी समाप्त हो गई। उसका स्थान उत्कण्ठा ने ले लिया। महल का दरवाजा भीतर से बद कर कोने में रखे महाराज के चित्र की ओर देखती हुई मैं पलग पर लेट गई। आख कब लपक गई पता ही न चला! कुछ अधूरी सी जाग गई शमा शमा की पुकार सुनकर! क्षण भर लगा कि शायद स्वप्न में ही मैं वह पुकार सुन रही हू। मैंने तुरत आख खोली। पलग के सामने वाली दीवार में से ही वह पुकार आ रही थी। भर पाव कापने लगे। जसे तैसे मैं दीवार के पास गई और उस कल को दबा दिया। बीच का हिस्सा एकदम दूर हो गया! सुरग की सीढ़ियों पर महाराज खड़े थे। मुझे अपनी आखो पर विश्वास नही हो रहा था। मेरे आनद की सीमा नही रही थी! लगा जैसे मुझे मूर्च्छा सी आ रही है। यह देखते ही कि मैं गिर रही हू महाराज आगे बढ़े और उन्होने मुझे अपनी बाहो में भर लिया।

पल की भी देर किए बिना नदी सागर में जा मिली!

०

मैंने आख खोलकर देखा।

कहा थी मैं? इन्द्रनाथ के नदनवन में? मन्दाकिनी में बहती आई हर सिंगार की सेज पर? मलयगिरि से चलने वाली शीतल सुगधित पवन के झकोरो पर? या विश्व के अनात सौन्दर्य की खोज में निकले किसी महाकवि की नौका में?

नहीं! कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था! महाराज का दृढ़ आलिगन भी महसूस नहीं हो रहा था!

काफी देर बाद मेरे ध्यान में आया कि नटखट चाद महल की खिड़की से झाककर मेरी ओर देख रहा है और मन ही मन मुस्करा रहा है। मैं शरमा गई। महाराज ने मेरी चिबुक उठाकर कहा "विवाह के समय वधू यदि पुरोहित से ही शरमाने लगी तो काम कैसे चलेगा?" मैंने कहा "चद्रमा को लेकर बड़े बड़े कवियो ने सुदर कल्पनाए की है। किन्तु अब तक किसीने उसे पुरोहित नही बनाया था!" महाराज ने कहा "युग-युग में हमारे जैसे गाधर्व विवाह इसीको साक्षी रखकर सम्पन्न होते रहे है! प्रेमियो का सच्चा पुरोहित तो यही है!"

महाराज के कधे पर सिर रखकर मैं उस चाद की ओर एकटक देखने लगी। उसकी चादनी मेरे रोम राम में छलने लगी। नहीं! वह चादनी नहीं थी कोई धरती का दिखाई देने वाला सपना था—प्रीति के सपनो की वह सुगध थी!

उस सुगंध में देखते ही देखते मैं घुल मिल गई! अब शर्मिष्ठा राजकन्या नहीं थी! दासी भी न थी! वह महाराज वृषपर्वा की कन्या भी नहीं थी! वह तपस्वी कच की बहन नहीं थी। वह थी केवल एक प्रणयिनी!

उस रात के बाद की अनेक रातें उन अनेक रातो की अनगिनत घड़िया और उन घड़ियो के असख्य पल उन पलो में से प्रत्येक पल मानो सुख के फव्वारे बन गए!

वह सुख —वह आनंद—नहीं ! कोई कितना भी वर्णन करे तब भी उस ब्रह्मानन्द का सही सही वर्णन कम किया जा सकता है ?

सीपियों में पानी भरकर क्या कोई बता सकता है समुद्र क्या है ? फूलों का चित्र बनाकर क्या उन्हें कोई सुगंध दे सकता है ? प्रीति की अनुभूति भी ऐसी ही होती है !

मोक्ष प्राप्ति शब्द मैं बचपन से सुनती आई थी। किन्तु उसका वास्तविक अर्थ क्या है मेरी समझ में कभी नहीं आया था। मूक गीतों से रंगी उन रातों ने वह मुझे समझा दिया।

स्त्री का मन शब्दों के बाल की खाल उतारने नहीं बैठता। वह तो उन शब्दों में अंकित भावना को ही देखा करता है। माता पार्वती ने भीषण गर्मी वर्षा ठण्ड की परवाह न करते हुए उग्र तपस्या की थी ! किन्तु क्या वह तपस्या मोक्ष प्राप्ति के लिए थी ? नहीं ! वह तो इसलिए की थी ताकि उन्हें भगवान शंकर की सेवा का मौका मिले ! जगन्माता ने अपने आचरण द्वारा यह पाठ ही सिखाया है कि स्त्री को किस तरह का प्रेम करना चाहिए। उन्ही के पदचिह्नों पर चल कर

जी हां उन्हीं के पदचिह्नों पर चलकर मैंने प्रेम किया। ययाति महाराज से प्रेम किया मैंने ! यह मालूम होते हुए भी कि वे देवयानी के पति हैं मैंने उनसे प्रेम किया। महल के बाहर सोने वाली मेरी दो विश्वासपात्र दासियों के अतिरिक्त मेरे प्रेम की किसीको खबर तक नहीं थी। वह एक मधुर रहस्य था ! प्रमिला का चिरंतन सखी—बनी रजनी का रहस्य था वह ! मेरे महल की दीवारों का रहस्य था। आठों पहर अंधेरे में ही एकाकी जीवन बिता रही उस सुरंग का वह रहस्य था !

बीती रात के आनंद की मादकता आंखों से उतरने से पहले ही आनेवाली रात के सपनों का नशा उनपर चढ़ने लगता ! किन्तु उस उन्माद में भी कोई झकझोरकर मुझे जगाकर कहता सावधान शर्मिष्ठे सावधान ! होश की दवा करो और सोचो कि तुम कहां चली जा रही हो ? क्या किए जा रही हो ? यह एक भयंकर पाप है। पाप का विषवृक्ष दुनिया भर में फैल जाता है ! उसके पत्ते मोहक होते हैं उसके फूल मन्त्रमुग्ध करने वाले होते हैं उसके फल—उसके फल में तक्षक छिपा होता है। वह किस नहीं जानता

वह तुम्हें—शायद महाराज को ही

महाराज के स्पर्श राम ... खिल जाते

पाप की इस कल्पना भी

मैं बारबार ... का

वह पाप कम ... उस,

में मर प्रति बार ... अपना

आजाने की बात

है कि सौत को अपनी बरन मत मानना। उसे अपनी सखी मानकर उसमे प्यार करना। तुम और मैं तो बचपन से सखिया रही है। आओ हम दोनो मिलकर महाराज को सुखी करें। तुम ही उनकी पटरानी बनी रहना। उनके साथ सिंहासन पर बैठकर शान शिवान की मुझे कोई इच्छा नही। महारानी पद के गौरव और सम्मान की मुझे कोइ चाह नही। राज-काज निपटाकर जब महाराज महल म लौट आएंगे तब उनकी चरण सेवा करने का मिल जाए उनकी थकान को थोडा दूर करने का अवसर मिल जाए तो मैं अपने आपको धन्य समझूगी। तुम ऊषा बनो प्रभा हो जाओ संध्या बन जाओ मैं तुमसे डाह नही करूगी। सूयमुखी बनकर मैं अपने देवता का दूर से ही पूजन कर लूंगी। वह जिधर मुड गए उधर ही अपनी गर्दन भी मोड लूगा और उन्हें आखो म भर लिया करूगी।

पाप की कल्पना स बेचैन बने मन को मैं इसी तरह बुझाने का प्रयास करती। किन्तु कभी कभी मन को खान वाली यह चुभन किसी तरह कम नही हो पाती। तब मैं माता पार्वती का स्मरण करती। आखो के सामने उनकी मूरत लाकर हाथ जोडकर उनसे कहती माता! जसा तुमने भगवान शकर से किया वसा ही प्रेम मुझे महाराज से करने की शक्ति दो। पिता द्वारा पति का अपमान होते ही तुमने यज्ञ-कुण्ड म कूदकर आत्माहुति दे दी। तुम्हारी उस अग्नि परीक्षा का मैं कभी नही भुलाऊगी मा! मैं हमेशा स्मरण रखूगी कि प्रियतम के लिए जो कोई भी दिव्य त्याग करने को तयार हो जाती है, वही सच्ची प्रेमिका होती है। फिर तो मैं पापी नही कहलाऊगी न?

बीच बीच मे यह चुभन मुझे बेचन कर डालती। किन्तु जब उसकी फास नही चुभती मैं सुख के शिखर पर चढी होती। अपने नन्हे-नन्हे रगीन डने फैला कर सुबह स शाम तक फूल फूल पर नाचने वाली तितली की तरह मेरी अवस्था रहती। महाराज के लिए मैं ताबूल बनाकर रखती सुगधित फूलो के गजरे गूथ रखती, महाराज को भाने वाली वेश भूषा और साज सिंगार करती रहती उनके मन को रिझाने के लिए नई-नई कल्पनाए खोज लेती इन्ही बातो म दिन पता नहा कब ढल जाता। फिर जल्दी जल्दी रात हो जाती। मुझे लगता किसी अभिसारिका की भाति वह जल्दी-जल्दी अपने नियत स्थान पर जा रही है। किन्तु चार घडी रात बीत जाने पर वही रात किसी विरहिन की तरह बहुत ही मद गति स चल रही प्रतीत होती। बीतने वाले हर पल के साथ मेरी अधीरता बढती जाती। ऐसे मौके पर कोई कठिनाई आ जाने पर शायद महाराज का आना नही होगा एसी आशका मन मे जाग जाती और तब मेरा मन बहुत ही अकुलाने लगता।

प्रणय के बारे म अनेक काव्य मैंने पढे थ। इस बात की कि वास्तव म प्रेम होता क्या है कोई कल्पना न होते हुए भी मैंने प्रणय गीत रच डाले थे। किन्तु लगता कि उस प्रेम काव्य का पठन या प्रणय गीतो को रचने म आने वाला आनन्द प्रीत के सच्चे ब्रह्मानन्द की स्पष्ट छाया मात्र था। दपण म दिखाई देने वाले चद्र

वह सुख —वह आनंद— नहीं ! कोई कितना भी वर्णन करे तब भी उस ब्रह्मानन्द का सही-सही वर्णन कैसे किया जा सकता है ?

सीपियों में पानी भरकर क्या कोई बता सकता है समुद्र क्या है ? फूलों का चित्र बनाकर क्या उन्हें कोई सुगंध दे सकता है ? प्रीति की अनुभूति भी ऐसी ही होती है !

मोक्ष प्राप्ति शब्द मैं बचपन से सुनती आई थी। किन्तु उसका वास्तविक अर्थ क्या है मेरी समझ में कभी नहीं आया था। मूक गीतों से रंगी उन रातों ने वह मुझे समझा दिया।

स्त्री का मन शब्दों के बाल की खाल उतारने नहीं बैठता। वह तो उन शब्दों में अंकित भावना को ही देखा करता है। माता पार्वती ने भीषण गर्मी वर्षा ठण्ड की परवाह न करते हुए उग्र तपस्या की थी ! किन्तु क्या वह तपस्या मोक्ष प्राप्ति के लिए थी ? नहीं ! वह तो इसलिए की थी ताकि उन्हें भगवान शंकर की सेवा का मौका मिले ! जगन्माता ने अपने आचरण द्वारा यह पाठ ही सिखाया है कि स्त्री को किस तरह का प्रेम करना चाहिए। उन्हीं के पदचिह्नों पर चल कर

जी हाँ उन्हीं के पदचिह्नों पर चलकर मैंने प्रेम किया। ययाति महाराज से प्रेम किया मैंने ! यह मालूम होते हुए भी कि वे देवयानी के पति हैं मैंने उनसे प्रेम किया। महल के बाहर मेरी बानी मेरी दो विश्वासपात्र दासियों के अतिरिक्त मेरे प्रेम की किसीको खबर तक नहीं थी। वह एक मधुर रहस्य था ! प्रेमियों की चिरंतन सखी-बनी रजनी का रहस्य था वह ! मेरे महल की दीवारों का रहस्य था। आठों पहर अँधेरे में ही एकाकी जीवन बिता रही उस सुरंग का वह रहस्य था !

बीती रात के आनंद की मादकता आँखों से उतरने से पहले ही आनेवाली रात के सपनों का नशा उनपर चढ़ने लगता ! किन्तु उस उन्माद में भी कोई झकझोरकर मुझे जगाकर कहता सावधान शर्मिष्ठे सावधान ! होश की दवा करो और सोचो कि तुम कहाँ चली जा रही हो ? क्या किए जा रही हो ? यह एक भयंकर पाप है। पाप का विषवृक्ष दुनिया भर में फैल जाता है ! उसके पत्ते मोहक होते हैं उसके फूल मदहोश करने वाले होते हैं किन्तु उसके फल—उसके प्रत्येक फल में तक्षक छिपा होता है। वह किसे कब डस लेगा कोई नहीं जानता—शायद वह तुम्हें—शायद महाराज को ही डस ले"

महाराज के स्पर्श से मेरे रोम रोम में प्रणय के रोमांच खिल जाते। किन्तु पाप की इस कल्पना से मेरे रोंगटे भी खड़े हो जाते।

मैं बारबार अपने-आपसे कहती प्रेम का अर्थ है दान—सर्वस्व का दान ! वह पाप कैसे हो सकता है ? मैं देवयानी की आँख का काँटा हो गई हूँ ! उसके मन में मेरे प्रति बैर की यह भावना न होती तो मैं स्वयं ही महाराज पर अपना मन आजाने की बात सदा उससे कह देती ! दामन फैलाकर मैं उससे कहती— लड़की ससुराल जाने को निकलती है तब हर राजकन्या की माँ उसे उपदेश देती

है कि सौत को अपनी बैरी मत मानना। उसे अपनी सखी मानकर उससे प्यार करना। तुम और मैं तो बचपन में सखियाँ रही हैं। आओ हम दोनों मिलकर महाराज को सुखी करें। तुम ही उनकी पटरानी बनी रहना। उनके साथ सिंहासन पर बैठकर शान दिखाने की मुझे कोई इच्छा नहीं। महारानी पद के गौरव और सम्मान की मुझे कोई चाह नहीं। राज-काज निपटाकर जब महाराज महल में लौट आएँगे तब उनकी चरण सेवा करने को मिल जाए, उनकी थकान को थोड़ा दूर करने का अवसर मिल जाए तो मैं अपने आपको धन्य समझूँगी। तुम उनकी प्रभा हो जाओ, संध्या बन जाओ मैं तुमसे डाह नहीं करूँगी। घूँघट मुखी बनकर मैं अपने देवता का दूर से ही पूजन करूँगी। वह जिधर मुड़ गए उधर ही अपनी गर्दन भी मोड़ लूँगी और उन्हें आँखों में भर लिया करूँगी।

पाप की कल्पना से बेचैन बने मन को मैं इसी तरह बुझाने का प्रयास करती। किन्तु कभी कभी मन को खीज वाली यह चुभन किसी तरह कम नहीं हो पाती। तब मैं माता पार्वती का स्मरण करती। आँखों के सामने उनकी मूरत लाकर हाथ जोड़कर उनसे कहती माता ! जैसा तुमने भगवान शंकर से किया वैसा ही प्रेम मुझे महाराज से करने की शक्ति दो। पिता द्वारा पति का अपमान होते ही तुमने यज्ञ कुण्ड में कूदकर आत्माहुति दे दी। तुम्हारी उस अग्नि परीक्षा को मैं कभी नहीं भुलाऊँगी माँ ! मैं हमेशा स्मरण रखूँगी कि प्रियतम के लिए जो कोई भी शिव्य काम करने को तैयार हो जाती है, वही सच्ची प्रेमिका होती है। फिर तो मैं पापी नहीं कहलाऊँगी न ?'

बीच बीच में यह चुभन मुझे बेचैन कर डालती। किन्तु जब उसकी फाँस नहीं चुभती मैं सुख के शिखर पर चढ़ी होती। अपने नन्हे-नन्हे रंगीन डैने फैलाकर सुबह से शाम तक फूल फूल पर नाचने वाली तितली की तरह मेरी अवस्था रहती। महाराज के लिए मैं ताम्बूल बनाकर रखती, सुगंधित फूलों के गजरे गूँथ रखती महाराज को भाने वाली वेश भूषा और साज सिंगार करती रहती उनके मन को रिझाने के लिए नई-नई कल्पनाएँ खोज लेती। इन्हीं बातों में दिन पता नहीं कब ढल जाता। फिर जल्दी जल्दी रात हो जाती। मुझे लगता किसी अभिसारिका की भाँति वह जल्दी-जल्दी अपने नियत स्थान पर जा रही है। किन्तु चार घड़ी रात बीत जाने पर वही रात किसी विरहन की तरह बहुत ही मंद गति से चल रही प्रतीत होती। बीतने वाले हर पल के साथ मेरी अधीरता बढ़ती जाती। ऐन मौके पर कोई कठिनाई आ जाने पर शायद महाराज का आना नहीं होगा ऐसी आशंका मन में जाग जाती और तब मेरा मन बहुत ही अकुलाने लगता।

प्रणय के बारे में अनेक काव्य मैंने पढ़े थे। इस बात को कि वास्तव में प्रेम होता क्या है कोई कल्पना न होते हुए भी मैंने प्रणय गीत रच डाले थे। किन्तु लगता कि उस प्रेम काव्य को पढ़ने या प्रणय गीतों को रचने में आने वाला आनन्द प्रौढ़ व गहरे ब्रह्मानन्द की स्पष्ट छाया मात्र था। दर्पण में दिखाई देने वाले चन्द्र

के प्रतिबिंब को ही सच्चा चंद्रमा मानकर उसके साथ खेलते रहने वाले बालक की कल्पना के समान ही वह मुग्ध किशोरी की कल्पना का एक खेल था।

सच्ची प्रीति कैसी होती है इसे समझने के लिए तो प्रेमी ही बनना पड़ेगा, प्रणयिनी के गाँव ही जाना पड़ेगा। चंद्रमा की शीतलता और सूर्य की प्रखरता, अमृत की संजीवनी शक्ति और हलाहल का प्राणलेवा सामर्थ्य का संगम नहीं! प्रीति का वर्णन करना इतना आसान नहीं!

एक दिन महाराज अमात्य के साथ राजकाज की बातें करते आधी रात तक बैठे थे। इसीलिए वे जल्दी आ न सके। आधी रात बीत गई। मेरी अवस्था तो बिल्कुल पागल जैसी हो गई। मन में तरह तरह के भले बुरे विचार आने लगे। कहीं महाराज की तबीयत तो खराब नहीं हो गई होगी? यदि वे बीमार हो गए हैं तो क्या मुझे उनकी सेवा करने नहीं जाना चाहिए? किन्तु वे मुझे खबर भेजते भी तो कैसे? मैं भी खुल्लमखुल्ला राजमहल जाऊँ तो कैसे? शर्मिष्ठा का महाराज के दिल में स्थान है किन्तु वह उनके आसपास भी नहीं पहुँच सकती! भाग्य ने मुझे प्रेम भी कितनी कंजूसी से दिया था। प्रतिक्षण मैं अनुभव कर रही थी कि मेरी अवस्था तो ठीक उस स्त्री जैसी है जिसे कुबेर ने पृथ्वी के मूल्य का कोई अलंकार तो दे दिया था, किन्तु उसे एकांत में और अंधेरे में ही पहनने की आज्ञा भी दे दी थी!

उस रात मुझसे रहा न गया। मन तो ऐसे भाग जा रहा था मानो हवा से बातें कर रहा हो। मैंने दीवार में लगी वह कल दबा दी। दिया लेकर साथ सुरंग की सीढ़ियाँ उतर गई। किन्तु उससे आगे पैर पड़ता ही न था। मैं अंधेरे से डरी नहीं थी। सुरंग में शायद कोई सर्प मेरे पैरों से लिपटकर मुझे डस लेगा इस आशंका से भी मैं विचलित नहीं हुई थी! मुझे एक निराला ही डर लग रहा था। मैं इस सुरंग से होती हुई राजमहल पहुँच गई तो क्या हमारे प्रेम का राज खुल नहीं जाएगा? फिर इस क्षण तक मेरा साथ देने वाला भाग्य क्या यकायक मेरा शत्रु नहीं बन जाएगा? देवयानी ने ऋषि का वेश बनाकर महाराज को अशोक वन में मेरे महल में भेज दिया तब तक भाग्य मेरा शत्रु था। किन्तु मुझसे छल करने वाली देवयानी को भाग्य ने हाथोंहाथ छल लिया था! उस क्षण से भाग्य ने मेरा साथ दिया है। किन्तु क्या भरोसा कि इसी क्षण से वह मुझसे रूठ नहीं जाएगा? इस गुप्त मार्ग से मैं महल में जाऊँ और ठीक उसी समय देवयानी मायके से लौट आई हो तो? देवयानी पर मेरा यह भेद खुल गया तो क्या अनर्थ न हो जाएगा? मैं तो उसकी कल्पना भी नहीं कर सकती थी। नहीं! यह राज उसे मालूम नहीं होना चाहिए—कभी मालूम नहीं होना चाहिए!

मैं चुपचाप सुरंग से अपने महल लौट आई। लगातार मन में यही आ रहा था कि मैं कितनी अभागिन हूँ! भगवान ने मुझे खुल्लमखुल्ला प्रेम करने का भी अधिकार नहीं दिया है! हस्तिनापुर की किसी दरिद्री दासी का भी जो अधिकार

भगवान न ग्यिा है वह राजक या शर्मिष्ठा का न मिल, यह कैसी विधि विडवना है।

महाराज आए तव मेरा तकिया आंसुओ स तर हो चुका था।

उस रात महाराज को गहरी नाद लग गई तव भी मैं जाग ही रही थी। उनके बाहुपाश म मैं मन्होश हो गई थी। कि तु क्षण भर क लिए ही वह मन्होशी बनी रही। बाद म मन म छिपे सारे भूत जागकर उपद्रव मचान लगे। प्रीत क साग म विश्राम कर रहा मन मौन की ओर दौड पडा। मन म विचार आया क्या ही अच्छा हो कि इधर हम दोनो इस तरह एक दूसर क आलिंगन म वध है और उधर उसी समय प्रचण्ड भूचाल आ जाए उसम यह अशाक वन यह मन्दिर सब कुछ धराशायी हो जाए। फिर सकडो वप बाद कोई गवेषक यहा उत्खनन करेगा। उस एक दूसर के आलिगन म बधकर चिर निद्रा म लीन उस जोडे का अस्थिपजर मिलगा। उसपर कोई कवि कल्पना करगा कि यह अस्थिपजर नही प्राचीनकाल म किसी शिल्पकार द्वारा पापाण पर अकित रति और मदन की मूर्तिया है। कोई इतिहास शोधक तक प्रस्तुत करगा कि यह हस्तिनापुर के महाराज और महारानी ही होग। किन्तु किसी क ध्यान म यह कदापि नही आएगा कि यह तो क्रूर नियति क हाथा अनजान किसी एसी प्रेयसी का छीना हुआ सुवर्ण क्षण है जो अपन प्रीतम स खुल्लमखुल्ला प्रेम नही जता सकती थी।

दूसर ही क्षण इस कल्पना चित्र पर मुझे ही क्रोध आ गया। मैं कितनी दुबल थी—कितनी स्वार्थी। अपन सुख का विचार करते-करते मैं महाराज की मा

उस कल्पना मात्र म ही मैं सिहर उठी। शायद गहरी नींद म भी महाराज को मेरी सिहरन महसूस हो गई। अपन बाहुपाश को और भी कसत हुए व बुद-बुदाए डरपोक कहीं की।" तुर त नींद म ही उन्होने अपन होठ मेरे होठो पर रख दिए। चद्रमा क उदित होत ही जस अधकार भाग जाता है वस ही प्रणय म मेरे मन का भय भाग गया।

किन्तु दूसरे दिन सूर्योदय के साथ वह भय फिर लौट आया। अब तो उसका रूप और भी कराल विकराल हो गया था। सवेरे उठत ही मुझे मतली सी आने लगी। मेरी दोनो परोस की दासिया जानकार थी। मेरा माथा दबात हुए ही उन्होने एक दूसरी की ओर अथ भरी नजर से देखा। उनके न कहने पर भी मैं जान गई—मैं मा बनन वाली थी। मन म आनन्द भय लज्जा चिंता उत्कण्ठा कुतूहल आदि सारी भावनाए एक साथ आपस म घुलमिल गइ।

महाराज क साथ मेरा सबक सम्मत विवाह हो गया होता तो आज का यह प्रसग कितने आनन्द का होता। सारे नगर म हाथी पर से शक्कर चीनी बाटी जाती। कि तु आज तो यह मधुर समाचार अपने महल की चिऊटी स भी मैं कह नही सकती थी।

नई दुल्हन बनकर ससुराल गई अपनी बेटी क गर्भवती होने का समाचार सुन कर किस मा को हर्ष नहीं होता? मेरा यह रहस्य ज्ञात होन पर मेरी मा को भी

मैं धीरज चाहती थी अपने सौंदय की प्रशसा नही। बुझे मन से मैंन कहा आजीवन तो मैं कोई इतनी सुदर रहन वाली नही !

क्या नहा ?

शीघ्र ही मैं मा हो जाऊगी फिर '

महाराज की सभी शृगारिक अठखेलिया न जान कहा एसी गायब हो गई जसे वन चद्रमा किसी प्रचण्ड काल बादल की ओट म गायब हो जाता है। उनकी मुद्रा पर चिता छा गई। उ होन मुझे फिर कसकर आलिंगन म लिया। कितु उस आलिंगन म आतुर प्रीतम की उत्सुकता क बजाय अधेरे म डरकर मा से चिपक जान वाले बालक की आतता थी !

उनक इस मौन और स्पश स अनुभव होन वाली कातरता का अथ मेरी समझ म नही आया ! अत म उन्होंन धीरे धीरे असगत ढग से जो बातें बताइ उनसे उन्हें लग रहे भय का कारण ज्ञात हुआ। उनके पिता का जीवन एक ऋषि के शाप क कारण खाक म मिल गया था। देवयानी को यदि हमारा यह रहस्य मालूम हो गया तो वह तपस्या म लीन शुक्राचाय की गुफा क सामन जाकर आक्रोश करन लगेगी। वह महाक्रोधी ऋषि तपस्या भग होन क कारण चिढ़कर बाहर आएगा। बेटी क प्रति अधी ममता के कारण उसकी हर बात को वह सच मान लेगा और फलस्वरूप महाराज को कोई भयकर अभिशाप दे बठेगा !

देवयानी का स्वभाव बडा ही ईर्ष्यालु और आततायी था। शुक्राचाय महा क्रोधी और झट स आपा खो बठने वाले व्यक्ति थ। दोनो के स्वभावो को मैं अच्छी तरह जानती थी। महाराज को लग रहा भय ठीक ही था।

महाराज शुक्राचाय के कोप का शिकार बन गए तो ? तो शर्मिष्ठा का माथा शरम स हमेशा क लिए झुक जाएगा। आन वाली पीढ़िया की प्रेमिकाए उस पर हसेंगी ! अपनी आबरू बचान क लिए अपन सुख क लिए इसन अपन प्रीतम की बलि द दी कहकर भावी कवि उसका तिरस्कार की दृष्टि से देखेंगे।

सच्चा प्रेम नि स्वाथ होता है। महाराज स मैंन प्रम अवश्य किया किन्तु क्या केवल सुख की लालसा के कारण ? मैं माता पावती के पदचिह्नो पर चल रही हूँ यह विचार प्रेम करत समय मन म आते ही मारी बचनी समाप्त हो गई। अब भी उस जगमाता द्वारा बताए माग को ही अपनान का मैंन निश्चय किया। ऐसा आचरण रखूगी जिसस देवयानी को महाराज पर कभी सन्देह न हो ! जो भी स्थिति आ जाए उसका सामना अकेली करूगी !

मैं अपन मन को बार बार चेतावनी दे रही थी — कभी न भूलो कि माता पावती का माग यज्ञ की बलिवेदी तक जाता है। यह भी न भूलो कि पिता क यज्ञ म आत्माहुति देकर ही पावती सती बन गई थी।

o

दूसरे या तीसरे दिन देवयानी लौट आई। मरे महल म रोज रात को तानून

सूखने लगे। बात समय म तो आती थी कि महाराज इसीलिए रात भर महल म ही रहते होंग ताकि देवयानी को किसी तरह का स देह न हो। किन्तु उनके दशन और स्पशसुख से वचित मेरा मन तडपता रहता! बीच ही म आख झपकती। वाहर दूर कही से कोई आवाज आती अधनिद्रित अवस्था म ही मुझे लगता कही यह उस दरवाजे की आवाज तो नही? सुरग स महाराज ही—हा अब देवयानी जो लौट आइ है। अत उनका मेरे यहा आगमन कब होगा क्या कहा जा सकता है? व कभी कवल भी

किन्तु वह सारा आभास मात्र होता। फिर मन और भी उदास हो जाता। मुह अधेरे लगने वाली नींद म भी, पता नहीं कस अनुभव होता कि मेरी गदन क नीचे एक प्यार भरा हाथ नही है! उद्यान क पछियो की चहचहाट के बजाय इसी अनुभूति स मैं जाग जाती! और फिर तकिए म मुह छिपाकर अपना प्यारा खिलौना न मिलने क कारण रोने वाली किसी नन्ही बालिका क समान फफक फफक कर रोती रहती!

रातें यो ही बीतने लगी—सूनी सूनी-सी करुणा भरी! आखें तो प्यासी थी ही होठ भी प्यास प्यासे-स हो गए। अत म एक दिन मुझस रहा न गया। मैं उठी और महाराज क उस चित्र पर इतने चुबन बरसाए कि कुछ न पूछो। किसीन कहा है न—प्रेम पागल होता है।

समय किसी अतिचपल और नटखट घोडे क समान भागा जा रहा था। देवयानी का नवा महीना लग गया था। इसलिए वह कभी अशोक-वन नही आई। एक बार उसन जानकर मुझे महल म बुला लेजा। मैं गई। यह देखकर कि उसे मुझपर कोई सन्देह नही हुआ मुझे बहुत-बहुत अच्छा लगा।

और उसी दिन महाराज के विरह का मेरा दुख समाप्त हो गया।

महल की खिडकी म शाम की सुदरता देखन मैं खडी थी। एकदम एक ऊचे वृक्ष के पीछे आकाश म हसता हुआ आया चन्द्रमा दिखाई दिया। उसे देखते-देखते मैं भी आकाश के जितनी बडी हो गई। अपने पास भी तो ऐसा चन्द्रमा है—नन्हा-सा प्यारा प्यारा सा—आज किसीको भी न दिखाई देने वाला एक मधुर चद्रमा इस भावना स मेरे तन मन म बहार आ गई। म अपन गभ क बालक के साथ बातें करन लगी। महाराज के सहवास का क्या भरोसा कभी किसी रात मिला न मिला! किन्तु यह नन्ही सी जान तो आठो पहर मेरा साथ दे रही थी। उसका मधुर मूक सगीत दूसरा कोई भी नही सुन सकता था। किन्तु वह मधुर सगीत एक समा बाध देता जिसम मैं अपन सारे दुख भूल जाने लगी। महाराज क विरह का दुख उनक स्पश के प्यासे शरीर का दुख कच का मेरा और मेरे बच्चे का स्वागत देवयानी किस तरह करगी इस भय के कारण होने वाला दुख—सब दुखो की चुभन स उस नन्ही सी अनात जान क सहवास म ओझरी हो गई जिसका नाम-नक्शा मैं जानती नही थी और जिसकी आवाज का पहिचानती नही थी। कच जस तपस्विया को ईश्वर का साक्षात्कार क्या इसी तरह होता होगा? अन्यथा

उनका मन इस तरह हमेशा शात और प्रस न कस रह सकत ?

मा वनन म कितना आनद है ! पत्ते कितने ही सुन्दर हा लता की फला के बिना शोभा नही !

पणभार लता का वभव है किन्तु फूल उसके सौन्दय और सुख का सार है ! फून के रूप म वह एक निराली ही दुनिया का निर्माण करती है। निर्माण के इस आनद का सानी दुनिया का कोई आनन्द नही होता। तभी तो शुक्राचाय को सजीवनी विद्या पर इतना नाज था।

एकान्त म अपन गभस्थ शिशु म बातें करत रहने म मुझे वडा आनद आता ! मैं उससे पूछती अव तक कहा थे तुम ? वह क्या जवाव देता ! फिर मैं ही कहती तुम्ह तुम्हारी यह मा पसद आएगी न ? तुम्हारी मा दासी है—किन्तु किन्तु वह अपने देश के लिए दासी वनी है। तुम पराक्रमी होगे न ? अपनी मा का मुख दागे न ? मर पिता इतन वडे राजा है। किन्तु व मुयें सुखी नही वना पाए। मेरे पति हस्तिनापुर के सम्राट है ! किन्तु व भी मुये सुखी रख नही पा रहे है। अव तो मुय तुमसे ही सारी आशाए है मेर वेटे मेरे चान्द मरे राजा ! तुम्हारे विना इस ससार म मरा काई भी नही है रे !

इस तरह मैं वडी देर तक वातें करती रहती। कभी आभास होता कि बालक पेट के भीतर स हुकारें भर रहा है। किन्तु इस तरह बोलती रहने से मन का सारा दुख हल्का हा जाता और मन धुलकर विलकुल साफ हो जाता वसे ही जस वर्षा क बाद आकाश स्वच्छ हो जाता है।

मेरी दोहदें शुरू हा गइ। मायके होती तो मा मरी हर इच्छा को धौक और धूमधाम स पूरी करता ! किन्तु मेरी दोहदें भी सवसे अनोखी थी।

मुझे लगता घने जगलो म खूब सैर कर खूख्वार जगली जानवरा का शिकार करू रात म वक्षा की ऊची ऊची टहनियो पर चढ जाऊ और ऊपर की नील-लता पर खिल फूला को तोडकर अपनी वणी म गूथ लू कोई सिंह दिखाई दिया ता उसका अयाल पकडकर उसका मुह खोल लू और उसके सारे दात गिन लू !

एसी कितनी ही वातें मन म आन लगी। मुझे अपने पर ही आश्चय होन लगा। फिर मरे ध्यान म आया कि य मेरी इच्छाए नही मरी वासनाए नही। मैं अव स्वतत्र कहा रह गई थी ? यह तो मेरा गभस्थ शिशु खिलाडी वनकर मुझे खिला रहा था !

एक दिन तो मुझपर एक अजीब-सी सनक सवार हो गई। लगा वुढिया का वश वनाकर—एकदम जजर बुढिया का वश वनाकर महाराज के सामने खडी हो जाऊ। वे जब पहचान नही पाएगे तब वेश उतारकर उनस कहू आपन ऋषि का वेश बनाकर मुझे धाखा दिया। आप समझत है वेश बनाना क्या आप ही को आता है ? क्या वुद्धू बनाया है जनाव को, देखा न ?

०

दवयानी के लडका हुआ। उसके नामकरण समारोह म मैं गई। लकिन जाने स पहल दपण क सामन प्रसाधन सिंगार करने लगी तो मेर पाव कापन लग। मेरी काया बदल गई थी। अब तक मेरे रहस्य को सभालकर रखन वाली प्रकृति के लिए भी मेरी रक्षा करना अब सभव नही रहा था।

मैंने अपन मन को जस तैस समझाया कि आज तो दवयानी अपने ही आनद म मस्त होगी, मेरी ओर गौर स देखन की उस फुरसत भी नही मिलगी और डरत डरत ही मैं राजमहल के उस समारोह म गई। मैं बराबर कोशिश करती रही कि किसी तरह उसकी आखो म ओझल ही रहू। किन्तु उसने अपना मृदु दिखान क लिए मुझे पास बुला लिया। बच्चा दिखाते समय वह एकदम मेरी ओर घूरकर देखन लगी। उसन मुझे सिर स पाव तक गौर से देखा। फिर बोली, 'शर्मिष्ठा लगता है अशोक-वन की जलवायु तेरी सहत के लिए काफी अच्छी रही है।'

मैंने केवल 'हु' कह दिया। तुरत ही उपालभ से उसने कहा, वहा तुम्ह एकाकी नही लगता ?"

शुरू-शुरू म तो लगा था। किन्तु बचपन से ही साथ रही दो दासिया मेरे साथ आई है। उनसे बातें करने और बचपन की यादो म काफी समय कट जाता है।"

अच्छा ? और कौन आता जाता है वहा ?

वहा और कौन आने लगा है ? कभी कभी कोई ऋषि आ जाते है उनकी सेवा मे समय कस कट जाता है पता भी नही चलता।'

उसक पास से हटकर मैं दूर निकल आई तो एस लगा किसी शेरनी की गुफा स जान बचाकर निकल आई हू।

राजमहल की परिचित दासियो स मैं बातें करने लगी। लेकिन मैं जहा भी जाती दवयानी की वह बूढी दासी हमेशा वही पहुच जाती। पहले तो यह बात भर ध्यान म नही आई। किन्तु बाद म मैं घबडा गई। वह बुढिया लगातार मेरी ओर बडा घूर घूरकर दखती रही। मरा चलना, खडा होना झुकना—सब वह बहुत गौर स देखती रही। काफी देर बाद वह चली गई तो मेरी जान म जान आई। मैंने तय किया कि अब मैं बिना थोडी भी देर किए दवयानी से विदा लेकर अशोक वन लौट जाऊ। तभी उसीन मुझे बुलवा लिया। मैं डरते डरत उसके महल म गई। अन्य दासिया को बाहर भेजकर उसन दरवाजा भीतर स बद कर लिया और बहुत ही डपट भरी आवाज म मुझसे पूछा तू गभवती हो गई है ?'

मैंन गदन हिलाकर हा कहा।

'यह व्यभिचार '

मैं व्यभिचारिणी नही हू। एक बडे ऋषि के आशीर्वाद स "

ऋषि के आशीर्वाद से ? कौन है यह ऋषि ? उसका नाम गोत्र कुल—बोलती क्या नही ? तेरी बोलती क्या बद हो गई ? किसने की यह कृपा तुझपर ? क्या कच ने ?

सारी रात मैं तडपती रही। मेरा प्रेम कोई पाप नही था। और वह पाप हो भी तो कच से उसका क्या सबध ? कच तो बहुत ही पवित्र है। मुझे अपने पर ही बार-बार क्रोध आ रहा था। देवयानी यह जहर उगल रही थी तब मैं क्यो चुप रही ? क्यो नही मैंने तपाक से उसे उत्तर दे दिया कि व्यर्थ ही कच का नाम मत लो इसमे उसका कोई सबध नही है ?

बस उत्तर मैं दे देती तो उसने मुझसे कुरेद कुरेदकर अनाप शनाप सवाल किए होते और फिर—

कच से मन ही मन क्षमा मागने के अलावा मैं कर भी क्या सकती थी ! उसकी स्नेहशील मूर्ति मेरी आखो के सामने आ गई। उस मूर्ति के सामने मैं घुटनो के बल बैठ गई। हाथ जोडकर उससे कहा मेरे भैया क्षमा करना अपनी इस दुर्बल बहन को क्षमा करना !'

०

जीवन का क्या यही नियम है कि दुख के सात सागर पार किए बिना आनद के सदाबहार फूल आते ही नही ?

प्रसव पीडा ने मुझे मौत के द्वार पर खडा कर दिया। जन्म और मृत्यु का वह विचित्र मेल देखकर मेरी तो मति कुठित हो गई। महाराज के बाहुपाश मे जो शरीर क्षण क्षण प्रति पल खिलता फूलता था वही अब असीम पीडा से प्रतिक्षण कराह रहा था दर्दीले बल खा रहा था। पीडा असह्य हो जाती तो मैं आखें मूद लेती। किन्तु तब लगता कि शायद अब फिर कभी ये आखें खुलगी ही नही सदा के लिए बन्द हो जाएगी। यह बरहम किन्तु सुदर दुनिया अब मुझ फिर से दिखाई नही देगी। मेरा शिशु—वह दीखने मे कैसा होगा ? लडका होगा या लडकी ? भगवान मुझे उठा लेना ही चाहते हो तो कम से-कम बच्चे को देख लेने के बाद उठा लें उसे एक बार—बस एक बार तो छाती से लगा लेने दो उसके बाद उठा लेना !

मुझे कुछ ऐसा लगा मानो जगल मे फैला झुटपुटा एकदम गायब हो जाए और चारो ओर अधेरा छा जाए। आगे क्या हुआ मुझ कोई भान नही। मेरी आखें खुली तो लगा जैसे मैं युगो सोकर जागी हू। मेरी दोनो दासिया मेरे कानो मे कुछ फुसफुसा रही थी किन्तु वे क्या कह रही है मेरी समझ मे नही आ रहा था। किन्तु पाच-दस क्षणो बाद ही उनके शब्दो से तीनो लोक भर देने वाला सगीत सुनाई दिया। मैं सुन रही थी—कानो मे प्राण समेट कर सुन रही थी। मेरी दासिया कह रही थी—'लडका हुआ है ! लडका— लडका—गोरा चिट्टा एकदम स्वस्थ—लडका—लडका !'

मेरे बच्चे की बरहा पर केवल तीन व्यक्ति उपस्थित थे। मैं और मेरी दोनों दासियाँ। देवयानी दूर से ही सब सुन रही थी। किंतु ऐसा दिखा रही थी जैसे शर्मिष्ठा के लड़का हुआ यह उसे मालूम ही नहीं हो! उसने मुझसे खुल्लमखुल्ला वैर नहीं छेड़ा था। किंतु मुझपर कड़ी निगरानी रखने का पूरा प्रबंध कर रखा था। अशोक वन में क्या हो रहा है उसको एक एक बात का पता रहता था।

मेरा बेटा—एक सम्राट का पुत्र था। किन्तु अभागे ने शर्मिष्ठा की कोख से जन्म लिया था। सज्जित और सुशोभित किए पालने में सुलाकर उसका नामकरण समारोह कौन करता? मेरे मन में उसका नाम पुरूरवा रखने का विचार आया। किंतु मुझे भय था कि इस नाम के कारण देवयानी के मन में वही संदेह पैदा हो जाएगा जो नहीं होना चाहिए। वह अवश्य ही महाराज के महापराक्रमी परदादा का नाम था। इसीलिए मैं उसका मोह संवरण नहीं कर सकी। मैंने उसका नाम पुरु रखा! नामकरण समारोह हुआ बाहर के उद्यान के एक कोने में। मेरे हाथों का पलना, उस पलने पर लटकाया चांद का खिलौना, आसपास की वृक्ष लताओं की मालाएँ यही था मेरे बेटे की बरही का सारा साज!

पुरू ने मेरे समूचे जीवन को आनंद सागर में नहला दिया। उसको कितना भी चूम लूँ मन तृप्त होता ही नहीं था। जन्म से ही उसके गडूल काफी घने और सुंदर थे। उनमें उंगलियां फेरने पर मुझे ऐसे लगता मानो मैं नंदनवन में बिछे फूलों के पावड़ों पर चली रही हूँ। भूख लगने पर पुरु जब मेरे आंचल से उलझने लगता तो मुझे स्वर्गीय आनंद आता था। मेरा दूध पीते पीते वह बीच ही में रुक जाता। कभी फू करके होठों से दूध की बूंदें उड़ाता। वे बूंदें उड़कर उसीके गालों पर गिरतीं। तब उसके गालों को चूम चूमकर मैं उसकी नाक में दम कर देती। उसकी नन्ही मुट्ठियों में कुबेर की सम्पत्ति थी। मेरी ओर एकटक टुकुर-टुकुर देखने वाली उसकी आंखों में दो चांद थे। मुझे देखते ही उसके होठों पर खेलनेवाली मुस्कान में वसंत-बहार का सारा वैभव हंसता था।

पुरू दिन प्रतिदिन बड़ा होने लगा। वह पेट के बल पलटने लगा। घुटनों के बल चलने लगा, बोलने लगा तोते कौआ से, फूलों तितलियों से, पंख पखेरुओं से, चांदनी से उसकी मैत्री हो गई।

सुना कि बीच में शुक्राचार्य का तपस्या की गुफा से बाहर आकर दर्शन देने का समय एक बार आया था! किंतु उस समय यदु बीमार था। इसलिए देवयानी नहीं गई। मैं भली भांति जानती थी कि उसके हस्तिनापुर के बाहर गए बिना मेरी महाराज से भेंट नहीं हो सकेगी। किन्तु विरह की वेदना मुझे अनुभव नहीं हो रही थी। पुरू की बाल लीलाओं में मैं अपने सारे दुःख भुला बैठी थी। मैं केवल वर्तमान में जी रही थी। भूत और भविष्य की मुझे कोई चिंता नहीं थी।

क्या सुख के दिन हिरन के पांव लेकर भागते हैं?

पुरु की पहली वर्षगांठ का दिन पास आया। उसी समय शुक्राचार्य का गुफा से बाहर आकर दर्शन देने का एक और दिन भी आ गया। देवयानी उन्हें घवता

न्खान क लिए चनी गई। उस न्नि मरा मन नइ नवली दुल्हन क समान अधीर हा उठा। लगा आज दिन बहुत ही धार धीर रगता जा रहा है। शाम को बडे उत्साह के साथ सजाकर रखी हुई मेरी वेशभूषा पुरू न पूरी तरह बिखरा दी। पहली बार—बिल्कुल पहली ही बार मैंने आखें तरेरकर उस देखा। फिर भी उसक न मानने पर उसे एक चपत भी लगा दी। किन्तु तुरत ही मेरा मन मुझे खान लगा। मैंन उसे अपन आसुआ से नहला न्यिा। ऐसा राना भी कितना सुख देता है।

आधी रात बीत जाने पर भी सुरग का दरवाजा न बजा न खुला ही। मैं निराश हो गई। सोचा महाराज ने शायद मुझे भुला न्यिा। आसुआ स मरा तकिया तर हो गया।

आधी रात के बाद दो घडिया और भी बीत गइ। उस गुप्त दरवाजे स आवाज आई। धीरे धीरे वह खिसकने भी लगा। मेर प्राण आखो म आ गए। अगले क्षण ही मैं महाराज क बाहुपाश म समा गई—बान्ल म छिपन वाली बिजली की तरह।

काफी लम्बे विरह के बाद का वह मिलन—उस मिलन म कितना आनद था। हम बहुत बहुत बातें करती थी। किन्तु कोशिश करन पर भी एक क भी शान्द मुह से नही फूट रहा था। फिर भी हम काफी कुछ बोले जा रह थे आखो से नही। आसुओ स स्पश से।

गहरी नीद म सो रह पुरू की ओर महाराज बडी देर तक एकटक देखते रहे। फिर मेरे दोना हाथ अपन हाथ म लकर बोल शमा मुझे क्षमा कर दो। आज तेरे मरे लाड न पुत्र के लिए मैं कुछ भी नही कर पा रहा हू। किन्तु कल कल मैंन उन्ह आगे बोलन नही दिया।

दवयानी मुझपर बडी निगरानी रखने का प्रबध कर गइ थी। उसकी चाल म न फसने का हम दोना न निश्चय किया। यदि महाराज स रोज भेंट हो सकती तो मैं क्या चाहती नहा? किन्तु मैंने ही मोह सवरण किया। चार-आठ दिनो बाद मिलनवाले उनके सहवास पर ही मैं सन्तोप करने लगी।

एक दिन रात म व आए तब पुरू जाग रहा था। मरी एक दासी ने उस बगीचे म जाकर लताआ क फूल स्वय अपने नन्हे-नन्हे हाथा स ताडन का शौक लगा न्यिा था। उस शाम का वह दासी उस खेलन क लिए बगीचे म ल गई थी। एक-एककर आकाश मे तारे निकलने लगे। देखते ही देखते सारा आकाश तारा स झिलमिलान लगा। नक्षत्रा का वह अम्बार देखकर पुरू हप से पागल हा गया। लताओ क फूल तोडने का चसका उसे लगा था। शायद उस लगा कि आकाश म लग य फूल भी उसी तरह स तोडे जा सकत हैं। वह दासिया स उस ऊचा उठान के इशार करन लगा। किन्तु कोई उस कितना भी ऊचा उठाना तब भी आकाश क वे नक्षत्र भला उस बालक क हाथ कस आत? पुरू उन्ह पान का हठ कर बठा। रा रोकर उसकी आख लाल हा गइ। उस खिलात समय एक एक कौर हाथा म

लकर मैंन तोता कौआ चिडिया बिल्ली आदि उसके सारे मित्रों को याद किया। किन्तु उसन अन्न म एक कण का भी स्पश नही किया। आधी रात तक मैं उस कन्धे पर लिए थपकियाँ दे दकर सुलाती रही। वह भी पूरी ज़िद पर आ गया था। हठ से जागता ही रहा था।

महाराज ने उस पहली ही बार जागा हुआ देखा था। उसे लेने के लिए उन्होंने अपने दोनो हाथ फैलाए। पुरू न उनकी ओर एकटक क्षण भर देखा। उनकी तरफ लपकने जैसा कुछ झपटा भी। किन्तु फिर पता नही क्या सोचकर सिर हिलाकर ना ना कहते हुए उसने महाराज से मुख मोड लिया! मा के कंधे पर आराम से पडी उसकी नन्ही-सी मूर्ति की पृष्ठाकृति की ओर महाराज देखने लगे।

तभी पुरू अपने नन्हे हाथो से मेरा मुह पकडकर घुमाने लगा। वह मुझे कोई चीज दिखाना चाह रहा था शायद! वह क्या दिखाना चाहता है पहले ठीक से मेरे ध्यान म नही आया। किन्तु जब ध्यान म आ गया तब तो देखा—कोने म मेरे द्वारा बनाया हुआ महाराज का वह चित्र रखा था। पुरू बार बार उस चित्र की ओर और बाद म महाराज की ओर उगली दिखा रहा था। वह अपनी मूक बोली स मुझे बता रहा था कि यह चित्र महाराज का ही है।

चतुर कहीं का! कहते हुए महाराज न कितनी वत्सलता स उसे चूम लिया। उन्होंने उस जहा चूमा था उसी स्थान पर तुरत ही उसे चूमते समय मुझे कितनी गुदगुदी हुई थी! उस एक चुबन न दो रसों म मुझे सराबोर कर दिया—शृगार म और वात्सल्य म।

देवयानी के लौट आने पर यह सुख समाप्त हो गया। किन्तु पुरू अब एक एक अक्षर बोलने लगा था। उसके मुह से एक एक अक्षर निकलने लगा तो मुझे भी अनुभव होने लगा कि समुद्रमथन स अमृत बाहर निकलता देखकर देव दानवों को कितना आनद हुआ होगा। रोज शाम को मैं उसे लेकर महाराज के चित्र के सामने बैठने लगी। मैं उसे उस चित्र को प्रणाम करना और त-त त-त' बोलना सिखाया। कभी वह ज़िद करके कुछ दूसरा ही अक्षर कह देता। किन्तु मेरा अच्छा मुन्ना कहकर उसे सीने स लगाकर सहलाया और लगातार उसको चूम लिया कि वह जान जाता कि उसकी मा क्या चाहती है। मन म अनेक बार प्रबल इच्छा हो आती कि उसे बहुत जल्दी तत तत कहना आ जाए किसी रात महाराज को वह इसी तरह पुकारे और उसका इस तरह पुकारना म अपनी आखो देख लू। फिर लगता—काश भगवान ने मनुष्य के मन को कल्पना के पख न दिए होते!

मैं पुरू के जीवन मे इतनी खो जाती कि अपने अन्तमन म उठने वाली सभी टीसों की मुझे दिन भर याद भी न रहती! किन्तु कभी-कभी किसी दिन बहुत ही अजीब बात होती!

ऐसे ही एक दिन की बात है! वर्षा ऋतु समाप्त होने को थी। फिर भी सुबह स ही आकाश म काले बादल उमड आए थे। मन योंही उदास था। एक दासी ने पुरू के कुल्ली करने के चुलबुलेपन का वणन करते-करते मेरी बचपन की शरारतो

क जिस्से सुनाने शुरू किए। अपना सुखी और चिंतामुक्त शशव मेरी आखो के सामने खडा हो गया। उस भाग्यशाली शशव क बाद प्राप्त यह अत्यंत दुभाग्यपूर्ण दासता!

मन का एक एक घाव हरा हो गया बहन लगा!

इस तरह मन जब भी बचन हो जाता मैं कच को और उसक धीरज बधाने वाल शब्दो को याद करती। फिर भी मन शात न हुआ तो स्नान करक कच द्वारा दवयानी को दिया हुआ उस लाल वस्त्र का परिधान ग्रहण कर लेती जो उस दिन जलक्रीडा क समय मैंन गलती से पहन लिया था।

उस दिन भी मैंने वसा ही किया।

किन्तु अचानक शाम के समय देवयानी न मुझे बुला भेजा। अपने बच्चे को लकर तुरत आओ —उसका जरूरी स देशा आया था। मैं हडबडा गई। वस्त्र बदलन की भी सुधि मुझे नही रही!

कही देवयानी को हमार प्रेम रहस्य का पता तो नही चल गया? किसी रात महाराज मुझसे मिलने आए होगे। निगरानी रखने के लिए रखी गई किसी दासी ने देखा होगा कि महाराज अपने महल म नही है! उसन ही जाकर दवयानी से चुगली खाई होगी! अपनी बला स! उसम डरने की क्या बात ह? राज-काज के लिए महाराज महल स कही और गए होंग! वे अपन महल म नही थे इसका मतलब यही हो नही हो सकता कि वे अशोक वन ही आए होंगे।

डरत डरत ही मैं राजप्रासाद म गई। दवयानी ने मेरा वह लाल वस्त्र देखा किन्तु उसके माथ पर कोई शिकन नही आई। मैंने राहत की सास ली।

उसने जानकर ही मुझे पुरू को साथ लकर बुलाया था! सामुद्रिक शास्त्र म निपुण वही पहल वाला पडित फिर राजधानी म आया हुआ था। पिछली बार राजमाता न उस बुला भेजा था। तब मेरी हथली दखकर उसन कहा था यह लडकी बहुत ही अभागन है! किन्तु इसका पुत्र सिंहासन पर बठेगा!'

आज उन्ही पडितजी की परीक्षा लने क लिए दवयानी ने एक अलग ही तरकीब निकाली थी। उसन यदु और पुरु दोनो को इतना एक-सी पोशाक पहनने को दी कि दोनो सगे भाई प्रतीत हो। फिर ढेर सारे खिलौन दकर उसन दोनो को अपन महल म ही खेलने को बिठा दिया। दोनो बच्च जब खल म मस्त हो गए उसन उन्ही ज्योतिषी को बुला भेजा। उन्होने दोनो बच्चो की दाइ हथलिया बार बार देखी। बाइ भी दखी। अन्त म यदु की ओर दखते हुए उन्होने कहा लगता है यह लडका बहुत अभागा है!'

दवयानी होठ चबाते हुए बडा मुश्किल से अपना गुस्सा पी गई। फिर पुरू की ओर उगली दिखाकर उसन पूछा और यह?

काफी दर तक पुरु की हथली फिर स देखते हुए उन्होने कहा यह चक्रवर्ती राजा बनगा!

दवयानी पर जस गाज गिरी। पडितजी की फजीहत करने क लिए उसन

कहा 'पंडितजी महाराज य ानी सग आई है। ोना राजकुमार ? उन जीवन म इतना अतर कसे हो सकता है?

ज्योतिषी न शात भाव म उत्तर दिया भाग्य एक बहुत अद्भुत शक्ति होती है महारानी। जिस आकाश म शुक्र का तारा जगमगाता रहता है उसी आकाश से उल्का धरती पर गिरकर पत्थर हो जाता है।

देवयानी ज्योतिषी महाराज का जस-तस विदा करने की जल्दी मचा ही रही थी कि स्वय महाराज अचानक महल म पधार। उनक साथ उनका मित्र माधव भी था। महाराज को देखत ही त त तत कहता हुआ पुरु उनके पास जाने के लिए मचलने लगा। एक बार तो उसन महाराज की तरफ लपकन की कोशिश भी की। मरे तो होश हवाश उड गए। देवयानी ने बीच म ही अत्यत क्रोध से मुझसे पूछा भी— क्या री। यह क्या कह रहा है?' मैं कुछ बोली नही। सौभाग्य से पुरु क उस एकाक्षरी मत्र का अर्थ किसीके ध्यान म नही आया।

ज्योतिषी के चल जाते ही महाराज से एक शब्द भी न बोलते हुए देवयानी ने मुझसे कहा मुझे कुछ काम है तुझसे। चलो महाराज के महल म हम आराम से बातें करेंगे। नगर म कुछ कुशल नतक कलाकार पधारे हैं व अपना नृत्य हम लोगों के सामन पश करना चाहते है। चलो चलें पुरु को भी साथ ले लो।'

महाराज क महल म कदम बाहर रखते ही देवयानी ने अपने हाथों दरवाजा बद कर लिया। मैं सकपकाई। पलग पर बैठकर उसने कडकते हुए स्वर म मुझसे पूछा शर्मिष्ठा भूल तो नही गई न कि तुम मेरी दासी हो?'

मैंने नम्रता से गरदन हिलाकर हा कहा।

दासियो की बहुतेरी गलतिया को मैं क्षमा कर देती हू—आगे भी करूगी। किन्तु किसी भी दासी के व्यभिचार को

'मैं व्यभिचारिणी नही हू!'

विकराल अट्टहास करते हुए उसने कहा 'यह भी खूब! बिना पति के स्त्री के बच्चा हो जाए और तब भी उसे कोई व्यभिचारिणी न कहे?'

एक ऋषि की कृपा से मेरे पुरु हुआ है!'

उस ऋषि का नाम?

'दुनिया को उसके नाम से क्या लेना-देना है?

एसे किसीकी कृपा से किसीके पुत्र पैदा होने की गपोड-कथाओ पर कोई भरोसा नही करता। इसीलिए दुनिया नाम जानना चाहती है।

शुक्राचार्य सजीवनी मत्र से मृतको को फिर से जीवित करते थ, यह भी क्या उसी प्रकार की गपोड कथा है?

यह सुनते ही क्रोध से होठ चबाती हुई देवयानी बोली मगरूर लडकी! तेरा दिमाग कही घास चरने तो नहीं गया? जानती नहीं छोटे मुह बडी बात करने से कभी बात गले म एसी अटक जाती है कि आखें पथराकर बाहर निकल आती है। कहा तीनो लोक पर अपनी धाक जमाने वाले मेरे पिताजी और कहा

तुझ जसी दासी के चरण चूमनेवाला कोई जोगडा वरागी ! बता क्या है तेरे उस चाटट प्रमी का नाम ?

मैं नही बताऊगी ।

मैं महारानी हू। मेरी अवज्ञा की तो जा भी दण्ड दूगी, तुझे भोगना पडेगा। कल ही मैं दरबार लगा रही हू ! उसमे तुम्हे व्यभिचार के अभियोग म खडा करुगी। तुम्हे अपनी पवित्रता सबके सामने सिद्ध करनी होगी। लोगो को तेरी बात न जची तो—अच्छा किया यह लाल वस्त्र तुमने पहन लिया। सूली पर चढ्न वाले को लाल वस्त्र ही पहनना होता है !

मुझे दिन म तारे दिखाई देने लगे। मन ही मन निश्चय किया कि अब देवयानी के मुह स और एक भी शब्द सुनने के लिए यहा न रुकते हुए सीधे निकल जाऊ। आगे जो भी होना है हो ले ! पुरु को सीने से कसकर लिपटाकर मैं दरवाजे की ओर भागी।

कहा चली जा रही हो ? देवयानी के इस प्रश्न स मेरे कदम रुक गए। उसके शब्दो म किसी अघोरी तांत्रिक की अद्भुत शक्ति थी !

बार-बार जी म आता रहा कि जोर से महाराज ! महाराज !' कहकर चिल्ला पडू। किन्तु मुह म शब्द नही फूटा ! तुरत ख्याल म आया कि महाराज मेरी सहायता के लिए दौड आए तो यह सारा मामला बहुत ही सगीन हो जाएगा ! बहुत ही भयानकता स भभक उठेगा ! वह राज जो आज तक इतनी सावधानी स मैंने छिपा रखा है पल भर म उसका भण्डा फूट जाएगा। महाराज देवयानी के अधे और असीम क्रोध का शिकार बन जाएगे। शुक्राचार्य उन्हे कोई अजीब सा अभिशाप दे बठेगे।

एस महाकोपी ऋषियो के अभिशाप के कारण पत्थर या पशु बन गए स्त्री पुरुषो की कितनी ही कथाए मैंने बचपन स सुनी थी। वे ही भयानक दृश्य मेरी आखो के सामने तरने लगे।

सारा दुख और सारा भय पीकर मैं किसी खम्भे जसी जड बनकर खडी रही।

देवयानी ने मुझे अपने पीछे-पीछे आने का इशारा किया। यन्त्रवत मैं उसके पीछे पीछे चलने लगी। वह महल के पूरब की ओर वाली दीवार के पास गई। दीवार हूबहू अन्य दीवारो के समान ही दिखाई दे रही थी। किन्तु उसम शायद कहीं पर एक गुप्त कल थी—जसी अशोक वन म थी वसी ही ! देवयानी द्वारा कल दबाए जाते ही एक द्वार खुल गया। उसने कहा चल ! इसके भीतर आगे आगे चलती जा !

किसी मन्त्रबद्ध की भाति मैं उस सुरग की सीढ़िया उतरने लगी। मेरे पीछे पीछे वह भी उतरती आ रही थी।

मैं समझ नही पा रही थी कि इस सुरग के रास्ते वह मुझे कहा ले जाना

चाहता है और मेरा क्या करने जा रही है। कि तु सुरग कोई बहुत लम्बी नही थी। उसके दूसर सिरे पर एक तहखाना था।

दवयानी मेरी ओर मुडकर बोली अन्दर जा। अच्छा एकान्त है इस तहखान मे। चाहा तो अपन उस छोटे प्रीतम को भी यहा बुला लो जी भरकर मौज उडाने के लिए! किन्तु एक बात ध्यान म रखना। अपन प्रीतम का नाम बताना है या नही इसका निणय आज रात ही तुम्ह करना होगा। तरा प्रीतम ऋषि है न? तो मत्रसामथ्य से वह यहा आ सकता है! वह नही आया तो उसक इस छोकरे स सलाह ल लो! मैं सुबह आऊगी। तुमने अपन प्रीतम का नाम तब बता दिया तो ठीक ही है वरना सार नगर म ढढोरा पिटवा दूगी शाम को दरबार लगवाऊगी उसम तुम्हारे व्यभिचार की जाच होगी और

बोलत बोलत वह रुकी। फिर केवल हस दी। उसकी उस हसी म हलाहल का सारा निचोड समाया हुआ था। तुर त हा मृदुता म कहन लगी यहा जब कोई तपस्या क लिए बठता है न तब हम लोग उसकी सवा क लिए किसी-न किसी को यहा रखत आए ह। उसी तरह एक प्रहरी को यहा रखन की सोच रही थी मैं! कि तु वह तरे सौन्दय पर मोहित हो जाएगा और कल प्रात प्रीतम के रूप म उसीका नाम लन के लिए तुझे आसानी हो जाएगी! इसीलिए आज यहा किसीको भी न रखन का निश्चय किया है मैंन। किन्तु भूलना नही कि अब केवल चार पहर का समय ही बाकी है। सच-सच बता तरे इस बच्चे की हथेली पर चक्रवर्ती राजा की रेखाए कसे आ सकी?"

मैंने शान्ति से उत्तर दिया ऋषि के आशीर्वाद से!'

तो उसी ऋषि के आशीर्वाद स रात म ही तू इस तहखाने स गायब भी हो जाएगी!'

जरूर हो जाऊगी! उसम असभव क्या है? यति नहा अशोक वन स रात म अचानक गायब हो गया? जानती हो न? कहत है बाढ भरी यमुना के पानी पर स चलता हुआ वह पार निकल गया! उसी तरह मैं भी इस तहखान से '

इस ईर्ष्या स कि प्राण जाए तो भी देवयानी के सामन घुटन नही टेकूगी, मैं जो मन म आया, बोलती। किन्तु जब वह तहखान का द्वार बद करके जान लगी, तो मरा सारा आवेश समाप्त हो गया। लगा, दौडकर लपक जाऊ उस द्वार को पीछे खीच लू देवयानी क पर पकड लू और उसस कहू 'तुम मुझ चाहो जितनी यातनाए दो मेर प्राण ल लो, किन्तु मरा बच्चा—उसे कोई कष्ट मत देना! इस तहखान म इस अधर म

लग रहा था जस उस अधरे म युगो से बठी हू। अधेरे स डरकर पुरु रोने लगा। मैंने उस अपन आचल म छिपा लिया। इस विश्वास से कि मा अपने पास ही है मेरा छौना निश्चिन्तता स मेरी गोद म थोडी देर बाद सो गया। पुरु के मा थी। उस उसका सहारा था। किन्तु मुझ

हर पल जस मुझ खान को दौड रहा था। तहखान म अधेरा धीर धीरे कुछ

छटता सा लगा। फिर आभास हुआ कि अधेरे मे कोई है। क्या वह मात्र आभास था? कोई भूत था? नही! कुछ भी समझ म नही आ रहा था।

शायद वह एक युवती थी! कौन होगी वह? इसी तहखाने म घोटी गई मेरे जसी ही कोइ प्रणयिनी? वह कौन थी? क्या खोज रही थी?

मन म विचार आया कि कही सोच सोचकर पागल बना देने के लिए ही तो देवयानी न मुझे यहा लाकर नहा रखा है?

उस छाट स कमरे की चारो दीवार एक स एक भयकर कहानिया बतान लगीं! कामुक राजा का प्यार मौत की डाह घराने की प्रतिष्ठा के लिए की गई हत्या निरीह युवतियो को पिलाए गए जहर के प्याले

मन म आया कि इस यम-यातना स छुटकारा पाने के लिए दीवार पर पटक पटक कर अपना सिर फोड दू। आत्महत्या के विचार से प्रेरित होकर मैं उठने लगी। किन्तु उठ नही पाई। मेरी गोद म पुरू जो सोया था! उसकी नींद टूट जाती

भगवान ने भी मुझे इस ससार के साथ कितने नाजुक किन्तु कितने मजबूत धागे से बाध रखा था!

कमरे म एकदम कही स प्रकाश चमका। मैंने चौंककर ऊपर देखा। कोने म ऊपर एक रोशनदान था। शायद बाहर ऊपर बिजलिया कडक रही थीं और उन्ही का चौंधिया देनेवाला प्रकाश उस रोशनदान से

उस प्रकाश ने मुझे काफी धीरज दिया। मैं कच को याद करने लगी। इस प्राणसकट म उसकी याद दिलाने वाला वह चहेता वस्त्र मेरे शरीर पर था। लगने लगा शायद मैं बडी भाग्यवती हू। मेरा मन शान्त हो गया। पुरू को सीने से चिपकाए मैं जमीन पर ही लेट गइ। धीरे धीरे मेरी आख लग गइ।

सहसा दरवाजे की आवाज स नींद खुली। पहले तो लगा यह सब सपना है। किन्तु वह सपना नही था। किसीने तहखाने का दरवाजा खोला था। आशा और भय की कैंची स मन की एक एक धज्जी अलग होने लगी। क्या कोइ मुझे रिहा करने आया है या देवयानी स्वय विष का प्याला लिए फिर लौट आई है?

तभी बिजली की चौंध स तहखाना जगमगा उठा। उस प्रकाश म भीतर आए व्यक्ति को मैंने अच्छी तरह पहिचान लिया। वे महाराज थे। पास आकर उन्होने मेरे कधे पर हाथ रखा। वे मुख्स कुछ भी बोले नही। दरवाजे की तरफ चलने लगे। पुरू को लेकर मैं उनके पीछे-पीछे चलने लगी।

हम लोग झट स ऊपर महल म आ गए। महल के दक्षिण की दीवार म कोई कल थी जिसे महाराज ने दबाया। महाराज आगे बढे। पीछे-पीछे मैं चलने लगी। हम दोनो धूप म पुरू जाग गया था और तत' तत' कहकर महाराज को पुकारने लगा था। उसके मुह पर हाथ रखकर मैं उसे चुप कर रही थी।

सुरग स जल्दी जल्दी डग भरते हुए हम लोग अशोक वन आ गए। सुरग से महल म आने का द्वार महाराज ने खोल दिया। उन्होने मुझसे कहा 'अब पल भर

के लिए भी यहा न रहना। अपनी दासिया से भी मत मिलना। बाहर एक रथ तयार होगा। उसम बठ जाना। मेरा मित्र माधव उम रथ म बैठाकर तुम्ह जाओ जाओ जल्दी करो।'

कहते-कहत उनकी आखें भर आइ। भीगी पलको से ही उन्होंने मेरा चुबन ले लिया। उनके आसू मेरे गालो पर बह आए। उन्हाने प्यार स पुरू का माथा थप थपाया, और एकदम सुरग का द्वार बन्द कर लिया।

मेरी दासिया हडबडा गई थी। मुझे खोज रही थी। किन्तु उनस मिल बिना ही मैं सीधी बाहर चली गइ। महाराज के कह अनुसार वहा एक रथ खडा था। मैं रथ म जा बठी। रथ दौडने लगा।

सारथी घोडो पर लगातार चाबुक जमाता जा रहा था। घोडे विद्युत की गति स दौडन लगे थे। आकाश म बादलो की पीठ पर बिजलिया के कोडे कडक रहे थे। बादल हिनहिना रहे थे।

हम नगर के बाहर पहुचे ही थे कि मूसलाधार वर्षा होने लगी। देखत ही देखत प्रकृति न रौद्र रूप धारण कर लिया। कल प्रात शर्मिष्ठा को तहखान से गायब पाकर देवयानी भी इसी तरह ताडव करने लगेगी। मन की अत्यत विकल अवस्था म भी यह विचार उसे छू ही गया।

रथ दौडा जा रहा था। आखिर माग के एक ओर स्थित एक जीण मदिर के पास वह रुका।

महारानी मेरे कानो म शब्द सुनाई दिए। आवाज परिचित सी लगी। किन्तु उस सबोधन का अथ समय म नही आ रहा था! मैं चुप रही। फिर स वही पुकार आई। सारथी के पास बठकर पूरा भीग चुका माधव ही मुझे सबोधित कर रहा था महारानी "

उस सबोधन से मेरा अग पुलकित हो उठा। क्षण भर तो मैने आखें मूदकर उस सबोधन का आनद जी भर कर लूट लिया।

माधव कह रहा था 'महारानी जी यही पर उतर जाए!

क्या महाराज की यही आज्ञा है?'

जी हा किसीको किसी बात का सन्देह न हो इस हेतु मैं तुरन्त रथ लेकर राजधानी लौट जा रहा हू। महारानी जा फिर स कभी हस्तिनापुर न आए उसम खतरा है ऐसा " कहत-कहत वह रुक गया।

पुरू को लेकर मैं रथ से उतर गई। महारानी पर पर्जन्य का अभिषेक हो रहा था। भावी चक्रवर्ती राजा पर बिजलिया चवर डुला रही थी।

मैंने माधव स कहा महाराज स मेरा एक सन्देशा कह दोग?

जी कहिए?

कहना शर्मिष्ठा अपने मन म हमेशा महाराज के चरणो की पूजा करती रहेगी मृत्यु के द्वार पर पहुच जाने पर भी! उनकी आज्ञा हमेशा उसके सिर आखो पर रहेगी। और '

और क्या ?

और कहना मेरा पुत्र जहां भी रहे उनका वरद्हस्त हमेशा उसके मस्तक पर बना रहे ! महाराज के आशीर्वाद से—

आगे मुझसे बोला नहीं गया। भीगकर वर्षा से तर हुए पुत्र को सीने से कस कर चिपकाते हुए मन कहा, चलिए युवराज ! चलिए ! प्रकृति का नव निर्माण करनेवाला पर्जन्य तुम्हारे साथ है। आकाश को आलोकित करनेवाली बिजली आपकी मां के हाथ का दीपक है। चलिए इस पर्जन्य से भी अधिक शीतल होने के लिए चलिए इस बिजली से भी अधिक तेजस्वी बनने के लिए चलिए !"

ययाति

देवयानी का प्रथम नृत्य समाप्त हुआ।

सम्मान और सराहना। दर्शकों की तालियों की गड़गड़ाहट हुई। वह रुकी ही थी कि बादल भी गरजने लगे। मैं देवयानी को साथ लेकर नृत्यशाला में आया तभी आकाश में बादल छाए थे—काले स्याह! शायद देवयानी के मन में भी उतने ही काले विचार उमड़घुमड़ रहे थे! मैंने उससे पूछा, 'अपने नृत्य देखने के लिए तुमने शर्मिष्ठा को रोक क्यों न लिया?' उसने हँसते हुए उत्तर दिया, 'काफी आग्रह किया मैंने उससे, किन्तु उसका जी अच्छा नहीं था! इसलिए शाम को ही वह अशोक वन वापस चली गई।'

किन्तु मन में जागा सन्देह मुझे चुप बैठने नहीं दे रहा था। देवयानी की आँखें किसी आसुरी आनंद से चमक रही थीं—घन काले बादलों में दमकने वाली दामिनी की तरह!

मैंने धीरे से माधव के कान में कहा। वह रथ लेकर अशोक वन हो आया। शर्मिष्ठा की विश्वासपात्र दासियों से उसने पूछताछ की। वह अभी तक वापस नहीं आई थी! तभी मैं जान गया कि दाल में कुछ काला अवश्य है और हो न हो देवयानी कपट से शर्मिष्ठा को समाप्त करना चाह रही है। सोचने लगा आखिर देवयानी ने उसे कहाँ छिपा रखा होगा? तभी मुझे राजमहल की उस सुरंग का ख्याल आया—वही सुरंग जिसमें माँ ने अलका को विष देकर समाप्त किया था! शायद हर महारानी के लिए परम्परा से उस सुरंग के तहखाने का महत्त्व रहा है! शर्मिष्ठा को वहाँ से किस तरह मुक्त किया जाए?

देवयानी का वसंत नृत्य आरम्भ होने जा रहा था। राजधानी में आए हुए कुछ बड़े-बड़े कलाकारों ने उसकी नृत्य निपुणता के बारे में काफी कीर्ति सुनी थी। वे लोग राक्षस राज्य में गए थे। तब स्वयं महाराज वृषपर्वा ने कहा था, 'आज गुरु कन्या देवयानी यहाँ होती तो आपने किसी नर्तक-नर्तकी को उसके सामने नृत्य पेश करने की हिम्मत भी न होती।' स्वाभाविक था कि सब लोग देवयानी की नृत्यकला को स्वयं देखने को उत्सुक थे। यह कहकर कि अब तो अभ्यास नहीं रहा, पहले तो उसने काफी आनाकानी की किन्तु अंत में उसका अहंकार जाग उठा। अब तो स्पष्ट था कि तीन पहर रात बीतने तक देवयानी नृत्यशाला में ही व्यस्त रहने वाली थी।

सामने चल रही वसंत नृत्य में देवयानी कितनी सुंदर, क्या ही कोमल और एकदम निष्पाप लग रही थी! किंतु इसी समय उसके अंतरंग में कितनी क्रूर स्त्री भीषण कल्पना का प्राणाहारी तांडव कर रही होगी! मानव भी देव और दानव का क्या ही अजीब मिश्रण है!

वसंत के प्रथम स्पर्श से पल्लवित होने वाली, फिर फूलने वाली, उसके बाद अपनी ही सुगंध की मस्ती में मदहोश होकर वसंत की बयार के साथ थिरकने वाली लतिका की भूमिका देवयानी ने अपने नृत्य द्वारा खूब अच्छी तरह से प्रकट की। उसकी पायल की छमछम कोयल के कूजन के समान लग रही थी। अंत में वह लता पास के ही वृक्ष से लिपटकर उसके कंधे पर अपना माथा रख देती है और प्रणय के आह्लाद में शांतभाव से सो जाती है, यह बात उसने कितनी नजाकत के साथ अपने नृत्य में प्रकट की!

क्या मनुष्य के भीतर का कलाकार उससे सर्वथा भिन्न होता है? वसंत नृत्य द्वारा प्रणय भावना की विविध छटाओं को अभिव्यक्त करने में देवयानी कितनी मदहोश हो गई थी! वह देवयानी या महारानी नहीं रही थी। भीतर और बाहर से वह एकदम प्रणयिनी बन गई थी। किंतु उसका यह कोमल और मधुर रूप मैंने तो कभी देखा नहीं था। हम दोनों के एकांत में सुख के परमोच्च क्षण में भी लगता था कि वह किसी और ही विचार में खोई है। शायद ही कभी उसके आलिंगन में शर्मिष्ठा की उत्कटता मैंने अनुभव की हो! चुंबन के समय भी लगता कि शायद वह मुझसे कुछ छिपा रही है।

एक कलाकार के नाते वह प्रणयिनी हो सकती थी, किंतु पत्नी की भूमिका में प्रणयिनी वह कभी न बन सकी। भला ऐसा क्यों होता है? क्या नियति ने मानव को शाप दे रखा है कि वह इस तरह कभी एकरूप रह नहीं सकता? मन इस तरह बटा न हो, तो मानव शायद कभी दुःखी नहीं रहेगा। क्या यही सोचकर विधाता ने उसके ललाट पर यह अभिशाप लिख दिया है?

वसंत-नृत्य के बाद वह उमाचरित नृत्य प्रस्तुत करने वाली थी। उसमें दक्ष यज्ञ की सती से लेकर क्रोध में निकले गए शंकर को मनाने के लिए भीलनी के रूप में उन्हें लुभाने वाली पार्वती तक नारी के व्यक्तित्व का प्रदर्शन कराया जाने वाला था। उन व्यक्तित्वों को वह अपने नृत्य द्वारा अभिव्यक्त करने वाली थी।

मैं भीतर गया। वसंत नृत्य की मैंने भूरि भूरि सराहना की। सुनकर देवयानी किसी निरीह बालिका के समान हँस पड़ी! इस समय वह कला के विश्व में ही कलाकार की मस्ती में थी!

मैं धीरे से नृत्यशाला से बाहर आ गया। माधव को मैंने पहले ही बाहर भेज दिया था। वह रथ लेकर तैयार था! मुझे राजमहल छोड़कर वह अशोक वन की ओर चला गया। मैंने देवयानी को उस बूढ़ी दासी को अच्छा खासा इनाम दिया। फिर उसने सब कुछ बता दिया। मेरा अनुमान सही था। शर्मिष्ठा उसी तहखाने में थी। अकेली शर्मिष्ठा नहीं—साथ में पुरु भी था! मेरे रोंगटे खड़े हो गए।

उस दासी ने कहा कि देवयानी उस महल पर कड़ी निगरानी रखने के लिए कहकर गई थी। जाते समय राजप्रासाद के द्वारपालों को भी उसने कुछ आदेश दिए थे।

सीढ़ियां उतरकर तहखाने में जाते समय दिल बहुत धड़क रहा था। यह वही स्थान था जहां मां ने अलका को विष देकर मार डाला था। उसी स्थान पर आज देवयानी शर्मिष्ठा के प्राण लेने का प्रयत्न कर रही है! अलका—वह प्यारी सुनहरे बालों वाली निष्पाप लड़की! मेरे कारण और अब?

सोचने के लिए समय न था। भागने वाला प्रत्येक पल जीवन और मृत्यु की सीमा-रेखा पर से दौड़ रहा था। शर्मिष्ठा को उस तहखाने से निकालकर जल्दी जल्दी उस सुरंग के रास्ते से मैंने अशोक वन पहुंचाया। सुरंग की सबसे ऊपर वाली सीढ़ी पर खड़े होकर शर्मिष्ठा को विदा देते समय दिल के टुकड़े-टुकड़े हो गए! लगा समय से हाथ जोड़कर विनती करूं थोड़ा-सा रुक जाओ। इतनी जल्दी मत करो। अरे इस अभागिन का इस निरीह बच्चे का कुछ तो ख्याल करो!

किन्तु समय कब किसके लिए रुका है! मैं व्याकुल हो उठा कि शर्मिष्ठा को पास खींचकर कसकर अपने बाहुपाश में लपेट लूं भींच लूं। उसे ऐसा आलिंगन दूं जिसे हम दोनों से भुलाए न भूल सकें। मृत्यु के क्षण भी जिसकी स्मृति हमें आनंद-विभोर और पुलकित कर दे ऐसा उसका चुंबन ले लूं!

और वह अबोध शिशु! बच्चे पिछले जन्म में तुमने ऐसा क्या पाप किया था जो एक सम्राट का पुत्र होकर भी किसी अपराधी के पुत्र का निराधार जीवन तुम्हारे हिस्से में आ गया है? अरे आज को ही तो ज्योतिषी ने बताया था कि तुम्हारी हथेली पर चक्रवर्ती पद का रेखाएं हैं। और उसके बाद अभी दो पहर भी नहीं बीते कि तुम्हें किसी बेसहारा भिखारी के लड़के की भांति नगर छोड़कर जाना पड़ रहा है!

जी करता कर रहा था कि एक बार पुरु को पास लेकर उससे प्यार कर लूं। किन्तु एक बार उसे पास ले लेता तो फिर उसे दूर करना कैसे सम्भव होता? दिल पर पत्थर रखकर मैंने शर्मिष्ठा को विदा दी। मुंह से नहीं—होंठों से आंखों से आंसुओं से!

नृत्यशाला लौटते समय एक सुंदर रत्नमाला मैं अपने साथ ले आया। जब मैं आया तब देवयानी भीलनी का नृत्य कर रही थी। सारे दर्शक मगन हो गए थे। भीलनी अपने चितवन के तीर चला चलाकर शंकर को प्रतिक्षण घायल कर रही थी मादक अंग विक्षेप से शबर के मन को उन्मादित कर रही थी। वह जरा भी लाग-लपेट करता तो बहुत ही लुभावनी अदा में मटककर उससे दूर हो जाती थी। प्रीतम के साथ इस तरह अठखेलियां करते हुए उसके मन को रिझाना देवयानी को खूब आता था किन्तु केवल कला की अभिव्यक्ति में! केवल एक कलाकार के रूप में! मेरे साथ ऐसी अठखेलियां उसने कभी की नहीं। क्या? ऐसा क्या होना चाहिए? देवयानी को विश्राम देने के लिए उसका नृत्य समाप्त होने पर बीच में

कुछ अन्य नृत्य रखे गए थ। अन्त म देवयानी का वर्षा नृत्य आरम्भ हुआ। वसन्त नृत्य म मुग्ध प्रणय की अभिव्यक्ति थी। इस नृत्य म उन्मत्त प्रणय प्रकट करना था। किन्तु देवयानी का यह नृत्य भी बडा सुन्दर रहा। फिर वही पहली मेरे सामने खडी हो गई। देवयानी के इस सारे उन्माद को एकान्त म क्या हो जाता है ? मेरे बाहुपाश म तो वह ऐसी हो जाती है जसे कलकल बहता पानी जम गया हो—एकदम भाव शून्य जड अचेतन ! ऐसा क्यो होता है ?

नृत्य रग पर आ गया था किन्तु मैं उसम रग न सका। मेरा सारा ध्यान माधव की ओर लगा था। वह अब तक वापस क्या नही आया ? क्या किसी ने उसके रथ को रोक लिया होगा ? नही ! यह सम्भव नही ! उसके पास राजमुद्रा है। फिर क्या उसे लौटने म इतनी देर हो रही है ? शायद रथ से उतरते समय शर्मिष्ठा रोने लगी होगी ! भावुक मन का माधव उसे सान्त्वना देते बठा होगा ! शायद वह उसे वापस भी ले आएगा ! यदि सचमुच उसने ऐसा किया तो—तो देवयानी जसी चडिका के चगुल से उसे मुक्त करने के लिए इस सारे किए कराए पर पानी फिर जाएगा !

एक सेवक ने चुपके से आकर राजमुद्रा मेरे हाथ म थमा दी। स्पष्ट हो गया कि नगर से काफी दूर—उस जीर्ण देवालय के पास—शर्मिष्ठा को छोडकर माधव लौट आया था। मेरा मन कुछ शात हुआ।

वर्षा नृत्य समाप्त हुआ। सभी कलाकार रसिक दर्शको ने सम्मान म तालियो की गडगडाहट की। देवयानी सबको अभिमानपूवक अभिवादन कर रही थी। तभी मैं उठा और उसके गले म वह रत्नमाला डालकर दर्शको को सबोधित करते हुए मैंने कहा यह पति द्वारा पत्नी की सराहना नही बल्कि एक साधारण रसिक द्वारा एक असाधारण कलाकार के सम्मान म अर्पण किया एक छोटा-सा नजराना है !''

सारी नृत्यशाला हसी और तालियो से गूज उठी। काफी समय तक हर्षोल्लास हिलोरें लेता रहा !

०

दूसरे दिन देवयानी काफी देर से सोकर उठी। वह बहुत ही थक गई थी। रात के नृत्य से उसका सारा बदन टूट रहा था।

सारे प्रसाधनो से सज-सवरकर वह मेरे महल म आई। फिर खिडकी से बाहर झाकते हुए उसने कहा बहुत ही सुन्दर प्रभात है ! देखिएगा न ! मैं खिडकी के पास गया। उसने हसते-हसते कहा रात को महाराज ने मुझे वह रत्नमाला पहना दी तब मुझे बहुत आनन्द हुआ इतना कि क्या कहू ! किन्तु सच बताऊ ?

हू !''

उस रत्नमाला से मुझे सन्ताप नही हुआ !

तुम हस्तिनापुर की महारानी हो। तुम्हें तो कुबेर का भडार भी प्राप्त हो सकता है !

मुझे क्या कुछ मालूम नहीं था!" फिर उद्यान में खिले फूलों की ओर एकटक देखते हुए उसने कहा, "स्त्री का मन पुरुष जान ही नहीं पाते!"

"तो कहो, क्या है अपने मन में क्या है। तब तो जान जाएगा न पुरुष?"

बहुत ही लुभावनी हँसी हँसते हुए उसने कहा, "एक इच्छा है!"

"बता दो!"

"उद्यान में कितने सुंदर सुन्दर फूल हैं। महाराज उनमें से अपनी पसंद के फूल स्वयं तोड़कर लाएँ! बहुत! ढेर सारे! मैं उन फूलों का गजरा बनाऊँगी, हार बनाऊँगी। महाराज गजरा अपने हाथों से मेरी वेणी में बाँध दें, हार मैं महाराज को पहना दूँगी—इच्छा यह है तो बचकानी-सी, किन्तु..."

मैं जान गया, क्या वह मुझे महल से बाहर भिजवा रही है। मन ही मन हँसता हुआ मैं नीचे उद्यान में गया। बहुत-से फूल तोड़ लिए। काफी समय हो गया लेकिन देवयानी उद्यान में आई नहीं। धूप चढ़ने लगी थी। मैं महल वापस आ गया। देवयानी वहाँ नहीं थी। उस बूढ़ी दासी को अपने महल में ले जाकर किवाड़ बंद करके वह भीतर बैठी थी। अन्य दासियाँ महल की तो अपना अपना काम कर रही थीं, किन्तु साफ दिखाई दे रहा था कि सबका ध्यान देवयानी के महल के बंद दरवाज़े पर ही था। सभी दासियों की आँखों में कुछ उसी तरह का भाव था जैसे आँधी-वर्षा में डरी चिड़िया सिमटकर दुबकती हुई किसी सहारे की खोज में होती है।

तीसरे पहर देवयानी मेरे महल में आई। उसका चेहरा बिल्कुल उतरा हुआ था। एकदम टेढ़ा-सा सवाल उसने किया, "कल रात बीच ही में महाराज नृत्य-शाला से उठकर महल आए थे?"

"हाँ!"

"किसलिए?"

"तुम्हारा वसंत-नृत्य देखने के बाद तुम्हें रत्नमाला देने की कल्पना मेरे मन में आई!"

मेरे चेहरे पर उठने वाले भावों को सूक्ष्मता से परखते हुए उसने कहा, "क्या महाराज को पता है कि शर्मिष्ठा गायब हो गई है?"

"शर्मिष्ठा गायब हो गई? कैसे?"

"अशोक वन से भाग गई वह!"

"कहाँ गई?"

"भाग जाने वाला यह थोड़े ही बताकर जाता है कि वह कहाँ जा रहा है!"

देवयानी का पासा उसी पर पलटा था। नहीं! मैंने पलटाया था। विजय का उन्माद मदिरा में भी विलक्षण होता है। संध्या तक मैं उसी के नशे में था। कहीं गया नहीं—माधव के यहाँ भी नहीं! कुछ भी किया नहीं। किन्तु—उसे पराभूत करने का आनंद कितना क्षणजीवी था, चार पहर बाद ही मुझे मालूम हो गया।

ग्नि न्त गया। रात आ गई। आज का रात कल जसी तूफानी नही थी। उसन अपनी चद्रिका की भूमिका छोड दी थी पूरी तरह स बदल दी थी। किसी मुग्ध प्रणयिनी की तरह शरमाती लजाती हुई वह आकाश के रगमहल म प्रवेश कर रही थी। रग मदिर मे आत आत यह सुदर रजनी एक एक रत्न दीप जलाते आ रही थी।

प्रत्येक तारा मेरे मन म शर्मिष्ठा की एक एक स्मृति जगाता था। दखते ही देखत मन म उसकी अनक मधुर और उन्मादक स्मृतिया जाग गइ। कुछ सुखदाई थी कुछ दुखदाई। कुछ समय बाद उनके काटे ही अधिक चुभन लग। आधी रात बीत जान पर भी मैं अपनी मुलायम सेज पर करवट बदलता तडपता रहा था। य स्मृतिया किसी भी तरह मेरा पीछा नहा छोड रही थी। शहद का छत्ता उतारने वाल को दश मार मारकर मधु मक्खिया जिस तरह उसका जीना हराम कर दती है इन स्मृतिया ने वसी ही हालत मेरी भी कर डाली थी।

कल रात शर्मिष्ठा को मुक्त करत समय मैं इस भ्रम म था कि मैं कोई बहुत बडा काम कर रहा हू। अब वह भ्रम मिट गया। कल की रात बार बार डसकर मुझसे पूछ रही थी इस समय कहा है वह शर्मिष्ठा जिस अपनी बाहो म भरत समय तुम स्वर्गीय आनन्द अनुभव कर रह थ? आज तुम महल म अपन पलग पर आराम म लटे हो! और वह? देख ओ निर्दयी जरा सोचकर देख! दख न बेरहम जरा आखें खोलकर दख ले। वीरान म किसी मचान पर धरती पर ही सोई है वह बिचारी अभागन! तरे दिल क मामन कठोर किसी पत्थर को सिरहाना बनाकर वह अभागन प्रणयिनी विश्राम करने का प्रयास कर रही है और उस सिरहान को वह आसुआ स नहला रही है। वह महज यह सोचकर अपन मन को समझा रही है कि मरी हा न? मरी हा न? कहते हुए मुझ सीन स कसकर लगा रखन वाल प्रीतम का मन भी मुझे इस तरह आधी-वर्षा म अकली छोडत समय जरा भी नही पसीजा तो भला सिरहान का यह पत्थर मरे आसुआ स कहा गलगा? जिनक अनगिनत चुम्बन लत हुए चुबना स भी तरी प्यास बुझती नही थी उसक उन्ही नाजुक होठो पर कोमल कपोला स अब सद हवाए उन्ह काट खाती खिलवाड कर रही है। देख अर बदर्द अच्छी तरह आखें मलकर दख ल। पुरु का ठण्ड न लग जाए इसलिए उस शात स बचान क लिए कैस वह अपनी सारी की सारी गरमाहट उस दन क लिए छटपटा रही है! और यहा महल म परा की सज पर तुझे शय्या सूझी है? यही है तरा शर्मिष्ठा स प्रेम? यही है तरा पुरु क प्रति वात्सल्य? तरी जगह कच होता ता - ता कल रात की आधी-वर्षा म वह स्वय रथ हाकता हुआ शर्मिष्ठा को नगर हिमालय म हस्तक्षेप निकल जाता!'

'तरी जगह कच हाता ता!

क्या ही विचित्र कल्पना थी यह! कच और ययाति! कितनी अजीब तुलना थी वह! किन्तु इस तुलना क कारण मर मन म कच की अनक स्मृतिया जाग

उठी। अगिरस ऋषि क आश्रम म हुई हमारी वह पहली भेट। मैं उस सुदर पछी पर तीर चलान वाला था। कच न मुझ वसा करन स रोक दिया था। मैंन कहा था उस पछी का रग मर मन का बहुत ही भाया है। उसन तुरत उत्तर दिया था बड़े रसिक मालूम दत हो। किन्तु भूलना नही कि जिसन तुम्ह यह रसिकता दी है उसीन उस पछी को जान भी दी है।

मेरा पुरु! वह भी तो उसी तरह एक निरीह नन्हा सुहाना पछी था किन्तु कल रात मैंन उसका

आश्रम की वह नन्ही सी लड़की! कच पर बडी श्रद्धा थी उस! एक अध खिली कली तोडकर वह कच का दने चली थी! किन्तु कच न उस कली तोडन के लिए मना किया। उसका हाथ अपन हाथो म लकर उसने कहा था बटी तुम्हारी यह सुदर भेंट मुझे मिल चुकी किन्तु इस लता पर ही रहन दो। यहा उसे खिलन दो। मैं प्रतिदिन यहा आऊगा उसस बात किया करूगा फिर तो बात बनी न ?'

मरी शमा! क्या वह भी इसी तरह एक अधखिली खुशबूदार सुहावनी कली नही थी ? कल रात मैंन उस—

मैं बहुत बचन हो गया। शायद थोड़ा मद्य लन स अच्छा लग यह सोचकर वह भी ल लिया। उसस शरीर को कुछ आराम महसूस हुआ। मन तनिक शात हुआ। धीरे धीरे मरी आख लग गई।

लकिन मैंन इतना विलक्षण सपना दखा कि मुझे लगा, अच्छा होता यू आख न लग पाती! उस सपन को दखत देखत ही मैं चौंककर पलग पर ऐस उछला, जस अधेरे म साप डसने की कल्पना स कोई तडाक स उठ बठता है।

मैंन दखत देखत शब्द कह तो दिए किन्तु उस स्वप्न म दखन लायक वाकई कुछ भी न था! स्वप्न म मुझ केवल दो आवाजें सुनाई पडती थी! पहली मरी अपनी आवाज थी, जिस मैंन फौरन पहचान लिया। किन्तु दूसरी आवाज किसकी थी, अत तक मैं पहचान नही पाया। कभी लगता अगिरस ऋषि के आश्रम म रहन वाल कच की वह आवाज है कभी लगता, जगल म मिले यति की है। फिर मन म आता कि नहीं! वह दूसरी आवाज भी मरी अपनी ही है किन्तु पहली की अपक्षा बिल्कुल निराली और बहुत कठोर!

यह दूसरा ययाति पहल वाल ययाति से पूछ रहा था क्या शर्मिष्ठा स तुम प्रेम करत थे ? सचमुच प्रेम करत थ ?'

पहल वाला ययाति बड़े अभिमान स उत्तर देता था 'इसम भी क्या कोई सन्देह हो सकता है ? मैं उमस प्रेम न करता होता तो कल रात तहखान स उसकी रिहाई करान क लिए वह साहस मैं कदापि न करता!

तुम उसीके साथ जगल म चल गए होते तो तुम्हारी यह बात कोई माने रखती! तुम्हारे लिए शर्मिष्ठा न क्या नही किया ? बोलो! उसने अपना सवस्व तुम्ह अपण किया। तुम्हार चरणो की धूल को फूल मानकर माथे स लगा लिया! और तुम ? उसके लिए राजपाट का त्याग करना तुम्हारा कत्तव्य था। घडी-भो

ग्नि ढल गया। रात आ गई। आज की रात कल जैसी तूफानी नहीं थी। उसने अपनी चंडिका की भूमिका छोड़ दी थी पूरी तरह से बदल दी थी। किसी मुग्ध प्रणयिनी की तरह शरमाती लजाती हुई वह आकाश के रंगमहल में प्रवेश कर रही थी। रंग मंदिर में आते आते यह सुन्दर रजनी एक एक रत्न दीप जलाते आ रही थी।

प्रत्येक तारा मेरे मन में शर्मिष्ठा की एक एक स्मृति जगाता था। देखते ही देखते मन में उसकी अनेक मधुर और उन्मादक स्मृतियां जाग गईं। कुछ सुखदाई थीं कुछ दुखदाई। कुछ समय बाद उनके कांटे ही अधिक चुभने लगे। आधी रात बीत जाने पर भी मैं अपनी मुलायम सेज पर करवटें बदलता तड़पता रहा था। ये स्मृतियां किसी भी तरह मेरा पीछा नहीं छोड़ रही थीं। शहद का छत्ता उतारने वाले को दंश मार मारकर मधु मक्खियां जिस तरह उसका जीना हराम कर देती हैं इन स्मृतियों ने वैसी ही हालत मेरी भी कर डाली थी।

कल रात शर्मिष्ठा को मुक्त करते समय मैं इस भ्रम में था कि मैं कोई बहुत बड़ा काम कर रहा हूं। अब वह भ्रम मिट गया। कल की रात बार-बार डसकर मुझसे पूछ रही थी इस समय कहां है वह शर्मिष्ठा जिसे अपनी बांहों में भरते समय तुम स्वर्गीय आनन्द अनुभव कर रहे थे? आज तुम महल में अपने पलंग पर आराम से लेटे हो! और वह? देख ओ निर्दयी जरा सोचकर देख! देख ले बेरहम जरा आंखें खोलकर देख ले। वीरान में किसी मचान पर धरती पर ही सोई है वह बिचारी अभागन! तेरे दिल के समान कठोर किसी पत्थर को सिरहाना बनाकर वह अभागन प्रणयिनी विश्राम करने का प्रयास कर रही है और उस सिरहाने को वह आंसुओं से नहला रही है। वह मन ही मन यह सोचकर अपने मन को समझा रही है कि मेरी हो न? मेरी हो न? कहते हुए मुझे सीने से कसकर लगा रखने वाले प्रीतम का मन भी मुझे इस तरह आधी-वर्षा में अकेली छोड़ते समय जरा भी नहीं पसीजा तो भला सिरहाने का यह पत्थर मेरे आंसुओं से क्यों गलेगा? जिनके अनगिनत चलते हुए चुंबनों से भी तेरी प्यास बुझती नहीं थी उसके उन्हीं नाजुक होठों पर कोमल कपोलों में अब तेज हवाएं उछल थपेड़े खाती खिलवाड़ कर रही है। देख अरे बेदर्दी अच्छी तरह आंखें मलकर देख ले। पुरु को ठण्ड न लग जाए इसलिए उस शीत से बचाने के लिए कैसे वह अपनी सारी की सारी गरमाहट उस तन के लिए छटपटा रही है! और यहां महल में परी की सेज पर तुझे शय्या सूझी है? यही है तेरा शर्मिष्ठा से प्रेम? यही है तेरा पुरु के प्रति वात्सल्य? तेरी जगह कच होता तो - तो कल रात की आधी-वर्षा में वह स्वयं रथ हांकता हुआ शर्मिष्ठा को लेकर हिमालय में हंसत-हंसत निकल जाता।"

तेरी जगह कच होता तो!

क्या ही विचित्र कल्पना थी यह! कच और ययाति! कितनी अजीब तुलना थी वह! किन्तु इस तुलना के कारण मेरे मन में कच की अनेक स्मृतियां जाग

उठी। अगिरस ऋषि के आश्रम में हुई हमारी वह पहली भेंट। मैं उस सुन्दर पछी पर तीर चलाने वाला था। कच ने मुझे वैसा करने से रोक लिया था। मैंने कहा था उस पछी का रंग मेरे मन को बहुत ही भाया है। उसने तुरंत उत्तर दिया था बड़े रसिक मालूम होते हो! किन्तु भूलना नहीं कि जिसने तुम्हें यह रसिकता दी है उसीने उस पछी को जान भी दी है।'

मेरा पुरु! वह भी तो उसी तरह एक निरीह नन्हा सुहाना पछी था किन्तु कल रात मैंने उसका

आश्रम की वह नन्ही-सी लड़की! कच पर बड़ी श्रद्धा थी उसे। एक अधखिली कली तोड़कर वह कच को देने चली थी। किन्तु कच ने उसे कली तोड़ने के लिए मना किया। उसका हाथ अपने हाथों में लेकर उसने कहा था बेटी तुम्हारी यह सुंदर भेंट मुझे मिल चुकी किन्तु इस लता पर ही रहने दो। यहां उसे खिलने दो। मैं प्रतिदिन यहां आऊंगा उससे बातें किया करूंगा फिर तो बात बनी न?'

मेरी शमा! क्या वह भी इसी तरह एक अधखिली खुशबूदार, सुहावनी कली नहीं थी? कल रात मैंने उसे—

मैं बहुत बेचैन हो गया। शायद थोड़ा मद्य लेने से अच्छा लगे यह सोचकर वह भी ले लिया। उससे शरीर को कुछ आराम महसूस हुआ। मन तनिक शांत हुआ। धीरे धीरे मेरी आंख लग गई।

लेकिन मैंने इतना विलक्षण सपना देखा कि मुझे लगा अच्छा होता यूं आंख न लग पाती! उस सपने को देखते-देखते ही मैं चौंककर पलंग पर ऐसे उछला जैसे अंधेरे में सांप डसने की कल्पना से कोई तड़ाक से उठ बैठता है।

मैंने 'देखते-देखते' शब्द कह तो दिए किन्तु उस स्वप्न में देखने लायक वाकई कुछ भी न था! स्वप्न में मुझे केवल दो आवाजें सुनाई पड़ती थीं! पहली मेरी अपनी आवाज थी जिसे मैंने फौरन पहचान लिया। किन्तु दूसरी आवाज किसकी थी अंत तक मैं पहचान नहीं पाया। कभी लगता अगिरस ऋषि के आश्रम में रहने वाले कच की वह आवाज है कभी लगता जंगल में मिले यति की है। फिर मन में आता कि नहीं! वह दूसरी आवाज भी मेरी अपनी ही है किन्तु पहली की अपेक्षा बिल्कुल निराली और बहुत कठोर!

यह दूसरा ययाति पहले वाले ययाति से पूछ रहा था क्या शर्मिष्ठा से तुम प्रेम करते थे? सचमुच प्रेम करते थे?'

पहले वाला ययाति बड़े अभिमान से उत्तर देता था इसमें भी क्या कोई सन्देह हो सकता है? मैं उससे प्रेम न करता होता, तो कल रात तहखाने से उसकी रिहाई कराने के लिए वह साहस मैं कदापि न करता।"

तुम उसीके साथ जंगल में चले गए होते तो तुम्हारी यह बात कोई मान रखती! तुम्हारे लिए शर्मिष्ठा ने क्या नहीं किया? बोलो! उसने अपना सर्वस्व तुम्हें अर्पण किया। तुम्हारे चरणों की धूल को फूल मानकर माथे से लगा लिया! और तुम? उसके लिए राजपाट का त्याग करना तुम्हारा कर्तव्य था। यही—

घड़ी मदहोशी लाने वाले शरीर सुख को ही प्रेम नहीं कहा करते। प्रेम तो उस उत्कटता का नाम है जो प्रिय व्यक्ति पर अपने प्राण तक हंसते हंसते न्योछावर कर देती है। उठो। अब भी समय है। उठो और इसी वक्त राजप्रासाद से बाहर निकलकर उसकी खोज करने लगो। उसे ढूंढकर ही दम लो। उसे यहां ले आओ। देवयानी के सामने उसे खड़ी करो और कहो देवयानी से मनुष्य की अंतरात्मा जिस प्रेम की भूखी होती है वह प्रेम मुझे इसने ही दिया। मेरी प्रिय रानी के नाते वह इस राजमहल में रहेगी।'

असंभव! सर्वथा असंभव है यह! मुझमें इतना धैर्य कहां जो देवयानी से यह कह दूं? उसका डांट भरा स्वभाव उसका वह महाक्रोधी पिता! नहीं! यह असम्भव है!

तूफान और मूसलाधार वर्षा में अपने भविष्य की रत्ती भर भी चिंता न करते हुए जो साहस शर्मिष्ठा कर सकी वह तुम '

चुप भी करो!"

डरपोक! स्वार्थी! लंपट!

शब्द क्या थे? घनों के आघात ही थे वे! वह आघात मेरे लिए असह्य हो गया और छटपटाता हुआ मैं उठ बैठा।

वह सारी रात मैं तड़पता रहा। बार बार जी में आता कि जी भर मदिरा ले लूं। मन के वृश्चिक दंश की ये सारी वेदनाएं भुला दूं! इस दुख पर दवाएं दो ही होती हैं—मदिरा और मदिराक्षी! किंतु

प्रात देवयानी को पता चल गया कि रात मैंने मदिरा पी थी तो? वह पहले ही आगबबूला है। उस आग में घी पड़ गया तो?

बहुत कष्ट से मैंने अपने मन को रोका!

प्रात देवयानी एक अशुभ समाचार लेकर ही आई! माधव का स्वास्थ्य कल रात अचानक ही खराब हो गया था। उसे तेज ज्वर था।

यह खबर देकर वह रुकी और मेरी ओर घूरकर देखने लगी। फिर खिलकर हंसते हुए उसने कहा जानते हैं आप आपके इस मित्र को इतना तेज ज्वर क्यों हो आया है?

नहीं तो! परसों रात मेरे साथ वह तुम्हारा नृत्य देखने आया था। बीच में ही उठकर चला गया। बाहर बहुत तेज तूफान चल रहा था। मेरी समझ में न आया वह कहां चला गया है। इसलिए मैं स्वयं उठकर उसे ढूंढने गया किन्तु वह वहीं पर भी दिखाई नहीं दिया!

महाराज को वह दिखाई देता भी कैसे? महाशय गए थे किसी स्वर्ग पर चढ़ने! रात बड़ी देर के बाद घर लौटे। कहते हैं—पूरे भीग कर तर हो गए थे! पता नहीं, मदिरा पीकर वर्षा में कहां पड़ा था वह!

राजवैद्य को तुरंत माधव के यहां भिजवाने का प्रबंध मैंने कर लिया। दो घड़ी बाद मैं स्वयं भी उसके यहां जाने को निकला। किन्तु रथ में बैठते समय मन

एकदम उदास हो गया था। जीवन क्या केवल सुख दुख की आँख मिचौनी का नाम है?

माधव का घर पास आया। रथ की चाल मन्द हो गई। मैं युवराज था तब भी ऐसी ही वचन मन स्थिति म माधव के साथ एक बार यहा आया था। वह प्रसग याद हो आया। माधव की नन्ही-सी भतीजी तारका न उस दिन मेरे मन का बडा दिलासा दिया था। उसके वे प्यारे प्यारे तोतले बोल मेरे कानो से फिर गूजने लगे। य युवलाज क्या होता है? पलनाम कलन के लिए य क्या भगवान है? युवलाज आप अपना एक पाला मुझे देंगे? ओ युवलाज आप कनोज दूला मली गुल्या का?

रथ रुका। दरवाजे म एक लडकी खडी थी। जी हा वह तारका ही थी। लेकिन अब कितनी बडी दिखाई देने लगी थी! अब तो वह मूदी कली नही रह गई थी, बल्कि एक खिलती कली के समान दिखाई देने लगी थी।

मुझे देखते ही वह शरमा गई। नीचे देखने लगी। बचपन की नटखटता से विमुक्त दौडते-कूदते अब वह यौवन की देहली पर रुकी थी। क्षण भर के लिए उसने पलकें उठाकर देखा। उसकी मोहक आख! मुझे मुख के दो तारा को पास पास देखने का आनन्द मिला!

वह फुर्ती स मुडी और भीतर चली गई। माधव के कमरे म पैर रखने पर मेरे ध्यान म आ गया कि तारका ने इतनी जल्दी क्यों की थी। मेरे लिए उसने एक सुदर आसन लाकर रखा था।

माधव जल बिन मछली की तरह तडप रहा था। उसकी नाडी हाथ म थामे राजवैद्य बैठे थे। उन्होंने मेरी ओर निराशा से देखा। मैं हक्का बक्का रह गया।

तभी एक युवती कोई लेह लेकर भीतर आई। मैं उसका चेहरा देख न सका। वैद्यजी की सहायता स वह माधव को लेह चटाने लगी। मैंने उसे पीठ की ओर से देखा झुकी हुई देखा उकडू बैठी देखा। उसके सभी अग विशेषा को देखा। मुझे लगने लगा हो न हो यह स्त्री मेरी जानी पहिचानी है। माधव के घर म तो इतनी तरुण स्त्री कोई न थी। माधव की मा बूढी हो चुकी थी। तारका की मा कभी की स्वग सिधार चुकी थी।

माधव को सन्निपात हो गया था। बीच म ही बड़बडाते हुए वह कहने लगा महारानी महारानी

वह स्त्री धीरे स उसे बताने लगी महाराज आए हैं महारानी नही।"

उस स्त्री ने माधव के माथे पर रखी औषधि की पट्टी बदली और वह घर म जाने के लिए मुडी। अब उसकी मुद्रा मुझे साफ-साफ दिखाई दी। वह मुकुलिका थी!

मुकुलिका! मा ने उसे नगर स निकाल दिया था। किन्तु उसने जो कुछ भी किया था उसमे क्या उसकी अकेली का दोष था? एक विचित्र करुणा की टीस मेरे मन म उठी। सामने मृत्युशय्या पर पडा माधव—मेरे लिए परसो यह मूसला

धार वषा की परवाह न करते हुए भीगते चला था। आज वहोशी में यहा पडे पडे तडप रहा है। वस ही यह मुकुलिका—

मैंने सहानुभूति भरे स्वर में पूछा कैसी हो मुकुलिके ? अच्छी तो हो न ?

आगे आकर मुझे प्रणाम करते हुए उसने कहा महाराज की कृपा से दासी ठीक से है।

चेहरे पर शर्मीली मुस्कान लिए वह कोने में खडी रही। उसकी ओर देखते देखते मुझे लगा यौवन भी कितना नाजुक फूल है ! मुकुलिका मेरी सेवा के लिए अशोक वन में थी तब

उस रात की याद ताजा हो गई। पिताजी की मृत्यु की कल्पना से मैं बहुत ही परेशान और वेचैन था। जैसे तप्त मरुभूमि से चलते आया कोई पथिक पेड की छाव खोजता रहता है उसी तरह मैं भी अपनी मानसिक वेदनाओं से छुटकारा पाने की कोशिश कर रहा था। मुकुलिका ने ही मुझे उस मुक्ति का माग दिखाया था। उसके और मेरे अधरों का मिलन होते ही मेरे मन में तब तक समाया हुआ मृत्यु का वह अजीब भय एकदम गायब हो गया था।

एक बीमार की शय्या के पास बैठकर पुरानी कामुक स्मृतियों में रंग जाने वाले अपने मन पर मुझे शरम आने लगी। राजवैद्य को आठों पहर माधव के पास बैठने का आदेश देकर मैं कमरे से बाहर आ गया। मुकुलिका भी मेरे पीछे पीछे आ गई। शर्मीली मुस्कान से उसने कहा महारानी जी को अब तक मैंने देखा ही नही है !

माधव अच्छा हो जाए तब राजमहल आ जाना दर्शन हो जाएगे ! '

क्या युवराज चलने लगे ? बोलने लगे ? महाराज को वे कैसे पुकारते है ?

मैंने उसे कोई उत्तर नही दिया। किन्तु मेरे कानों में तत तत शब्द गूजने लगा। परसो शाम मैं देवयानी के महल में गया तब शर्मिष्ठा की गोद में बैठा पुरु मुझे इसी शब्द से पुकार रहा था ! जैसे कलकल करता झरना पहाडी से नीचे लपकता है वैसे वह शर्मिष्ठा की गोद से अठखेली करता हुआ मेरी ओर लपकना चाहता था। देवयानी को कहीं सन्देह न हो जाए इसलिए उसकी पुकार पर मैंने कोई ध्यान ही नही दिया था। अपनी इस उपेक्षा से उस नन्ही सी जान को कितना दुःख हुआ होगा ! शर्मिष्ठा का अन्तिम विदा देते समय भी मैंने उसे अपनी गोद में नही लिया था न ही उसे आजीवन याद रहे ऐसे चुम्बनों की बरसात उस पर की थी। उसे ममता के अपने आसुओं में नहलाया नही। पिता भी क्या इतना निमम हो सकता है ?

अब इस समय पुरु कहा होगा ? शर्मिष्ठा क्या कर रही होगी ? बचपन में अपनी गुड़िया की शादी में भी मोतियों के अक्षत फेंकने वाली शर्मिष्ठा आज अपने बच्चे के लिए किसके द्वार पर आसू बहाते हुए रोटी के दो टुकडों के लिए मोहताज होगी ?

मुझे चुप देखकर मुकुलिका कुछ असमंजस में पड़ गई। उसने मुलायम स्वर में कहा 'मुझसे क्या कोई भूल हो गई, महाराज?'

अपने मन की विकलता को छिपाने के लिए मैंने कहा "नहीं! नहीं! तुमसे नहीं मुझसे ही भूल हुई है! तुम इतने दिनों बाद मिलीं। माधव जैसे मेरे परम मित्र की शुश्रूषा करते हुए मैंने तुम्हें देखा। फिर भी कहो कैसी हो? इतना ही कहकर मैं रह गया! अच्छा यह तो बताओ तुम माधव के यहां कैसे आ गई?"

वह कहने लगी "एक महात्मा की सेवा कर रही हूं मैं। तीर्थयात्रा करते-करते वे यहां आए हुए हैं। नृत्यशाला के पास वाले मठ में हम लोग रहते हैं। माधव को ज्वर आते ही उसकी मां बहुत घबरा गई। बिचारी ने अनेक संकट झेले हैं। अब तो उनका मन जैसे टूट-सा गया है। सुना कि इन दिनों माधव को किसी लड़की से प्यार हो गया है! उसका विवाह भी शीघ्र ही होने जा रहा था। परसों रात ही माधव आपको सब बताने वाला था! किन्तु बिल्कुल ही अचानक यह अजीब बीमारी घर में आ गई। ज्वर चक्कर दो पहर भी नहीं बीते कि माधव को सन्निपात भी हो गया। बुढ़िया का तो रहा-सहा धीरज भी टूट गया। वह मठ में गुरुमहाराज का प्रवचन सुनने के लिए आया करती थी। उसने गुरु महाराज की गुहार की। उन्होंने मंतर चलाकर कोई भभूत उसे दी। यह जानकर कि माधव के घर में सिवा तारका के और कोई नहीं है उन्होंने मुझे यहां भेज दिया।"

"तुम्हारे इन गुरु महाराज के हम एक बार अवश्य दर्शन करेंगे! उनके प्रवचनों में मन को शांति मिलती हो तो मुझे भी उसकी आवश्यकता है!'

मुकुलिका ने इसपर कुछ कहा नहीं। केवल हंस दी।

उससे विदा लेते समय मैंने कहा 'मुकुलिके माधव मेरा दूसरा प्राण है। ऐसा मित्र संसार में दूजे नहीं मिलेगा। एकदम जी-जान लगाकर उसकी सेवा करना। मैं तुम्हारे इस उपकार को भुलाऊंगा नहीं!'

फिर से शर्मीली मुस्कान के साथ उसने कहा "चलिए भी महाराज यह भी भला कोई कहने की बात हुई?

उस रात भी मुझे नींद नहीं आई। मन पहले तो मुकुलिका के बारे में ही काफी देर तक सोचता रहा। राजमाता वानप्रस्थ होकर चली गई इसीलिए शायद उसे हस्तिनापुर कदम रखने की हिम्मत हुई थी! किन्तु मैं इस बात पर हैरान नहीं था कि उसने फिर से नगर में पांव धरने की हिम्मत दिखाई थी! मैं हैरान तो था यह देखकर कि पिछली अशोक वन वाली मुकुलिका और आज की मुकुलिका में बहुत अन्तर था। वह एकदम बदल गई थी! वह मुकुलिका लंपट थी और यह मुकुलिका सेवाशील! जिन साधु महात्मा की टोली में यह रहती है उनके दर्शन अवश्य ही करने होंगे! कौन कहे शायद वह कोई त्रिकालज्ञ महात्मा हों! शर्मिष्ठा और पुरु का पता उनसे मालूम हो सकता तो

मन में यह विचार आया ही था कि लगने लगा कोई मुझे जलते अंगारों पर से घसीटते हुए ले जा रहा है। शर्मिष्ठा कहां होगी? पुरु क्या कर रहा होगा?

सौन्दर्य ने मुझे आकर्षित कर लिया। सोचा माधव बहुत ही भाग्यशाली है। माधव ने अपनी प्रेयसी से कहा "आओ, यहाँ मेरे पास बैठ जाओ। शरमाओ नहीं।" फिर राजवैद्य की ओर मुड़कर उसने कहा "वैद्यराज मैं इस बीमारी से अच्छा तो हो जाऊंगा न?"

राजवैद्य ने कहा "कुछ दिन जरूर लग सकते हैं किन्तु आप निश्चय ही अच्छे हो जाएंगे।"

फिर मेरी ओर मुड़कर माधव ने कहा "महाराज मैं अभी मरना नहीं चाहता। मैं मर गया तो तारका को कौन सम्भालेगा? मैं ऐसा ही तड़पकर यदि चल बसा तो उसका मतलब होगा मैंने इस माधवी को धोखा दिया। हमने और मैंने मिलकर काफी स्वप्न सजोए हैं। महाराज यह बहुत ही प्यारी और निष्पाप लड़की है। आपकी भाभी है। हमारा विवाह होने के बाद आप जब हमारे यहाँ भोजन करने आएंगे न तब क्या-क्या पकवान बनाने हैं इसका भी निर्णय इसने अभी से कर रखा है। लता-कुंजों में बैठकर आँखों ही आँखों से हम दोनों ने घण्टों बातचीत की है। नदी किनारे हाथ में हाथ लिए केवल स्पर्श द्वारा सम्भाषण करते हमने कई घड़ियाँ बिताई हैं। हमने चार आँखों से जो जो सपने देखे हैं उन्हें सच्चाई में उतारने तक मुझे जीना चाहिए। महाराज! मैं जीवित रहूंगा न? महाराज मुझे वचन दीजिए! चाहे जो करना पड़े तुम्हें जीवित रखूंगा ऐसा वचन दीजिए!"

उसकी बातों में कहीं कोई असंगति नहीं थी। किन्तु मुझे लगा यह सब वह सन्निपात में बड़बड़ा रहा है। उसके सन्तोष के लिए मैंने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर उसे वचन दिया "चाहे जो करना पड़े तुम्हें जीवित रखूंगा।" उसी समय राजवैद्य ने मेरी तरफ बहुत ही विचित्र और विषण्ण दृष्टि से देखा। तुरंत उन्होंने अपने बटुए में से कोई मात्रा निकाली और मुकुलिका से उसे घिसकर लाने को कहा।

इतने दिन बेहोशी में असंगत बोलने वाला माधव अब एकदम धड़ाधड़ बोल रहा था। वह माधवी से कह रहा था "याद है न हमारे यदि पहली लड़की हुई तो उसका नाम मेरी पसंद का रखा जाएगा और लड़का हुआ तो उसका नाम तुम्हारी पसन्द का। यही हमने तय किया है याद है न? मंजूर है न? देखो भला! वरना बाद में झगड़ा करने लगोगी!"

वह बेचारी क्या बोलती! एकान्त के तरल स्वप्नों का वह संगीत उस मृत्यु शय्या की पृष्ठभूमि पर पुष्पों की फुहार सा प्रतीत हो रहा था।

मुकुलिका मात्रा घिसकर ले आई। वह राजवैद्य माधव को चटाने लगे। किन्तु उसने उनका हाथ एकदम झटक दिया। राजवैद्य ने इशारे से उसकी प्रेयसी से कहा कि वह चटा दे। उसने अपना हाथ उसके मुँह के पास किया। तभी माधव ने उसका हाथ कसकर पकड़ लिया और बोला "यह देखो हमारा विवाह सम्पन्न हो गया है न?" फिर दो तीन घड़ी वह ऐसा ही कुछ बड़बड़ाता रहा और एकदम

स्तब्ध हो गया। अब उस पसीने के स्रोत छूटने लगे। हाथ पाँव ठण्डे पड़ने लगे। साँस उखड़ने लगी! राजवैद्य लगातार मालिश किए जा रहे थे। किन्तु सब कोशिशें बेकार हो गई! उसके प्राण पखेरू कब उड़ गए किसीको पता भी न चला!

०

दोपहर में माधवी का हाथ हाथ में लेकर उससे यह देखा हमारा विवाह सम्पन्न हो गया कहने वाले माधव का शव शाम को चिता पर पड़ा था। उसकी अचेतन देह मुझसे देखी नहीं जाती थी। कहाँ गायब हो गई उसकी वह मुक्त हँसी? उसका हमेशा मुझे दिलासा देने वाला वह स्पर्श – मैं यहाँ उसके स्तन के करीब खड़ा हूँ फिर भी माधव अपना हाथ क्या नहीं हिला रहा है? हमेशा की तरह अपने मीठे स्वर में "महाराज" कहकर मुझे क्या नहीं पुकार रहा है? मुझमें जी-जान से प्रेम करने वाले मेरे इस अभिन्न मित्र के हृदय की सारी सम्भावनाएँ आज ही एकाएक कहाँ खो गई हैं? मेरा माधव कहाँ चला गया है?

ये सवाल किसी बच्चे की भाँति मुझे मथता रहे थे।

चिता जल उठी। माधव का शरीर धीरे धीरे अग्नि की भेंट होने लगा। मैं देख रहा था—पहले आँसू पोंछता हुआ बाद में पत्थर सा स्तब्ध होकर!

जब भी हो मैं तुम्हें जीवित रखूँगा मैंने माधव को वचन दिया था। मैं हस्तिनापुर का सम्राट था किन्तु अपना वचन निभा न पाया था!

जीवन और मृत्यु! कितना क्रूर मेल है यह! क्या केवल यह खेल खेलने के लिए ही मनुष्य इस संसार में आता है? वह किसलिए जीता है? क्या मरता है? माधव जैसा युवक बिल्कुल असमय इस संसार को छोड़कर क्यों चला जाता है? मन के सपनों की कलियों को अधखिली छोड़कर माधव कहाँ चला गया? वह माधवी को छोड़कर जाना नहीं चाहता था फिर भी उसे जाना पड़ा। सवाल है, क्या? उसने ऐसा क्या अपराध किया था जो भाग्य ने उसे यह दण्ड दिया?

चिता पूरी तरह भभक उठी थी। उसकी लपलपाती लपटें अपना काम किए जा रही थी। माधव! मेरा माधव! सामने जलती ज्वालाओं में राख का ढेर जलता दिखाई देने लगा था। क्या यही है मेरा मित्र! वह कहाँ गया? अब वह कोई सपने नहीं देख सकेगा। माधवी ने भी नहीं!

मृत्यु! जीवन का कितना भयंकर रहस्य है! समुद्र के किनारे कोई नन्हा सा बालक रेत का किला बनाता है। ज्वार की एक बड़ी लहर उमड़कर आती है और वह किला ऐसा गायब हो जाता है कि कोई निशाना तक पीछे नहीं छोड़ता। मानव-जीवन क्या उस रेत के किले से भिन्न है? मानव के रूप में हम जिसका सम्मान करते हैं परमात्मा की कृति की प्रतिमा मानकर जिसके कर्तृत्व की हम पूजा करते हैं वह आखिर कौन है? क्या है? विश्व के विशाल वृक्ष का मात्र एक नन्हा सा पत्ता!

एसा पत्ता जो हवा के यार्क के साथ कब टूटकर गिर जाएगा कोई नही जानता ! और—और मैं—मैं ययाति—मैं हस्तिनापुर का सम्राट—मैं भी कौन हू ? एक क्षुद्र मानव—एक नन्हा सा पत्ता—जो कब टूटकर गिर जाएगा, कोई नही जानता !

माधव से अंतिम विदा लेकर मैं लौट आया। वह रात ! नही ! वह रात क्या थी प्रतिक्षण फुफकार कर आक्रमण करने वाली काली नागिन ही थी !

मन बार बार मृत्यु के बारे म सोच रहा था। विचारों के उस भीषण विवत म बाहर निकलना मेरे लिए असभव सा हो रहा था। मैं बहुत चाह रहा था कि ऐसे समय देवयानी आए मेरे पास बठे माधव की मृत्यु पर शोक प्रकट करे उसकी गोद म सिर रखकर मैं माधव के गुणो का बखान करू और दोनो के आसुओ का सगम हो जाने पर फिर उसकी बाहो म सो जाऊ – ऐसे जसा कोई डरा हुआ बालक अपनी मा की गोद म निश्चित होकर निद्रा के अधीन हो जाता है। किन्तु देवयानी ने बस इतना ही कहा माधव चल बसा बहुत बुरा हुआ। इसस आगे वह न तो एक शब्द बोली न ही उसने मेरे प्रति कोई समवेदना प्रकट की। मैंने जब कह दिया कि खाने को जी नही करता तब उसने आग्रह स यह भी नही कहा कि चलो दो कौर तो खा लो। मैं जब अपने महल म जाकर पडा तडपता रहा तो वह उधर फटकी तक नही।

बहुत देर तक मैं बाहर के अधरे की ओर शून्य मन से देखता रहा।

उस अधेरे म अचानक मुझे राजमार्ग पर एक रथ दिखाई देने लगा। मैं खडा था उसी ओर वह रथ तेजी से चला आ रहा था किन्तु उसके पहियो से जरा-सी भी आहट नही आ रही थी। हा उस अधेरे म भी रथ के काले घोडे मुझे साफ साफ दिखाई दे रहे थे। मैं घूर घूरकर देख रहा था। अपनी आखो पर विश्वास नही कर पा रहा था। उद्यान के सभी फूल पौधो को कुचलता हुआ वह रथ सीधे आगे आया जिस खिडकी के पास मैं खडा था उसीके आगे वह रुका। सारथी ने धीरे से पूछा चलिएगा महाराज ?

मैंने कहा महारानी सोई है। छोटा यदु भी सोया है। उनसे विदा लिए बिना !

अपने आगे के शब्द मुझे ही सुनाई नही दिए। देखते ही देखते उस सारथी का हाथ लम्बा लम्बा होता हुआ खिडकी तक आ पहुचा। उसने मुझे इतनी आसानी से उठा लिया जसे बगीचे के किसी पौधे का फूल तोड लिया हो। उसने मुझे अपने रथ म रख लिया।

रथ चलने लगा। हस्तिनापुर का एक एक चिरपरिचित स्थान पीछे छूटने लगा। यह देवालय यह नत्यशाला यह माधव का घर यह रहा वह विशाल क्रीडागण जहा बचपन म नगरोत्सव म उस उन्मत्त घोडे पर मैंने सवारी करने का पराक्रम किया था—

रथ और तेज़ी या हवा से बातें करता रहा ! यह यह अशोकवन भी पीछे

छूट गया। अब मुझसे रहा न गया। मैंने सारथी से पूछा "कहां लिए जा रहे हो ?"

उत्तर मिला— मैं नहीं जानता !'

'हम लोग वापस कब लौटेंगे ?'

मैं नहीं जानता !'

मैंने चिढ़कर पूछा 'तो तुम क्या जानते हो ?'

केवल दो नाम !'

किसके ?

एक महाराज का !"

और दूसरा ?'

मेरा अपना !'

क्या है तुम्हारा नाम ?"

'मृत्यु !'

कितना भयंकर आभास था वह ! मैंने उस खिड़की के मोखचा को दोनों हाथों से मजबूती से पकड़ लिया। फिर भी मुझे लगने लगा कि भय से थरथर कांपता हुआ मेरा शरीर शायद नीचे गिर जाएगा।

बड़ी मुश्किल से मैं पलंग पर जा बैठा। फिर भी सीने में धकधक हो ही रही थी। पांव थरथर कांप ही रहे थे। लाख कोशिश करने पर भी मन स्थिर हो नहीं पा रहा था।

बार बार मैंने मदिरा पी। छककर पी ली। दो-तीन घड़ी बाद मुझे कुछ अच्छा लगने लगा। धीरे धीरे नशा छाने लगा। आंखें भारी होकर झपकने लगीं। किन्तु उसी अवस्था में मैंने एक भयंकर सपना देखा। स्वप्न में मेरे सामने एक चिता जल रही थी। उस चिता में मेरा एक एक अंग जलकर राख होता जा रहा था।

देखते ही-देखते मेरी आंखें कान होंठ हाथ-पांव सब राख हो गए ! अब मेरे लिए उनका कोई उपयोग नहीं था। आंखों में वह सौम्य सुंदर प्रभा जो किसी मुग्ध युवती सी आई थी अब दिखाई देने वाली नहीं थी। उग्र और उन्मादक मदिरा के समान ही मेरे होंठों का अब अमृत भरे सजीव होंठों का स्पर्श नहीं होगा।

महकते हुए सोन चम्पा के फूलों और पूरे पके अनानास की भीनी भीनी खुशबू के समान ही प्रगाढ़ आलिंगन में एकजीवी बनी प्रेयसी के केश शृंगार की मंद सुगंध भी अब फिर कभी मैं नहीं ले पाऊंगा।

इस दृश्य को देखते देखते मेरा नशा एकदम उतर गया। मैं पलंग पर उठ बैठा। मेरी छाती जोरों से धड़कने लगी। मानो मृत्यु का भय मेरे हृदय पर चोट पर चोट मारता जा रहा था और उसके आघातों की प्रतिध्वनि मेरे कानों में पड़ रही थी !

मेरा मन पीछा करने वाले शिकारी से जान बचाकर भाग खड़े होने वाले हिरन के समान दिशाहीन भटकने लगा। मदिरा के सिवा उसे स्थिर करने का अन्य कोई सहारा नहीं दीख रहा था।

बरसों से इतनी मदिरा मैंने कभी नहीं पी थी। धीरे धीरे उसका नशा मुझपर सवार होता गया। वह उन्माद दूसरे उन्माद को भी जगाता गया। मुकुलिका अलका शर्मिष्ठा देवयानी की कमनीय आकृतियां मेरी वासना को उद्दीप्त करने लगीं आंखों के सामने नाचने लगीं।

अलका नीचे झुककर अपनी वेणी में गूंथे गजरे की सुगंध जैसे मुझे सूंघ रही थी। उस सुगंध को सूंघते-सूंघते मैं मन्हाश हो गया। वह दूर जाने लगी। तुरंत ही मैंने वह गजरा उसकी वेणी से खींचकर उतार लिया। मैं दोनों हाथों से उसके सभी फूलों को मसल मसलकर नाक के पास ले गया। कांपती आवाज में अलका ने पूछा — ऐसा भी क्या युवराज? मैंने उत्तर दिया अभी मेरा जी भरा नहीं। और, सुख और सुगंध चाहिए!'

अलका को अपनी बाहों में भरकर उसके अधरों की आंखों की बालों की गालों की सारी सारी सुगंध का आस्वाद लेने के लिए मैंने अपनी बाहें फैलाई। किन्तु—मैंने आंखें खोलकर देखा—बार बार देखा। अपने महल में मैं अकेला ही था। और अलका? वह कहां है? तहखाने में? नहीं! या कहीं और छिपी बैठी है? खरगोश के बिल में या शेर की गुफा में? अलका, अलका मैंने जोर से आवाज दी।

मेरी इस पुकार का किसीने उत्तर दिया। किन्तु वह अलका नहीं थी मुकुलिका थी। वह कहां थी? दूर? नहीं! मेरी बाहों में थी! मैं उसका चुंबन ले रहा था। वह मुझे चुंबन दे रही थी। मैं आकाश का एक एक नक्षत्र गिनता था और उसका चुंबन ले रहा था! नक्षत्र गिनकर समाप्त हो जाने पर चुंबन लेना नहीं रुकता। किन्तु—किन्तु मेरे होठों को यह एकदम ठण्डा ठण्डा सा क्या लग रहा है? मुकुलिका कहां है? वह तो माधव के घर उसकी सेवा कर रही है! किन्तु माधव घर पर कहां है? वह—वह मृत्यु का हाथ पकड़कर--मेरे होठों को होने वाला यह ठण्डा स्पर्श कहीं मृत्यु का तो नहीं?

मैंने फिर आंखें खोलकर देखा। अपने महल में मैं अकेला ही था। शायद मृत्यु अदृश्य रूप में मेरे चारों ओर मंडराती होगी! क्या जीवन की यह मेरी अन्तिम रात है? कौन जाने? इस अन्तिम रात का आनन्द सुख लूटने दो जी भर कर उसका उपभोग कर लेने दो। जीवन का खाली होता जा रहा यह प्याला एक बार एक ही बार स्त्री सुख की फेनिल मदिरा से भर लेने दो। आखिरी प्याला—यह आखिरी प्याला!

'शर्मिष्ठा शर्मिष्ठा शमा शमा!

मैं उठा। मेरे पैर लड़खड़ा रहे थे। शरीर का संतुलन संभालना न संभलता था। फिर भी मैं उठा और मन्दिर के द्वार की ओर में आगे बढ़ बाहर जाने लगा।

०

देवयानी के महल के द्वार पर उसकी दासी ऊंघ रही थी। मेरी आहट पाते ही वह हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई।

गौरता हुई वह भीतर चली गई। मैं उसके वापस आने की प्रतीक्षा करना चाहता था। महारानी का सन्देशा आने के बाद ही भीतर जाना उचित था - मन यह जानता था किन्तु तन का धीरज टूट रहा था।

क्या हर वासना मेरे जैसी होती है? उस पर बार बार जिस उपभोग का चसका लग जाता उसी के पीछे वह पागल की तरह भागती है! शायद वासना के केवल जीभ ही होती है! भगवान ने उसे कान आंख मन हृदय कुछ भी नहीं दिया है। उसे अन्य किसी बात की पहचान होती ही नहीं है। वह पहचानती है केवल अपने सन्ताप को!

बहुत मदिरा पी चुकने के कारण मैं कदम कदम पर डगमगाता जा रहा था। फिर भी मैं देवयानी के मन्दिर में पहुंच गया। वहां क्या हुआ अब ठीक से याद नहीं आ रहा। मानो मैं किसी घने कुहरे में चला जा रहा था।

याद केवल एक ही बात है। उस समय मुझे देवयानी की चाह थी। पल भी दूर किए बिना उसे मैं अपनी बांहों में चाहता था! और चाहता था कि यह अपना सारा सौन्दर्य मेरी सेवा में प्रस्तुत कर दे! किन्तु तत्काल उसके ध्यान में आ गया कि मैंने मदिरा ली है। वह आगबबूला हो गई चिढ़ गई कुपित हो गई। मैं भी झल्लाया चिल्लाया। बात से बात बढ़ती गई। बनगड़ बन गई। बीच में गलती से मेरे मुंह से शर्मिष्ठा का भी नाम निकल गया! फिर तो जैसे आग में घी गिरा। वह शुक्राचार्य के क्रोध और उनके भयंकर अभिशाप की बात करने लगी। अन्त में उसने मुझसे एक सौगन्ध उठवाई। शुक्राचार्य के नाम पर मुझे सौगंध उठाने के लिए बाध्य किया कि—

मैं इसके आगे तुम्हें कभी स्पर्श नहीं करूंगा!"

मैं पराभूत और अतृप्त अवस्था में उसके महल से बाहर आया। अब इस राजप्रासाद में जहां मुझे अपनी पत्नी को स्पर्श तक करने का अधिकार नहीं रहा था एक क्षण के लिए भी रहने में कोई मतलब नहीं था! मैंने अपने मन में निश्चय किया, इस राजप्रासाद में फिर कभी कदम नहीं धरूंगा। अब से हमेशा के लिए अशोक वन में ही रहूंगा। इस देवयानी का मुंह भी फिर कभी नहीं देखूंगा। मैं अशोक वन में शर्मिष्ठा की याद में दिन काटूंगा!

अशोक वन जाने के लिए मैं रथ में बैठा। बारी बारी से देवयानी और शर्मिष्ठा की आकृतियां मेरी आंखों के सामने नाच रही थीं। मैं दोनों को चाहता था। किन्तु एक ने मुझे झटका दिया था। और दूसरी? दूसरी को मैंने अपने से दूर धकेल दिया था!

रथ अशोक वन के मार्ग पर चला ही था कि ये दोनों आकृतियां एक हो गई। उनमें से एक अलग ही लावण्यवती युवती उत्पन्न हुई। वह रमणी प्रति पल नय

नये उन्मादक रूप धारण कर रही थी। अंत में वह अलका बन गई फिर मुकुलिका बन गई।

मुकुलिका! उसके व गुरु महाराज! नत्यशाला के पास वाले मठ में ही वे लोग ठहरे थे। यह बात मुझे याद आई। सोचा अशांत बन जाकर रात भर तड़पते रहने के बजाय क्या न उस गुरु महाराज से मिलूं? देखूं वे मन की शांति का कोई उपाय बताते हैं या नहीं! सारथी से मैंने रथ उस मठ में ले चलने को कहा।

असमय मुझे मठ के द्वार आया देखकर मुकुलिका क्षण भर के लिए कुछ चौंकी किन्तु दूसरे ही क्षण शर्मीली मुस्कान के साथ वह मुझे अपने गुरु महाराज के पास ले गई।

गुरु महाराज मुझे बड़े राजयोगी लगे। मुझे लगा शायद मैंने उन्हें पहले भी कहीं देखा। किन्तु ऐसा मुझे केवल क्षण भर ही लगा! याद मुझे कुछ भी नहीं आ रहा था।

मैंने अपना दुःख गुरु महाराज को बता दिया। मैंने मदिरा पीकर उस पवित्र स्थान में आने के लिए क्षमा करने की प्रार्थना भी उनसे की। इसपर हंसकर उन्होंने कहा महाराज! मन की शांति का आधा उपाय तो आपने कर ही लिया है!

मैं समझा नहीं। शंका भरे स्वर में पूछा मतलब?"

महाराज! यह मृत्युलोक है। यहां का मानव जीवन अत्यंत दुःखों से भरा है। इन दुःखों को भुलाने की केवल दो ही दिव्य औषधियां इस मृत्युलोक में हैं!

मैंने उत्सुकता से पूछा वे कौन-सी?'

मदिरा और मदिराक्षी!

मैं चकित हो गया। किन्तु मन कड़ा करके पूछा मद्यपान तो महा पाप

गुरु महाराज ने कहा पाप और पुण्य तो धूर्त पण्डितों और मूर्ख मनुष्यों द्वारा घड़ी गई कल्पनाएं हैं। इस दुनिया में केवल सुख या दुःख ही सत्य है बाकी सब माया है। पाप और पुण्य मन के मात्र आभास हैं कल्पना के मल हैं। मैं अपने भक्तों को तीर्थ के रूप में हमेशा मदिरा ही बांटा करता हूं!

समझ नहीं पा रहा था कि वहां मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा।

गुरु महाराज ने कहा महाराज आपको मन की शांति चाहिए न? उसे देने वाली अनेक देवियां मेरे वश में हैं। उनमें से किसी की भी आप आराधना कीजिए।

वे उठे और चलने लगे। मैं मंत्रमुग्ध मनुष्य के समान चुपचाप उनके पीछे-पीछे जाने लगा। पैर तो मैं हमेशा की तरह धरती पर ही रख रहा था किन्तु क्षण-क्षण, प्रतिपल लगता था मैं किसी पर्वत की चोटी पर से नीचे गहरी खाई में लुढ़कता जा रहा हूं। उस खाई का कोई अंत नहीं है। प्रकृति के प्रारम्भ से आज तक सूर्य की एक भी किरण इस खाई में कभी आई ही नहीं है।

शर्मिष्ठा

मैं फिर हस्तिनापुर जा रही थी ! अठारह बरस बाद ! जिस पथ से आई थी उसी पथ से ! और उतनी ही भयग्रस्त मन स्थिति म !

इस मार्ग पर बडे-बडे वृक्ष आज भी वसे ही खडे है। मन्दिरों के कलश भी पहले जसे ही सूरज की सुनहरी किरणो म चमक रहे है। गाव और देहात रात की गोद म पहले जसे ही शाति के साथ सो रहे हैं। इन अठारह वर्षों म कुछ भी तो बदला नही है ! किन्तु शर्मिष्ठा अवश्य

क्या मैं ही वह अठारह वष पूव वाली शर्मिष्ठा हू ? नही ! यह शर्मिष्ठा एक एम भिन्न है वह शर्मिष्ठा मा थी तो पत्नी भी थी प्रणयिनी भी थी। आज की शर्मिष्ठा केवल मा के रूप म शेष है। इस एक प्रश्न के अलावा कि मेरा पुरू कुशल स तो होगा न ?' उसे दूसरा कुछ भी सूझ नही रहा।

शुक्राचाय की घोर तपस्या के कारण चिन्ताग्रस्त कच यति अगिरस आदि ऋषि मुनियो का जिस बात का भय है उसका भय मेरे मन को स्पश तक नही कर पा रहा है। मुझे बस एक ही भय है—पुरू कहा होगा ? विजयी यदु के साथ क्या वह हस्तिनापुर जाएगा ? गया तो क्या देवयानी उसे पहचान लेगी ? उसकी शक्ल-सूरत महाराज से काफी मिलती है ! देवयानी ने उसे पहचान लिया तो

मेरे साथ सरक्षक तो हैं ही। कि तु उनके अलावा यह अलका भी तो है। इस सुनहरी केश वाली लडकी को पुरू स प्रेम हो गया है। उसे वह कभी कह कर नही जताती ! किन्तु खिलते फूलो को कोई कितना ही छिपाकर रखे, सुगध से तो उनका पता चल ही जाता है न ! इस लडकी ने मेरे साथ आने की जिद की। पुरू को मनाने के लिए इसका उपयोग हो सकता है ऐसा मुझे भी लगा। इसलिए इसे भी साथ ले आई हू। किन्तु कातर बेला म यह ढीठ लडकी जाख पोछने लगती है तो मेरा भी दिल भर आता है ! आधी रात बीतते तक फिर आख नही लग पाती। पिछले अठारह वष की सारी याद सजीव होकर मन के रगमच पर एक एक कर आने लगती है। बिल्कुल उस भयकर आधी रात स लगाकर

०

उस आधी रात म माधव चला गया। मैं गहरे अधेरे म मूसलाधार वर्षा म अकेली रह गई ! अकेली ? नही ! मेरा पुत्र जो था मेरे पास ! भीगकर तर हो

गया मेरा पुत्र! — कल यदि वह बीमार पड गया तो?

उन उद्दण्ड पंच महाभूतो पर मुझे बडा क्रोध आ गया। इतना भी उनके ध्यान मे नही आ रहा था कि एक मा अपने सुकुमार बच्चे को लेकर इस निर्जन प्रदेश मे अकेली खडी है! चाहिए तो था कि वे मुझे धीरज बधाते मेरा हौसला बढाते। किन्तु उल्टे वे मुझे डरा रहे थे। यह काट खाती तेज हवा यह काला स्याह आकाश ये कडकती बिजलिया—ये भला मुझ पर कहा तरस खाने वाले थे? जहा मानव पाषाण बन जाता है वहा पाषाणो से मानवता की आशा करना बेकार ही है! देवयानी तो मेरे प्राण लेने पर तुली थी! महाराज हिम्मत न दिखाते तो उसी तहखाने मे शर्मिष्ठा का अभागा जीवन समाप्त हो गया होता! किन्तु

क्या जीवन का दस्तूर यही है कि एक सीमा से परे जाकर मनुष्य प्रेम भी नही कर सकता? यह सच है कि महाराज ने मेरे प्राणो की रक्षा की! किन्तु अपनी लाडली शर्मिष्ठा को इस तरह अनाथ और असहाय बनाकर आधी रात मे अकेली उनसे कैसे छोडा गया? काश वे यह कहते कि शर्मिष्ठे मुझे यह राजपाट नही चाहिए ऐश्वर्य नही चाहिए मुझे केवल तुम्हारी चाह है। चलो मैं भी तुम्हारे साथ आता हू। आओ हम दूर कही हिमालय की तलहटी मे जाकर सुख से रहेगे! ऐसा होता तो मुझे कितना आनन्द होता कितना धीरज बध जाता!

मैं उन्हे अपने साथ हरगिज न आने देती! किन्तु इन मधुर शब्दो का पाथेय उन्होने मुझे दिया होता तो उमडते घुमडते बादलो की गडगडाहट और बिजलियो की कडकडाती चकाचौंध मे भी प्रीति का यह सजीवनी मन्त्र मेरे कानो मे हमेशा गूजता रहता! किन्तु शर्मिष्ठा इतनी भाग्यशालिनी कहा थी?

वह नही सकती उस रात मैं कितना चल गई बस इतना चल पाई पुरु को लिए इतना चलना मेरे लिए कैसे सम्भव हो पाया पिशाच की तरह चीखती हवा से बिना डरे डायन की भाति झपटती बिजलियो की तनिक भी परवाह न करते हुए आधिया देने वाले अधेरे मे हार न मानते हुए क्षण मैं सारी रात भर चलती रही! पता नही शायद विपदाओ मे मनुष्य की सारी शक्तिया जागकर शत्रु का मुकाबला करने लगती है! किन्तु राजकन्या के नाते लाड प्यार मे पली हमेशा पालकी मे बैठकर ही घूमती फिरती रही और फूलो के पावडो पर ही चलती आई शर्मिष्ठा घने जगलो मे काटो भरी राहो पर कितने ही पहर बीतते चलती ही रही राह काटती ही रही। हस्तिनापुर को पीछे छोडकर मृत्यु की गुफा से दूर और दूर भागती ही रही! उस समय वह महाराज वृषपर्वा की कन्या नही थी। ययाति महाराज की प्रेयसी नही थी। इस ससार मे उसका बस एक ही नाता शेष था। वह एक बच्चे की मा थी। उस नन्हे-से ठिठुरते जान के प्राण से लिपटे होने के कारण उसके अग अग मे चैतन्य दौड रहा था। उस बालक के लिए वह जिन्दा रहना जा रही थी। उस पाल-पोसकर बडा करने वाली थी। आगे भर कर उसका पराक्रम देखने वाली थी और उसके बाद ही मृत्यु को अगवानी करने वाली थी।

दूसरे दिन प्रात एक छोटे से गाव म किसी मन्दिर म तनिक विश्राम के लिए मैं रुकी। मेरे सामने मुह बाए प्रश्न खडा था कि आगे जाऊ भी तो कहा ? क्या पिताजी के पास चली जाऊ ? ध्रुवेन को देखकर वे बहुत खुश होंगे किन्तु यह मालूम करने पर कि शर्मिष्ठा देवयानी की सौत हो गई है और देवयानी उसके प्राण लेने पर तुली है उनकी सारी खुशिया गायब हो जाएगी ! तपस्या म रत शुक्राचार्य कही मुझे कोई अभिशाप देकर समूचे राक्षस वश का सहार न कर डालेंगे यह भय उन्हे सताने लगेगा। पिताजी के पास जाकर उन्हे ऐसे सकट म डालने से तो

मैं सोचने लगी। सचमुच इतनी चहलपहल वाले इस ससार म भी आखिर मानव कितना अकेला है ! इतनी विशाल दुनिया मेरे चारो ओर फैली हुई थी किन्तु उसम इस नन्ही-सी जान के अलावा किसीपर मेरा कोई बस नही था !

सवेरे सवेरे ही मन्दिर म एक दयालु स्त्री आई। उसने मुझसे पूछताछ की। आग्रह पूर्वक वह मुझे अपने घर ले गई। उसकी ममता देखकर मेरे आसू आ गए। पता नही इस दुनिया म भगवान किस रूप म और कब मिल जाए ! मुझे देखकर उसे ऐसे लगा जैसे छोटी बहन मायके आ गई हो।

चार दिन आनन्द से कट गए। उस काल रात्रि म उठाने पडे कष्टो के कारण मुझे भय था कि कही पुरु बीमार न पड जाए। किन्तु वह भय टल गया। यह गाव हस्तिनापुर से बहुत दूर नही था। इसीलिए म सोच म पडी थी कि यहा रहू या न रहू। किन्तु उस स्त्री से भी मन इतना हिल गया था कि समझ म नही आ रहा था कैसे उसका स्नेह बधन तोड दू !

पाचवे दिन रात म मुझे गहरी नीद लग गई थी। मेरी गोद म पुरु एक कली के समान सिमटकर सो गया था। मीठे मीठे सपनो की लहरो पर मैं तैरती जा रही थी। उन सपनो म पुरु महाराज को तात तात कहकर पुकार रहा था। अपनी नन्ही-नन्ही बाहे फैलाकर उनकी ओर लपक रहा था। अन्त म उसने अपनी दोनो बाहे उनके गले म डाल ही दी।

उसी क्षण म चौककर जाग गई। मेरे गले म किसीके हाथ ? नही ! किन्तु एक अजीब थरथराता खुरदरा स्पश मैंने महसूस किया। और तभी आखो के सामने इस घर के स्वामी की कामुक नजर कौंध गई। इस पापी स्पश ने मुझे उस नजर का सारा अथ समझा दिया। दीदी कहकर मैं जोर से चीखी ! जल्दी जल्दी बाहर जाता पदचाप सुनाई दिया ! दिया जलाकर दीदी दौडकर मेरे कमरे म आई। मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए उसने पूछा क्या हुआ बहन ?'' मैं घबडाकर बिस्तर पर उठ बैठी थी। मैंने कहा शायद बदन पर से कोई चीज सरसराती चली गई। उसने फुर्ती से अपने पति को पुकारा। नीद टूटने का अभिनय करता हुआ वह कमरे म आया। दोनो ने हाथ म दिया लेकर कमरे का कोना-कोना छान मारा। किन्तु मनुष्य के रूप म जो रहा सप भला ऐसे कैसे मिलता ? मुझे अपनी इस पूवजन्म की बहन पर तरस आ गया। भाग्य भी कितना चक्की होता है ! उसने इस फूल का जन्म से ही उस काटे के साथ बाध दिया था !

मैंने मन म नयी गाठ वाध ली। आज तक मैं राजमहल म रही थी। वहा मेरा सौन्य सुरक्षित था। अब उसीके कारण वाहर की दुनिया म मुझपर अनक सकट आ सकते थे। केवल पुरू का ही वचाने से काम नही चलने वाला था। अपने आपको भी बचाना आवश्यक हो गया था।

दूसरे दिन सवेरे ही मैंने बहुत से झूठे वहाने बनाकर बडी ही मुश्किल स अपनी उस वहन से विदा ली। उसके घर से जाते समय मैंने कितनी ही बार पीछे मुड मुडकर देखा। इस कल्पना स कि पता नही फिर स उसकी भेंट होगी भी या नहीं मेरी आखें पनिया गइ। क्या सयोग और वियोग के अदभुत रसायन का ही नाम जीवन है?

गाव के बाद गाव पीछे छोडती हुई मैं चली जा रही थी। टेढी मेढी राहा को जानवूझकर चुनती थी। बडे-बडे गावा से कन्नी काटती जा रही थी। बार-बार मैं मन को समझा रही थी कि हस्तिनापुर से जितना हो सके उतनी ही दूर निकल जाना है किसी भी गाव म एक दिन स अधिक ठहरना नही है मन की असली बात किसीसे नही कहना है अपना असली अता-पता किसीको नही बताना है। कोई बहुत ही जिद स पूछने लगे तो मैं बस इतना ही कहती थी कि पति मुझे और इस नन्हे वच्चे को छोडकर हिमालय चला गया है उसीकी खोज म निकली हू। सुनकर किसीकी आखें भर आती थीं कोई मेरी बात पर ताना फूमी करते हुए मेरी हसी उडाते थे।

मुझे भय था कि प्रवास म कष्ट स पुरू ऊव जाएगा किन्तु वैसा कतई नही हुआ। उस तो हर नया गाव नये खिलौने सा लगता। प्रतिदिन नये घर नये पखेरू नये फूल नये बच्चे नये मदिर नये लोग देखकर वह उनकी नवीनता म ही रम जाता।

धीरे धीरे मैं हस्तिनापुर से काफी दूर निकल गई। चलते चलते थक गई थी। इसलिए तय किया कि एक गाव म कुछ दिन रुक जाऊ। एक रईस विधवा ने अपने घर म मुझे प्रश्रय दिया। उस बुढिया ने कुरेद-कुरेदकर मुझसे पूछा बेटी तुम कौन हो? कहा की रहने वाली हो? मैंने वही पहले स तय किया हुआ उत्तर दे दिया। इसपर उसने अत्यत ममता स कहा, चाद सी पत्नी को छोडकर तेरे पति ने स यास ले लिया! किसी किसीके भाग्य म भी क्या-क्या अजीब वातें होती है!

दिन भर वह बार बार मुझे घूर घूरकर देखती थी। मैं समझ नहा पा रही थी कि यह मेरे सौन्दर्य की सराहना है। या दाल म कुछ काला है! मन बचैन था। रात म बिस्तर पर लेटी। बडी देर तक नींद ही नही आई। नींद की आराधना करते करते मैं महाराज के सहवास म बिताए—उनकी बाहा म अनुभव किए—सुख के क्षणों को याद करने लगी। उन क्षणा की स्मृतिया को मैंने तरतीब स एम सजा रखा था जस पूजा की सुगन्ध का निर्माल्य निरन्तर इत्र की तरह किसी कंकुपी म रखा जाता है! किन्तु उन मधुर स्मृतिया के कारण दिन का

दु ख और भी बढ गया। अन्त म नींद को ही मुझपर कुछ दया आ गई।

उस वचन नींद म न जाने किस रोशनी के कारण मैं जाग पडी ! कोई दीवा बिल्कुल मेरे चेहरे के पास ले आया था। फिर तुरन्त हटा लिया गया। मैंने अध मुन्दी आखो से देखा। वह बुढिया एक तरुण से कानाफूसी करती हुई कुछ बुल्बुना रही थी। आखें मूदकर मैं सुनने लगी। हस्तिनापुर मुनादी बडा इनाम आदि कुछ इक्के-दुक्के शब्द विष की बून्द के समान मेरे कानो म पडे ! मेरा तो सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई।

बोलते बोलते उन दोनो की आवाज कुछ तेज हो गई। वह तरुण कह रहा था 'नहीं ! यह शर्मिष्ठा हो ही नहीं सकती। इसके चेहरे पर राजकन्या जैसा थोडा भी तेज है ? तुम्हे उस इनाम का लालच हो गया है ! इसीलिए "

वे दोनो आपस म झगडते हुए बाहर चले गए। मेरा कलेजा मुह को आ गया। मेरी काख म शान्ति से सोया पुरू मेरे आसुओ के कारण जाग गया। दो घडी बाद घर म सवत्र सन्नाटा छा गया। मैं उठी और उस आधी रात म उठकर उस घर से चल पडी।

०

पीछा करने वाले बहेलिया के डर से जैसे हिरनी भागती है उसी तरह मैं लुकती छिपती बडे गावो से बचती बचाती केवल रात म ही किसी मदिर या सराय का सहारा लेती चली जा रही थी। किसी दिन जी बहुत ही ऊब जाता। लगता, किसी दिन अनायास ही पकडे जाने के भय से हमेशा बनी रहने वाली यह आखमिचौनी खेलते रहने से क्या लाभ है ? आज नहीं तो कल इसी अवस्था म मौत आनी है तो इतना कष्ट झेलने म भी क्या धरा है ? इससे तो अच्छा है कि इन्हीं कदमो हस्तिनापुर लौट जाऊ देवयानी के सामने सीना तानकर खडी हो जाऊ और कह दू तू मेरा सिर ही काटना चाहती है न ? ले काट ले ! किन्तु तुरन्त काख म सोए पुरु के चेहरे पर खेल रही मुस्कान पर मेरी नजर जाती और मैं मन ही मन कहती कोई परवाह नहीं यदि देवयानी मेरा सिर उतार देता है। किन्तु इस मेरे लाडले का बाल भी बाका नहीं होना चाहिए !'

इस पुरु के लिए मुझे जीना होगा। कितने भी कष्ट झेलने पडे तब भी इसके बडा होने तक मुझे जीना ही पडेगा। तब तक हलाहल के सागर पीने होंगे ! विपदाओ के मेरु मदार पर्वत लाघने होंगे !

चार दिन बाद मैं एक देहात के मदिर के पास आ गई। शाम हो गई थी। इसलिए सोचा कि रात भर के लिए उस मदिर के पास वाली धर्मशाला म रहू। पास के ही कुए पर पुरु के हाथ-पाव धोकर मैंने उसे मदिर के सभा मण्डप म खेलने के लिए छोड दिया। वह फुदकता फुदकता इधर उधर देख रहा था। आने जाने वाले स्त्री-पुरुष मन्दिर का घण्टा बजाते थे। घण्टे की आवाज सुनकर पुरु अपने नन्हे नन्हे हाथो से तालिया बजाता था। बार बार बज उठने वाले उस घण्टे को

देखकर उसपर भी उसको बजाने की सनक सवार हो गई। वह मुझे उस घण्टे की ओर खींचने लगा। मैं एक खम्भे की ओट में विश्राम कर रही थी। पहले तो मैंने कुछ आनाकानी कर दी। टालमटोल करके भी देखा। किन्तु बालहठ के सामने माँ की एक नहीं चलती! उद्धत और ऊटपटांग ढंग से मैंने उसे घण्टे के पास ले जाकर ऊँचा उठाया। किलकारियाँ भरते हुए उसने अपना हाथ घण्टे की ओर बढ़ाया ही था कि मंदिर के पास ही मुझे मुनादी सुनाई दी। मुनादी पीटने वाला चिल्लाकर कह रहा था

भाइयो सुनो! मुनादी सुनो! हस्तिनापुर की महारानी देवयानी देवी के राजमहल में एक सुंदर दासी भाग गई है। उसका नाम शर्मिष्ठा है। इस शर्मिष्ठा के पास एक छोटा सा बच्चा है। वह नामी व्यभिचारिणी है। उसे उसके बच्चे के समेत जो कोई हस्तिनापुर में महारानी के सामने लाकर खड़ा कर देगा उसे बड़ा इनाम दिया जाएगा।

मुनादी के पहले शब्द सुनते ही मेरे पाँव काँपने लगे। पुरु को मैंने ऊँचा उठाया हुआ था। किन्तु मुझे लगने लगा कि शायद वह मेरे हाथों से छूटकर नीचे गिर जाएगा। मैं और भी डर गई और धम्म से नीचे बैठ गई।

बच्चे की दुनिया कितनी सुखी हुआ करती है! उसके अज्ञान में कितना आनंद होता है! इस मुनादी के एक शब्द का भी अर्थ पुरु की समझ में नहीं आया था। इसलिए घण्टा बजाने की धुन में ही वह मस्त था। घण्टा बजाने को नहीं मिला इसीलिए वह हाथ पाँव पटकने लगा। गला फाड़कर रोने लगा। मेरे कानों में तो वही मुनादी गूँज रही थी! छाती जोर जोर से धकधक कर रही थी। पुरु को रोता देखकर एक अधेड़ आदमी मेरे पास आया और बोला बच्चा रो रहा है! इसे चुप क्यों नहीं कराती? देखती क्या नहीं आखिर यह चाहता क्या है?" फिर तुरंत ही वह मेरी ओर घूरकर देखने लगा।

घने झाड़ में अपने शिकार की ओर देखने वाले शेर की-सी लगी मुझे उसकी नजर! मैंने रोते हुए पुरु को उठा लिया और धर्मशाला में आ गई। अँधेरा होते ही मैंने धर्मशाला से प्रस्थान किया।

उस मुनादी ने मुझे अजीब पशोपेश में डाल दिया था। मैं समझ गई कि भीड़ भड़क्के वाले बाजार मंदिर धर्मशाला जैसे स्थानों में इससे आगे ठहरना मेरे लिए खतरे से खाली नहीं। पता नहीं इनाम के लालच में केवल संदेह से भी कोई मुझे पकड़वा दे! अब तो यह नितांत जरूरी हो गया था कि कोई ऐसा भेष बना लूँ जिससे लोगों को यह पता चले कि मुनादी वाली दासी मैं नहीं हूँ! क्या रहे यदि मैं पुरु को किसी ऐसी स्त्री के पास रख दूँ जिसके अपना कोई बच्चा नहीं हो? किन्तु इस कल्पना मात्र ने मेरे दिल के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। पुरु को अपने से दूर कर दूँ? नहीं! यह कदापि संभव नहीं! उसके बिना मैं कैसे जीती रहूँगी? पुरु तो आँखों के लिए चाँद सूरज था। उसकी कोमल स्पर्श मेरे लिए सरस गुदगुदी था। उसका चुम्बन तो मेरा ऐसा धन था जिसके सामने

सुधर का भण्डार भी थोड़ा रह जाता। धीमे में ही यदि मुस्कराता तो मुझे आधी रात में अस्थायी का आनन्द मिलता। अब तो मुझे उसी के लिए जीना था।

पुरू का निर्णय मैं उस अधर में ही ले बैठी। यह बात मन पर गहरी अंकित कर ली। अब किसी गाँव में किसी के घर भी मुकाम नहीं करना है। गाँव के बाहर कहीं पर भी कभी जाने देवालय में कभी किसी कुटिया में मौका लगा तो खुले मैदान में भी धरती का बिछौना बनाकर सोना है। प्राण जाए तब भी इस नियम को निभाते ही रहना है।

इसके बाद चार-पाँच दिन तो आराम से गुजरे। सुनन्दा की याद कुछ धुँधली पड़ गई। बच्चे की स्मृति से धीरज बढ़ने लगा। बच्चे द्वारा दिया हुआ वह वस्त्र अब तक मैंने अपनी गठरी में ही रखा था। आज पहली बार मैंने उसे पहिन लिया।

उस दिन एक गाँव के बाहर निर्जन देवालय में मैंने पड़ाव डाला था। देवालय की चारों ओर घना जंगल था। क्षण भर तो कुछ डर लगा था। सोचा इस जंगल का शेर आकर इस देवालय में ही सोया होगा तो—फिर मन में विचार आया कि दुष्ट आदमियों की अपेक्षा तो जंगल के आदमखोर जानवर ही अच्छे हैं। देवालय में भगवान की मूरत के सामने अखण्डदीप जल रहा था। मैं पुरू को थपकियाँ देकर गोद में सुला रही थी। तभी कोई वैरागी मन्दिर में आया। वह सीधे भगवान की मूर्ति की ओर गया। शायद मेरी गोद में लेटे पुरू का ध्यान उसकी ओर था। वह एकदम उठ बैठा। वह तत-तत-तत कहकर जोर-जोर से पुकारने लगा। मूर्ति के सामने खड़ा वह वैरागी दंग हो गया। उसकी दृष्टाकृति देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। पीछे से वह ठीक महाराज की तरह दिखाई दे रहा था। तब मेरे ध्यान में आया क्या पुरू उसे तत-तत-तत कहकर पुकार रहा है। मानव मन भी कितना भोला भाला होता है! आशा से एक क्षण में वह कितना पागल बन जाता है! मन में आया कि उस दिन महाराज ऋषि का वेश बनाकर अशोक वन में मेरे पास आए थे। कहीं उसी वेश में अब वे मुझे खोजने तो नहीं निकले हैं? कहीं नियति की योजना ऐसी ही तो नहीं कि हम दोनों का पुनर्मिलन इस जीर्ण देवालय में इस बीहड़ जंगल में हो?

वह वैरागी मुड़ा और तेजी से डग भरता हुआ मेरे सामने से निकल गया। मैंने उसका चेहरा गौर से देखा। नहीं! महाराज की मुद्रा में उसका कोई साम्य नहीं था।

लेकिन पुरू अवश्य ही तत-तत-तत कहकर रोने लगा। अशोक वन में जब वह रोने लगता तो मैं उसे महाराज का चित्र दिखाकर चुप करती थी। फिर वह शान्त हो जाता था। किन्तु यहाँ यहाँ महाराज की मूर्ति मेरे हृदय पर अंकित तो थी, किन्तु पुरू का कम बहलाती?

यह सोचकर कि शायद ठण्डी हवा में पुरू जल्दी सो जाएगा मैं उसे लेकर देवालय के बाहर आ गई। चारों ओर चाँदनी फैली थी। सारी सृष्टि ऐसे लग रही थी जैसे सहस्र पंखुड़ियों वाला कोई श्वेतकमल पूरा खिल गया हो। सामने

फना घना जगल चान्दनी म नहा रहा था—नहाते शिशु सा प्यारा प्यारा लग रहा था। और समय डरावनी लगनेवाली झुरमुट वाटिया इस समय बगीचे के फूल पौधा की सी नाजुक प्रतीत हो रही थीं। चादनी की लोरी सुनत सुनत ससार धरती की गोद म शाति के साथ सो गया था।

पथ भूला एक न हा-सा पछी कलरव करता मेरे सामने स निकल गया। वो देखा चू चू करकर मैंने उस पछी की ओर उगली उठाई। पुरु देखने लगा और खुशी से तालिया बजाने लगा। मैं कुछ और आगे बढी। किन्तु वह पछी गायब हो गया। फिर भी पुरु उस पछी के लिए जिद कर बैठा। इशारे स वह मुझे आगे चलने को कहने लगा। सामने का वन किसी ऋषि के प्रशात आश्रम सा प्रतीत हो रहा था। एक पगडण्डी पर चलत चलत मैं आगे बढने लगी। पगडण्डी की एक ओर कोई जगली लता खिली थी। नाखन के आकार क नन्हे-नन्हे नीले फूल उसपर लगे थ। उन फूलो के गुच्छे बहुत ही सुन्दर थ। दो गुच्छे तोडकर मैंने पुरु को दिए। उन्हें नचाते हुए वह खिलखिलाकर हसने लगा।

अब तो उस चान्दनी ने मुझे ही मोहकर पागल बना दिया। वक्षो के नीचे उसने क्या ही सुदर रगोलिया बनाई थी। पडो के शिखरो पर मानो वह गुलाबजल छिडक रही थी। हस्तिनापुर से चलने क बाद मैंने किसी गाने की कोई पक्ति तक नहीं गुनगुनाई थी। किन्तु यहा तो आनद मन म भरकर वह निकला था और उस अवस्था म अनायास ही मन म गीत जागा जैसे कोई कली कब खिल जाती है, पता ही नही चलता। मैं भूल गई कि कहा हू, किस सकट म हू यहा चली आ रही हू। एक धुन म गाकर मैं चलती जा रही थी। कवियो ने कहा है कि चन्द्र मदन का मित्र होता है। आज मैंने भी उस कवि-वचन का अनुभव किया। इस चादनी म भी वही मदहोशी थी जो प्रीति म हुआ करती है।

वह पगडण्डी सीधी थी। दखत ही दखत मैं उस पार कर गई, पीछे छोड गई। लगता था उस ओर का जगल एकदम समाप्त हो गया है। मैं भौंचक्की रह गई। सामने ऐसा एक विशालकाय चट्टान किसी प्रचण्ड कछुए के समान सामने खडी थी। उसके नीचे बहुत ही गहरी खाई थी।

मैंने इधर उधर देखा। खाई ओर भी इसी तरह की एक चट्टान आगे को निकली हुई-सी दिखाई दी। खाई म झाककर देखनेवाली उस चट्टान से मैं डर गई। किन्तु दूसरे ही क्षण मन उसी की ओर खिचता गया। लगा कि उस चट्टान क एक दम सिर पर जाकर खडी हो जाऊ और नीचे फली खाई म झाककर देख लू। बचपन म भी तो इसी तरह के खेल खेला करते थ न?

मन सोच रहा था आज की चादनी सचमुच बडी अदभुत है। यह सारा सुदर दृश्य ही अपूर्व है। फिर कभी वह दिखाई देने वाला नहा है। जीभर कर इसे पी जाऊ। यह चट्टान आगे को निकलकर सीधी खाई म झुकी है। तो क्या हुआ? इसम डरने की क्या बात है? मरने म चारो ओर स घिरा जीवन जीने म ही क्या

मनुष्य आनंद नही मानता ? तो जीवन के स्पहले क्षणो का रस चखते समय क्यो अन्य बातो का विचार किया जाए ?

मैं ढिठाई के साथ पुरू का लिए आगे बढी। धीरे धीरे उस चट्टान के मकरे सिर की ओर जाने लगी। तभी किसीकी कर्कश आवाज़ आई 'ठहरा ठहरा !' मैं चौंकी। सो तो अच्छा हुआ कि मैं उस चट्टान के सिरे से काफी दूर थी ! दूसरे ही क्षण 'ठहरा ठहरा !' शब्दो की प्रतिध्वनि मेरे कानो मे पडी। मैं तुरन्त पीछे हट गई। किन्तु तभी धक से रह गई ! समझ मे नही आ रहा था कि चादनी के इस व्यामोह के कारण अब मुझपर क्या बीतनेवाली है। एक बार लगा कि उसी पगडण्डी से जोर से भाग निकलू जिसमे होती हुई यहा तक मैं आ गई थी। किन्तु 'ठहरो ठहरो !' कहनेवाली वह आवाज एक पुरुष की थी ! मेरा पीछा करके मुझे पकड लेना उस आदमी के लिए क्या मुश्किल था ! और पता नही उसके साथ उसके कई साथी भी होगे ? कही दूर उधर होकर जगल मे ही छिपी बैठू तो

कोई पुरुष मेरी तरफ बढता आ रहा दिखाई देने लगा। प्रतिपल वह आकृति मेरे पास पास आने लगी। शायद वह कोई वैरागी था ! आह ! अभी अभी देवालय मे एक वैरागी को देखा था। अब यह दूसरा वैरागी। इस कल्पना से कि शायद पास मे ही कही किसी ऋषि का आश्रम होगा मेरा हौसला कुछ बढा। तभी वह कृश आकृति मेरे बिलकुल पास आ गई। साफ चादनी मे मैंने उस तपस्वी की मुद्रा साफ-साफ देख ली। मेरा मन आशा के शिखर पर से भय की गहरी खाई मे जा गिरा। वह तपस्वी यति था !

यति मेरी ओर टुकुर टुकुर देख रहा था। उसकी उस नजर के कारण मेरे पचप्राण किसी बालक की मुट्ठी मे पकडी गई तितली के समान तडपने रहे थे, दरबार मे उसकी वह अनाप शनाप बकवास, अशोक वन मे उसके द्वारा किया गया भयकर बर्ताव, वह नारी-द्वेष—सब कुछ याद आ गया और यह सोचकर कि अब अपनी बिलकुल खैर नही मैं पसीने से तरबतर हो गई।

यति मेरी ओर घूरकर देख रहा था। मेरे कधे पर सिर रखकर सोते हुए पुरू को भी वह घूर रहा था। मैंने हिम्मत करके उसकी नजर से नजर मिलाई। पहले किसी पागल-सी लगनेवाली उसकी नजर अब की बार स्नेहमयी प्रतीत हुई मुझे ! किसी कुए से काई हटा देने पर भीतर दिखाई देनेवाले स्वच्छ पानी की तरह लगी वह !

वह भी सोच मे पडा दिखाई दिया। कुछ क्षण रुकने के बाद उसने पूछा 'यहा पर कैसे आ गई हो शर्मिष्ठे ?' उसके स्वर मे अपनत्व था, करुणा भी थी। मुझे एकदम बडी सिसकी आ गई ! सूझ नहीं रहा था कि उससे क्या कहा जाए कैसे कहा जाए !

मुझे सिसकती देखकर वह भी असमजस मे पड गया। किन्तु मैंने अपने आपको तुरन्त सयत कर लिया। हसने की कोशिश करते हुए मैंने कहा 'मैं जानबूझ कर हस्तिनापुर छोडकर चली आई हू।

फैला घना जगल चान्दनी म नहा रहा था—नहान शिशु-सा प्यारा-प्यारा लग रहा था। और समय डरावनी लगनवाली झुरमुट झाडिया इस समय बगीचे के फूल पौधा की-सी नाजुक प्रतीत हो रही थी। चादनी की लोरी सुनत-सुनते ससार धरती की गोद म शान्ति क साथ सो गया था।

पथ भूला एक नन्हा-सा पक्षी करुण कलरव करता मेरे सामने से निकल गया। वो देखा चू चू कहकर मैंन उस पक्षी की ओर उगली उठाई। पुरू देखन लगा और खुशी म तालिया बजाने लगा। मैं कुछ और आगे बढी। किन्तु वह पक्षी गायब हो गया। फिर भी पुरु उस पक्षी के लिए जिद कर बैठा। इशारे से वह मुझे आगे चलने को कहने लगा। सामने का वन किसी ऋषि के प्रशान्त आश्रम-सा प्रतीत हो रहा था। एक पगडण्डी पर चलत चलत मैं आगे बढने लगी। पगडण्डी की एक ओर कोई जगली लता खिली थी। नाखून के आकार के नन्हे-नन्हे नील फूल उसपर लगे थ। उन फूलो के गुच्छे बहुत ही सुदर थ। दो गुच्छे तोडकर मैंने पुरू को दिए। उन्हे नचाते हुए वह खिलखिलाकर हसने लगा।

अब तो उस चादनी ने मुझे ही मोहकर पागल बना लिया। वृक्षो के नीचे उसने क्या ही सुदर रगोलिया बनाई थी। पडो के शिखरो पर मानो वह गुलाबजल छिडक रही थी। हस्तिनापुर से चलने के बाद मैंने किसी गाने की कोई पक्ति तक नही गुनगुनाई थी। किन्तु यहा तो आनद मन म भरकर वह निकला था और उस अवस्था म अनायास ही मन म गीत जागा जैसे कोई कली कब खिल जाती है पता ही नही चलता। मैं भूल गई कि कहा हू किस सकट म हू कहा चली जा रही हू। एक धुन म खोकर मैं बढती जा रही थी। कवियो ने कहा है कि चद्र मन का मित्र होता है। आज मैंने भी उस कवि-वचन को अनुभव किया। इस चादनी म भी वही मदहोशी थी जो प्रीति म हुआ करती है।

वह पगडण्डी सीधी थी। देखते ही देखते मैं उस पार कर गई पीछे छोड गई। लगता था उस ओर का जगल एकदम समाप्त हो गया है। मैं भौचक्की रह गई। सामने देखा एक विशालकाय चट्टान किसी प्रचण्ड करुण के समान सामने खडी थी। उसके नीचे बहुत ही गहरी खाई थी।

मैंने इधर-उधर देखा। दाई ओर भी इसी तरह की एक चट्टान आगे को निकली हुई-सी दिखाई दी। खाई म झाककर देखनेवाली इस चट्टान से मैं डर गई। किन्तु दूसरे ही क्षण मन उसी की ओर खिचता गया। लगा कि उस चट्टान के एकदम सिरे पर जाकर खडी हो जाऊ और नीचे फैली खाई म झाककर देख लू! बचपन म भी तो इसी तरह के खेल खेला करते थे न?

मन सोच रहा था आज की चादनी सचमुच बडी अदभुत है। यह सारा सुदर दृश्य ही अपूर्व है। फिर कभी वह दिखाई देने वाला नही है। जीभर कर इसे पी जाऊ। यह चट्टान आगे को निकलकर सीधी खाई म झुकी है। तो क्या हुआ? इसमे डरने की क्या बात है? मृत्यु से चारो ओर से घिरा जीवन जीने म ही क्या

मनुष्य आनद नही मानता ? तो जीवन के रुपहले क्षणो का रस चखते समय क्या अन्य बातो का विचार किया जाए ?

मैं ढिठाई के साथ पुरु को लिए आगे बढी। धीरे धीरे उस चट्टान पर से चलकर सिर की ओर जाने लगी। तभी किसीकी कर्कश आवाज आई ठहरो ठहरो ! मैं चौकी। सो तो अच्छा हुआ कि मैं उस चट्टान के सिरे से काफी दूर थी ! दूसरे ही क्षण ठहरो ठहरो ! शब्दो की प्रतिध्वनि मेरे कानो मे पडी। मैं तुरत पीछे हट गई। किन्तु तभी धक से रह गई ! समझ मे नही आ रहा था कि चादनी के इस व्यामोह के कारण अब मुझपर क्या बीतनेवाली है। एक बार लगा कि उसी पगडण्डी से जोर से भाग निकलू जिससे होती हुई यहा तक मैं आ गई थी। किन्तु ठहरो ठहरो ! ' कहनेवाली वह आवाज एक पुरुष की थी ! मेरा पीछा करके मुझे पकड लेना उस आदमी के लिए क्या मुश्किल था ! और पता नही उसके साथ उसके कई साथी भी होगे ? कही इधर उधर होकर जगल मे ही छिपी बैठू तो

कोई पुरुष मेरी तरफ बढता आ रहा दिखाई देने लगा। प्रतिपल वह आकृति मेरे पास पास आने लगी। शायद वह कोई वैरागी था ! ओफ ! अभी अभी देवालय मे एक वैरागी को देखा था। अब यह दूसरा वैरागी। इस कल्पना से कि शायद पास मे ही कही किसी ऋषि का आश्रम होगा मेरा हौसला कुछ बढा। तभी वह कृश आकृति मेरे बिल्कुल पास आ गई। साफ चादनी मे मैंने उस तपस्वी की मुद्रा साफ साफ देख ली। मेरा मन आशा के शिखर पर से भय की गहरी खाई मे जा गिरा। वह तपस्वी यति था !

यति मेरी ओर टुकुर टुकुर देख रहा था। उसकी उस नजर के कारण मेरे पचप्राण किसी बालक की मुट्ठी मे पकडी गई तितली के समान तडफडा रहे थे दरबार मे उसकी वह अनाप शनाप बकवास अशोक वन मे उसके द्वारा किया गया भयकर बर्ताव वह नारी द्वेष—सब कुछ याद आ गया और यह सोचकर कि अब अपनी बिल्कुल खैर नही मैं पसीने से तरबतर हो गई।

यति मेरी ओर घूरकर देख रहा था। मेरे कधे पर सिर रखकर सोते हुए पुरु को भी वह घूर रहा था। मन हिम्मत कर उसकी नजर से नजर मिलाई। पहले किसी पागल की लगनेवाली उसकी नजर अब की बार स्नेहमयी प्रतीत हुई मुझे ! किसी कुए से काई हटा देने पर भीतर दिखाई देनेवाले स्वच्छ पानी की तरह लगी वह !

वह भी सोच मे पडा दिखाई दिया। कुछ क्षण रुकने के बाद उसने पूछा यहा पर कैसे आ गई हो शर्मिष्ठे ? उसके स्वर मे अपनत्व था, करुणा भी थी। मुझे एकदम बडी सिसकी आ गई ! सूझ नही रहा था कि उससे क्या कहा जाए कैसे कहा जाए !

मुझे सिसकती देखकर वह भी असमजस मे पड गया। किन्तु मैंने अपने आपको तुरत सयत कर लिया। हसने की कोशिश करते हुए मैंने कहा ' मैं जानबूझ कर हस्तिनापुर छोडकर चली आई हू।

जानबूझकर इतनी दूर ?

जी हां !

क्या ? किसलिए ?

कंधे पर सो गए पुरु की ओर देखकर मैंने कहा, काका को उनका भतीजा दिखाने के लिए। सोचा आप तो इसे देखने के लिए हस्तिनापुर आने से रहे। तो क्या न मैं ही आपको यह कुल दीपक दिखाने के लिए ले आऊं ?

मेरे इन उद्गारों के कारण हम दोनों के मन का तनाव एकदम कम हो गया।

यति ने पास आकर पूछा, यह मेरा भतीजा है ? यानी ययाति का बेटा ?'

मैंने झुके सिर से जवाब दिया— हां। यति पुरु के पास आ गया। उसने यह देखने की कोशिश की यह जाग रहा है या सो गया है। फिर हंसते हुए कहा, काका यह देख रहा था कि भतीजे की एक चुम्मी मिल सकती है या नहीं। किन्तु महाशय गहरी नींद सोए हैं। सोने दो उसे। मेरे जीवन का यह पहली चुम्मी है! किसी अच्छे मुहूर्त पर ही उसे लेना होगा।

मैं अवाक् होकर देखती रही। उसकी बातों पर सोचती रही। यह यति है या कच ही यति का रूप धारण कर आया है ? वह विक्षिप्त, विकृत यति कहां गया ? उसके स्थान पर यह समझदार, स्नेहशील और मन मानव यति कहां से आ गया ? यह चमत्कार कैसे हो गया ? वीरान मरुभूमि में सुन्दर सरोवर का निर्माण कैसे हो गया ?

यति के पीछे-पीछे चलकर मैं वन के उस आश्रम में पहुंच गई। वह अंगिरस ऋषि के एक शिष्य का आश्रम था। कहते हैं उनके शिष्य इसी तरह वन-वन आश्रम बनाकर रह रहे थे !

क्या जीवन संयोगों की स्वामिनी है ? इस क्षण में तो मुझे वैसा ही लगने लगा। देवयानी का कच द्वारा दिया गया वह वस्त्र केवल दासी की गलती से मैं पहन बैठी थी। किन्तु आम तौर पर जो चिनगारी यों ही बुझ जाती, उसने देखते ही देखते में कितना भीषण दावानल सुलगा दिया था! एक राज-कन्या को उसने दासी बनाकर छोड़ा! फिर इस दासी के जीवन में केवल महारानी की किसी सनक के कारण महाराज आ गए और उसे इतना प्यार देकर गए कि जीवन भर पर्याप्त हो! इस अभागिनी दासी पर फिर विस्थापित होने की नौबत आ गई। जग में उसे बेसहारापन महसूस होने लगा। ऐसे समय उसे सहारा मिल गया और वह भी किसका ? तो एक ऐसे तपस्वी का, जिसे सारी दुनिया ने पागल करार दिया था !

फलाहार करने के बाद पुरु को पर्णकुटि में अच्छी तरह सुलाकर मैं बाहर आंगन में आ गई। यति भी मेरे साथ ही बाहर आया और मेरे सामने एक छोटी शिला पर बैठ गया। हमारी बातें शुरू हुईं। खाई में आग बरसाने उस दूसरी

चट्टान पर से उसने मुझे देखा था। मैं यह लाल वस्त्र पहिने हुए थी इसीलिए चांदनी में उसका ध्यान तुरन्त मेरी ओर गया था। रात के इस प्रहर में एक स्त्री को उस चट्टान के सिरे पर खड़ी देखकर उसने सोचा कि हो न हो वह अवश्य ही नीचे खाई में कूदने वाली है। इसीलिए वह जोर से चिल्लाया था।

मैंने उसे अपनी सारी आपबीती साफ साफ सुना दी। जब मैं यह बताने लगी कि कच ने मुझे अपनी बहन मानकर धीरज बंधाया और दासता से मुझे मुक्त कराने के लिए कच उसने देवयानी को बार बार मनाया मेरा दिल भर आया। इस विचार से कि इतना उत्कट इतना निष्पाप और पवित्र प्रेम करनेवाला व्यक्ति जीवन में परम सौभाग्य से ही प्राप्त होता है मेरी आंखों में आनंद के आंसू आ गए। कहते-कहते मैं रुकी और आंखें पोंछने लगी।

शायद मेरी बात सुनकर यति को भी इच्छा हुई कि वह भी अपने मन की सारी बातें साफ साफ कह दे। वह अपनी कहानी बताने लगा। एकदम शांत भाव से। इतनी निर्लिप्तता से कि मानो वह किसी दूसरे व्यक्ति की कहानी सुना रहा हो। वह अशोक वन से चला गया तब उसकी अवस्था लगभग पागल जैसी थी। उसी हालत में वह बस्ती बस्ती भटकता फिरा। किन्तु अंगिरस ऋषि के शिष्यों के आश्रम स्थान-स्थान पर थे। कच ने प्रत्येक आश्रम को यति के बारे में पूरी जानकारी भेज दी थी। यह संदेश भी दे रखा था कि किसी को वह मिल गया तो उसे भृगु पर्वत पर भिजवा दें। उन्मत्त भटकते यति को पाते ही अंगिरस के शिष्यों ने उसे पुचकारकर कच के पास भेज दिया। कच ने सगे भाई की तरह उसकी सेवा की।

जीवन के बारे में गलत धारणा कर लेने के कारण यति घर गृहस्थी और उसके दुःखों से बचपन से ही मन में एक डर लिए बैठा था। 'इस नहुष के पुत्र कभी सुखी नहीं होंगे'—यह अभिशाप सुनते ही उसके मन का सन्तुलन खो गया। सुखी होने के उपायों की खोज में वह घर से भाग निकला। जब से उसे यह मालूम हो गया कि नहुष महाराज को यह अभिशाप इन्द्राणी के प्रति उनके मोह के कारण ही मिला तब से मीठे फलों से लेकर स्त्री की प्रीति तक किसी भी चीज का आस्वाद लेने से उसे घृणा हो गई। ऐसी हर चीज से वह द्वेष करने लगा। यही कल्पना करता चला आया कि इस द्वेष से ही उसे विशुद्ध आत्मसुख की प्राप्ति होगी। निकला तो था वह ईश्वर को खोजने किन्तु अनजाने में जंतर मंतर जादू टोना और अद्भुत सिद्धियां प्राप्त करने के चक्कर में फंस गया। शुक्राचार्य द्वारा प्राप्त संजीवनी विद्या का समाचार पाकर उसे लगने लगा कि आत्मवंचना और उसके द्वारा प्राप्त होने वाली सिद्धियों का उसका मार्ग बिल्कुल सही है। उसका न तो कोई मित्र था न कोई शिष्य। निरपेक्ष प्रेम करनेवाला कोई व्यक्ति उसके जीवन में आया ही नहीं था। ववंडर में फंसा वृक्ष का कोई पत्ता हवा के झोंकों पर सवार होकर आकाश में घूमता चक्कर खाता चला जाता है। किन्तु उस पत्ते की यही धारणा होती है कि मैं ऊंचा और ऊंचा उठता जा रहा हूं बस स्वर्ग अब दो उंगल

को विनाशक विद्या के पीछे नही पडना चाहिए। किंतु शुक्राचार्य की विध्वंसक शक्ति पर काबू उतनी ही विध्वंसक शक्ति से ही पाया जा सकता है अन्यथा नहीं इसीलिए कच उसीके लिए उग्र तपस्या करने जा रहा है। उसकी यह तपस्या न जाने कितने वर्ष तक चलेगी! किंतु यह नितांत आवश्यक है कि वह जब तपस्या के लिए बैठ जाए, तो उसके सभी गुरु बंधु और मुझ जैसे उसके मित्र भी विश्व शांति के लिए यथाशक्ति तपस्या करें। यही सच्चा यति धर्म है। मैं अब उसीका पालन करने जा रहा हूं।

इसपर मैं कह भी क्या सकती थी? किंतु एक बात मेरे ध्यान में आ गई। मैं एक स्त्री थी मां थी। मेरा मन अपने पुरु तथा घर गृहस्थी में ही उलझा रहता था। कच और यति पुरुष थे। घर ही स्त्री की दुनिया होती है किंतु कच जैसे पुरुष के लिए सारी दुनिया ही घर हुआ करती है।

दूसरे दिन प्रात मैं यति के साथ जाने को निकली। कुछ दिनों बाद हम हिमालय की तलहटी में पहुंच गए। पुरु तो हिमालय को देखते ही आनन्द से उछलने लगा। मुझे नए स्थान में किसी बात की कमी महसूस न हो यति ने ऐसा प्रबंध कर दिया। वह वापस लौटने को प्रस्तुत हुआ तो मैंने पुरु को उसके चरणों पर रखा और प्रणाम करते हुए कहा 'ससुर जी आपसे फिर भेंट कब होगी?' उसने हंसते हुए कहा 'कब? यह तो त्रिकालदर्शी कालपुरुष ही जानता है।'

यति के इस वचन से मेरा कलेजा कांप उठा। मैंने तुरंत उससे कहा "इस अभागिन की इस इकलौती आशा को आशीर्वाद दीजिए।" उसने पुरु को उठा लिया। उसके कुंतलों को सहलाया। फिर मेरी ओर मुड़कर बोला "भाभी तुम कोई चिंता मत करना। तुम्हारा पुरु आज भले ही वनवासी हो कल वही हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठेगा।

०

शुक्ल पक्ष के चंद्रमा की भांति पुरु धीरे धीरे बड़ा होने लगा। बड़ा शैतान था वह। उसे संभालते संभालते नाक में दम आ जाता। किन्तु उस अरण्य में मेरी सेवा में अनेक लोग थे। यति की कृपा से मैं किसी वनरानी के समान ही रहती थी। मेरे चारों ओर ऐसे लोग थे जो पुरु के कोमल पावों में छोटी सी कंकरिया तक गड़ने नहीं देते।

पुरु धीरे धीरे बातें भी करने लगा। उसके मीठे मीठे बोल सुनकर मैं तो फूले न समाती थी। पुरु नन्हा सा धनुष बाण लेकर निशाना साधने लगा। उसका नन्हा-सा तीर ठीक निशाने पर जा लगता तो मेरे आनन्द की कोई सीमा नहीं रहती। पुरु और बड़ा हो गया। एकाध कोस की दूरी पर स्थित एक विद्वान ऋषि के आश्रम में उसका वेदाध्ययन शुरू हो गया।

मेरे साथ ही मेरा सुप्त बचपन जागा था। बड़ा हो रहा था। उसके स्वतंत्र अस्तित्व का मैं अनुभव करने लगी थी और फिर भी वह मेरा ही था—बिल्कुल

मुझ अकेली का ही था। इस तरह एक एक कर कई वष बीत गए। पुरू त्म ग्यारह वष का हो गया। अब मुझे उसके पराक्रम पर गव किन्तु उसके साहसी स्वभाव से भय अनुभव होने लगा।

मा का मन भी कितना पागल होता है! एक तरफ तो उसे लगता है कि अपना मुन्ना जल्दी बडा हो जाए बहुत बहुत नाम कमाए बड़े-बड़े पराक्रम कर दिखाए विजयी वीर के नाते दुनिया भर म प्रख्यात हो जाए। किन्तु साथ ही दूसरी ओर उसे यह भी लगता रहता है कि मुन्ना हमेशा मुन्ना ही रहे अपनी छाया म हमेशा सुरक्षित रहे मृत्यु भी उसका बाल बाका न कर सके! शिकार खेलने गए पुरू को लौट आने म देरी हो जाती तो मेरे प्राण सूखने लगते। मन कितनी ही अमगल कल्पनाओ स शकित हो उठता। दुनिया भर की देवी देवताओ की मैं मनौतिया करने लगती। पणकुटिया के द्वार म आखो म प्राण लिए उसकी प्रतीक्षा करने खडी रहती। पुरू आता दिखाई दिया तो फिर जी शात हो जाता। उसके बडे शिकार को देखकर मुझे बडा आश्चय होता। लगता कही सपने म तो नही हू? एकदम पुरू की नन्ही नन्ही मुट्ठिया आखो के सामने नाचती। यह कितना बडा चमत्कार था कि वे ही नन्ही मुट्ठिया धनुष-बाण चलाकर इतना बडा शिकार मार लाई हैं! शशव म दीवार पर पडी अपनी ही छाया म डरने वाला पुरू! आज वह घन बीहड वनो म जाकर बहुत आसानी स जगली जानवरो का सामना कर रहा था!

नदी अपने उद्गम स्थान के पास बहुत ही छोटी होती है। उसकी धार बिल्कुल मामूली उगली जसी पतली होती है। वह पहाडो स नीचे आती है। मैदान म आती है। उसका पात्र चौडा हो जाता है। मोड और घुमाव लेते हुए वह बहती जाती है। दूसरी नदिया उससे आ मिलती ह। वह बहुत बडी बन जाती है। पुरू भी इसी तरह बडा हो गया। इस वनवास म भी उसने कई मित्र जोड लिए। कोई ऋषिकुमार थ कोई वनवासियो के बच्चे थे। यहा के उत्सवो विनोद सुख-दु ख आदि जीवन की सभी गतिविधियो म और व्यवहारो म उसका खिलता मन भली भाति रम गया!

अब मुझे एक अजीब ख्याल अनुभव होने लगा। कभी लगता, पुरू मेरे बिल्कुल पास है। उतना ही जितना नौ मास गभ म पास था! दूसरे ही क्षण लगता नही! यह तो मात्र एक आभास है। वह मुझसे दूर-दूर जा रहा है। आकाश म गाते गाते ऊची उडान भरते जाने वाले पछी का नीड के साथ जितना सपक रहता है उतना ही सबध अब उसका और मेरा रहा है। उसकी दुनिया अब भिन्न होती जा रही है। जब उसकी यह दुनिया पूरी तरह विकसित हो जाएगी तो उसम उसकी इस अभागिन माँ के लिए कोई स्थान रहेगा न? या

इस विचार के साथ ही मन अनजाने म ही उदास हो जाता। फिर पुरू बडी ममता स पूछता मा तुम्हे क्या हो रहा है? क्या इतनी उदास हो?' मुझसे उसके इस प्रश्न का कोई उत्तर देते नही बनता। क्या प्रकृति का यही नियम है कि मनुष्य

अपने अन्तरतम में अकेला ही रहूं ? बार बार मन में आता मैं अपने माता पिता से वंचित हो गई पति से बिछुड गई उसी तरह क्या पुत्र को भी खो बैठने का दुर्भाग्य मेरे माथे पर लिखा है ? अपने भविष्य से मैं डरने लगती।

इस तरह के उन्माद विचार मन में घुमडने लगते तो मैं पर्णकुटिया के बाहर आकर हिमालय के बर्फीले शिखरों को देखने और उनसे घण्टों बातें करने बैठती। उन उत्तुंग गगनचुंबी शिखरों में मुझे धीरज बधाने की असीम शक्ति थी ! इसी परिसर में पार्वती ने बडी तपस्या की थी। यह पुण्यभूमि है मेरा यह वनवास भी तो एक तपस्या ही है यह तपस्या कभी व्यर्थ नहीं जाएगी। भगवान शंकर की कृपा से अंत में सब कुछ ठीक हो जाएगा ऐसी श्रद्धा हिमालय के पवित्र दर्शन कर मेरे मन में जाग जाती।

हिमालय ही क्या जगत की प्रत्येक वस्तु मुझे धीरज बंधाती थी। जीवन का अंतिम सत्य क्या है मुझे समझाती थी। लताओं पर कलियां आतीं। उनके फूल बन जाते। वे फूल रंगों और सुगंधों की फुहार खुलकर लुटाते। फिर एक दिन कुम्हला जाते। किन्तु मुझे लगता मुरझाते मुरझाते भी वे हंस रहे हैं। अपना यौवन भी इनकी तरह ही इस जंगल में ही मुरझाने वाला है इस भय से जब मेरा मन व्याकुल हो जाता तो ये फूल हंसकर मुझसे कहते पागल हो तुम शर्मिष्ठे ! यह तो सृष्टि का नियम ही है कि आज खिलने वाला कल मुरझाएगा। लताओं पर इतने फूल खिलते हैं वे लताओं पर ही मुरझा भी जाते हैं किन्तु हमने कब इस बात पर दुःख किया है ? सुखी होने का सबसे आसान मार्ग तो यही है कि जो भी जीवन अपने हिस्से में आया है उसे आनंद के साथ बिताए उस जीवन में रस और सुगंध को खोजें और उसे खुलकर आनंद के साथ सबको लुटा दें।

कलकल बहती जाने वाली नदी भी मेरे उदास मन को इसी तरह समझाकर ठिकाने पर ले आती। वर्षा में उसका उन्मत्त रूप देखकर और उसके द्वारा ढाए जाने वाले कहर सुनकर मुझे लगता कि यौवन केवल वरदान नहीं एक अभिशाप भी है। जवानी के जोश में मानव कितना उद्दण्ड बन जाएगा सुख के पीछे पडकर कटीले झाड झखाडों या खाइयों में जा गिरेगा दौडते समय कितनी मंगल और कोमल वस्तुओं को पैरों तले रौंद डालेगा कोई भरोसा नहीं !

इसी वनवास में मैं यह भी जान पाई कि ऋषि मुनि वन में जाकर तपस्या क्यों किया करते हैं। निसर्ग और मानव का नाता अनादि अनंत है। ये दोनों मानो जुडवां भाई हैं। इसीलिए निसर्ग के सान्निध्य में जीवन अपनी सारी सच्चाइयां लेकर हमारे सामने प्रकट हो जाता है। मानव यह समझने लगता है कि जीवन की असली शक्ति क्या है और उसकी सच्ची सही मर्यादाएं क्या हैं। मानव निसर्ग से दूर हो जाता है तो उसका जीवन एकांगी होने लगता है। उस कृत्रिम और एकांगी जीवन में उसकी कल्पनाएं भावनाएं वासनाएं सब अवास्तविक और विकृत बन जाती हैं। वह तो मेरा सौभाग्य था जो अभागिन होते हुए भी मैं यहां आई और जीवन की जड में जो सत्य हुआ करता है उसका दर्शन कर सकी।

किन्तु मन हमेशा इस तरह विचारशील नहीं रह पाता था। मैं एक विरहिणी थी। मैं अपने आपसे पूछती कि पति का प्रदीर्घ वियोग भोगने वाली पत्नी आखिर किसके लिए साज सिंगार करे। किंतु कोई दिन ऐसा आता कि मुझे थोड़ा बनाव शृंगार करने की इच्छा हो ही जाती। आसपास खिलते रंग बिरंगे वनफूल मुझसे कहते अरी बावरी हम तो तेरे लिए ही खिले हैं। तेरे साज सिंगार के लिए ही तो जन्म है। हमसे इस तरह दूर-दूर क्यों भाग रही हो ?" फिर मेरे भीतर की स्त्री जाग उठती। नाना रंगों और गंधों के फूल मैं तोड़ लाती। रुचि रुझान से शृंगार करती। फिर महाराज की याद मुझे बहुत सताने लगती। इसी तरह बन ठनकर ही तो मैं अशोक वन में उनकी प्रतीक्षा करती बैठा करती थी। वे सभी उन्मादक स्मृतियां दिल को नोचने लग जाती। दिन भर कुछ भी सूझता नहीं। रात में तृणशय्या पर लेटते ही मन की तड़पन और तन की अगन और भी बढ़ जाती। लगता यति को अनेक सिद्धियां प्राप्त हैं। मुझे चाहिए था कि मैं भी उड़ जान लेती। महाराज का एक ही शब्द शमा कहती हुई उनकी बस एक ही पुकार इस पर्णकुटिया में मैं प्रतिदिन सुन सकती तो उसके सामने स्वर्गसुख को भी मैं तुच्छ मानती। उनका एक ही स्पर्श—नजाकत से पल भर के लिए मेरे बालों को सहलाता हुआ उनका हाथ—बस उतना स्पर्श भी मुझे मिल जाए तो

मैं बड़ी कोशिश करती कि मन का यह प्राण-लेवा खेल बंद हो जाए। कच और यति के वैराग्य की याद करके रखती। किन्तु दावरी तोड़कर भाग खड़े होने वाले पशु की तरह मन मतवाला हो जाता। किसी तरह भी मेरे काबू में नहीं रह पाता। वायुगति से कूदता फांदता वह हस्तिनापुर पहुंच जाता अशोक वन में घुस जाता, महाराज की प्रतीक्षा में सुरंग के द्वार में खड़ा रहता नहीं, मनुष्य अपने शरीर को हमेशा के लिए नहीं भूल सकता।

बड़े कष्ट से काबू में की गई ऐसी कोमल इच्छाएं कभी अचानक एक विस्फोट की तरह फूट पड़ती। पूरे सात आठ साल का हो गया था तब की बात है। पास ही में वनवासी लोगों का कोई उत्सव था। हम दोनों उसे देखने के लिए गए थे। उस उत्सव में एक नाटक था। मैं वह देख रही थी। पुरू भी ऋषिकुमारों में जा बैठा। मेरे पास बैठी एक प्रौढ़ा की गोद में चार-पांच वर्ष की एक बच्ची थी। उसकी आंखें बहुत ही सुंदर थी। किंतु उसकी आंखों की अपेक्षा उसके बालों ने मेरे मन में बड़ा कुतूहल खड़ा किया। उसके बालों में बीच बीच में बहुत ही मोहक सुनहरी छटा चमक रही थी। सुनहरे बाल काफी घने थे। वे ऐसे लग रहे थे जैसे बिजलियों को महीन तारों में कातकर काले बादलों में पिरो दिया है। लड़की न केवल प्यारी प्यारी थी, बल्कि ढीठ भी थी। मैंने हाथ आगे बढ़ाए तो बिना झिझक के उठकर वह मेरी गोद में आकर बैठ गई। मेरी ओर एकटक देखने लगी। उसका चिबुक उठाकर मैंने उससे पूछा बेटी क्या नाम है तुम्हारा ?"

अलका।

कितना प्यारा नाम था! उस प्रौढ़ा से परिचय बनाए रखने को कहकर मैं

उत्सव से उठकर पणकुटिया म आ गई। किन्तु लाख कोशिशें करने पर भी नीद नही आ रही थी। बार बार वह प्यारी लम्बा आखा के सामने आ जाती। महाराज के सहवास की और उस सहवास म मिलने वाले सुख की याद बुरी तरह सताने लगती। नगता पूरू क भी ऐसी एक प्यारी प्यारी बहन होना चाहिए थी! मन की यह बौरायी अवस्था काफी दिनो तक बनी रही, पाव म चुभी काटे की फास की चुभन की तरह!

इस शान्त जीवन म भी ऐसी कितनी ही टीसें मेरे मन को वचैन किया करती। बीच म एक बार यति आकर मेरी पूछताछ कर गया। उसने राजमाता क देहान्त का समाचार दिया। सुनकर मुझे बहुत दुख हुआ। उन्होने मेरे साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया था। रिश्ते म तो व मेरी सासजी थी। होना तो यह चाहिए था कि मैं उनकी कुछ सेवा कर पाती! किन्तु वैसा न हो सका। मुझे इसका बहुत दुख हुआ।

एक बार हस्तिनापुर स आए एक तपस्वी से भेंट हो गई। उसस मालूम हुआ कि महाराज ने राज काज का काम देखना बद सा कर लिया है और यदु के छोटा होने के कारण देवयानी ही सारा कारोबार देख रही है। समझ म नहीं आया कि आखिर ऐसा क्या हुआ? क्या देवयानी और महाराज म कोई झगडा हो गया? हो भी गया हो तो उसके कारण क्या कोई अपना कतव्य भी छोड देता है? इस झगडे का महाराज पर क्या परिणाम हुआ होगा? कुछ लोग ऐसे होते है कि उन्हे हमेशा प्रेम की आद्रता की आवश्यकता हुआ करती है। वह आद्रता न मिली तो व सूख जाते है। देवयानी और महाराज क बीच यदि स्थायी मनमुटाव हो गया, तो महाराज का हाल क्या होगा?

उस दिन मैं बहुत ही उदास हो गई। लगा अपने प्राणो की कोई परवाह न कर सीधी हस्तिनापुर पहुचकर महाराज से कहू चलिए मेरी पणकुटिया म। वहा हम राजमहल बना लेंगे। किन्तु पुरू अभी छोटा था। देवयानी द्वारा पिटवाई गई वह मुनादी यद्यपि पुरानी हो गई थी फिर भी वह मेरे मन पर किसी तप्त मुद्रा की तरह अकित थी। मैं बहुत रोई। रात म सोते समय हमेशा की तरह प्राथना करते हुए कहा भगवान उन्हे सुखी रखना।'

प्राथना करते समय मैं जो भी कहती बचपन म पुरू भी चुपचाप दोहराया करता था। किन्तु अब वह बडा हो गया था। उस दिन पता नहीं उसपर क्या झक सवार हुई! उसने मुझसे पूछा मा उन्हे यानी किन्हे?

मैंने हसते हुए कहा उन्हे यानी उन्हे!

उसने हठ कर लिया उसका नाम बताओ।'

'तू बडा हो जाएगा न तब तुम्हे बता दूगी।

तो अब क्या मैं छोटा हू? बडा हो गया हू! मैं ठीक निशान पर तीर मारता हू मन्त्र पाठ कर लेता हू तर सकता हू पेडो पर चढ जाता हू

"अरे ! तुम्हें इसमें भी काफी बड़ा बनना है। बहुतेरी विद्याएँ प्राप्त करनी हैं, युद्ध में बड़ी-बड़ी विजय प्राप्त करनी है।"

"वो तो मैं आज भी प्राप्त कर सकता हूँ।" बोला, "किससे युद्ध करूँ ?"

मैंने उसका चेहरा सहलाया और कहा, "बेटे, अभी नहीं करना है युद्ध। आगे चलकर ! तुम सोलह वर्ष के हो जाओ। फिर मैं तुम्हें बता दूँगी, उन्हें यानी किन्हें, उससे पहले नहीं !"

किन्तु इससे पहले कि पुरू सोलह वर्ष का हो जाता, किसी ने बताना शुरू कर दिया कि मेरी प्रार्थना में आने वाले वे कौन हैं। दस-बारह वर्ष तक तो पुरू मात्र मुझे लगता था। किन्तु उसके बाद एक-दो वर्ष में उसकी ऊँचाई तेजी से बढ़ी, उसका शरीर भी हृष्ट-पुष्ट और सुडौल होने लगा और उसकी शक्ल-सूरत कुछ महाराज से मिलने लगी ! उसकी ओर देखकर मुझे महाराज की बहुत ही याद आने लगी। ऐसे में ही हस्तिनापुर से लौटा हुआ कोई तपसी जो कुछ कह देता उसे सुनकर तो बहुत ही चिन्ता हो आती। एकाध तो क्या बीसियों अमंगल और अशुभ समाचार सुनने को मिलने—महाराज का राज-काज से अब तनिक भी संबंध नहीं रहा। महीनों वे राजधानी से बाहर ही बिताते हैं। नगर में रहें तो अशोक वन से बाहर कभी निकलते नहीं। उनकी विलासिता की अब कोई सीमा नहीं रही, यह मालूम न होने के कारण कि मैं वास्तव में कौन हूँ, कहने वाले ये बातें सहजता से कह जाते, किन्तु उनकी बातों से मेरे प्राण तड़फड़ाने लगते !

समझ में न आता कि क्या करूँ। पल की भी देर किए बिना जिसपर मैं अपने प्राण तक न्योछावर कर सकती थी, उस प्रिय व्यक्ति को विनाश से बचाने के लिए आज मैं कुछ भी नहीं कर पा रही थी। अरे रे ! मानव भी कितना दुर्बल है !

इस नये दुःख को भुलाने के लिए मैं फिर चित्र बनाने लगी। चित्र बनाने के वे साधन यहाँ कम मिलते जो अशोक वन में उपलब्ध थे ! किन्तु वनवासियों को भी कला उतनी ही पसंद होती है जितनी कि नगरवासियों को। यहाँ क्या नहीं था ? पत्तों और फूलों के नाना तरह के रंग थे। बालों और पंखों की तरह-तरह की तूलिकाएँ बनाई जा सकती थीं। उत्तुंग हिमालय, सुंदर वनश्री, आकाश के बदलते अद्भुत रंग आदि सब कुछ चित्र के विषय बनने के लिए हाथ जोड़कर तैयार थे। मैं चित्र बनाने में वैसी ही मग्न हो गई जैसे कोई बालक नया खिलौना मिलने पर आठों पहर उसके साथ खेलता रहता है।

एक दिन विचार आया कि पुरू का ही चित्र बना डालूँ। मैं उस चित्र की मन ही मन कल्पना करने लगी। किन्तु मेरी आँखों के सामने खड़ा होने वाला चित्र हूबहू अशोक वन के महाराज के उस चित्र के समान था। स्वयं मुझे इस बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर मेरे ध्यान में आया कि पुरू भी अब इस बढ़ती उम्र में महाराज के समान ही बनता जा रहा है !

पुरू सोलह वर्ष का हो गया। मैंने उसे रहस्य बता दिया कि वह कोई मामूली

लड़का नहीं, हस्तिनापुर का राजपुत्र है। यह मालूम हो जाने पर उसे यह नहीं भाया कि उसकी मां इस तरह वन में रहकर जीवन गुजारे। मैंने उसे समझाया कि देवयानी के मत्सरी स्वभाव के कारण ही हस्तिनापुर से चली आई हूं। किन्तु इसपर उसको सन्तोष नहीं हुआ। वह कहने लगा, 'चलो हम दोनों हस्तिनापुर चलते हैं। महाराज से मिलते हैं। मैं महाराज से कहूंगा, मैं आपका पुत्र हूं। आपके लिए कोई भी दिव्य कार्य कर सकता हूं। किन्तु मेरी इस मां को इतना कष्ट मत दीजिए।'

पन्द्रह-सोलह वर्ष के बच्चों को समझाना बहुत कठिन होता है। जवानी का जोश की पहली उमंग जितनी उत्साही उतनी ही अंधी भी होती है। व्यवहार के कांटे उसे दिखाई नहीं देते। किन्तु सपनों के फूलों की सुगंध अवश्य ही उसके चारों ओर छायी रहती है। मैंने उसे बार-बार समझाकर कहा कि महाराज शीघ्र ही हमें हस्तिनापुर बुलवा लेंगे। तब तक हमारा यहीं रहना उचित है। किन्तु उसे बात जंची नहीं। मां की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना है, यही सोचकर वह हाथ मलता रह गया। मैंने उससे सौगंध उठवाई कि यह रहस्य कि वह महाराज का पुत्र है, मुझसे बिना पूछे किसी पर प्रकट नहीं करेगा। तब उसने उल्टे मुझसे ही पूछा, 'क्या महाराज पर भी प्रकट न करूं?'

मैंने हंसते हुए कहा, 'अरे पगले, महाराज कहां यहां आने लगे?'

उसने कहा, 'यहां नहीं, किन्तु और कहीं पर उनसे भेंट हो जाती है, तब भी क्या मुझे चुप ही रहना है? पुत्र के नाते उनको प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद भी नहीं लेना है?'

उसे सन्तोष हो, इस हेतु मैंने कहा, 'ऐसा मैंने कब कहा? तुम महाराज से निश्चय ही कह सकते हो कि मैं आपका पुत्र पुरू हूं। तुम्हें कुछ भी याद नहीं होगा किन्तु तुमसे बड़ी ममता थी उन्हें। किन्तु पुरू, एक बात अवश्य ध्यान में रखना कि महाराज के अलावा किसी से भी यह नहीं कहना कि तुम कौन हो। तुम्हें मेरे सिर की सौगंध।"

इतने वर्षों तक मन में सुरक्षित रखा यह रहस्य मैंने पुरू को बता दिया। किन्तु उसने अपना नया रहस्य एक शब्द से भी मुझे नहीं बताया।

यही सच है कि बच्चे बड़े होने लगे तो मां-बाप से दूर जाने लगते हैं। प्रीति और पराक्रम दोनों युवा मन की प्रबल प्रेरणाएं हुआ करती हैं। किशोर-किशोरियां को अपने बचपन की सुरक्षित दुनिया से भुलावा देकर वे काफी दूर ले जाया करती हैं। किन्तु मां-बाप उनकी चिन्ता करते हुए उसी पुरानी दुनिया में चक्कर काटा करते हैं।

पुरू भी इस नियम का अपवाद कैसे बनता? अब वह शिकार खेलने के लिए बहुत दूर जाने लगा। हिमालय के शिखर पर चढ़ जाने के सपने देखने लगा। प्राप्त धनुर्विद्या से बढ़कर कोई विद्या कहां मिलती है, इसकी पूछताछ करने लगा। भय क्या चीज होती है, वह जानता ही नहीं था।

किन्तु जिस तरह भय एक द्वार से उसके मन में चला गया उसी तरह दूसरे द्वार से प्रणय उसमें सगर्व आ गया। मुग्ध अल्हड़ निरीह लजीला प्रणय—अरुणोदय से पहले प्राची के कोने में फिसलने वाली नाजुक गुलाबी छटा लेकर आया हुआ प्रणय!

किन्तु उसने अपना यह रहस्य मुझे कभी बताया नहीं। वह सुनहरे बालों वाली सुहावनी लड़की अलका! उसकी माँ मेरी घनिष्ठ सहेली बन गई थी। धीरे-धीरे बच्चों में भी मित्रता हो गई। किन्तु पुरू के सोलह वर्ष के होते ही उसके तथा अलका के व्यवहार में परिवर्तन होने लगा। दोनों ने पहले जैसे आपस में खुलकर लड़ना भिड़ना बन्द कर दिया। दोनों के आचरण में एक अनाम सकोच दिखाई देने लगा। अन्य लोगों को अपने कामों में लगा पाकर दोनों एक-दूसरे को एकटक देखते। फिर होंठों ही होंठों में मुस्कराते। तुरंत अलका गर्दन झुकाकर पैर के अंगूठे से यों ही जमीन कुरेदने लगती। वह बहुत छोटी थी तब पूछ था कोई काम करने के लिए कहा जाने पर मुँह बनाकर कह देती थी, मैं क्या उसका काम करूँ? वह करता है क्या मेरा काम? किन्तु अब वह जब भी आती उसका ध्यान मेरी अपेक्षा पुरू की ही सुख-सुविधाओं की ओर अधिक रहता।

धीरे धीरे यह सारा मामला मेरे ध्यान में आने लगा। उसमें अनुचित कुछ भी नहीं था। किन्तु कभी मन में आता, प्रणय के इस अंकुर को बढ़ने देना क्या ठीक होगा? पुरू राजपुत्र है। ययाति महाराज का बेटा है। कल को भगवान की दया से सब कुछ ठीक हो गया तो किसी राजकन्या के साथ उसका विवाह हो जाएगा। फिर यह लुभावनी लड़की बिचारी मन ही मन घुलती घुटती रहेगी निराश होकर! नहीं! असफल प्रीति की असहनीय पीड़ा होती है। इससे पहले कि यह पीड़ा अलका को नसीब हो, क्या न प्रीति के इस अंकुर को अभी जड़ से उखाड़ दूँ? निराशा की अपेक्षा झूठी आशा बहुत ही बुरी होती है! सुना है कि इस अलका की माँ पहले कभी हस्तिनापुर के राजमहल में दासी थी! ऐसे परिवार की यह लड़की और राजपरिवार का पुरू—धरती का मिट्टी का दीया आकाश का सितारा बनने की हवस करे तो काम कैसे चलेगा?

तभी मेरा दूसरा मन कहने लगता, तुम किसी जमाने में राजकन्या थीं! किन्तु आगे चलकर दासी बनकर ही रहीं न? हो सकता है अलका का वंश बड़ा न हो! किन्तु उसका प्रेम तो सच्चा है न? दासी का प्रेम और राजकन्या का प्रेम क्या भिन्न होता है?

मेरे मन में उल्टे-सीधे विचारों की इस तरह उधेड़बुन होती रही। किन्तु पुरू या अलका से इस मामले में कुछ भी कहने की मेरी हिम्मत नहीं हुई। ऐसे मामलों में कुछ कहने का सकोच युवकों के ही समान बड़ों को भी हुआ करता है!

इसी तरह दो-तीन वर्ष गुजर गए। पुरू उन्नीस का हो गया था। एक दिन प्रक्षुब्ध मन शिकार अधूरा छोड़कर वह वापस आ गया। उसने सुना था कि उत्तर में दस्युओं ने भारी विद्रोह कर दिया है। वे हस्तिनापुर पर आक्रमण करने

के लिए चल पड़े हैं। युवराज यदु काफी बड़ी सेना लेकर दस्युओं से लड़ने के लिए हस्तिनापुर से चल पड़ा है।

उस रात मेरी आंखों में नींद एकदम नदारद रही। बार बार मन में प्रश्न उठ रहा था सेना लेकर यदु युद्ध के लिए निकला है। फिर महाराज कहां हैं? राज्य पर आक्रमण किए जाने पर भी क्या वे आराम से बैठे होंगे? नहीं! ऐसा कदापि संभव नहीं! क्या वे बीमार होंगे? या उस पत्थर दिल देवयानी ने उन्हें किसी कारा में बंद रखा होगा? बीसियों शंका कुशंकाएं मन को डस रही थीं!

मेरे सामने पुरु भी उस रात लगातार करवटें बदल रहा था। दो तीन बार मैंने उससे पूछा भी "क्या बात है पुरु? आज तुझे नींद क्यों नहीं आ रही है?"

"कुछ नहीं मां" कहकर वह चुप हो गया। बाद में कुछ भी नहीं बोला। मुझे हंसी आ गई। सोचा शायद इसे अलका की याद सता रही होगी। कौन कहे शायद आज इसने उसका पहला चुंबन लिया होगा!

रात को पुरु क्यों छटपटा रहा था मुझे दूसरे दिन मालूम हुआ। प्रातः शिकार के लिए बाहर गया। किंतु शाम ढलते तक भी वापस नहीं आया। रात हो गई फिर भी नहीं आया। मेरे मन में अनेक शंकाएं उठने लगीं। उसके साथ ही शिकार खेलने गए उसके साथियों के बारे में मैंने पूछताछ की। उनमें से भी कोई नहीं लौटा था! इन सबका आखिर क्या हुआ होगा किसी की समझ में नहीं आ रहा था। रात मुझे खाने को दौड़ रही थी। मुझे बिना बताए पुरु इस तरह कभी बाहर नहीं रहा था। समझ में नहीं आ रहा था कहीं अठारह वर्ष तक सोया पड़ा मेरा दुर्भाग्य फिर से जाग तो नहीं गया! भय से मैं व्याकुल हो उठी! वह रात! भगवान न करें किसी मां के भाग्य में वैसी रात आए!

दूसरे दिन दोपहर तक मैं जल बिन मछली की तरह छटपटाती रही। फिर अलका आई। पुरु और उसके मित्र दस्युओं से लड़ने चल गए थे। यह सोचकर कि घर के जेठे सयाने उन्हें अनुमति नहीं देंगे शिकार के बहाने वे लोग घर से निकले थे। रास्ते में अलका का गांव पड़ता था। दूसरे दिन दोपहर मुझे एक पत्र पहुंचाने का काम अलका पर छोड़कर पुरु आगे निकल गया था। थरथर कांपते हाथों से अलका ने वह पत्र मेरे हाथ में दिया। मैंने उसे खोलकर पढ़ा। उसमें केवल इतना ही लिखा था

"हस्तिनापुर के राज्य पर शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया है। ऐसे समय मेरा धर्म क्या है तुम्हें बताने की आवश्यकता नहीं। जीवन में पहली बार तुम्हारी आज्ञा भंग कर रहा हूं! तुम्हें बिना बताए तुमसे दूर जा रहा हूं। मां मुझे क्षमा करना। मेरी कोई चिंता मत करना। जान से जान लड़ाने वाले मित्र मेरे साथ हैं। तुम्हारा पुरु शीघ्र ही महापराक्रम कर और हस्तिनापुर के राज्य पर आक्रमण करने वालों को परास्त कर तुमसे मिलने आएगा।"

पत्र पढ़ते पढ़ते मेरी आंखों में आंसू आ गए। क्षत्रिय के बेटे को युद्धभूमि में जाने से भला कौन रोक सकता है? किंतु मुझ जैसी मां का मन? किसी भी तरह

वह शांत नहीं हो पा रहा था। आंखों की राह वह बह निकला।

अलका न मेरे आंसू पोछे। राजा नहीं मा जी राजा नहीं कहकर मुझसे लिपटकर वह मुझे समझाने लगी। मैंने अपने मन को कड़ा किया। आंसुओं को पोछ डाला। उसकी ओर वात्सल्य से देखा। उसके सुनहरे बालों पर धूप की सौम्य किरण पड़ी थी। बहुत ही सुन्दर दिखाई दे रहे थे उसके बाल! इस कल्पना से कि ऐसी लाखों में एक दिखाई देने वाली पुत्रवधू मुझे प्राप्त होने वाली है पुरु की चिन्ता में डूबा मेरा मन क्षण भर हरषाया।

अब अलका रोने लगी। सिसकते हुए कहने लगी मा जी वे सकुशल लौट आएंगे न?' उसके इस प्रश्न से मेरा मन भी अकुला गया। किन्तु ऊपर से वैसा न दिखाते हुए मैंने हंसकर अलका को गले लगाकर कहा पगली कहीं की! अरी युद्धभूमि में क्या सब लोग लड़ने जाते हैं? युद्ध तो हम क्षत्रियों का धर्म ही है!' अलका के आंसुओं में मेरे आंसू मिल गए तब जाकर कहीं हम दोनों के मन स्थिर हुए!

हमने काफी देर बातचीत की। काफी सोच विचार किया। युद्ध के समाचार इधर बिल्कुल एक सिरे पर स्थित इलाके में मालूम होने में काफी देर लगती अत हमने सोचा कि हस्तिनापुर से पांच दस कोस पर किसी देहात में जाकर रहा जाए। यानी आने-जाने वाले सैनिकों या दूतों से युद्ध के समाचार मालूम होते रहेंगे। यह भी हो सकता है कि वहां शायद पुरु या पुरु का कोई मित्र सयोग से मिल जाए। अलका की मां ने बड़ी मुश्किल से उसे मेरे साथ आने की अनुमति दे दी। किन्तु हम विदा करते समय उसने हंसते हुए इतना अवश्य कहा आखिर लड़की पराया धन ही होती है। जिसका है उसके हवाले समय पर कर देना ही अच्छा!'

यति ने जिन खास लोगों को हमारा सारा प्रबंध सौंपा था उनमें से दो वीर और प्रौढ़ पुरुष हमारे साथ आने के लिए तैयार हो गए नाना तरह की कल्पनाएं करते-करते कभी अपने आंसुओं को भीतर ही पी जाते कभी किसी के ध्यान में न आ पाए ऐसी फुर्ती से उन्हें पोछ डालते कभी पुरु के पराक्रम के सपने देखते तो कभी स्वप्न में ही उसे घायल हुआ देखकर चौंककर जाग पड़ते। इसी तरह हम सब का प्रवास जारी था।

मैं फिर से हस्तिनापुर जा रही थी! अठारह बरस बाद। आई थी उस राह से और उतनी ही भयग्रस्त मन स्थिति में! इन अठारह वर्षों की सुमरनी के मणियों को मन ही मन फेरती हुई बार बार फेरती हुई भविष्य के सपने देखती हुई मैं जा रही थी। कभी वे सपने सुनहरे दिखाई देते! कभी स्याह!

अठारह वर्ष पूर्व मैं इसी राह आई थी तब देवयानी से नन्हे पुरु की रक्षा करने की एकमात्र चिन्ता में डूबी थी। आज वही पुरु अपनी मां को चिन्ता के दह में डुबोकर समर भूमि में चला गया है। मन पग पग पर एक ही चिन्ता में सूखता जा रहा है कि वहां वह सुरक्षित तो होगा न? क्या चिन्ता परछाईं की सगी बहन

है ? भगवान न उस क्या एक ही सीख सिखाई है कि मनुष्य का साथ कभी न छोड़े ?

अन्त म हम हस्तिनापुर स छह कोस की दूरी पर स्थित एक गाव म पहुची। वह बहुत ही अशुभ दिन था। हम दोनों पर वज्रपात करने वाला एक समाचार उसी दिन उस गाव म आ पहुचा था। एक मुठभेड म यदु और उसके साथ कुछ शूर सनिका का दस्युआ ने बन्दी बना लिया था और उन्हें वे अपन साथ ल गए थ। दस्युआ म एक प्रथा थी कि शत्रु का सिर काटकर भाल की नोक उसम फसाकर सार नगर म जुलूस के साथ घुमात।

वह छोटा सा गाव भयग्रस्त होकर इस अशुभ समाचार की ही चर्चा कर रहा था। युवराज यदु का आगे क्या होगा यह चिन्ता दुख कर रही थी।

किन्तु मेरा और अलका का दुख उन सबके दुख से अधिक गहरा और तीव्र था! यदु को रिहा करवान के लिए पुरु गया होगा। उसके साथ वाले शूर सैनिका म वह अवश्य ही रहा होगा। शायद यदु क साथ उसे बदी बनाया गया होगा!

पुरु स मेरी भेंट किस अवस्था म होगी? उसका दशन किस अवस्था म होगा? विजयी वीर के नाते या शत्रु के भाल की नोक पर

वह कल्पना भी

पूव जन्म म मैंने एसा क्या पाप किया था जो भगवान मुझे इस तरह यत्रणाए दे रहा था?

देवयानी

अमावस की आधी रात का यह घना अधेरा मानो मुझे निगलने पर तुला है। खिड़की से बाहर आकाश की ओर देखने पर लगता है कि ये तारे आंख मिचका कर मेरी हंसी उड़ा रहे हैं। राजप्रासाद में इतने सारे लोग हैं। किन्तु सब ऐसे अवाक् हो गए हैं जैसे आलती पर वर्षा से बचने के लिए सिमटकर बैठे पंछी। मेरे मन की हालत तो ऐसी हो गई है जैसे चारों ओर लपलपाती आग की लपटें ऊंची उठती जा रही हैं और किधर से भी उस आग से बाहर बच निकलने की कोई गुंजाइश नहीं है। सांझ दूत वह अशुभ समाचार लेकर आया। तब से

यदु हार गया —! मेरा यदु हार गया! दस्यु उसे पकड़कर ले गए! नहीं! अब भी इस समाचार पर भरोसा नहीं होता! यह अनहोनी कैसे हो पाई? चिउटिया मेरु पर्वत को कैसे निगल गई? महारानी देवयानी के पुत्र की हार? अखिल विश्व में सुविख्यात तपस्वी शुक्राचार्य के धेवते का पराभव? नहीं! ये शब्द भी झूठे प्रतीत होते हैं! भूत जैसे लगते हैं!

यदु युद्ध के लिए जाने को निकला तब मैंने कितने उत्साह से उसकी आरती उतारी थी! कितने उल्लास से उसके कुमकुम तिलक किया था! कितनी उत्कंठा से उसके विजय के समाचार की ओर कान लगाए बैठी थी! किन्तु मेरी अवस्था तो उस पपीहे जैसी हो गई है जो पानी की बूंद की आशा से बादल की ओर देखता है किन्तु उस बादल से उसपर गाज आ गिरती है!

आज तक देवयानी का सिर शरम से कभी झुका नहीं था। उसने किसीसे हार नहीं मानी थी! किन्तु आज! अब मैं करूं भी क्या? किसकी शरण गहूं? पिताजी की प्रदीर्घ तपस्या अब समाप्त होने को है। इस अठारह वर्ष में मैं उनसे मिलने कभी गई नहीं। अपना कोई भी दुख उन्हें सुनाया नहीं। अपना कोई दुखड़ा उनके सामने रोई नहीं। वे महाक्रोधी हैं। आव देखेंगे न ताव तपस्या अधूरी छोड़ कर उठ जाएंगे। इसलिए मैं अपना सारा दुख स्वयं ही पीती गई। संजीवनी जैसी अद्भुत शक्ति से कच को जीवित करने की मेरी जिद के कारण, उन्हें हाथ धोना पड़ा। अब फिर से वैसी ही कोई दिव्य शक्ति उन्हें प्राप्त होने का समय आ गया है। ऐसी स्थिति में कैसे उनके पास जाकर कहूं कि 'मेरे यदु को छुड़वाकर ले आइए?' किस मुंह से उनकी तपस्या का भंग करूं?

नहीं! मैं ऐसा अविचार नहीं करूंगी। अपने पुत्र के लिए भी नहीं करूंगी।

विगत अठारह वर्ष के अनेक दुख मेरे मन में संचित हैं। ज्वालामुखी के लावा रस के समान वे भीतर ही भीतर छटपटा कर विस्फोट के रूप में बाहर आने के लिए मचल रहे हैं। उन सबसे मैं भीषण प्रतिशोध लेने वाली हूँ जिन्होंने मुझे दुख पहुँचाया है। वह शर्मिष्ठा — उसका वह चक्रवर्ती का बच्चा! — ये ययाति महाराज — सबसे मुझे प्रतिशोध लेना है! किन्तु अभी इस समय नहीं! पिताजी के तपस्या पूरी कर लौट आने के बाद! उस अद्भुत सिद्धि प्राप्त हो जाने के बाद!

किन्तु उस सिद्धि के प्राप्त होने तक यदु का क्या होगा? उसे बंदी बनाकर ले गए दस्यु कहीं उसके प्राण तो नहीं ले लेंगे? मेरा यदु! वह कब सकुशल लौट आएगा? कब मैं उसे अपने आँसुओं से नहलाऊँगी? मुझे अपना यदु चाहिए! और कुछ भी नहीं चाहिए! यह राज्य नहीं चाहिए पिताजी की वह सिद्धि नहीं चाहिए —

नहीं! ये देवयानी के विचार नहीं! ये एक असहाय माँ के विचार हैं! देवयानी केवल माँ नहीं। वह शुक्राचार्य की पुत्री है। हस्तिनापुर की महारानी है। उसे अपने मन को इस तरह दुर्बल नहीं बनने देना चाहिए!

क्या माँ का मन महारानी के मन से भी अधिक बलशाली होता है? मुझे कुछ भी नहीं सूझ रहा! क्या करूँ? कैसे यदु को छुड़वा लाऊँ? एकदम मुझे महाराज की याद आ गई। किशोरावस्था में उनके द्वारा किए गए पराक्रम की कहानी मैंने सुनी थी। यह मालूम होने पर कि अपने पुत्र को शत्रु पकड़कर ले गए हैं उनके जैसा पराक्रमी पिता क्या पल भर भी चुप बैठेगा? यदु क्या केवल मेरा है? वह जितना मेरा है उतना ही महाराज का भी है। क्या महाराज को अब तक यह खबर नहीं मिली होगी कि उसे पराभूत कर दस्यु पकड़कर ले गए हैं? ऐसा कैसे हो सकता है? अमात्य यह अमंगल समाचार लेकर मेरे पास आए। मैं चिंता में डूब गई। तभी अमात्य ने कहा था मैं इसी क्षण अशोक वन जाकर महाराज को यह समाचार देता हूँ। यह मालूम होने पर कि सारे राज्य पर भयंकर संकट आया है वे कदापि चैन से नहीं बैठेंगे। आज तक की बात निराली थी। अब उपस्थित हुआ प्रसंग एकदम निराला है। महारानी जी चिंता न करें महाराज स्वयं युवराज को छुड़ाकर लाने के लिए युद्ध के लिए जाएँगे।

यह कहकर अमात्य को गए भी अब डेढ़ दो पहर हो रहे हैं। फिर भी मैं कोई चिंता न करूँ? उधर मेरा पुत्र शत्रु की कैद में है। उसके प्राण संकट में हैं। हस्तिनापुर की शान में धब्बा लग चुका है। मैं चिंता न करूँ तो —! मैं माँ हूँ। मैं महारानी हूँ — बस मैं चुप बैठूँ?

बात क्या हुई होगी? महाराज अभी तक मेरे महल में क्यों नहीं आए? काश! इस समय वे तुरंत यहाँ आते मुझे अपनी बाहों में लेते हम दोनों के आँसुओं का संगम हो जाता! मन पर आया यह पहाड़ सा बोझ कुछ तो हल्का हो जाता! उनके केवल इन शब्दों से कि — मैं अभी यदु को छुड़ा लाता हूँ तुम

हम दोनो की आरती उतारने की सिद्धता करो' मेरे मन मे घिर आया सारा अंधेरा आलोकित हो जाता । किंतु महाराज कहा है ? वे क्या नही अब तक मेरे पास आ रहे ? या कहीं ऐसा तो नही कि वे इतने मदहोश और बेहोश होकर पड़े है कि यदु की गिरफ्तारी के समाचार का अर्थ भी समझ नही पा रहे है ? मदिरा और मदिराक्षी के चसके मे वे इस बात को भी समझ नही पा रहे है कि पिता के नाते उनका भी कोई कर्तव्य है ? छि ! मेरी अक्ल पर निश्चय ही पाला पड़ गया था जो हस्तिनापुर की महारानी बनने के मोह का मैं शिकार बन बैठी ! वह मेरा विवाह नही बलिदान था। विवाह वेदी मेरे लिए बलिवेदी बन गई। उसी बलिवेदी की अग्नि ज्वालाओ मे पिछले अठारह वर्ष से मैं जल रही हूं।

०

अठारह वर्ष ! अठारह वर्ष पहले की वह तूफानी रात मेरी आंखो के सामने मूर्त हो उठी। उस दिन बड़े-बड़े कलाकार मेरे नृत्य को देखते देखते सुधबुध खो बैठे थे। वसंत नृत्य उमाचरित नृत्य अप्सरानृत्य मेरे सभी नृत्यों ने उस रात बड़ा समां बांध दिया था। किन्तु तालियो की गड़गड़ाहट से मेरी सराहना करने वाले उन दर्शक कलाकारो को एक बात का पता नही था। प्रत्येक नृत्य देवयानी के कलेजे के रक्त मे रंगकर आ रहा था। उसके कलेजे मे भारी घाव हो गया था। वह घाव मामूली नही था। प्रत्यक्ष उसके पति द्वारा अत्यंत निर्ममता से किया हुआ घाव था वह ! उसने देवयानी को धोखा दिया था। दासी की हैसियत से उसके साथ आई एक चुडैल पर उसने अपने आपको वार दिया था। इस दुख को भुलाने के लिए ही उस रात देवयानी जी जान से नाच रही थी।

क्या कलाकार के दुख से ही उसकी कला अधिक सजीव, अधिक सुंदर और अधिक रसीली बन जाती है ? क्या प्रकृति का यही अलिखित नियम है कि कलाकार दुखी रहे ? क्या पता !

उस रात बाहर आकाश घन बादलो से भर गया था। वंचना से व्यथित मेरे अन्तःकरण की तरह ही लग रहा था वह ! मन मे क्रोध का उफान बार बार उठ रहा था—उन बादलो से कड़कने वाली बिजली की तरह ! काट खाने वाली हवा की तेजी मे मेरे मन मे महाराज के प्रति असीम घृणा भर रही थी। किन्तु मैंने उन कलाकारो को अपना नृत्य कौशल दिखाना स्वीकार किया था। मैं अपनी अत्यंत प्रिय कला को भूली नही थी। मैं नृत्य शाला मे गई। पहला नृत्य आरम्भ हुआ। और देखते देखते मैं अपना सारा दुख भूल गई। शायद कला की दुनिया विकार विचार वासना आदि सभी क्षणिक बातो से परे होती है। मैं अपने नृत्य मे दंग हो गई। मग्न हो गई। दर्पण में अपना सौन्दर्य देखते समय मैं इसी तरह खोती थी। नृत्य का नशा मुझपर सवार होता चला गया। मेरे रोम रोम से कला की अभिव्यक्ति होने लगी। उस अभिव्यक्ति मे मन, बुद्धि कलेजा इंद्रिया और आत्मा सभी एकरूप हो गए। नृत्यशाला मे पहुंचा।

शत्रु हो गए है। शत्रु के समान ही निरंतर व्यवहार करते आ रहे है उनसे राज काज छीनकर सारी बागडोर मैंने अपने हाथों में ले ली। लगा, मैंने उनकी नाक काट ली है। किंतु विलास में डूबकर और यह एकदम भुलाकर कि उनकी देवयानी नामक एक पत्नी भी है तथा यदु नामक एक पुत्र भी उन्होंने मुझसे पूरा पूरा प्रतिशोध ले लिया है! कितना सच है कि शरीर से पास रहने वाले व्यक्ति मन से एक दूसरे से कोसों दूर रहते है!

कई बार मन में आता है कि उस रात मैंने उन्हें प्यार देने से इनकार किया, उनका अपमान किया उनसे सौगंध उठवाई, इन्हीं सब बातों का यह विपरीत परिणाम तो नहीं?

किंतु मैं करती भी क्या? माधव की मृत्यु और महाराज के कुटिल षड्यंत्र के सारे सूत्र मेरे हाथ लग गए थे। मेरा मन क्रोध आवेग और द्वेष से सुलग उठा था। महाराज को कतई कल्पना न थी कि मैंने उनका वह सारा राज जान लिया है। एक रात वे मेरे महल में आए। कहते हैं मदिरा पीकर मदहोश बना पुरुष स्त्री लंपट बन जाता है! इससे पहले मैंने भी यह बात केवल सुनी थी। किंतु उस रात इनाहद से भी दाहक वह अनुभव मैंने किया। उन्होंने मुझसे प्रेम याचना की। उनकी हर हरकत पशु जैसी थी! उनके मुह से आ रही मदिरा की दुर्गन्ध मुझे बिल्कुल सहन नहीं हो रही थी! वे दौडकर मुझपर झपटे। मुझसे छीना झपटी करने लगे। मेरे मन में संचित क्रोध और द्वेष एकसाथ फट पडे। मैंने पूछा 'शर्मिष्ठा यहा नहीं है इसीलिए शायद आज मेरी याद हो आई आपको?' वे होश में नहीं थे! वरना ऐसा उत्तर उन्होंने कभी न दिया था! उन्होंने कहा, 'मुझे शर्मिष्ठा चाहिए! देवयानी भी चाहिए! और ऐसी ही जितनी भी सुंदर लडकियां हों वे सब मुझे चाहिए! सैकडों हजारों लडकियां चाहिए! स्वर्ग की सारी अप्सराएं मुझे चाहिए!' उनके प्रत्येक शब्द के साथ मैं अपना आपा खोने लगी। लगा शायद खडा रहना असम्भव होगा और अब मैं गिर जाऊंगी। मैंने कडकते हुए कहा 'पहले दूर खडे हो जाइए। मेरे पास मत आइए। और फिर जो मन में आए बडबडाते रहिए!'

विकट हास्य करते हुए उन्होंने कहा, 'मैं बडबडा नहीं रहा। सत्य बात कह रहा हूं! मैं नहुष राजा का पुत्र हूं। पुरुरवा का पडपोता हूं। मुझे शर्मिष्ठा की चाह है! देवयानी की चाह है! दुनिया की प्रत्येक सुंदरी की मुझे चाह है! हर रात मुझे नई सुंदर स्त्री!'

यह सब मुझसे सुना नहीं गया। वे किसी पागल की तरह बके जा रहे थे। मन में विचार आया कि उस दिन राजसभा में इनका वह बडा भाई आया था। वह स्त्री-द्वेष के कारण पागल हो गया था। ये स्त्री प्रेम के कारण पागल तो नहीं होने जा रहे?

महाराज की बकवास जारी थी

'मेरे पिता को इंद्राणी नहीं मिली। किंतु मैं उसे प्राप्त करने वाला हूं।

दुनिया की हर सुदर स्त्री को मैं पाकर ही रहूगा ! एक फूल तोड लूगा सूघकर फेंक दूगा ! फिर एक नया फूल लूगा, सघूगा, मसलकर फेंक दूगा !

दोना हाथो स मैंने अपने कान बन्द कर लिए। वे अटटहास करते हुए मेरे पास आने लग। अपनी सारी शक्तिया समेटकर मैं चिल्लाई दूर हटो ! दूर हटो ! जानत हो न मैं कौन हू ?"

उन्होने उत्तर दिया, "जानता हू, तुम मेरी पत्नी हो।

मैंने आवेश से कहा "मैं महर्षि गुरुत्राय की कन्या हू। विवाह के बाद आपने मुझसे एक सौगध खाई थी। शायद आपने उसे भुला दिया है इसलिए याद दिलाती हू। मैंने आपको चेतावनी देकर जताया था कि मदिरा पीकर मेरे महल में कभी न आए। आपने उसे स्वीकार कर लिया था। आज आप मदिरा में तर होकर उसके नशे में धुत होकर मेरे महल में आए है ! आपने सौगध तोड दी है। आपको मालूम है मेरे पिताजी कितने महान तपस्वी है। यह भी आप जानते हैं कि उन्हें मुझसे कितनी ममता है। परवाह नहीं उनकी तपस्या भग हो जाए किन्तु मैं अभी इसी समय उनके यहा जाती हू और आपके इस सारे दुराचरण का हाल उन्हें सुनाती हू। कोई भयकर अभिशाप मिले बिना आपकी अक्ल ठिकाने नहीं आएगी।

अभिशाप शब्द सुनते ही महाराज चौंके। शायद उस मदहोशी में भी इस शब्द का अर्थ उनकी समझ में अच्छी तरह आया था। वे पीछे हटे। मेरी ओर खोई खोई नजर से देखने लगे। मुझे उनपर दया आ गई। जसे भी हो वे मेरे पति थे। मैं उनकी पत्नी थी। हम दोनो ने सोच समझकर अपनी जीवन सरिताओ का सगम कराया था। माना कि वे बहुत ही उन्मत्तता मे पथ भूल गए कर्तव्य को उन्होंने भुला दिया मदिरा को स्पर्श न करने की अपनी कसम तोड दी ! किन्तु फिर भी क्या वे मेरे अपने नहीं थे ? अपनो के दोषो और भूलो को उनके अपने लोग ही क्षमा न करें तो फिर कौन करेगा ? मैं पत्नी थी। उन्होने पति धर्म का पालन बराबर नहीं किया था। किन्तु क्या मुझे पत्नी धर्म का पालन नहीं करना चाहिए ?

प्रेम क्या बाजार में मिलने वाली वस्तु है ? बाजार का तो दस्तूर ही होता है कि दाम देखकर वस्तु दी जाए ! किन्तु गृहस्थी कोई बाजार तो नहीं। महाराज यदि गल्ती कर रहे है, तो मुझे चाहिए कि उनकी गल्ती उन्हें दिखा दू, समझा दू। उनका सन्तुलन जा रहा होगा तो मुझे चाहिए कि उन्हें सभाल लू।

क्षण भर बिल्कुल क्षण भर के लिए ही सही मैं इस विचार से विचलित हो गई थी। मन में आया, सीधी बढकर उनसे कसकर लिपट जाऊ उन्हें पलग पर ले जा बिठा दू उनके कधे पर माथा रखकर खूब रो लू और उनसे कहू 'मेरे लिए आपकी इस देवयानी के लिए क्या आप अच्छा आचरण नहीं रखेंगे ? केवल मेरे लिए ही नहीं अपने यदु के लिए भी। यदु आज बहुत छोटा है किन्तु कल वह भी बडा होगा ! उसपर अच्छे सस्कार कौन डालेगा ? उसे बुद्धिमानी की बातें कौन

सिखाएगा ? आपके समान वह भी महापराक्रमी बने इसकी चिन्ता कौन करेगा ? किसके पदचिह्नों पर चलकर वह बड़ा बनेगा ? तो मर लिए आपके मेरे यदु के लिए '

मेरे कदम उनकी ओर बढ़ने को मचलने लगे ही थे कि तभी महाराज ने मुझसे प्रश्न किया : शर्मिष्ठा कहाँ है ? मेरी शर्मिष्ठा कहाँ है ? राक्षसनी ! तुमने उसे जान से मार डाला ! तुम-सी दुष्ट स्त्री सारे संसार में नहीं होगी ! तू तू

वे एक-एक कदम आगे बढ़ने लगे। मुझे भय लगा कि शायद वे मेरा गला घोंट देंगे मेरे प्राण न लेंगे। मेरा जोर से चीखने को जी कर रहा था किन्तु मुँह से एक शब्द नहीं निकल पा रहा था। तब तक महाराज मेरे बिल्कुल पास आ गए। साफ दिखाई देने लगा कि वे मेरा गला घोटना चाहते हैं। पिशाच जैसी भयंकर हरकत में वे हाथ नचाने लगे। पूरी ताकत लगाकर मैं चिल्लाई : दूर हटिए ! मत भूलिए मैं शुक्राचार्य की कन्या हूँ। उनके शाप से पत्थर बनकर रह जाएंगे या कोई जानवर बना दिए जाओगे ! दूर हो जाइए ! पीछे हट जाइए ! मेरे महल से चले जाइए !'

थरथर कांपते हुए महाराज दो चार कदम पीछे हटे। बुदबुदाते हुए बोले : नहीं मैं आगे नहीं बढ़ूँगा।

महाराज की वनवास में शर्मिष्ठा का उल्लेख आने से मेरा मन एकदम भभक उठा था। मैंने उनसे कहा : पहले शपथ लीजिए कि आप अब से आगे मुझे स्पर्श तक नहीं करेंगे ! शपथ लीजिए ! उन्होंने कहा : लेता हूँ लेता हूँ ! उनकी ओर देखते देखते मेरे मन में आया इन्हीं हाथों ने शर्मिष्ठा को अपनी बाहों में भरकर मुझे धोखा दिया इन्हीं होठों ने शर्मिष्ठा के चुम्बन लेकर मेरा विश्वासघात किया ! नहीं ! इनके इस भ्रष्ट शरीर का स्पर्श भी मुझे अब नहीं चाहिए। मैंने डपटकर उनसे कहा : शपथ लीजिए अब कभी आप मुझे स्पर्श नहीं करेंगे ! मेरे पिताजी का नाम लेकर शपथ लीजिए !

महाराज ने वैसी शपथ ली और वे मेरे महल से चले गए। हमारे बीच का पति-पत्नी का रिश्ता जीवन का अत्यंत रम्य रेशमी नाजुक धागा उस दिन टूट गया ! एक-दूसरे से मुँह फेरकर पृथ्वी परिक्रमा प्रारम्भ की।

०

उस रात जो अनहोनी हो गई उसमें मेरा भी क्या दोष था ? शुक्राचार्य की कन्या यदु की माँ और हस्तिनापुर की महारानी लीला-विस्तर मुझसे यही कहती आई है कि मैंने जो किया वही उचित था। इनमें से एक ने भी उस रात के मेरे कठोर निर्णय के बारे में कभी शिकायत नहीं की है।

फिर कभी-कभार यह कौन है जो मेरे कानों में फुसफुसाता है कि तुमने भूल की है ! तुमने अपना धर्म नहीं निभाया है ! अपने कर्तव्य से मुकर गई हो ? इन

वाक्यों का सुनकर अनेक बार मैं चौंककर नींद से जाग उठी हूं। उल्टे सीधे विचारों की उधेड़बुन म रात रात तड़पती रहती हू।

विगत अठारह वर्षों से लगातार अपने मन अकुश म मुझे कोचती रहने वाली यह स्त्री कौन है ? रात में बिल से बाहर निकलने वाली चुहिया खुल म पटे सुन्दर वस्त्र को कुतर-कुतर डालती है उसी तरह यह अनात स्त्री नीरव असतर्क क्षणों में मेरे निश्चय को धीरे धीरे कुतरकर उसके टुकडे-टुकडे करने लगती है। यह स्त्री अनात है, अनाम है अरूपा है ! ठीक तरह स मैं यह भी नही जानती कि इसका मेरा क्या नाता रिश्ता है ! प्रारम्भ म मुझे लगा कि वह ययाति महाराज की पत्नी है। उसकी भुनभुन बद करने के लिए मैं उससे कहती मक्कार और छली पति से विवाह के पवित्र बधन को पैरों तले रौंदने वाले पति स भी पत्नी प्रेम करे ? क्यों ? क्या उसके मन नही होता ? अन्तःकरण नही होता ? कोई अभिमान नही होता ? क्या उसे कोई अधिकार नही होता ? उस रात मैंने जो निर्णय किया वही उचित था। यह जानते हुए भी कि मैं पति सुख से वचित हो जाऊंगी मैंने उस रात वह निर्णय लिया। अब प्राण जाए तभी मैं उसे नही बदलूगी।

किन्तु उस पगली को मेरी इन बातो स कभी सन्ताप नही हुआ। इतने वर्ष बीत गए! आज भी वह उसी तरह भुनभुना रही है ! आज भी किसी मायूस क्षण म वह चीखने लगती है

तू अपने धर्म स मुकर गई है कर्तव्य से च्युत हो गई है। प्रेम कब किन्ही बाहरी बातो पर निर्भर रहा है ? प्रीति तो एक हृदय स उद्गम पाकर दूसरे हृदय म जा मिलने वाली महानदी है। रास्ते म कितनी ही ऊंची पहाडियां क्यों न आए वह उनका चक्कर काटती हुई आगे को बढ़ती जाती है। जिस दिन कोई किसीको अपना लगता है, उसी दिन उसके गुण दोषो का हिसाब मन स समाप्त हो जाता है। शेष रहती है केवल निरपेक्ष प्रीति—रुकती बढ़ती, ठोकर खाती लड़खड़ाती बार बार गिरती उठती किन्तु फिर भी भक्ति के शिखर की ओर बढ़ती हो जाने का प्रयत्न करने वाली प्रीति ! भगवान की पूजा करते समय इसका हिसाब थोडे ही किया जाता है कि उसने हम क्या दिया और क्या नही दिया है ? प्रीति मानव द्वारा मानव की पूजा का ही नाम है। तूने वह पूजा ठुकरा दी स्त्री धर्म पर तूने कलक लगाया ! तू कभी सुखी नही होगी !

आज ऐसा ही हुआ। यदु के वन्दी बनाए जाने का अशुभ समाचार लेकर अमात्य आए। सुनकर मैं सन्न होकर बैठ गई। मेरी इसी दुखी अवस्था से लाभ उठाकर वह चुडैल फिर मेरे कानो म जार-जार से चिल्लाने लगी— तूने स्त्री धर्म का पालन नही किया पत्नी धर्म का निरादर किया यह उसी पाप का फल है !

नहीं ! यह एकदम झूठ है ! यदु का पराभव महाराज के पाप का फल है।

अठारह वर्ष तक उनके द्वारा लगातार रचा गया पापों का पहाड़ आज मेरे निरीह वक्ष के मस्तक पर टूट पड़ा है!

महाराज के पापों के फल किस किसको नहीं चखने पड़े? वह बेचारा माधव! उनका परम मित्र। शर्मिष्ठा को नगर से बाहर छोड़ आने के लिए क्या गया, अपने प्राणों से हाथ धो बैठा! उसकी वह मंगेतर माधवी! मानो रात की प्रतिमा! क्या सुंदर आँखें थीं उसकी! किंतु सुना कि एक दिन उस लड़की का शव यमुना में मिला!

माधव के घर उसकी वृद्धा माँ और भतीजी तारका दो ही जीव रह गए। देखते ही देखते तारका बड़ी हो गई। दादी को पोती के विवाह की चिंता सताने लगी। बुढ़िया अपनी चिंता जताने के लिए एक दिन टाँगें घसीटती महल में आई। मेरी जिह्वा पर शब्द आ गए— आप जाकर अपने महाराज से क्यों नहीं कहतीं तारका के लिए कोई अच्छा-सा लड़का खोजें! किंतु काल-पुरुष ने बेचारी बुढ़िया का ऐसा कचूमर निकाल दिया था जैसे कुम्हार गीली मिट्टी को रौंद डालता है। मुझे उसपर दया आ गई। जिह्वा पर आए वे शब्द मैंने वहीं रोक दिए और माधव की माँ से कहा, ठीक है, आप चिंता न करें, तारका के लिए अच्छा सा घर अवश्य ढूँढ़ दूँगी! बुढ़िया विदा लेकर चली गई। फिर कुछ दिनों बाद पता चला कि तारका पागल हो गई है। मुझे इस बात पर विश्वास नहीं हो रहा था! मैं माधव के घर गई। तारका फूलों की माला पिरोती बैठी थी। क्या ही निखार आया था उसके यौवन में! किंतु उसकी आँखों में भीषण शून्यता थी। काफी देर तक उसने मुझे घूरकर देखा, किंतु पहिचाना बिलकुल नहीं। अंत में मैंने ही कहा, तारका, मुझे दोगी यह माला? वह उठी और उस अधूरी माला को मेरे सामने बढ़ाते हुए बोली, लीजिए, न, यह माला लीजिए न!' तुरंत अपना हाथ पीछे खींचकर कहने लगी, पहले एक शपथ लीजिए। इन फूलों को न मसलने की शपथ लीजिए। फिर दूँगी मैं यह माला आपको।

तभी उसकी दादी बाहर आ गई। उसने तारका से कहा, अरी बेटी, इन्हें पहिचाना नहीं तुमने! ये हमारी महारानी हैं। नमस्कार करो भला इन्हें!' उसने दादी से पूछा, कहाँ की महारानी? बुढ़िया ने कहा, अरी बावरी! ये ययाति महाराज हैं न हमारे? आप उनकी महारानी हैं!' तारका सिर झुकाकर कुछ बुदबुदाई। फिर हाथ की माला की ओर देखती हुई चिल्लाई, ओ माँ! कितना बड़ा साँप है यह! साँप साँप! उसने उस माला को दूर फेंक दिया। उसकी ओर उँगली दिखाते हुए बोली, दादी! वह देखो साँप! उसे मारने के लिए एक अच्छी-सी लाठी लाओ। चुपचाप और धीरे से जाना, वरना वह तुम्हें ही काट खाएगा! कुछ समय पहले उसने मुझे डस लिया था! यहाँ—यहाँ—यहाँ!

वैसे पूछा जाए तो तारका का महाराज से क्या संबंध था? वह उनके परम मित्र की भतीजी थी। किंतु वह भी दुर्भाग्य का शिकार होने से नहीं बची।

०
मेरा लाडला यदु ! ऐसे शापित पिता का पुत्र था वह ! चील महारानी के रत्नहार को झपटकर उठा ले गई। सच ही तो है पुत्र का भाग्य माता पिता के भाग्य से जुडा होता है।

यदु सद्गुण सम्पन्न और पराक्रमी बने इस हेतु मैंने दिन रात उसे महाराज के स्वच्छाचारी जीवन से प्रयत्नपूर्वक दूर रखा। इसके बावजूद वह होकर ही रहा जो नहीं होना चाहिए था। इस दुनिया में क्या देवी देवता भी भाग्य का लेखा टाल सके है ?

अठारह वर्ष पूर्व उस रात मैंने महाराज से वह सौगंध उठवाई। महारानी होते हुए भी किसी संन्यासिनी सा जीवन बिताया। रात रात तडपती रही। प्रिय जनों के सहवास में सब दुखो को भुलाना चाहने वाले मन को मैंने वैसा ही जलते रखा।

किसी दिन मन के ये सारे बांध टूट जाते और भीतर से उमड घुमडकर बाहर आनेवाली भीषण बाढ में मैं बह जाती। रथ में बैठती। रथ अशोक वन की ओर ले चलने का आदेश देती किन्तु रथ को अशोक वन तक ले जाने पर भी मैं कभी उसके भीतर नहीं गई।

किन्तु महाराज ने अपनी शपथ का अवश्य निभाया—एकदम विपरीत ढंग से ! छह छह मास तक वे नगर से बाहर रहने लगे। आठों पहर रंगरलियों में डूबे रहने का सिलसिला उन्होंने शुरू किया। प्रारम्भ में यह सब सुनते ही मेरे मन को बिच्छू डसने जैसी वेदनाएं होती। स्त्री पुरुषों के प्रेम संबंध के प्रति घृणा हो आती। लगता काश भगवान ने यह आकर्षण निर्माण ही न किया होता !

कभी-कभार दिल के कोने का कोई नाजुक तार झंकार उठता। उसकी थरकती लहरों पर शब्दों का साज चढ जाता— पगली ! छोड दे यह सारा अभिमान। अभी दौड जा। महाराज जहां भी हो वहीं चली जा। वे मदिरा पीकर नशे में चूर होंगे कोई बात नहीं। किसी अपरिचित सुंदरी की बाहों में पडे होंगे कोई चिंता नहीं। तू वहां दौड जा। उनके चरणों को अपने आंसुओं से धोकर उनसे विनती कर यह आप क्या किए जा रहे हैं ? राजराजेश्वर किधर फिसलते जा रहे है आप ? आकाश की उल्का अपने उच्च स्थान से डिगते ही पाषाण होकर गिर जाती है। प्रियतम, आप मेरे है। आपका कलंक मेरा भी कलंक है। आपका अध पतन मेरा भी अपना अध पतन है। मैं आपकी पत्नी हूं। पति के बिना पत्नी की लाज कौन रखेगा ? मुझे मदिरा की महक तक बरदाश्त नहीं होती। किन्तु चलो आपके सुख को ही मैं अपना सुख मान लेती हूं। आप चाहे तो मुझपर मदिरा की कुल्ली डाल दीजिए। मैं चूं तक नहीं करूंगी ! फिर तो बात बनेगी न ? आप देवयानी को अपने सुख के लिए ऐसे कुचल मसल डालिए जैसे किसी फूल को मसलकर रख देते हैं। किन्तु कृपा करके धर्म की इस अमर्यादा

को रोकिए। अपने पति धर्म का पालन कीजिए। पुत्र धर्म को याद कीजिए। राजधर्म को मत भुलाइए।

महाराज के चरण पकड़कर इसी तरह उनसे काफी बातें करने को जी चाहता तो था किन्तु केवल पल दो पल ही। दूसरे ही क्षण मुझे कच का स्मरण हो आता। उसे मुझसे कितना उत्कट प्रेम था! केवल कर्तव्य के लिए उसने उस प्रेम का त्याग किया। संजीवनी विद्या लेकर वह देवलोक वापस गया, तब कितनी ही अप्सराएं उसपर अपने-आपको वार देने के लिए तैयार रही होंगी! किन्तु वह लुभाया नहीं भरमाया नहीं बौराया नहीं! अपने व्रत से डिगा भी नहीं।

कच के वैराग्य की याद आते ही महाराज की विलासप्रियता से घृणा होने लगती। बीती बिसारकर उनकी शरण ग्रहण की कल्पना पर लज्जा आ जाती। सारा अभिमान उफनकर आ जाता और कहता पत्थर पर फूल किसलिए चढ़ाए जाएं? क्या फूलों की सुगंध से पाषाण कभी महक सकता है? पुरुष प्रेम करे तो कुछ जंचता! स्त्री पूजा करे, तो ऐसे ही पुरुष की!

काश कच से मेरा विवाह हो गया होता! तो निश्चय ही मैं सुखी रहती। उसकी पर्णकुटिया में मुझे वह आनंद मिलता, जो इस राजप्रासाद में एक भी दिन मुझे नहीं मिला।

किन्तु क्या सचमुच मैं सुखी हो जाती? मैं उससे प्रेम करती थी। किन्तु मन के इस अंध आकर्षण से ही क्या कोई सुखी हो जाता है? मेरे मन में उसके प्रति जो प्रेम था वह निरपेक्ष कहां था? नहीं! वह तो निपट आत्मपूजा का ही एक प्रकार था। मैं उससे सचमुच प्रेम करती होती तो उसे शाप देते समय मेरी जीभ हकलाती। उन विफल शब्दों के स्पर्शमात्र से मेरे होंठ काले-नीले पड़ जाते।

तो प्रेम आखिर होता क्या है! कितनी बड़ी पहेली है यह? विगत अठारह वर्ष से महाराज ने यहां जो घिनौना हुड़दंग मचा रखा है क्या वही प्रेम है? महाराज ने शर्मिष्ठा से किया वह क्या प्रेम ही था? अपनी पत्नी को धोखा देकर किसी दूसरी स्त्री के साथ

शर्मिष्ठा! उसकी याद आते ही तन बदन में आग सी लग जाती है। पता नहीं किस अशुभ मुहूर्त में उसे दासी बनाने की झक मुझपर सवार हुई! उसके कारण महाराज मुझसे दूर हो गए। इधर मैं उनके मामूली स्पर्श से भी वंचित हो गई और उधर वे अध पतन की गहरी खाई में जा गिरे। आज युवराज यदु का पराभव हो गया। शत्रु उसे बन्दी बनाकर ले गए। इतना गजब हो गया है किन्तु महाराज को कहां है किसी भी बात का दुःख?

महाराज को चाहिए था कि समाचार सुनते ही दौड़कर यहां आते। वे यदु को छुड़वाने के लिए निकल पड़ते तो उनकी आरती उतारते समय मेरी आंखों में आंसू आ जाते। उन आंसुओं को अपनी उंगली से होले से पोंछते हुए वे कहते

'पगली कहीं की ! देखना, पद्रह दिन में अंदर यदु को तुम्हारे सामने लाकर खड़ा कर दूगा !'

'पगली कहीं की !" कितने मधुर है ये शब्द ! इन्हीं शब्दों को सुनने के लिए स्त्री जन्म ले और इन्हीं को सुनते सुनते दुनिया से विदा हो जाए। जी करता था कि कोई स्नेह से मुझे पास खींच ले मीठे मीठे शब्दों से धीरज बधाए प्यार से मेरा मस्तक सहलाए और उस भावभीने स्पर्शमात्र से मन के सभी दावानल क्षण भर में बुझकर शात हो जाए ! नहीं ! यह सुख अब नसीब में कहा है ? क्या एकाकीपन का यह दुःख अब मेरा इसी तरह निरंतर पीछा करने वाला है ? अन्त तक क्या मैं इसी तरह भूखा प्यासा रहने वाली हू ? अतप्त !

बधिर मन से मैं बाहर का अधेरा देखते खड़ी थी। अठारह वर्ष की अनेक स्मृतियों की धुधली आकृतिया अधेरे में विचरने वाले भूतो की तरह मेरे मन में ऊधम मचाने लगी। मेरा धीरज टूट गया। लगा सीधे रथ में बैठकर अभी अशोक वन जाऊ महाराज के गले में बाहे डालू और कहू

जैसे अधेरे में तारो की ओर देखते चल रहे आदमी को सर्पदश हो जाए मुझे भी कुछ ऐसा ही लगा ! यदु की याद आ गई। अमात्य अभी तक वापस नहीं लौटे थे। इसका मतलब यही था कि यदु को छुड़वा लाने के लिए महाराज कुछ भी करना नहीं चाह रहे थे।

दासी ने अमात्य के आने की सूचना दी। वे महल में आए। सिर झुकाकर चुपचाप खड़े रहे। मैंने तीखे स्वर में पूछा 'इतनी देर क्या लगाई अमात्य ?'

महाराज से भेट ही नहीं हो पा रही थी !'

यह मालूम हो जाने पर भी कि यदु को शत्रुओं ने कैद कर लिया है ?'

जी।

क्यो ?

वह तो सेवक न बताए न महारानी जी सुनें।'

समझ गई ! यही न कि महाराज विलास में मग्न थे ?

अमात्य बोले नहीं।

मैंने प्रश्न किया अन्त में महाराज से आपकी भेट हुई थी या नहीं ?'

हुई।

क्या कहा उन्होंने ?

मेरी बात सुनकर वे केवल हसे।

हसे ? सुनकर मैं आगबबूला हो गई ! किन्तु मन पर जैसे-तैसे काबू रख कर मैंने यह प्रश्न किया।

अमात्य सिर झुकाए बोलने लगे महारानी का सदेशा मैंने उनसे कहा। इस पर वे फिर हसे। फिर बोले महारानी से कहना इतने वर्ष बाद याद करने के लिए हम आपके बहुत ऋणी हैं।'

मैंने अपना नीचे का होठ पून निकलने तक चबाया। फिर भी मन स्थिर नहीं

हो पाया। अमात्य मेरे सामने बुत बने खड़े थे। मैंने क्रोध से उनसे फिर प्रश्न किया 'आगे?' वे अचकचाते हुए बोले 'आगे महाराज ने जो कहा'

मेरे तलवों की आग सिर तक पहुंची। मैंने कहा 'महाराज ने जो कुछ कहा उसका एक एक अक्षर मुझे साफ साफ मालूम होना ही चाहिए।'

काफी आनाकानी और झिझक से कांपते स्वर में अमात्य ने महाराज के वे उन्मत्ततापूर्ण शब्द मुझे सुनाए 'शत्रु महारानी को भी कैद कर ले जाता है तो ले जाए उनकी बला से। मुझे कोई आपत्ति नहीं। महारानी से अब मेरा कोई संबंध नहीं है।'

जहरीले तीर की तरह वे शब्द मेरे कलेजे में घुस गए!

मैं उनकी कोई नहीं हूं? शत्रु मुझे भी कैद करके ले जाते हैं तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं? होगी भी क्या? अनायास उनकी राह का कांटा जो दूर हो जाएगा! अच्छा जी! मैं भी देख लूंगी!

विवाह के दिन से ही हममें ठन चुके युद्ध का अंतिम कांड शीघ्र ही आरंभ होगा। पिताजी की तपस्या समाप्त तो होने दो! फिर एक क्षण में इसका पता चल जाएगा मैं उनकी कोई लगती हूं या नहीं। विवाह के समय ही शर्मिष्ठा के साथ पेश आते समय सावधानी बरतने के लिए पिताजी ने इन्हें जताया था। किन्तु यह रही आवारा जानवर की जात! नाक में नकेल डाल दिए जाने पर भी जात जात पास के खेत में मुंह मारे बिना कभी नहीं रह सकती!

मैं और अमात्य यदु को रिहा कराने के तौर तरीकों पर विचार करने लगे। तभी एक दासी भागी भागी भीतर आई। उसकी मुद्रा पर आनंद समा नहीं रहा था। वह जल्दी-जल्दी बोली 'बाहर एक दूत आया है। वह घोड़ा दौड़ाते आया। देवी जैसे ही वह घोड़े पर से कूदा घोड़ा खून उगलता हुआ प्रांगण में दम तोड़ गया।'

उस दासी पर मुझे इतना क्रोध आ गया! उस दूत को तुरंत भीतर ले आने के बजाय

मैं फुर्ती से महल के बाहर आ गई। वहां वह दूत खड़ा था। नम्रतापूर्वक अभिवादन करते हुए उसने कहा 'देवी मैं एक बड़ी खुशखबरी ले आया हूं। युवराज शत्रु की कैद से रिहा हो गए!'

मेरे आनंद की सीमा न रही। यदु के साहस और पराक्रम के प्रति मैंने अत्यंत गर्व अनुभव किया। मैंने अधीरता से प्रश्न किया 'युवराज कैसे मुक्त हो गए? कैसे निकल भागे? क्या पहरेदार को मारकर?'

'नहीं देवी! जान जोखिम में डालकर उन्हें छुड़वाया है!'

'किसने? सेनापति ने?'

'सेनापति ने नहीं। युवराज की ही उम्र का एक युवक वीर है उसने?'

'उसका नाम क्या है?'

'उस वीर युवक का नाम तो मुझे मालूम नहीं। वह हमारा सैनिक भी नहीं है।

यह खुशखबरी आपको देने के लिए सेनापति ने मुझे तुरत रवाना किया। उस वीर युवक को साथ लेकर महारानी के दर्शन के लिए युवराज राजधानी आ रहे हैं। और यही समाचार देने के लिए सेनापति ने मुझे भेजा है। पद्रह दिन में वे हस्तिनापुर पहुच जाएंगे।

o

मैं सोच ही रही थी कि उस दूत को इस खुशखबरी के लिए कौन सा अलकार पुरस्कार में दू, तभी एक और दासी दौडी आई और कहने लगी कि बाहर एक और दूत आया है। मैं घबरा गई। कलेजा धक्धक करने लगा। कहीं ऐसा तो नहीं कि यदु के मुझसे मिलने के लिए निकलने के बाद रास्ते में घात लगाकर बैठे शत्रु ने उसे फिर से बदी बना लिया? वे पाच दस पल युगो समान बीते।

वह दूसरा दूत भीतर आया। उसे देखते ही मैंने पहिचान लिया। वह महाराज वृषपर्वा का दूत था। वह बहुत ही आनददायक समाचार ले आया था। पिताजी की तपस्या पूरी हो गई थी सफल हो गई थी। भगवान शकर ने उन्हे सजीवनी जसी ही एक अदभुत विद्या वरदान के रूप में दी थी। राक्षस राज्य में महोत्सव आरम्भ हो गया था। उस महोत्सव में मुझे ले जाने के लिए पिताजी स्वय इधर आने को निकल थे। महाराज वृषपर्वा ने कहला भेजा था कि पद्रह दिन में वे यहा पहुच जाएंगे।

आनद की तरगो पर तरने लगी देवयानी दुखी देवयानी को सान्त्वना देने लगी। उसके आसू पोछते हुए उसने कहा 'आज तेरी तपस्या भी सफल हो गई। अठारह वर्ष तुमने भी बहुत कष्ट उठाए है। अब तुम्हारे जीवन की ग्रीष्म ऋतु समाप्त हो गई समझो। शर्मिष्ठा के बारे में तुम थोडा सा शुक्राचार्य को बता भर दो। और फिर देखती जाओ क्या-क्या गुल खिलता है। तेरे पिताजी तुरत ही यदु को सिंहासन पर बैठा देंगे। वे महाराज को ऐसा दण्ड देंगे कि '

खुली आखो में एक स्वप्न देखने लगी। यदु का हस्तिनापुर के सम्राट के रूप में राज्याभिषेक हो रहा है। समूचे आर्यावर्त की नदियो से लाया हुआ पवित्र जल उसके मस्तक पर सीचा जा रहा है। फिर भी कच से लेकर सभी ऋषि मुनियो को इस अभिषेक में किसी बात की कमी महसूस हो रही है। अत में यदु मुझे प्रणाम करता है। मेरी आखो से आनद के आसू बह निकले हैं। पिताजी हसकर कहते हैं अब यदु का अभिषेक पूरा हो गया!'

तभी महाराज मेरे सामने घुटने टेककर बडी दयनीयता से कहते हैं तुम्हारे पिता के शाप के कारण मेरा सारा शरीर जल रहा है। अपने आसुओ से इसे भी शात कर दो। मैं तुम्हारा शतश अपराधी हू। मुझे क्षमा करो।'

ययाति

मैं —मैं कौन हू ? कहा हू ? स्वग म हू या नरक म ?

मैं ययाति ही हू न ? नहुष महाराज का पुत्र हस्तिनापुर का सम्राट देवयानी का पति

देवयानी ? कहा की देवयानी ? देवयानी मेरी कोई नही—कोई नही !

कोई नही कसे ? है। वह मेरी पूव ज म की वरिन है ! उसने—उसने मुझे इस नरक म धकेला है !

किन्तु मैं क्या नरक म हू ? नही मैं भी क्या पागलपन की बातें कर रहा हू ! यह नरक नही यह स्वग है। कई वष हो गए मैं इस स्वग सुख का उपभोग कर रहा हू।

कितने वष हो गए ? अठारह ? नही अठारह सौ वष हो गए मैं इस स्वग म हू। अप्सराओ का अधरामृत निरतर पी रहा हू। कल्पवक्ष के नीचे मेरा पलग लगाया गया है। हरसिंगार के फूलो की सज पर मैं दिन रात लोट रहा हू। नक्षत्रो को भी लजा दने वाली चितवना से मै प्रति पल घायल हो रहा हू। जब— जब मैं इद्राणी को अपनी बाहो म भरकर

इद्राणी—इद्राणी के कारण ही तो नहुष महाराज को वह भयकर अभिशाप मिला ! कौन है जो मेरे कानो म गुनगुना रहा है ?— नहुष के पुत्र कभी सुखी नही होग !

किन्तु मैं नहुष महाराज का पुत्र हू। मैं सुखी हू। मेरा भाई यति—वह जगलो म भाग गया। अ त म पागल हो गया। किन्तु मैं तो सुख के सागर की तरगो पर तर रहा हू। अपन सभी दुखो को मैंने इस समुद्र म डुबो दिया है।

किन्तु किन्तु शर्मिष्ठा की स्मृति का एक दु ख अवश्य है शर्मिष्ठा इस समय कहा है ? नही यह दु ख लाख कोशिशें करन पर भी हाला प्याला म डुबाया नही जा रहा है ! मृगया के रक्त से उसे धोया नही जा सकता ! शरीर-सुख देन वाली कोई भी मेज सहनी अपनी बाहो म लकर इस दुख को कुचल-मसल नही सकती !

नही—ययाति सुखी नही है। वह दुखी है !

मैं दुखी हू ? नहा यही समझ म नही आता कि मैं सुखी हू या दुखी। सुख क्या होता है ? दुख क्या चीज है ? शायद दुनिया म इसस जटिल कोई प्रश्न नही

है ! मैं ययाति ही हू या कोई और बन गया हू ? कहा चला जा रहा हू मैं ? क्या ? किसके लिए ?

मैं कहा हू ? सूरज और चान्द तारा की रोशनी—प्रीति वात्सल्य और मानवता का प्रकाश—सारे प्रकाश कहा गायब हो गए ? सबका एकसाथ अस्त कैसे हो गया ? इस भीषण अधेरे म मैं कहा चला जा रहा हू ?

अधेरा—कहा है अधेरा ? अरे मैं कहीं पागल तो नही हो गया ?

मेरे सामने यह हाला-प्याला रखा है। माधव की मृत्यु के बाद यही मेरा अभिन्न मित्र रहा है ! इसने ! यह एक ऐसा मित्र है जो दिन हो या रात कभी मेरा साथ नही छोडता ! यही मेरा प्राणो से भी प्यारा मित्र है जो कलेजे म चुभी तमाम फासो को हौले से निकाल देता है !

मेरे सामने यह हाला प्याला रखा है। मुझे अज्ञान म डुबाकर कृताथ बना यह खाली प्याला—इस प्याले मे यह क्या

कही मैं पागल तो नही हो गया ? इस खाली प्याले म यह कैसी आवाज सुनाई दे रही है मुझे ? इस प्याले म यह कौन बाहर निकला आ रहा है ? यह तो कोई एक आकृति नही। एक दो-तीन

सत्रह-अठारह ! अठारह विवस्त्र डायनें उस प्याले मे

कितना भीषण नृत्य कर रही हैं ये डायन ! ये डायनें किसके ऊपर नाच रही हैं ? अरे ये तो नाजुक कोमल सुदर युवतियो की लाशो पर नाच रही है। प्रणय की पहला आन्ट पाकर चकराया वह प्यारी बालिका है। वह दूसरी प्रीति का पहला चरण चिह्न म अकित होते ही शरमाई मुग्धा है। वह उधर प्रीति के पवित्र स्पर्श से पुलकित ढीठ रमणी है। उस ओर सुनहरे स्वप्नो म बनाए गहस्थी के मदिर म पूजा का थाल लिए जा रही वह प्रसन्न प्रमदा है—इन सबकी लाशो पर ये बदसूरत डायनें उन्मत होकर नाच रही है !

नाचते नाचते वे गाने लगती हैं। उनके स्वर खिसियाई नागिनो के फुफकार जसे हैं

हे भगवान ! उनके हर स्वर के साथ आकाश का एक एक अभय दीप बुझ रहा है ! देखते ही देखते सारा आकाश कजरा गया है स्याह पड गया है ! आकाश के सभी दीपो को इन डायनो ने अपने गीतो के स्वरो से बुझा दिया है !

ये डाकिनियां यह कौन-सा प्रलय-गीत गा रही है ?

यह गीत नही अधकार का स्तोत्र है। उसके द्वारा ये डायनें एक घनघोर अधकार को बुला रहा है जिसमे मनुष्य स्वय को पहचानना भूल जाता है जिसमे कदम रखते ही प्रकाश की किरण काली स्याह पड जाती है सभी सीमारेखाए डूब जाती है !

गाते-गाते इन डायनो म से एक आगे आकर विकट अट्टहास करते हुए मुझसे कहती है पहचाना मुझे ? निपट बुद्धू के बुद्धू ही रहे तुम ! अब भी नही

पहिचाना हम बहनो को ? अरे हमीने प्राणप्रण स तुम्हें सुख दन की चेष्टा की ! —बेवफा, हमारे सहवास म जी भर कर सुख लूटन के बाद भी तू हम नही पहिचान पा रहा है ?

दूसरी ऊची उ मत डायन मेरे बिल्कुल करीब आकर टहाका मारती है—नरमास पकाने वाले कापालिक की तरह !

उस अपने साथ लाग लपट करत देखकर मैं डरकर आख मूद लेता हू। मेर गल म अपना अधीर हाथ डालकर वह कहती है चल मेर साथ खेलन के लिए चल। हम द्यूत खेलगे। इस जुए म म हार गई तो मैं हर र त तुम्हे नई कोमल और एकदम कामल युवती लाकर दूगी। लकिन तुम हार गए ता तुम्हे मेर साथ अधकार क सागर म चलना होगा। वहा हम लोग तिमगल के पेट म छिपकर बठ जाएग। फिर तो भगवान का भी हमारा पता नहीं चलगा ! उस सुदर एकात म हम जी भरकर प्रणय क्रीडा करेंगे। मैं तुम्हारी पटरानी बनूगी। तुम कहत कहत वह रुक जाती है। मैं डरत डरत आखें खोलता हू। मर गल म पडा हुआ अपना हाथ निकालकर वह अपनी मुट्ठी बद कर लेती है फिर तुरत खोल दती है। उस खुली मुट्ठी म मुझे कौडिया दिखाई दती है।

कौडिया ? नही ये तो मोहक आखें है। ये— ये उस माधवी की आखें ! वे—व उस तारका की !

ये कौडिया नही है। ये युवतियो की आखें हैं। इन्ही आखो क मैंने लाख लाख चुबन लिए है ! नाजुक पलको की पतवार लिए प्रीति की खोज म निकली ये छोटी छोटी नौकाए हैं ! इन्ही नौकाओ म बठकर कितनी ही बार मैंने स्वग का किनारा देखा है !

वह डायन हसकर पूछती है चल इन कौडियो स द्यूत खेलेंग। सुनकर मैं सिर स पाव तक सिहर उठता हू। सारी शक्ति समेटकर उस डायन को मुश्किल स दूर ढकेलकर उसस पिण्ड छुडाता हू।

क्या यह सारा मात्र आभास था ? पिछले अठारह वर्षो म ऐस आभास इसस पहले मुझे कभी नही हुए थे। फिर आज ही क्या हो रह है ? वह आभास था या सत्य ?

मरे सामन केवल खाली प्याला पडा है। खाली प्याला —शून्य मन—रिक्त हृदय ! —रीता दिल !

इस सूनेपन का भान दिल को लगातार जलाता रहता है। मन रिक्तता की खोह म फडफडाकर ऐस भटकता है जसे दावानल म फसा पछी ची ची करता बाहर निकलन को छटपटाता हुआ उडता रहता है। कही भी उस सहारा नही मिलता। हारकर मैं मदिरा के सागर म गहरा डूब जाता हू। उस सागर की हर लहर स मैं कहता हू 'मुझे और गहरे और भी गहरे ल चल। विल्कुल विस्मृति क महासागर की तह म पहुचा द। वहा मुझ आराम स सोने दे। अनत काल तक मुझे सुख स वहा पडा रहने दे।'

उस दिन मैं इसी तरह बहुत ही गाढी नीद सोया था। किन्तु वहा भी अचानक मुझे जाग आ गई। दूर-दूर कही सवरा हो रहा था। पक्षियो की हल्की चहचहाहट सुनने की मैंने काफी चेष्टा की किन्तु कुछ भी ठीक से सुनाई नहा दिया। कुछ समझ म भी नही आया। कुछ दिखाई नही दिया।

काफी देर बाद मुझे सुनाई दिया हो गया महाराज।

क्या हो गया ?'

मध्या समय।"

कौन बोल रहा था ? क्या कोई देवदूत था ? क्या कहा उसने ? सध्या समय हो गया ? सध्या हो गई ? मेरे जीवन की सध्या हो गई ?

ऐसे कैसे हो सकता है ? यह देवदूत राह भूल गया होगा। अरे पागल यह हस्तिनापुर का अशोक वन है। मैं सम्राट ययाति हू। किसी वृद्ध राजा को देने के वास्ते लाया स देश गल्ती से तुम मेरे पास ले आए हो। जाओ वापस चले जाओ। मेरे जीवन की सध्या इतनी जल्दी कैसे हो सकती है ? मेरा यौवन अभी अपक्व है। मेरी आखें कान होठ हाथ—शरीर का प्रत्येक कण आज भी सुख का भूखा प्यासा है वह अधीर होकर प्रत्येक रात की राह देखता रहता है। जाओ देवदूत लौट जाओ। ठीक से याद करो उस वृद्ध शिथिल गात्र वान और मृत्युशय्या पर पडे राजा का नाम। अपना यह सदेश उसे जाकर सुनाओ जाओ।"

सध्या समय हो गया। प्रसाधन का समय हो गया महाराज।"

मुझे अपने पर ही हसी आई। अरे यह तो मुकुलिका थी। उसे ही देवदूत समझ कर मैं घबडा गया था—कितना डर गया था।

बहुत ही सुदर सध्या है। प्रसाधन की सिद्धता करू न ?'

मैंने हसते-हसते पूछा फूल मिला ?"

जी महाराज।

ताजा है ?"

जी, एकदम ताजा। भगवान पर भी क्या कोई बासी फूल चढाता है ? यह तो अभी हाल ही म खिली कली है महाराज।'

उस कली की अस्फुट सुगधित लहरो पर मेरा मन चेतना के किनारे से अचेतन के किनारे तक झट से पहुच गया और लौट भी आया। मैंने मुकुलिका से कहा प्याले म मदिरा डाल दे और प्रसाधन की सिद्धता कर।" मैं खिडकी के पास गया। आज की सध्या वाकई बहुत ही सुदर थी।

सोचा सारे कवि सकेतो के दास हुआ करते हैं। ऐसी मोहक शाम पर उनकी कल्पनाओ की उडानें घिसी पिटी ही होती है। पश्चिम म छाया यह गहरा गुलाबी रग क्या वास्तव म सध्या रग है ? नहा सूरज अपने होठो से लगाया हुआ मदिरा का प्याला बढाकर मध्या के मुख के पास ले आया है। वह सकुचाई। न ना" कहते उसने बीच ही म अपना हाथ आगे बढाया। उसका धक्का लगकर प्याला नीचे गिरा। उस प्याले की इधर उधर बह निकली मदिरा ही है यह।

वह गहरा लाल सध्या रग ! मृगया के आनद का साक्षात व्यक्त रूप है। काली भीलनी के हाथ से तडके भाग निकला दिवस रूपी शिकार अब उसकी पकड म आ गया है। उसका तीर उसके कलेजे म गहरा आ घुसा है। दिवस के उर से वह निकला रक्त ही पश्चिम पर छा गया है।

य तजी क साथ बदलते जाने वाले सध्या रग -केशरी अजीरी नारगी ! य कीमती साडिया के रग है। शायद स्वग क द्वार म अपन प्रियतम की अधीरता स प्रतीक्षा कर रही कोई अप्सरा असमजस म पड गई है कि कौन सी वशभूषा धारण करू जो प्रियतम के मन को भा जाए। यह सोचकर कि शायद यह साडी उस पसद आएगी वह उसे पहनने लगती है। किन्तु पहन चुकते ही उस लगता है नही यह कोई बहुत अच्छी नही है। इसलिए वह उस उतारकर दूसरी उससे भी अधिक कीमती साडी से परिधान करने लगती है। किन्तु किसी साडी स उनके मन को सतोष नही मिलता। वह लगातार साडिया बदलती ही जाती है।

लगा सामने फल उस अदभुत सौन्दय को कही मरी ही नजर न लग जाए। मैं आखें मूदकर सोचने लगा।

०

दुनिया म कवल तीन ही बातें सत्य है—मृगया मन्दिरा मदिराक्षी। इन तीनो के सहवास म आदमी अपन सारे दु ख भूल जाता है।

इस दुनिया म अपना शिकार न हो इस हेतु दूसर का शिकार बनाते रहना पडता है। जीवन का यह अतिम सत्य सिखाने क लिए मृगया के समान कोई और गुरु नही हो सकता। यह सत्य कठोर होता है क्रूर भी प्रतीत होता है। किन्तु जीवन के महाकाव्य का वह सबस अधिक महत्त्वपूर्ण श्लोक है। पवित्र सुन्दर कवल निरीह दुबल सज्जनो द्वारा निर्माण किए गए शब्द ह ! पवित्र यज्ञ की वेदी बलि दिए जाने वाले पशु का चिता ही होता है ! निष्पाप हिरन पारधी के मध्याह्न भोजन के लिए प्रकृति द्वारा बनाया गया पकवान है !

मदिरा क कारण आदमी क पर निकल आते ह। उन परो की फडफडाहट स उनके परो म बधी शृखलाए चटचट टूट जाती ह। मदिरा की मोहक और दाहक मदहोशी म नीति कतव्य पाप पुण्य की सारी की सारी कल्पनाए धुल जाती हे !

सुदर स्त्री वासना की क्षणिक तृप्ति कराने वाली सजीव गुडिया मात्र है। सुदरी रमणी के सहवास म मदिरा और मृगया की सुखसरिताओ का सगम हो जाया करता है।

मैंने आख खोलकर सामने देखा। सभी सध्या रग आकाश स गायब हो गए थे। सबत्र अधकार का साम्राज्य फल चुका था। उस अधकार की ओर मैं आख फाडकर देखने लगा। आभास हुआ कि अतान के गत से उठकर एक अत्यत विशाल कछुआ मेरी ओर हिरन की गति स आक्रमण करने चला आ रहा है ! नही ! वह

कलुआ नही था ! वह काल पुरुष था ! सब भक्षक महाकाल ! उसीने उन संध्या रंगो को स्वाहा कर डाला था !

मुझसे खिडकी के पास खडा नही रहा जा रहा था । बाहर देखने भी नही बन रहा था । मुडकर मैं महल लौट आया । पलग पर लेट गया । मुकुलिका ने प्रमाधन की सिद्धता पहले ही कर रखी थी । वह मेरी चारा ओर तितली के समान चहक रही थी । मैं उसकी सारी गतिविधियो को देख रहा था । इस अपेक्षा से कि मैं उसमे कोई मजाक करूगा, वह सजधज कर मेरे आसपास मटकती फिर रही थी । किन्तु मैं निर्विकार था । यकीन नही कर पा रहा था कि यह वही मुकुलिका है जिसके सहवास मे स्त्री-पुरुष के आकर्षण का अदभुत रहस्य मैंने पहली बार जाना था । इन बीस वर्षों मे उसका सौदर्य कुम्हला गया था । यौवन ढल चुका था । वह मोटी और बडौल दीखने लगी थी ।

सोचा अपने केवल स्पर्शमात्र से मुझे पुलकित करने वाली बीस वर्ष पहले की वह मुकुलिका सुदर मुकुलिका कहा गई ? यह अब अधेड हो गई है । कल वह बूढी हो जाएगी । मैं भी उसी तरह कल

कल आज कल ! नही बीते कल और आने वाले कल के साथ मानव का क्या सबध है ? उसका तो एक ही जिक्र होता है —वर्तमान क्षण । अठारह वर्षों से मैं यही क्षण जीते आया हू । बिजली की गति से घूमनेवाले समय चक्र को मदिरा के प्याले मे डुबाकर मैंने स्थिर किया ! रमणी की चितवना मे उलझाकर और बाहो मे बाधकर मैंने उसे अचल बना लिया ।

नही ! अब मैं आगे पीछे का कोई विचार नही करूगा । इस अधेड मुकुलिका की ओर देखने से मन मे उस काल पुरुष की याद जाग जाती है जो दबे पाव आकर मनुष्य पर अपने पाश फेंकता है और उसे अज्ञात की खाई की ओर खीचकर ले जाता है । इस मुकुलिका को अब यहा से हटाना होगा मेरा प्रमाधन करने के लिए दूसरी सुदर और तरुण दासी

मुकुलिका को हटा दू ? क्या वह इतनी आसानी से हटाई जा सकेगी ? नही ! भाग्य ने ही मेरे सुख और उसके अस्तित्व का मेल करा लिया है !

अठारह वर्ष पूर्व की वह भीषण रात ! यह सौगंध उठाकर कि अब से आगे तुम्हारे शरीर को कभी स्पर्श नही करूगा' मैं देवयानी के महल से चला आया । अतृप्त वासना की आग मे मैं जल रहा था । अपमान के जहरीले शूल कलेजे मे चुभ रहे थे । अनेक भले-बुरे विचार मन मे कुहराम मचा रहे थे । प्रतिशोध सन्यास आत्मघात

अन्त मे मैं मुकुलिका के उस गुरु महाराज के मठ मे गया । लगा शायद पहले भी इस महाराज को मैंने कही देखा है । किन्तु उस क्षण कुछ भी ठीक से याद नही आ रहा था । आगे चलकर शीघ्र ही उसका रहस्य भी खुल गया । वह मन्दार था । निरीह अलका की मृत्यु का कारण बना नीच मन्दार ! इसीने मा से अलका की हत्या करवाई थी । अलका—मुझसे रानी बनाने वाली मेरी वह प्यारी सखी —मन्दार

को पहिचानते ही मेरे मन में अलका की मृत्यु का बदला लेने की इच्छा प्रबल होनी चाहिए थी ! किन्तु उलटे मैं उसके ही इशारों पर नाचने लगा। अनजान में उसके हाथ की कठपुतली बन गया।

मदार बडा साधु बना फिरता था। उसने साधु का स्वाग तो बहुत ही अच्छी तरह से रचा था। उसकी वाणी में विलक्षण मोहिनी थी। परेशान मन को शांति देने की शक्ति उसके प्रवचनों में थी। उसने तरह तरह के लोग इकट्ठा कर रखे थे। कोई घर गृहस्थी के ताप में जले हुए थे, कोई जीवन से ऊबे हुए थे। कोई दुनियादारी के हुनर देखकर डरकर भाग आए थे ! दुनिया में दुःख के जितने भी प्रकार हो सकते हैं उतने ही मदार के भक्तों के भी प्रकार थे ! यह अनुभव करने पर कि बाहर आसानी से न मिलने वाले सभी सुख उसके स्वाग में शामिल हो जाने से प्राप्त हो जाते हैं अनेक लोग उसके भक्त बन गए थे ! उस जमघट में केवल अधेड या बूढ़े ही नहीं थे बल्कि तरुण सुंदर युवतियों की भी भरमार थी। ऐसी सुंदर युवतियों का उपयोग मदार बहुत ही कुशलता से कर लेता था। अठारह वर्ष पूर्व उस रात उसने इसी तरीके से मुझे अपने वश में कर लिया।

उस रात मैं एक ऐसा नशा चाहता था जो शर्मिष्ठा की याद को भुला सके। मैं एक ऐसे उन्माद की खोज में था जिसमें डूबकर देवयानी द्वारा किए अपमान को मैं भूल सकूं। पाप पुण्य नीति अनीति आदि का विचार करने के लिए मुझे फुरसत नहीं थी। उस दुःख से छुटकारा पाने का मार्ग उस रात मदार ने मुझे दिखाया। वह मेरा गुरु बन गया। पिछले अठारह वर्ष निरंतर सुख विलास में डूबे रहने के लिए मुकुलिका और मदार ने मेरी सब तरह से सहायता की है। उस दिन मदार मेरे जीवन में न आता तो

उस रात दुःख भुलाने का यह आसान तरीका मदार ने मुझे न बताया होता तो आत्मघात की चट्टान की ओर बह चले मेरे मन की नौका की पतवार उस रात उसने न सभाली होती तो—तो कल्पना भी नहीं की जा सकती क्या नहीं हो जाता ! शायद किसी खाई में छिन्न भिन्न हो पडे हस्तिनापुर के सम्राट के शरीर पर गिद्ध झपट झपटकर उसके लोथडे नोचते होते ! शायद शर्मिष्ठा का अधरामृत पीकर भी अतृप्त ही रहे उसके होठों को किसी नदी की मछलियां कुरेदकर खाती होतीं !

उस रात मठ में मदार को देखते ही मुझे यति का याद हो आई। जंगल की एक गुफा में इसी तरह अचानक ही उससे भेंट हुई थी। शरीर को कष्ट दे देकर ही ईश्वर की प्राप्ति होती है इस श्रद्धा में यति कोशिश करता रहा। अंत में उस श्रद्धा के कारण वह पागल हो गया। मदार भी ईश्वर भक्ति का नाटक कर रहा था। एक पहुंचे हुए साधु के रूप में विश्व के रंगमंच पर विचरता था। किन्तु इस रंगमंच के सबसे पीछे वाले पर्दे के पीछे वह किसी विलासी राजा के समान रहता था। सभी सुखों का जी भरकर उपभोग करता था।

यति और मदार ! कितने परस्पर विरोधी चित्र थे ! मदार का तत्त्वज्ञान

यति क तत्त्वज्ञान स सवथा भिन्न था। सामान्य नामो को वही जचता था, अपना लगता था। म भी उसका शिकार इसी कारण हुआ। मदार का मुख्य सूत्र था— जीवन आज खिलन वाला और कल मुरझा जान वाला फूल है उस फूल की सुगध का जितना लूट सकते हो लूट लो किसी भी तरीके स लूट लो इसम कोई पाप नहा है।

मदार क माग पर चलत समय बचपन क अनक सस्कारा के कारण मेरा मन बहुत बचन हा जाता। अगिरस ऋषि क आश्रम म बच क साथ हुए सभाषण से लकर उसके उस प्रदीघ पत्र तक अनक स्मतिया जाग जाती और कठोर स्वर म मुझस पूछती 'अरे पागल तू कहा चला जा रहा है?

एस समय मदार तरह-तरह स मेरे मन का बुझाने की चष्टा करता। कभी वह प्राचीन ऋषिया क वचन समथन म उद्धत करता कभी बडे बडे स्त्री-पुरुषा के अनिव ध भोग विलास की कहानिया सुनाता कभी व्यावहारिक कहानिया उदाहरण दकर जीवन की भगुरता समझाता।

एक दिन मैं उसके साथ रथ म बठकर नगर म घूम रहा था। राजमाग स हटकर रथ कुछ एक ओर हो लिया। उस राह क सिरे पर एक कुम्हार की दुकान थी। दुकान म तरह तरह क आकार प्रकार क अनेक बरतन रखे थ—आकषक सुदर! उनकी ओर अगुलि निर्देश करत हुए मदार ने कहा, महाराज, य बरतन वस्तुत ही सुदर और बढिया है है न?'

मने कहा निश्चय ही। प्रत्यक व्यवसाय म अपनी एक कला सा होती ही है।'

मदार ने हसकर कहा "विधाता क व्यवसाय म भी वह है। वह भी ता एक कुम्हार ही है।

मैंने कुतूहल स पूछा वह कस?

वह भी इसी तरह माटी क बरतन बनाया करता है। आपके और मेरे जस! इस कुम्हार क बरतन टूट जाए ता उनकी मिट्टी हा जाती है। मानव भी इसी तरह एक दिन मिट्टी म मिल जाता है। इस कुम्हार क बरतना म प्राण हात तो म उनको उपदेश दता 'भाइया जीवन भर कवल पानी पाते मत बैठो मदिरा पिया अमत पिया। जा भी पी सकत हा आज ही पी लो। कल तुम्हार जब टुकडे-टुकडे हा जाएग किसी भी पय की एक बूद तक तुम्ह नसीब नही होगी।

एक बार घूमत घुमात मदार मुझे श्मशान ल गया। वहा चिता पर एक युवक का शव जल रहा था। क्षण क्षण, प्रति पल उसके सुदर दह की राख हा रही थी। मदार न उस तरुण की कहानी मुझ बताई। परमात्मा की प्राप्ति क लिए वह ब्रह्मचारी रहा था। इसक लिए उसने अपनी बचपन की सगनी का दिल तोड डाला था। वह जीवन भर के लिए दुखी हो गई थी। मुद्रिका ने मन की शाति के लिए उस मदार क पास लाया था। और आज वह तरुण अत म चिता क पलग पर ज्वालाआ की चादर ओढे मत्यु का आलिंगन कर शून्य म मिलता जा रहा था। आज

तक उसने किसी भी शरीर सुख का आस्वाद नहीं लिया था। अब किसी सुख का उपभोग करना उसके लिए असम्भव हो गया था।

उस जलती चिता की ओर देखते देखते मुझे आभास हुआ कि मैं ही चिता पर सोया हूं। मेरा सुंदर सुदृढ़ गठा हुआ हाथ ! अब जल रहा है। फिर कभी वह हाथ मदिरा का प्याला अपने होठों तक नहीं ले जा सकेगा। किन्तु मेरे होठ भी कहां अपने स्थान पर हैं ? वे भी जलकर राख होते जा रहे हैं। अब फिर कभी वे किसी सुंदर स्त्री का चुंबन नहीं ले सकेंगे। वे हैं तो अतृप्त किन्तु

मेरे कंधे पर हाथ रखकर मदार ने कहा महाराज जीवन के जमा खर्च में उधारी के लिए कोई स्थान नहीं होता। उस व्यक्ति को कल फूलों की सुगंध मिलेगी ही इसका कोई भरोसा नहीं जो आज फूलों को सूंघ नहीं लेता। कल सुनहरा प्रातःकाल अवश्य आएगा ! कल सुगंध देने वाले फूल भी जरूर खिलेंगे ! किन्तु इन फूलों की महक लूटनेवाला कल इस संसार में नहीं रहेगा !

इसी तरह एक बार मदार यों ही मुझे नगर के एक पण्डित के यहां ले गया। उस पंडित को देखकर मैं अवाक रह गया। पिताजी जब मृत्युशय्या पर थे तब माधव मुझे इन्हीं के घर तो लाया था। उस समय इन पंडितजी ने मेरे सामने ब्रह्म और माया की काफी तातारटंत की थी ! आज ये महाशय बहुत ही बूढ़े हो चुके थे। उनकी स्मृति भी जवाब दे गई थी। ठीक से दिखाई नहीं देता था। ठीक से चला भी नहीं जाता था। किंतु यौवन में इनसे ठुकराए सारे सुख इनपर उलटे थे और प्रतिशोध ले रहे थे। पिटारे का ढक्कन उठाते ही फन उठाकर बाहर आने वाले नाग की तरह उनके मन की अतृप्त वासनाएं विकृत रूप से प्रकट हो रही थीं। पंडितजी घर में कभी शांति से बैठते नहीं थे। वे राजमार्ग पर खड़े रहते और आने-जाने वाली युवतियों को घूर घूरकर देखते रहते। लड़के बच्चे भी उनका मजाक उड़ाते। किंतु इन्हें उसकी कोई परवाह नहीं होती। उनके अपने टूटे उपह कमरे में वे न कर सकते। किंतु वहां भी वे कोयले से दीवार पर अश्लील और गंदे चित्र बनाते बैठे रहते। उन चित्रों की स्त्रियां अर्धनग्न होतीं और पोतों के सामने ये पण्डित महाशय उनके चुंबन लेते रहते !

इस पंडित के समान ही मदार के मठ में आने वाले नाना तरह के तरुण और प्रौढ़ स्त्री-पुरुषों के जीवन को मैंने पास से देखा था। सबका सार एक ही था। धर्म, नीति, पुण्य, आत्मा आदि पवित्र शब्दों की मानव हर क्षण पूजा तो करता रहता है किन्तु केवल दुनिया की आंखों में धूल झोंकने के लिए ! मन के भीतर उस केवल एक ही बात का ध्यान रहता है। वह है सुख—शरीर के माध्यम से मिलने वाला हर प्रकार का सुख !

जीवन भंगुर है। न जाने किसकी मौत आ जाए कहा नहीं जा सकता। इसीलिए मिलने वाले हर क्षण को सतृष्ण मानकर उसका सारा रस, गंध और आनन्द बिल्कुल बटोरने में लिप्त रहकर मानव को चाहिए कि अपनी सुख की प्यास शांत कर ले। मदार ने यह तत्त्वज्ञान मुझे सिखाया।

o
इस नये जीवन मार्ग पर मेरा प्रवास पवन वेग से शुरू हो गया। देवयानी के कठोर और प्रेमशून्य आचरण से उस बिजली को गति मिल गई। आठों पहर विलासिता में चूर रहना ही मेरा ध्येय रह गया।

ऋतु चक्र के अठारह आवर्तन हो गए। वसंत वर्षा हेमंत छुआछवेली का खेल निरंतर खेल रही थी। अठारह वर्ष तक ऋतु चक्र घूमता रहा। रात और दिन निरंतर आंख मिचौनी खेलते रहे। रात दिन को ढूंढ निकालती। दिन रात को खोज लेता। एक के बाद एक करते-करते वर्ष बीत रहे थे। किंतु मेरे जीवन क्रम में कभी कोई खंड नहीं पड़ा, कोई परिवर्तन नहीं आया। भगवान की मूर्ति पर आज चढ़ाए फूल कल निर्माल्य जानकर फेंक दिए जाते हैं न, उसी तरह मेरे सुख विलास के लिए नित्य नई युवतियां आती और जाती थीं। मैंने इस बात को कभी कोई चिंता नहीं की कि वे कहां से आती हैं और बाद में कहां चली जाती हैं। मैं तो बस इतना ही चाहता था कि मेरा सुख का प्याला निरंतर लबालब भरा रहे। मंदार और मुकुलिका ने पिछले अठारह वर्ष तक उसे बराबर भरा हुआ रखा था एकदम लबालब।

किंतु किंतु

इस सुख विलासिता की दो रातें आज भी मुझे याद हैं। आज भी वे मन को नोच खाती हैं। कालरात्रि के समान लगती हैं।

एक रात मुकुलिका मेरे लिए एक बहुत ही खूबसूरत युवती को लेकर महल में आई। उसने लाकर उसे मेरे पलंग पर बैठा दिया। मैं मदिरा के नशे में धुत था। उस समय मेरे ध्यान में बस इतना ही आ सका कि उस तरुणी की आंखें बहुत ही सुंदर हैं। और कुछ भी भान मुझे नहीं था। प्रातः जब तड़के ही मैं होश में आया तो मेरी बांहों में पड़ी वह युवती पहली बार 'माधव माधव' कहकर बुदबुदाई। मैं समझ न सका वह किसको पुकार रही है। लगा किसी किसीको नींद में बोलने की आदत होती है। शायद यह भी अपने छोटे भाई को पुकार रही है। उसकी गर्दन के नीचे दबा हुआ अपना हाथ मैं धीरे से हटाने लगा तभी वह मुझसे और भी सटकर लिपट गई और बुदबुदाई "मैं तुम्हारी हूं न? ना ना माधव इस तरह मुझे छोड़कर ना जाना।"

मैं चौंक गया। उसकी ओर गौर से देखने लगा। अब मेरे होश ठिकाने आ गए थे। मैंने उसे पहचान लिया। वह—वह माधवी थी। शायद अर्धचेतन अवस्था लाने वाली कोई दवा खिलाकर मुकुलिका उसे मेरे महल में ले आई थी। शायद मंदार ने मंत्रविद्या के बल पर उसपर सम्मोहन डाला था। मेरे सुख के प्याले को हमेशा लबालब भरा हुआ रखने के लिए वे दोनों न जाने क्या क्या करते थे।

धीरे धीरे माधवी होश में आने लगी। उसने मेरी ओर घूरकर देखा। शायद वह जान गई थी वह कहां आ गई है। उसकी मुद्रा भयानक दीखने लगी।

फिर एकदम महाराज ! कहकर चीखते हुए उसने मुझे दूर ढकेल दिया !

तटाक से महल का दरवाजा खोलकर वह हवा की तरह तेज़ दौडकर बाहर निकल गई। दूसरे दिन उसका शव यमुना पर तरता मिला !

ऐसी ही एक रात म मुकुन्दिका न मेरे सामने एक मुग्धा रमणी को लाकर खडा किया। मैं तो केवल इतना ही समझ पाया कि बिलकुल अभी अभी खिला यौवन मेरे सामने खडा है। वह युवती सिर उठाकर देख ही नही रही थी। और वह देख भी लेती तो भी इसम स देह ही है कि अपनी बेहोशी म मैं उसे पहिचान लेता ! किन्तु दूसरे दिन तडके नीद खुलने पर मैंने उसकी ओर देखा। वह तारका थी ! मैं उसकी ओर देख ही रहा था कि वह भी जाग गई। उसकी नजर मेरी ओर जाते ही उसको जमे साप सूघ गया ! उसका चेहरा काला स्याह पडता गया। दूसरे ही क्षण जोर स साप ! साप !' चीखती हुई वह महल के बाहर भाग गई। कुछ दिनो बाद सुना कि वह पागल हो गई है। जलते अगारो को फूल समझकर वह उन्हे चुन लेन के लिए आग म घुस गई और जलकर मर गई ऐसा कुछ वर्षों बाद किसीने आकर मुझसे कहा !

मेरे जिगरी दोस्त की मगेतर ! मेरे परम मित्र की लाडली भतीजी ! दोनो की जिन्दगी मेरे कारण बरबाद हो गई। मुझे अपना जेठ मानने वाली माधवी को अपने क्षणिक सुख के लिए मैंने जिन्दगी से उठा लिया ! जिस तारका को गुडिया से खेलते हुए मैंने देखा था उसीके साथ दुनिया का सबसे निमम खेल म खेल गया ! उसके वे प्यारे प्यारे तोतले बोल आप सच कहते ह ! भला दूला कहा से लाया जाए ? जो युवराज आप बनेंगे मेली गुल्यिा का दूला ? —हरहर ! उस मैंने जीते जी मौत का दु ख भोगने के लिए विवश किया ! एक फूल हसते हसते मैंने आग म फेंक दिया !

इन दोनो अवसरो के बाद कितने ही दिन तक मैं बचैन रहा। इस बुध से कि मदार का सुख का माग अध पतन का माग है मैं बहुत व्यथित भी रहा। मन इस आशका स आकुल हो उठा कि मानव के नाते सुख से जीने की चेष्टा म कही म राक्षस तो नही बन गया ? किन्तु मेरी समझ म नही आ रहा था कि मदार का बताया माग छोडकर जाऊ भी तो कहा ? मैं आठो पहर सुख चाहता था। मेरी धारणा बन गई थी कि मदिरा के नशे म मृगया के उन्माद म और रमणी के आलिंगन के ब्रह्मानन्द म मैं पूरी तरह सुरक्षित हू। उससे बाहर जा गया तो मैं दुखी हो जाऊगा अकेला रह जाऊगा अरक्षित हो जाऊगा। मृत्यु हमेशा चारो ओर मडरा रही है इसकी कभी-कभी अनुभूति हो जाती तो मन बडा ही बेचैन हो जाता था। धीरे धीरे उन दो रातो की चुभन भारी हो गई।

ऋतु चक्र घूमता रहा। काल चक्र चलता रहा। मेरे सुख विलासिता का चक्र भी चलता ही रहा।

'दस घटिका रात हो गई महाराज' य शब्द सुनते ही मैंने आखें खोलकर देखा। अब मेरे ध्यान म आया। बाहर के अधकार स डरकर मैं पलग पर आ

लगा था। वहाँ मेरी आँख लग गई थी। मनुष्य का अन्तर्मन उसका वैरी होता है। जाग्रत अवस्था में मनुष्य जिन बातों पर जरी के मूल्यवान वस्त्र डालकर उन्हें ढक लेता है, उन्हीं बातों को नग्न रूप में दिखाने में उसके अंतर्मन को शायद बड़ा आनंद आता है! इधर मेरा शरीर निद्रा के अधीन हो गया था और उधर मेरा अंतर्मन अठारह वर्ष की स्मृतियों को याद कर रहा था! भीतर अब भी जो जख्म हरे थे उनपर जमी पपड़ियाँ को खरोंचकर उतार रहा था!

मैंने मुकुलिका की ओर हँसकर देखा। वह जल्दी-जल्दी आगे आई। देखते ही देखते उसने मेरा प्रसाधन पूरा कर दिया।

मैं दीवार में लगे दर्पण के सामने खड़ा हो गया। अपने पूर्ण प्रतिबिंब की ओर देखकर आनन्दित भी हो गया। किसी भी तरुणी का जी बलि-बलि जाने को मचले, ऐसा ही रूप था यह! यौवन पुष्प का हल अनेक बार मेरे चेहरे पर चल चुका था। किन्तु उस हल की एक मामूली सी निशानी—एक झुर्री भी—मेरे चेहरे पर नहीं थी! बल्कि मैं और भी अधिक तरुण दिखाई दे रहा था! उतना ही तरुण जितना कि अल्हड़ अलका का माथा अपनी ओर खींचकर उसका चुंबन लेने वाला ययाति!

मैं एकटक अपने प्रतिबिंब की ओर निहारने लगा। कुछ क्षण बीत गए। वह प्रतिबिंब धूसर दिखाई देने लगा। उस धूसरता से एक एक कर असंख्य तरुणियों की आकृतियाँ प्रकट होने लगीं। दाँत होंठ चबाती वे मेरी ओर देख रही थीं। कुछ बुदबुदा रही थीं।

चौंककर मैं दो कदम पीछे हटा। वह धूसरता अब गायब हो गई। मैं अपने प्रतिबिंब की ओर देखने लगा। दूसरे ही क्षण मेरे मस्तक पर वज्रपात हुआ। उन बिखरे हुए बालों में से एक सफेद बाल झाँक रहा था। मुझे लगा, वह सफेद बाल नहीं, शाप देने वाले ऋषि का भभूत रमाया हाथ ही है!

ययाति के मस्तक पर बुढ़ापे ने अपना झण्डा गाड़ दिया था!

बुढ़ापा! जीवन-नाटक का अंतिम और नीरस अंक!

अब मैं बूढ़ा हो जाऊँगा! उपभोग करने की मेरी शक्ति समाप्त हो जाएगी! नहीं! अभी मैं तृप्त नहीं। सुख की दृष्टि से तो अब भी मैं भूखा हूँ, प्यासा ही हूँ! नहीं, अभी मैं बूढ़ा नहीं होऊँगा!

किन्तु वह सफेद बाल! हो सकता है अभी देखी तरुणियों के समान वह भी एक आभास था! मैं बड़ी आशा से दर्पण में देखने लगा। वह सफेद बाल ज्यों का त्यों खड़ा था! आँखें तरेरकर मेरी ओर देख रहा था। वह नियति की निर्दयता का प्रतीक था!

मन फफक उठा। मन को बार-बार जताने लगा कि दर्पण में दीख रहा ययाति झूठा है, अल्हड़ अलका का चुंबन लेने वाला ययाति ही सच्चा है। वह सफेद बाल निर्मम भविष्य का अग्रदूत था। मैं उसका सन्देश सुनने को तैयार नहीं था। उससे बचकर मैं अतीत में भाग निकला!

भागता ही गया भागता ही गया। भागते भागते अलका के पास आकर रुका। उस सुहानी शाम को देखी अलका—उसके सुनहरे बाल—अब तक सैकड़ों युवतियों के सौन्दर्य को मैं लूट चुका था। किन्तु सुनहरे बालों वाली युवती

दर्पण की ओर से मुंह फेरकर मैंने आंख खोली। मैं मुकुलिका के पास गया। उससे पूछा "तुम्हारी वह कली कहां है?"

"रंगमहल में।"

"उसके बाल सुनहरे हैं?"

शायद मुकुलिका को लगा मदिरा के नशे में मैं कुछ भी बक रहा हूं। वह केवल हंसी जल्दी जल्दी आगे बढ़ी। रंगमहल का द्वार उसने धीरे से खोल दिया। पलंग पर बैठी तरुणी झट से खड़ी हो गई। मेरी ओर एक गहरी चितवन फेंककर वह नीचे देखने लगी।

मुकुलिका ने दरवाजा बंद कर लिया। मैं धीरे धीरे आगे बढ़ा। वह तरुणी ऐसी लग रही थी मानो किसी शिल्पी द्वारा तराशी गई किसी अप्सरा की मूर्ति हो। वह तरुणी बुत बनी खड़ी थी। मैं मन के सामने दृश्य देखने की कोशिश कर रहा था कि मेरा स्पर्श पाते ही यह मूर्ति कैसे सजीव हो उठेगी। पास जाकर मैंने धीरे से उसके कंधे पर हाथ रखा। कुछ सिमटकर तिरछी चितवन से वह मेरी ओर देखने लगी। मैंने अपनी बाहें फैला दीं

तभी मुकुलिका का कांपता और भर्राया स्वर सुनाई दिया— महाराज महाराज! अब इसी समय कौन-सी आफत आ पड़ी होगी मैं समझ न सका! अशोक वन में कहीं आग तो नहीं लगी? मैंने प्रक्षुब्ध होकर पूछा "क्या है?"

उसने दरवाजे की ओट से कहा "बाहर अमात्य पधारे हैं।"

"उनसे मिलने के लिए मेरे पास समय नहीं है!"

"उन्हें आए काफी देर हो गई है महाराज। किन्तु—किन्तु वे किसी तरह मानते ही नहीं हैं! वह रहे हैं कि युवराज को शत्रुओं ने कैद कर लिया है।"

युवराज—कैद—अलका—सुनहरे बाल—सफेद बाल—बुढ़ापा—मृत्यु!

मेरे दिमाग में ये सभी शब्द मदोन्मत्त हाथी की तरह टकराते जा रहे थे। घोड़ों की टापों के समान उनकी आवाज कानों में भन्ना रही थी! मुझे और कुछ भी नहीं सूझ रहा था।

अमात्य काफी कुछ कहते रहे। काफी देर बड़बड़ाते रहे। किन्तु इस थोथी दरबारी बकबक को मैं एक क्षण भी सुनना नहीं चाहता था। मेरा मन तो रंगमहल में बैठी उस तरुणी के आसपास चक्कर काट रहा था।

यदु के कैदी बनाए जाने के कारण देवयानी रो रही थी! किन्तु क्या इसी देवयानी को तब जरा भी दया आई थी जब उसने ययाति को अपने महल से निकाल बाहर किया था? किसी आवारा कुत्ते के समान उस राजमहल से भगा दिया था? तब उसकी आंखों में एक भी आंसू निकला था!

मुझे राज धर्म और पिता धर्म की याद दिलाने के लिए देवयानी ने अमात्य

था भेजा था। किंतु उसने पत्नी धर्म का कौन-सा पालन किया था ? लगा इसी क्षण सीधे राजप्रासाद जाऊं और देवयानी को तीना वचनों से बरबार कर कहूं कहिया इन अठारह वर्षों में कभी तुम्हें पति की याद आई थी ? कभी मन में आया था कि उसे क्षमा कर दूं ? वह बहता-बहकता जा रहा था तो उस बहा ले जाने वाली धारा में कूदकर उसे बचा लेने की इच्छा कभी हुई थी तुम्हें ? तू उस भीषण बाढ़ से डर गई ! नहीं ! प्रीति किसीसे डरती नहीं। ऐसे समय शर्मिष्ठा कभी चुप न बैठती ! सच तो यही है कि तुमने मुझसे सच्चा प्रेम कभी किया ही नहीं। तुम्हें ययाति चाहिए था जरूर लेकिन केवल पत्नी के नाते एक सम्राट पर अधिकार जताने के लिए ! अब क्यों रोती हो ? भुगतो अपने किए का फल ! तुम चाहती हो कि राज धर्म का और पिता धर्म का पालन होना चाहिए। लेकिन यह तुम्हें आज लगता है। किंतु हमेशा याद रखो, किसीसे धर्म पालन की अपेक्षा वही कर सकता है जो स्वयं अपने धर्म का पालन करता हो। यह अधिकार केवल उसीका है। बोल कहिया ! बोल ! विगत अठारह वर्षों में तेरा पत्नी धर्म कहां घास चरने गया था ?

अमात्य बड़बड़ाए जा रहे थे। मुझे समझा-बुझाकर राजप्रासाद ले जाने की चेष्टा कर रहे थे। किंतु रंगमहल में बैठी उस तरुणी की चितवन कमल के आसपास गुंजन करते भंवरे की तरह मेरे मन में गुंजन कर रही थी। मुझे अमात्य की बकबक और भी कर्कश और तापदायक प्रतीत हो रही थी।

यदु को छुड़ाकर लाऊं ! यानी युद्धभूमि पर जाऊं ! और शायद वहां मैं मारा गया तो ? नहीं अभी मेरा जीवन अधूरा है। मन अभी अतृप्त है। यौवन अभी असंतुष्ट है। सुनहरे बालों की लड़की—सुनहरे बाल—सफेद बाल—बुढ़ापा—मृत्यु नहीं ! मैं यदु को मुक्त कराने नहीं जाऊंगा !

अमात्य बोलते-बोलते थक गए। मेरा अपनी जीभ पर या विचारों पर काबू नहीं रहा था। किंतु अमात्य को कुछ न कुछ उत्तर देना जरूरी था। मैंने उनसे कहा महारानी से कह दीजिए इतने वर्ष बाद याद करने के लिए महाराज आपके ऋणी हैं।

कूटनीतिज्ञ गोह के समान होते हैं। अपनी बात पर अड़े रहने में वे किसीसे हार नहीं मानते। अमात्य फिर बकने लगे। अब मेरे अधीर मन में क्रोध सीमा लांघ गया। मैंने उत्तर दिया यदु को ही क्या महारानी को भी शत्रु पकड़कर ले जाए तब भी मैं यहां से हिलने वाला नहीं हूं।'

मेरे वापस रंगमहल जाते ही मेरी वह अनाम सजनी उठ खड़ी हुई। बेचारी मेरी प्रतीक्षा करते-करते शायद ऊब गई थी !

किंतु मेरे मन में वह सफेद बाल चुभ रहा था ! कहीं इस तरुणी की नजर में वह आ गया तो ? नहीं ! ययाति पर छाने लगा बुढ़ापे का साया किसी की नजर में नहीं आना चाहिए। उसके प्रतिबिंब भी ! ययाति चिर-तरुण है। हमेशा तरुण रहने वाला है वह !

म दर्पण के सामने खड़ा हो गया। बड़ी आशा थी मुझे कि उस सफेद बाल ने अब अपना मुंह काला कर लिया होगा! किंतु वह दुष्ट मेरे मस्तक पर पैर जमाकर उद्दण्डता से हंसता खड़ा था!

उस सफेद बाल की याद को भुलाने के लिए मैं अलका के सुनहरे बालों की स्मृति से खेलने लगा। ढलते सूरज की छटाएं लेकर चमकने वाले उसके वे बाल मेरी आंखों के सामने मृत हो गए। आंखें भरकर मैं उन्हें देखने लगा।

चौंककर मैंने देखा वह तरुणी उठकर धीरे से मेरे पास आ गई थी। उसने मेरे कंधे पर हाथ रखा था। शायद उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं उससे इतना दूर क्यों खड़ा हूं! इतनी लाग लपट करने पर भी मुझे अविचलित देखकर उसने अपना माथा मेरे सीने पर टिका दिया और बाहें मेरे गले में डाल दीं।

मैंने उसके बालों की ओर देखा। एकदम उसे दूर ढकेलते हुए मैं चिल्लाया 'चल निकल जा यहां से! चली जा!'

उसकी समझ में न आया कि उससे क्या कसूर हो गया है! बौराई नजर से वह मेरी ओर देखने लगी। मैंने क्रोध में चिल्लाकर मुकुलिका को आवाज दी। वह दौड़ी आई। असमंजस में मेरी ओर देखने लगी। फिर हिम्मत करके उसने पूछा 'क्या हो गया महाराज?'

'तुम्हारे इस फूल को बाहर फेंक दो!'

'क्या? क्या बात हो गई? क्या इसने आपका अपमान किया?'

'मेरी पसंद मालूम नहीं तुझे?'

'है तो! महाराज को पसंद आने वाली ही तो है यह।'

उस तरुणी के पास जाकर उसने उसका चेहरा ऊपर उठाया। वह रो रही थी। मैं उसके पास गया और उसका माथा दोनों हाथों से झुकाते हुए बोला 'इसके बालों को देखो तो। इनमें सुनहरा बाल एक भी है? मुझे सुनहरे बालों की लड़की चाहिए!'

शायद मुकुलिका ने सोचा मैं मदिरा के नशे में कुछ भी बोल रहा हूं! किन्तु चेहरे पर वह भाव प्रकट न होने देते हुए उसने कहा 'गुरु महाराज से जाकर बता देती हूं वैसा!'

'बता दो या न बता दो मुझे उससे कुछ नहीं लेना-देना! सुनहरे बालों वाली लड़की कब मिलेगी यह? कल मिलेगी?'

'कल कैसे मिलेगी महाराज? महाराज की पसंद जरा अनोखी है। थोड़ा धीरज रखें तो'

'धीरज-वीरज कुछ नहीं! इतने वर्ष हो गए! सुनहरे बालों की एक भी लड़की इस महल में कभी आई नहीं!'

मुकुलिका हार जाने वाली नहीं थी। 'पंद्रह दिन की अवधि दीजिए महाराज। इन पंद्रह दिनों में गुरु महाराज कहीं से भी आपकी मनचाही चीज'

'ठीक है पंद्रह दिन की मुहलत देता हूँ मैं, किन्तु पंद्रह दिन के अंदर वैसी लड़की यहां न आई तो सोलहवें दिन तुम और तब उस गुरु महाराज के बच्चे को गधे पर बैठाकर नगर में घुमवा दूंगा और फिर इस नगर में निकाल बाहर करूंगा। आज की तिथि क्या है?'

'अमावस्या।'

'ठीक है। पूर्णिमा तुम्हें दी मुहलत का अंतिम दिन होगा। पूर्णिमा की रात तक मेरे महल में सुनहरे बालों वाली लड़की नहीं आई तो '

मुकुलिका हाथ जोड़े सामने खड़ी थी। उसपर झल्लाते हुए मैंने कहा 'अब क्या खड़ी हो यहां? वह मूर्ख अमात्य चार घड़ी सिर खाता रहा! अब तू चल भाग यहां से।'

दूसरे दिन प्रातः सूरज काफी चढ़ आने के बाद मैं जागा। जागते ही दर्पण के सामने जा खड़ा हुआ। प्रतिबिंब को गौर से देखने लगा। मैं अवाक् रह गया। रात को दिखाई दिया वह सफेद बाल तो किसी भूत जैसा मेरे सिर पर नाच रहा ही था किन्तु उसके साथ एक दूसरा सफेद बाल भी

विमनस्क अवस्था में फिर मैं पलंग पर जा लेटा। करवटें बदलता रहा। तड़पता रहा। अकुलाता रहा। किन्तु घुन घुनकर दिमाग को खोखला बना देने वाले वे विचित्र विचार रोके नहीं रुकते थे। शर्मिष्ठा की याद बार-बार सताने लगी थी। बुढ़ापे का डर मृत्यु का भय, जीवन की अतृप्तता यह सारा का सारा दुःख बिना किसी लिहाज या भिझक के मैं उसको बता देता! अन्तस्तल में लगी यह अनाम आग शर्मिष्ठा के आंसुओं से मैं बुझा लेता। किन्तु मैं अकेला था। सारे संसार में एकाकी—एकदम एकाकी था।

मैं विचारने लगा अठारह वर्ष सुख विलासिता में बिताने के बाद भी मैं अतृप्त क्या हूं? हर दिन नई सुंदर सज सहेली पाकर भी क्यों लगता है कि संसार में मैं एकदम अकेला हूं? हस्तिनापुर का सम्राट होने के बावजूद क्या इस भय से मैं व्याकुल हुए जा रहा हूं कि मैं असहाय हूं असुरक्षित हूं?

जीवन आखिर क्या है? मनुष्य क्यों जन्म लेता है? वह मरता क्यों है? जीवन का लक्ष्य क्या है? उसका अर्थ क्या है? क्या जन्म और मृत्यु जवानी और बुढ़ापा एक ही सिक्के की दो पहलू हैं? क्या दिन और रात के समान ये जोड़ियां भी स्वाभाविक हैं? फिर मानव बुढ़ापे और मृत्यु से इतना डरता क्यों है?

मानव किस बात पर जीता है? प्रेम के सहारे? किन्तु प्रेम भी क्या चीज है?

पिताजी मृत्युशय्या पर थे तब का वह प्रसंग! एक तरफ धनुष-बाण और दूसरी तरफ जयतु जयतु नहुष अंकित उनकी वह सुवर्ण मुद्रा! नहीं वे शब्द सत्य नहीं! जीवन की सुवर्ण मुद्रा की एक तरफ अंकित धनुष-बाण यमराज के हैं और दूसरी तरफ आहत मानव है! क्या पिताजी सुमन और यति में प्रेम करते थे? फिर क्यों उन्होंने इंद्राणी की अभिलाषा रखी? क्या नहीं उन्हें यह भय लगा कि

अपने बच्चो के भाग्य में अभिशप्त जीवन आ सकता है ? नहीं ! प्रीति वात्सल्य ममता कुछ भी सच नहीं। ये सब दुनिया के कुछ नकली चहरे हैं। मानव केवल अपने सुख के लिए जीता है केवल अपने अहकार की तप्तता के लिए जीता है ऐसा न होता और मा का सुयस वास्तव में प्रेम होता तो उसने अलका की इस तरह निर्मम हत्या क्या कभी की होती ? क्या क्षण भर ही नहीं वह यह न सोचती कि इस हत्या से ययाति को कितना दुख पहुचेगा ?

प्रेम चाहे मा बाप का हो या पति पत्नी का सब ढकोसला ही होता है ! केवल नाटक होता है ! अपने अन्तरतम में मानव केवल अपने से प्यार करता है अपने शरीर से अपने सुखो से और अपने अहकार से प्यार करता है ! प्रेम का यह निपट स्वार्थी रूप स्त्री पुरुषो के गूढ, नाजुक और अदभुत आकर्षण में भी बदलता नही ! देवयानी से मुझे क्या मिला ? घडी दो घडी का शरीर-सुख प्रेम तो नही कहलाता ? निरकुश वासना की क्षणिक पूर्ति प्रेम तो नही बन जाती ?

नही ! प्रेम एक बात है वासना दूसरी ! स्त्री-पुरुषो के प्रेम में भी वासना की आग होती अवश्य है किन्तु वह यज्ञवेदी की आग होती है जीवन धर्म की सारी मर्यादाओं का पालन करने वाली आग होती है।

मैंने इस अग्नि की पवित्रता की रक्षा नही की। पिछले अठारह वर्ष में मेरा स्वर जीवन जगल में सुलगी दावाग्नि बन गया है ! इस दावानल में कितने निष्पाप पखेरू जलकर खाक हो गए ! पता नही कितनी सुकोमल सुगधित लताओं की राख हो गई !

क्या यह पछतावा है ? नही इन दो मफन वालो के दर्शन के कारण मेरे मन में यह वैराग्य जागा है। किन्तु विगत अठारह वर्ष में जो भी हुआ उसमें क्या मेरे अकल का ही दोष है ? देवयानी ने केवल स्वय से प्यार किया। मैंने भी केवल अपने से ही प्रेम किया। सुख की खोज में मैं दुनिया भर भागता फिरा। हो सकता है इस तरह भागते समय मेरे पैरो तले कई कलियां रौंदी गई हो ! किन्तु इसमें मैं कर ही क्या सकता था ?

अठारह वर्ष मैं सुख का पीछा करता रहा। उसे पाने के लिए हर क्षण मैंने उपभोग में बिताया। फिर भी मैं अतृप्त क्या हू ? दुखी क्या हू ? अनगिनत क्षणभगुर सुखो के महासिंधु से शाश्वत सुख की एक बूद भी क्यो नही निर्मित हो पाता !

सच सुख आखिर होता क्या है ?

सुख एक तितली है। वह एक फूल से दूसरे पर थिरकती फिरती है। फूल फूल का मधु चखती रहती है। किन्तु तितली भी क्या कभी वनतय बन सकती है ? स्वर्ग से अमृत कुभ लाना हो तो वह काम तितली का नही गरुड का ही है। तितली और गरुड ! क्षणिक सुख और अविनाशी आनन्द दोनो अलग अलग चीजें है ! मैं सुख के पीछे भागता रहा किन्तु सुख पाकर भी आनन्द को पा न सका !

कहा मिलता है यह आनन्द ? क्या उसका किसी शारीरिक सुख से कोई संबंध नहीं होता ? भगवान की खोज करते-करते पागल हो गए यति के पल्ले आखिर कौन-सा आनन्द पड़ा ? मन्मथ द्वारा श्मशान में दिखाए गए उस तरुण ने आखिर कौन-सा आनंद प्राप्त किया ?

नहीं ! पिछले अठारह वर्षों में मैंने जिस तरह स्वच्छन्दाचारिता में जीवन बिताया, उसमें कोई गलती नहीं ! मैंने अपने से प्यार किया है। केवल अपने ही सुखों की ओर ध्यान दिया है, इसमें मेरा क्या दोष है ?

क्या मनुष्य केवल अपने से ही प्रेम करता है ? अलका, माधव, कच इन सबने मुझसे जो प्रेम किया क्या वह स्वार्थ ही था ? निरपेक्ष प्रेम नहीं था ?

और शर्मिष्ठा—उसका मुझसे जो प्रेम था वह ? उसने ये अठारह वर्ष कैसे काटे होंगे ? कहां बिताए होंगे ? जंगल में ? किसी की दासी बनकर ? वह क्या अब जीवित भी होगी ? या

माधव के हाथ भेजा उसका वह अंतिम सन्देश—शर्मिष्ठा हमेशा अपने मन में महाराज के चरणों की पूजा करती रहेगी। उधर जंगल-झखाड़ों में कंद-मूल खाकर वह मेरे चरणों की पूजा मन में करती रही होगी। और इधर मैं ? मैं उसकी पावन स्मृति पर आठों पहर मदिरा की कुल्लियां छोड़ता रहा हूं। उसके अधरामृत से पवित्र हुए होंठों को किन्हीं जूठे होंठों में डुबोता रहा हूं !

ऐसा क्यों होना चाहिए ? मैं शर्मिष्ठा जैसा प्रेम क्यों नहीं कर सकता ? कच जैसा संयमी जीवन क्या नहीं मेरा साध्य हो सकता ?

किसी भी तरह की वासना क्या मानव का दोष ही होती है ? नहीं ! वासना तो मानव के जीवन का आधार है। फिर मुझसे कहां गलती हो गई ? क्या मेरी वासना निरंकुश हो गई ? मुझे इस बात का होश न रहा कि इस दुनिया में प्रत्येक का छोटे से छोटा सुख भी उसके स्वभाव, परिस्थिति और जीवन के अधूरे स्वरूप की मर्यादाओं में सीमित रहता है !

मेरे समान कच के सामने भी सुख विलास हाथ जोड़े खड़े थे। संजीवनी विद्या प्राप्त करने के बाद वह स्वर्गलोक में गया तब देवी-देवताओं ने उसकी जय-जय की होगी। इंद्र ने उसे अपने आधे आसन पर बिठाया होगा। अप्सराओं ने अपनी सुंदर कोमल कायाएं उसपर न्योछावर कर दी होंगी, किन्तु कच अविचलित ही रहा। जैसा था वैसा ही बना रहा। यह सामर्थ्य उसमें कैसे आ गई ?

कच जन्म से तो विरक्त नहीं था। उसने भी देवयानी से हार्दिक प्रेम किया था। उसने अपने सुख की अपेक्षा जाति के प्रति अपने कर्तव्य को श्रेष्ठ माना। उस कर्तव्य के लिए प्रेम का त्याग किया। उस त्याग के कारण उसका जीवन विफल उदास या निष्क्रिय नहीं बना।

देवयानी के सहवास में मैंने गृहस्थी के सुख का अनुभव किया। शर्मिष्ठा के रूप में मुझे रम्य और उत्कट प्रीति का दान करने को मिला। किन्तु फिर भी मैं अतृप्त रहा ! अब भी अतृप्त हूं ! और मुकुलिका के मुलायम होंठों का अमृत

जिसने अभी तक चखा तक नहीं वह कच तप्त है ! ऐसा क्या ? मुझसे कहाँ पर भूल हो गई ?

इसी अशोक वन से कच ने मुझे वह पत्र लिखा था ! मन कर रहा है कि उस पत्र को फिर एक बार पढ़ूँ। किन्तु वह तो रहा उधर राजप्रासाद में। इन अठारह वर्षों में उसकी इतनी तीव्रता से याद मुझे कभी हुई नहीं। वे दोनों वस्तुएँ एक ही स्थान पर रखी हैं ! अलका का सुनहरा बाल और कच का सुनहरा पत्र।

किन्तु पत्र भी क्या कभी सुनहरा होता है ? अत्यधिक सोचते रहने के कारण कहीं मैं पागल तो नहीं हो गया हूँ ? नहीं ! सारी बातें मुझे साफ साफ याद आ रही हैं ! पूर्णिमा की रात तक मदार ने सुनहरे बालों वाली युवती को इस महल में नहीं पहुँचाया तो

सुनहरे बाल—कच का पत्र ! क्या उस पत्र को पढ़कर मेरे मन को शांति मिलेगी ? किन्तु देवयानी वह पत्र किसी के हाथ में नहीं देगी। कैसा रहे यदि मैं स्वयं उस पत्र को लाने के लिए राजप्रासाद जाऊँ ? अहूँ ! वह असंभव है। उस रात देवयानी द्वारा किए गए उस अपमान के बाद मैंने राजप्रासाद में कदम नहीं रखा है न कभी रखने वाला ही हूँ ! प्राण जाए तब भी नहीं !

०

किन्तु इस अशोक वन में भी क्या मैं सुखी हूँ ? कोई भौंरा सुन्दर खम्भे को भीतर से खोखला बना देता है उसी तरह क्या यह अनाम अतृप्तता मेरे मन को निरंतर वंचन किए जा रही है ? सफेद बाल के कारण निर्माण हुए मृत्यु के भय को सुनहरे बालों के उन्माद में डुबो देने की यह इच्छा क्या मेरे मन में लगातार उफनकर आ रही है ?

वासना क्या भूत जैसी होती है ? किशोरावस्था में अलका के प्रति मेरी इच्छा अतृप्त ही रह गई। इतने वर्षों तक मन के तहखाने में बंद करके रखी गई वह इच्छा आज इस तरह मुक्त हो गई ?

क्या नहीं इस वासना पर मैं विजय पा सका ? मैं सामान्य आदमी होता तो क्या मन पर काबू रखना मेरे लिए अधिक आसान होता ? प्रकृति का क्या यही नियम है कि मनुष्य जब तक अपने सुख की खोज छोड़ नहीं देता तब तक उसे अंतिम सत्य का बोध ही न हो ? देवयानी ने यदु को हमेशा मुझसे दूर रखा। इन अठारह वर्षों में मेरा वात्सल्य अतृप्त रहा प्यासा रहा। यदु साथ रहता तो क्या मेरे मन में उत्पन्न रीतापन भर जाता ? खैर यदु न सही पुरु ही मिल जाता तो ? पुरु ! कहाँ होगा वह ? क्या कर रहा होगा ? किसके समान दीखता होगा? मेरे जैसा या शर्मिष्ठा जैसा ? कितना निर्दयी हूँ मैं ! इन अठारह वर्षों में उसे बिल्कुल भुला बैठा हूँ !

अत्यधिक विलास के कारण क्या मन बधिर हो जाता है ? इस बधिरता के कारण क्या उसकी मानवता समाप्त हो जाती है ?

वह यमुना म डूब मरन वाली माधवी—वह आग म जलकर खाक हुई पगली तारका—य यहा कस आइ ? यहा म तो य भाग गई थी न ? नही मैंने उसके साथ निमम व्यवहार नही किया। म सुख खोज रहा था—अधेपन से खोज रहा था !

कच सयमी कसे बन पाया ? मैं क्यो नही वसा बन सका ?

मुझे कामुकता पिताजी स विरासत म मिली है ! वही मेरे लिए एक अभिशाप हो गइ ! मेरी सहधमचारिणी मेरी बरन बन गइ !

किन्तु मैं जीवन क इस स्वर और बधनहीन प्रवाह म क्या इस तरह बहता ही गया ? प्रवाह के विरुद्ध तैरने का प्रयास मैंने क्या नही किया ? वासना वषा म कूला को तोडकर बहती भीषण बाढ स उफनी नदी है ! भावना कूलो क बधन म बहती शरद ऋतु की प्रशात सरिता है काश इन दोनो का यह अन्तर अठारह वष पूव मरी समझ म आ गया होता !

देखन को तो म पलग पर लटा था मानो गहरी नींद सो रहा था। किन्तु बन्द पलको म सिर म दनादन घन के आघात हो रहे थे। अनचाही बातें बार बार स्मृतियो की खिडकियो स मन क भीतर झाक रही थी। कलजे को नोच रही थी। अतीत की ओर मुडकर देखने की मेरी हिम्मत नही पड रही थी। इन सभी दु खो से छुटकारा पाने का एक ही माग था—आत्महत्या !

मैं सिहर उठा। मन मुझपर ही हसन लगा। आत्महत्या करने के लिए आवश्यक धय मुझम होता तो क्या अठारह वष पूव ही मैंने आत्महत्या न कर ली होती ?

मन की इस अजीब उदासी स बाहर निकलने का एक उपाय मेरा चिरपरिचित हो गया था। वह था विलासिता म बिताए सुखद क्षणो का स्मरण ! वही सुमरनी म फरने लगा।

मेरे सुख क प्याले को हमेशा लबालब भरा रखने वाली अनेक आकृतिया मेरी आखो के सामने स निकलने लगी। यह रही वह छिटटी छरहरी युवती ! उसकी वेश सज्जा कितनी सुदर थी ! उस सहलाते समय हमेशा मुझे लगता था यह वेश सज्जा नही इसके मुख कमल पर मोहित भ्रमरो का दल है। मेरे स्पश से य भौंरे अपनी समाधि से जाग जाएगे। गुजन करने लगग

यह रही वह सावली किन्तु मोहक रमणी ! शायद पिछले ज म म वह अगूर की लता थी ! उसके कवल अधर-स्पश म सारा शरीर मधुर रोमाच म पुलकित हो उठता था—यही है वह शर्मीली श्यामला ! इसका चहरा उठाकर चुबन लेने म मिलता रहा वह आनद ! मानो बादल घिर आए आकाश क बीच ही म आधा चद्रमा निकल आया हो !—और यह रही वह ढीठ प्रसन्न प्रमदा ! वह तो इस कला म इतनी चतुर थी कि मदन को भी प्रणय क्रीडा क पाठ सिखा द !

इसी तरह अनगिनत युवतिया याद और गइ। सुदर चितवनो का मुलायम

बाहपाशो का और रेशमी केश सँभारो का सुख मैंने जीभर लूटा। किन्तु अब तक सुनहरे बालो की युवती

महाराज का जी आज क्या अच्छा नहीं है ? मुकुलिका मेरे सिरहाने खड़ी धीरे से थवक्कर पूछ रही थी।

मैंने आंख खोली। मेरी बेचैनी अनजाने में झल्लाहट मेरे स्वर में प्रकट हो गई। मैंने गुस्से से पूछा मुझे किसने नहाना था ? मेरा प्रसाधन किसने करना था ? कहाँ थी तुम अब तक ?

उसने डरते डरते कहा राजप्रासाद गई थी मैं।

इतने सवेरे ही ?

जी हाँ। तड़के ही चली गई थी मैं।

किसलिए ?

कल रात अमात्य बहुत नाराज होकर चले गए यहाँ से। पता नहीं, उन्होंने जाकर महारानी से क्या-क्या उल्टा सीधा कह दिया होगा। मुझे इस बात से डर लग रहा था। हम ठहरे गरीब लोग ! महाराज की कृपा की छाया में सुख से दो जून रोटी खाने वाले ! महारानी जी नाराज हो गई और उन्होंने यह छाया हमारे सिर पर से हटा दी तो —इसलिए सोचा कि स्वयं जाकर देख आऊं क्या हो रहा है !

तो क्या देख आई वहाँ ?

राजप्रासाद में सरस आनंदोत्सव मनाया जा रहा है।

आनन्दोत्सव ? किस बात पर इतना आनन्द हुआ है महारानी को ? अभी तो मैं मरा नहीं हूँ ! अच्छा ! अब आया ख्याल में ! यदु के शत्रु द्वारा बन्दी बनाए जाने की खुशी में उत्सव मना रही होंगी वह !

मुकुलिका चौंककर मेरी ओर देखने लगी। फिर बोली युवराज कैद में नहीं हैं वे मुक्त हो गए !

यह क्या माजरा है ? कल रात ही तो खबर आई थी कि यदु पकड़ा गया है और आज प्रातः उसकी मुक्ति का समाचार ? बड़ी अनोखी बात है। आश्चर्य से मैंने पूछा युवराज रिहा हो गए ? कैसे ?

सुना है किसी वीर पराक्रमी युवक ने अपनी जान जोखिम में डालकर उन्हें छुड़वा लिया है ! उस मित्र को साथ लिए युवराज हस्तिनापुर के लिए चल पड़े हैं। यह शुभ समाचार लाने वाले दूत ने स्वयं मुझसे कहा !

वास्तव में शत्रु की कैद से यदु के मुक्त होने का समाचार आनन्द से उमड़ आना चाहिए था। किन्तु मेरे मुंह से केवल मुक्त हो गया ? अच्छा हुआ ! उन चार शब्दों के कारण गया ! क्या मेरी सारी भावनाएं औंधी गई थी। मगर के पिछले अठारह वर्षों में ययाति जीवन में जी

स भर रहा था ? ययाति का कौन सा हिस्सा तप्त हो गया है ? कौन—कौन बुद बुदाया कि

ययाति का केवल शरीर जिन्दा है।

मुकुलिका जल्दी जल्दी बताने लगी, देवीजी के पिताजी भी शीघ्र ही इधर आ रहे हैं।'

कौन शुक्राचार्य ? वे भला इधर कैसे आ सकते हैं ? वे तो बडी तपस्या करने बैठे है।'

सुना है उनकी वह तपस्या समाप्त हो गई।

शुक्राचार्य यहां आएंगे ? तो क्या मैं हस्तिनापुर से कहीं बाहर चला जाऊं ? मुकुलिका कह जा रही थी महारानी ने कचदेव को भी बुलावा भेजा है। '

कहते कहते मुकुलिका मेरे बहुत पास आ गई और धीरे से मेरे कान में फुस फुसाने लगी महारानी ने युवराज का राज्याभिषेक करने का निश्चय किया है। इस हेतु कि नये सम्राट को शुक्राचार्य और कचदेव दोनों के आशीर्वाद प्राप्त हों

देवयानी फिर मुझसे प्रतिशोध लेना चाह रही थी। मैंने मन-ही मन निश्चय किया, जो भी हो हस्तिनापुर छोडकर नहीं जाऊंगा—सिंहासन का त्याग नहीं करूंगा। तभी ख्याल आया कि महारानी ने कितना भी आग्रह करके बुलाया, तब भी कच कैसे आ पाएगा ? मैंने मुकुलिका से कहा शुक्राचार्य की भांति कच भी तो तपस्या करने बैठा था ?"

'जी किन्तु उनकी भी यह तपस्या सुना है समाप्त हो गई है।"

मैंने हंसकर कहा 'लगता है सभीकी तपस्या समाप्त होने का समय आ गया है। ठीक है। इसका मतलब है मेरी भी तपस्या अब समाप्त ही समझो।"

यानी ?'

'पहले मदिरा लाओ। फिर बताता हूं मैं तुम्हें सब कुछ।'

सवेरे ही ?'

दासी को अधिक बात नहीं करनी चाहिए। विष का प्याला मांगू तब भी वह भरकर देना ही तेरा काम है समझी ?

मुकुलिका दर्पण के पास रखी मदिरा की सुराही लाने गई। उसके पीछे पीछे मेरी नजर भी दर्पण पर गई। वे दो सफेद बाल आंखों के सामने नाचने लगे। तुरंत ही उन सफेद बालों में जटाजूटधारी शुक्राचार्य प्रकट हुए। उनकी आंखें अंगारे बरसा रही थीं। मैं उनकी नजर से नजर नहीं मिला पा रहा था। उनसे बच कर दूर दूर भाग जाने का मार्ग—उस काले स्याह समुद्र की तह में प्रचण्ड चट्टान की कगार में जाकर छिपना यही एक मात्र मार्ग मेरे सामने खुला था। मदिरा ही ही उस मार्ग पर चलते समय मेरी परम सहचरी थी।

मदिरा की चुसकी लेते हुए मैंने मुकुलिका से कहा, 'वह सुनहरे बालों वाली

लडकी महल में आ जाए, तब मुझे जगाना, तब तक मुझे सोने दो, बिल्कुल निढाल होकर सोने दो।

वे पंद्रह दिन! मुझे ठीक से होश भी नहीं था कि कब दिन निकलता था और कब ढल जाता था। किंतु हर रोज रात होते ही मेरा मन उस काले-काले सागर की तह से किसी मछली की तरह उठकर सतह पर आ जाता। आकाश में निकल आए चाँद की तरफ एकटक देखता रहता। हर रात एक-एक कला से बढ़ने वाले चंद्रमा को देखकर वह अपने से ही कहता, आज चतुर्थी! आज सप्तमी! आज नवमी! आज द्वादशी! पूर्णिमा में पहने सुनहरे बालों वाली वह अप्सरा!'

किंतु इस प्रतीति के क्षण एक और अनुभूति भी होने लगती। वह हौले से कहती, 'ययाति, पगले, कहाँ चले जा रहे हो तुम? यह रास्ता नरक में ले जाता है!' मैं मदिरा की चुसकियाँ लेते कहता, 'स्वर्ग और नरक दोनों पास-पास ही होते हैं, है न?' वह बुदबुदाती, 'हाँ, उनकी सीमाएँ एक-दूसरी से बिल्कुल सटी होती हैं।' फिर मैं हँसते-हँसते कहता, 'तो फिर तुम्हें मेरे बारे में इतना डर क्यों लगता है? हो सकता है कि कल क्षण भर में ही मैं नरक का मार्ग छोड़कर स्वर्ग की राह पकड़ लूँगा!' वह आँखों में पानी लिए कहती, 'पगले, स्वर्ग और नरक की सीमारेखा पर कदम-कदम पर द्वार होते हैं! मनुष्य के बचपन में वे सब खुले रहते हैं। किंतु आगे चलकर मनुष्य अपने हाथों उनमें से एक-एक द्वार बंद करता जाता है। एक बार बंद कर दिया द्वार फिर कभी नहीं खुलता! अरे अभागे! अब तेरे लिए केवल एक ही द्वार खुला रह गया है, उसे भी तो अपने हाथों बंद मत कर देना! मान जाओ, मेरी मान जाओ!'

यह चुभन मैं मदिरा के प्याले में डुबो देता! किंतु हर रात दिखाई देने वाला एक स्वप्न किसी भी चीज में डुबाया नहीं जाता था। उस स्वप्न में एक प्रचण्ड रथ दिखाई देता। रथ में छह घोड़े जुते होते। सभी घोड़े बहुत ही बढ़िया होते। किंतु उनमें से एक घोड़ा तो सुंदरता की साक्षात मूर्ति लगता! स्वप्न में वह रथ दिखाई दिया कि कोई अज्ञात हाथ हर घोड़े का सिर धड़ से उतार देता और उसके स्थान पर मानव मस्तक लगा देता। धीरे-धीरे वे सभी मस्तक मुझे साफ-साफ दिखाई देते। प्रत्येक मस्तक मेरा अपना होता। उस रथ का सारथी? वहाँ भी ययाति ही बैठा दिखाई देता। उस सारथी के हाथों में थामी लगाम—हर लगाम उस सारथी की धमनियों से बनी प्रतीत होती। उसके हाथ का चाबुक—पता नहीं, शायद वह उसके मज्जा-तंतुओं का बना था! स्वप्न का वह सारथी घोड़ों को काबू में रखने का प्राणप्रण से प्रयास करता, किंतु वे कतई काबू में नहीं आते। स्वच्छंदता से भागते, जिधर जी चाहा दौड़ते, गड्ढों-खड्डों से होते हुए रथ भी चरमराकर उसका पुर्जा-पुर्जा ढीला करते जाते!

हर रात मैं यही स्वप्न देखता। किन्तु चौदहवीं की रात यह रथ बहुत ही विकट मार्ग पर जाने लगा। एक तरफ गगनचुंबी ऊँचे पर्वत! दूसरी तरफ अत्यंत गहरी खाई! उसके तले घने बागों में वह अत्यंत सुंदर दिखाई देने वाला धागा-धागा एकदम

धकाबू हो गया। खाई की ओर दौडने लगा। लगाम टूट गई। चाबुक कडकने लगा। देखत ही दखते रथ खाइ म जा गिरा। खाई म से कानो के पर्दे फाड दन वाली एक आवाज सुनाई दी—इतनी भीषण जस आसमान टूट पडा हो। मैं शमा शमा चिल्लाता हुआ जाग पडा।

स्वप्न म शर्मिष्ठा को मैंने क्स पुकार लिया? वह तो उस रथ म कहीं पर भी नही थी। यह स्वप्न मुझे बहुत ही अशुभसूचक लगा। कही एसा तो नही कि ठीक इसी समय किसी अज्ञात स्थान म पुरु की गोद म शर्मिष्ठा न इस कूर ससार म विदा ली होगी?

कुछ भी नही सूझ रहा था। नींद भी नही आ रही थी। रात भर मैं मदिरा के नशे म धुत पलग पर पडा रहा। किसी लाश सा।

o

सूरज ढल रहा था। पूर्णिमा का चाद निकल रहा था। इस चाद क प्याल स मदिरा पीते पीत आकाश आनदविभोर होन लगा था। उसक हाथ का वह प्याला कुछ छलका था। प्याल की मदिरा चादनी के रूप म ढुलककर धरती पर बहती चली आ रही थी।

तीसरे पहर ही मुकुलिका न मुझे वह आनददायी समाचार बताया था। मदार ने बड़े प्रयास म सुनहर बालो वाली परी प्राप्त की थी। आज रात वह मेरी सेवा क लिए आने वाली थी।

मेरा धीरज टूटा जा रहा था। तीसर पहर से ही मन क्वल एक ही बात का विचार करने लगा था। उसक सुनहरे बालो की मसलत समय क्या अलका की प्राप्ति का आनद मुझे मिलेगा?

मैंने मुकुलिका को बुलवाकर उसस पूछा तरा वह सुनहरा फूल कहा है?

गुरु महाराज के मठ म।

पिछले पद्रह दिनो स मैं लगातार पी रहा हू। मदिरा का नशा मुझपर पूरा छाया हुआ है। किन्तु एक बात गिरह बाध लो। तुमन और उस मदार क बच्चे न मुझे धोखा दने का जाल रचा हो तब भी मैं उसम आन वाला नही। उसके बाल यदि सुनहरे न हुए तो मैं तुम दोनो का सिर धड स अलग कर दूगा। नही तेरा तो सिर मुडवाकर नगर म तुझे घुमाऊगा। और उस मदार के बच्चे के बालो म आग लगवा दूगा। जानती हो न मैं कौन हू?—मैं हस्तिनापुर का सम्राट हू।"

कहते कहत मैं रुका। मन हाथो से बाहर होता जा रहा था। किन्तु लपट कुतूहल मुझे चुप भी बठन नही दे रहा था। मैंने मुकुलिका से पूछा कहा मिली यह सुनहरी परी तुम्हे?

यहीं।

उसक यहा होन पर भी तुम लोगो न आज तक उसे मेरी सेवा म हाजिर क्यो नही किया? वह मदार मक्कार है। तू परले सिर की चालाक है।

'क्षमा कीजिए महाराज! किन्तु—किन्तु—वह हस्तिनापुर की नहीं है। आज ही इस नगर में आई है वह!'

'किसलिए?'

'अपने प्रीतम की खोज करने के लिए!'

'प्रीतम की खोज करने!' मैंने परिहास करते हुए कहकहा लगाकर हँसना शुरू किया। मैं आगे बोलना चाहता था किन्तु हँसी रोके नहीं रुक रही थी। अन्त में बड़े कष्ट से हँसी रोककर मैंने मुकुलिका से कहा "किसीने उसे अभी तक यह नहीं बताया कि उसका प्रीतम यहां अशोक वन में है?"

"कल उसे भी ऐसा ही लगता किन्तु आज "

"आज उसका प्रीतम कौन है? तू?"

मुकुलिका ने हँसते हँसते कहा "उसका प्रीतम युद्धभूमि पर गया कोई युवक है। किसीने उसे बताया कि युवराज के साथ वह भी नगर में आनेवाला है। वह पागल लड़की उससे मिलने के लिए बहुत ही बेताब हो रही है। अपने साथ की एक बुजुर्ग महिला को पीछे छोड़कर वह आज सुबह अकेले ही नगर में आई। अपने प्रीतम को खोजने लगी। यहां आने के बाद उसे मालूम हुआ कि युवराज आज रात आनेवाले हैं। बेचारी निराश हो गई। प्रीतम की खोज करते वह जब घूम रही थी तभी मठ के एक शिष्य ने उसे देख लिया!"

"अभी इस समय वह क्या कर रही है?'

"बड़ी शैतान लड़की है वह! गुरु महाराज का भी उसपर बस नहीं चल रहा था! मठ की अंधेरी कोठरी में उसे बंदी बनाया तो बहुत शोर मचाने लग गई। इसलिए इस समय उसे बेहोशी की दवा दी है। दस घड़ी रात बीतते समय उसे जाग आएगी धीरे धीरे।'

"दस घड़ी रात! तो क्या मुझे इतनी देर प्रतीक्षा करनी पड़ेगी? क्यों? इतनी दवा तुमने उसे क्या पिलाई?"

"वह बहुत ही ऊधम मचाए जा रही थी महाराज! आज मठ में तो तरह तरह के लोगों की बहुत ही भीड़ मच गई है। कोई शुक्राचार्य का दर्शन करने आए हैं। कोई युवराज का नगर प्रवेश देखने आए हैं। इन पराये लोगों में से किसीको कुछ पता चल गया तो? फिर अभी दूत सन्देशा लाया है कि शुक्राचार्य छह घड़ी रात बीते राजप्रासाद पहुंचे रहे हैं। उसी समय युवराज भी पधार रहे हैं। अत गुरु महाराज ने हिसाब लगाया कि ऐसी सूरत में महाराज को दस घड़ी रात तक तो उधर प्रासाद में ही रुकना पड़ जाएगा। इसलिए "

"तुम मूर्ख हो और तुम्हारा वह गुरु महाराज महामूर्ख है। उस सुनहरी परी को छोड़कर उस जटाजूटधारी बूढ़े के गले लगने के लिए राजप्रासाद जाए इतना यह ययाति अरसिक नहीं! युवराज के उस नगर प्रवेश में भी मुझे कुछ लेना देना नहीं है! यदु को सिंहासन पर बिठाने का षड्यन्त्र राजप्रासाद में रचा जा रहा हो तो हो अपनी बला से! चल तू अपने काम में लग जा! उस सुनहरी परी को

पालकी में बिठाकर अभी इसी समय इस तरह यहां ले आ, कि किसीको कोई शक न हो।

रंगमहल में अपने पलंग पर बेहोश पड़ी उस युवती की ओर देखकर मेरी समझ में नहीं आया कि मैं सपना देख रहा हूं या सचमुच अपनी अलका को फिर से देख रहा हूं! मन्दार और मुकुलिका ने मुझे धोखा नहीं दिया था! उस युवती के बाल सो सुनहरे थे ही, मुझे बार बार यही लग रहा था कि अलका ही पलंग पर सोई है। कितनी देर तक मैं उसे अपनी आंखों में समाता रहा! बीच के बीस वर्ष अन्तर्धान हो गए। मेरी अलका मुझे वापस मिल गई!

मैं उसके स्पर्श के लिए अधीर हो उठा। मन्दार और मुकुलिका पर मुझे क्रोध आ गया। उनसे किसने कहा था कि इस बेहोशी की इतनी भारी दवा पिला दें? विलास कोई लाश के साथ थोड़े ही किया जाता है?

पता नहीं बाहर कितनी रात हो गई थी! विगत पन्द्रह दिन में अखण्ड रूप से मदिरापान करते रहने के कारण मेरा माथा भन्ना गया था, शिथिल हो गया था! हाथ में चषक भर भी लिया तब भी उसे होठों से लगाने की वासना ही नहीं रही थी! इस क्षण तो सब कुछ भुलाना चाहता था! मैं ययाति हूं इस बात को भी भुलाना चाहता था! कौन जानता है कल का दिन कैसे निकलने वाला है! वे शुक्राचार्य, वह देवयानी

आज—अभी—यह क्षण मेरा अपना था! वह स्वर्णिम क्षण था!

अब मुझसे रहा नहीं जा रहा था। मैं उस अचेत पड़ी युवती के सिरहाने जाकर खड़ा हो गया। उसके सुनहरे बालों को चूमने के लिए नीचे झुक गया। सफेद बाल—मृत्यु—सबका भय अब मन में एकदम गायब हो गया था। मैं फिर जवानी में कदम रख रहा था। आज अलका मेरी प्रेयसी बनने वाली थी। बरसों से मन में संजोकर रखा वह सुनहरा सपना आज सच होने जा रहा था।

किन्तु उसके सुनहरे बालों पर मैं अपने होंठ रखता इससे पहले ही मुकुलिका दरवाजे की ओट से चीखी, "महाराज, बाहर आइए!"

मैंने गुस्से से ऊपर देखा और पूछा, "क्यों?"

"महारानी और शुक्राचार्य भीतर आ रहे हैं। शुक्राचार्य क्रोध से प्रत्येक से यह पूछते चले आ रहे हैं कि महाराज किधर हैं, कहां हैं?"

मेरे पांव कांपने लगे। जीभ सूख गई। बहुत अर्से से बीमार रहे मरीज़ की भांति बड़े कष्ट से एक एक कदम रखते हुआ मैं जैसे-तैसे बाहर के महल में आ गया।

मुझे देखते ही पलंग पर बैठी देवयानी ने घृणा से मुंह फेर लिया। शुक्राचार्य क्रोध से महल में इधर से उधर टहल रहे थे।

शुक्राचार्य का अभिवादन करने के लिए आगे बढ़ने का मैंने प्रयास किया किन्तु कदम आगे बढ़ा ही नहीं! सारा महल चारों ओर घूमता दिखाई दिया। लगा कि शायद अब मैं गश खाकर गिर जाऊंगा। पास ही दीवार में लगे दर्पण को

पकड़कर उसके सहारे जैसे-तैसे खड़ा रहा। बहुत मुश्किल से अपने आपको सँभाल पाया।

टहलते टहलते शुक्राचार्य एकदम रुक गए। उन्होंने पाँच दस क्षण मेरी ओर घूरकर देखा। फिर गुस्से से बोले 'ययाति मैं एक महर्षि के नाते तेरे यहाँ नहीं आया हूँ। तेरा ससुर हूँ इसीलिए ऐसे असमय तेरे महल में आया हूँ। तेरे पाप में अपने भी कर्म मैंने डुबोए हैं। मुझे पहिचाना तुमने ?

मैंने डरते डरते सिर हिलाकर हाँ कहा।

उपालंभ से हँसते हुए शुक्राचार्य ने कहा 'मदिरा पीने के कारण तुम्हारा दिमाग शायद ठिकाने नहीं है! इसीलिए तुम्हें फिर से बताता हूँ मैं कौन हूँ मैं शुक्राचार्य हूँ। वह शुक्राचार्य जिसने संजीवनी विद्या प्राप्त कर समस्त देवलोक में त्राहि त्राहि मचा दी। वही शुक्राचार्य जो राक्षसों का अजेय गुरु है। वही आज तेरे सामने खड़ा है! देवयानी का वही पिता तेरे सामने खड़ा है जिसने आज संजीवनी के समान ही दूसरी अद्भुत विद्या प्राप्त कर ली है। इतने वर्ष बाद मैं यहाँ अपनी बेटी की गृहस्थी का सुखी जीवन देखने की इच्छा से आया किन्तु मैं बहुत ही अभागा रहा। यहाँ आने पर अपनी कन्या को दुःख के सागर में गहरी डूबी देखने का दुर्भाग्य मेरे हिस्से में आया। अरे बंदर! मैंने पृथ्वी मूल्य का रत्न तेरे हवाले किया और तूने उसे पत्थर जानकर दूर फेंक दिया ?

शुक्राचार्य का वह रुद्रावतार देखकर मेरे तो होश हवास जाते रहे। क्या बोलूँ क्या न बोलूँ कुछ सूझा ही नहीं। आखिर सारा धीरज बटोरकर मैंने कहा महाराज मैं अपराधी हूँ। आपका शतशः अपराधी हूँ किन्तु जो कुछ हुआ उसमें दुर्भाग्य से देवयानी का भी दोष है!

मेरे मुँह से ये शब्द निकले ही थे कि पलंग पर मुँह फेरकर बैठी देवयानी खिसिया उठी और अधिक्षेप की दृष्टि से मेरी ओर देखती हुई बोली पिताजी क्या अपनी आँखों यही देखने के लिए आप मुझे यहाँ ले आए कि कदम कदम पर यहाँ मेरा किस तरह अपमान किया जाता है ? मैं तो आपको पहले से ही बता रही थी कि कल सवेरे अशोक वन चलेंगे। आप यात्रा से थके माँदे आए हैं। चलिए, राजप्रासाद वापस चलें। व्यसन की बुरी लत में डूबे लोग तो पिशाच से भी भयंकर होते हैं। रात में तो उनका मुँह भी नहीं देखना चाहिए!

मेरा क्रोध बेकाबू हो गया। मुँह से निकल गया और अहंकार में डूबे लोगों का ?

देवयानी और भी अधिक गुस्सा हो गई। शुक्राचार्य के पास जाकर उनके कंधे पर हाथ रखकर उसने कहा पिताजी उधर यदु बड़ी धूमधाम से नगर में प्रवेश करता होगा और इधर आप मदिरा और मदिराक्षी में डूबे एक

शुक्राचार्य ने उसका हाथ झिटक दिया। क्रोध से उन्होंने कहा देवयानी तुम मेरा सर्वस्व हो, किन्तु मूर्ख हो। पागल हो। किस समय कैसा आचरण करना चाहिए तुम्हें बिलकुल मालूम नहीं। पहले इसी पागलपन से तुमने कच को जीवित

करने या मुझसे आग्रह किया और मैं अपनी सजीवनी विद्या से हाथ धो बैठा। इतने वर्ष बाद मैं यहाँ आया। किन्तु मेरे आते ही तुमने पति की शिकायत शुरू कर दी! अब मैं तुम्हारी एक नहीं सुनूँगा। तेरे अठारह वर्ष के दुःखों का दो टूक फैसला अभी इसी क्षण होना चाहिए। दामाद जानकर ययाति को मैं कभी क्षमा नहीं करूँगा। इसे ऐसा दण्ड दूँगा जो इसे जीवन भर याद

देवयानी फिर से उनके पास जाकर अत्यंत मधुरता से बोली यदु को सिंहासन पर विराजमान करते ही इनकी आँखें भली भाँति खुल जाएँगी। अब घर गृहस्थी के अन्य किसी सुख की मुझे कोई चाह नहीं रही है। एक बार यदु को सिंहासन पर बैठा हुआ आँखें भरकर देख लिया तो मैं भी आप जहाँ तपस्या के लिए बैठेंगे वहाँ आकर आपकी सेवा करूँगी।

उसका यह ढोंग धतूरा देखकर मैं आगबबूला हो उठा। सिंहासन का मुझे कतई लोभ नहीं था! किन्तु मेरी अनुमति लिए बिना यदु को सिंहासन पर बैठा कर देवयानी मेरा अपमान करना चाह रही थी। यह मेरे लिए असहनीय था। मैंने कड़ककर कहा मैं राजा हूँ। मेरी अनुमति और सहमति के बिना यदु का अभिषेक कैसे हो सकता है?

शुक्राचार्य ने शांत भाव से कहा राजा तुम्हारा यह अधिकार मुझे भी मंजूर है। किन्तु मैं तुमसे एक मामूली प्रश्न करना चाहता हूँ। राजा की हैसियत से जिस तरह तुम्हें कुछ अधिकार है उसी तरह पत्नी के नाते देवयानी को भी कुछ अधिकार है या नहीं? उसका पाणिग्रहण करते समय तुमने नातिचरामि की शपथ ली थी न?

जी महाराज।

तुमने उसका पालन किया?'

महर्षि मुझे क्षमा करें मुझसे उसका पालन नहीं हो पाया है।

'क्यों?'

वह मेरे यौवन का कसूर था! मैं मोह का शिकार हो गया।"

यौवन का कसूर? तुम जवान थे और देवयानी क्या बूढ़ी हो गई थी? तुम मोह के शिकार हो गए! भगवान ने इस संसार में मोह क्या केवल तुम्हारे ही लिए बनाए हैं? मूर्ख मोह का जाल तो तुमसे अधिक मुझ जैसे तपस्वियों के चारों ओर अधिक सूक्ष्मता और मजबूती से फैला होता है। उसकी तपस्या भंग करने के लिए इंद्र भी अप्सरा को भेजता है। किन्तु इस शुक्राचार्य जैसा तपस्वी उन मोहों की ओर देखता तक नहीं है। क्षुद्र मोह के शिकार होने वाले लोग भी क्षुद्र ही होते हैं।'

मुझे क्षमा कीजिए महाराज। मैं अपराधी हूँ। शतशः अपराधी हूँ।

क्षमा तो पहले अपराध के लिए की जाती है। लत लगा अपराधी मामूली दण्ड से सुधरता नहीं।

बोलते बोलते वे विचारमग्न हो गए। मेरी अवस्था तो ऐसी हो गई जैसे

फटने को आए ज्वालामुखी के मुख पर प्रचण्ड जंजीरों में जकड़कर मुझे बांध दिया गया हो !

मेरी ओर घृणा और तिरस्कार से देखते हुए शुक्राचार्य ने कहा, "राजा, देवयानी को ठुकराकर तुमने शर्मिष्ठा को अपनाया। यह सच है न ?"

मेरी जिह्वा पर शब्द नाचते आ गए— देवयानी से मुझे प्रेम नहीं था, वह शर्मिष्ठा से था। किंतु कहने का साहस मैं कर न सका।

शुक्राचार्य का स्वर तेज होता गया। उनके शब्द बादलों की गड़गड़ाहट के समान प्रतीत होने लगे। वे क्रोध से मेरे पास आए और बोले, "क्या मैंने तुम्हें शुरू में ही नहीं जताया था कि शर्मिष्ठा से पेश आते समय सावधान रहना ?"

मैंने सिर हिलाकर हां कहा।

"तुमने मेरी—देवयानी के पिता की—महर्षि शुक्राचार्य की आज्ञा भंग की है। इस आज्ञाभंग का प्रायश्चित्त तुम्हें करना ही होगा।"

"किंतु, किंतु, महाराज, जवानी के जोश में होश नहीं हुआ करता !"

"मैं केवल इतना ही चाहता हूं कि तुम्हारे जोश की यह बेहोशी दूर हो जाए। इसीलिए मैं तुम्हारी आंखों में अच्छा खासा अंजन डालना चाहता हूं, ताकि शर्मिष्ठा जैसी दासी की तरफ फिर कभी तुम कामुकता से देख न सको। जवानी के जोश में होश नहीं होता ! उसी जवानी ने तुझे मोह का शिकार बनाया। है न ? तो मैं तुम्हें यह शाप देता हूं—तुम्हारी वह जवानी इसी क्षण नष्ट हो जाए ! भगवान महेश्वर की कृपा से प्राप्त नई विद्या का स्मरण कर यह शुक्राचार्य केवल यही इच्छा करता है कि मेरे सामने खड़ा यह पापी ययाति इसी क्षण जर्जर बूढ़ा हो जाए !"

गाज गिरने जैसी वह शापवाणी मैंने सुनी। सारा संसार सुन्न पड़ गया। मन बधिर हो गया।

अन्त में हिम्मत करके मैंने पास के ही दर्पण में अपने प्रतिबिंब को देखा। जो कुछ मुझे दिखाई दिया उसके कारण मुझे प्राणान्तक वेदनाएं होने लगीं। मेरा चेहरा झुर्रियों से भर गया था। सिर पर सवत्र रूखे सफेद बाल फैले हुए थे। दर्पण में सामने एक गलित गात्र बूढ़ा खड़ा था। मानो वह मृत्यु का अता-पता जानने के लिए पूछताछ कर रहा था !

किंतु इस जरा-जर्जर शरीर के भीतर ययाति का मन पहले जैसा ही तरुण था। मुझे रंगमहल की उस सुनहरे बालों की सुन्दरी की याद आ गई। अब तो दस घंटे रात कभी की बीत गई होगी ! वह युवती अब होश में आ गई होगी ! अभी तो उसके उन सुनहरे बालों को मन ठीक से चूमा तक नहीं है। अब—अब—उसका चुंबन शायद फिर कभी मुझे नहीं मिलेगा। मेरी सारी इच्छाएं अब अतृप्त ही रह जाएंगी ! मन के भीतर ही सूख जाएंगी ! वह अलका जैसी दिखाई देने वाली सुंदर मोहक तरुणी...

सोच-सोचकर मैं अधिक व्याकुल होने लगा। मैंने शुक्राचार्य की ओर देखा।

व मच पर सिर लटकाकर बठ गए थ। दवयानी उनक पास पकटकर गुमसुम आसू बहा रही थी। बार-बार वह रही थी पिताजी यह आपने क्या कर डाला ? क्या कर बठे आप पिताजी ?

मेरे मन म आशा का अकुर जागा। म आगे बढा। शुक्राचाय को साष्टाग प्रणिपात किया। फिर हाथ जोडकर बोला महाराज मुझपर दया कीजिए। मरा मन अब भी जवान है। मरी अनक इच्छाए अभी अप्राप्त ही है। जी करता रहा है कि दवयानी के साथ सुख स घर गहस्थी चलाता रहू ! किन्तु मुझ जस बूढे पति के साथ गहस्थी चलान मे अब उसे क्या सुख मिलगा ? आप यदि मुझ मरी जवानी लौटा द ता '

दवयानी न बीच म ही अत्यत करुण स्वर से कहा पिताजी मुझसे इनकी ओर देखा नही जाता। इन्ह फिर स यौवन दे दीजिए। इनका पहला रूप इन्ह वापस द दीजिए।'

शुक्राचाय न अपना सिर उठाया। मद स्वर म व बाल राजा वीर का तीर और तपस्वी का शाप कभी खाली नही जाते ! तुम्ह मेरा दिया हुआ शाप भोगना ही पडेगा। किन्तु तुम मेरी लाडली दवयानी क पति हो। दर अबेर ही सही, उसके साथ सुख मे गहस्थी चलाने की इच्छा तुमम जागी है। इसलिए मैं तुमे उ शाप देता हू। तुम्हारे ही परिवार का तुम्हारे ही रक्त का कोई तरुण तुम्हारा यह बुढापा लने के लिए मात्र तयार हो गया तो तुम चाहोगे उसी क्षण यह बुढापा उस आ जाएगा। उसी समय तुम्ह तुम्हारा यौवन भी वापस मिल जाएगा। किन्तु एक बात गिरह बाध लो तुम्ह उधार मिला यह यौवन तुम्हारी मत्यु क बाद ही उस युवक को वापस मिल सकेगा अन्यथा नही ! मरा स्मरण कर तीन बार 'म यह यौवन लौटा रहा हू ऐसा तरे द्वारा कहा जाते ही तू निष्प्राण होकर गिर जाएगा '

दवयानी चीख उठी पिताजी यह भी कोई उ शाप है ? यह तो आपक अभिशाप से भी भयकर है।'

शुक्राचाय अत्यत क्रोधित होकर तडाक स उठ खडे हुए। दवयानी की ओर गुस्से म दखत हुए बाल यहा आन ही म तुम्हारा बिगडी बनाने क लिए ही म यहा मे दौडा आया। यह भूल हुई मुझस ! बचपन म मन तुम्ह बहुत सिर चढाया। किन्तु बदले म इस बूढे बाप को क्या मिला ? अपमान ! कवल अपमान ! तुम्हारे कारण मुझे अपमान और पराजय के सिवा कुछ भी नही मिला। मरा मन समझ म नहीं आता, ऐसा क्या होता है ? अवश्य ही मेरी तपस्या म ही कोई दोष रहा होगा। उस दोष को खोज कर दूर करने के लिए म इसी क्षण फिर हिमालय लौट रहा हू। आज तक तेरे लिए जो भी सभव था मने किया। अब तुम जानो और तुम्हारा यह पति जाने। तुम जवान बनो बूढे हो जाओ गहस्थी चलाओ नही तो मर जाओ। मरी बला से। मुझे तुम लोगो स कुछ भी लेना देना नही है।" कहते-कहते शुक्राचाय बाहर निकल गए।

महल म हम दोनो ही रह। एक बूढा बुत—एक बुत बना बूढा। दवयानी

मरी ओर न्खन की हिम्मत नही कर पा रही थी। उस अपना मुह दिखात मुझे भी शरम लग रही थी। क्या ही अजीब और विपरीत प्रसग था वह! हम दोना पति पत्नी थे। एक दूसर का सुखी बनान क लिए ही एक हुए थे! किन्तु अठारह वर्षो मे हम एक दूसरे से कितन दूर हो गए थ! वह मेरा दु ख बाट नही सकती थी। म उसके पास जाकर उसे सान्त्वना नही दे सकता था। हम दोना एक ही महल म खडे थे! किन्तु दोना की दुनिया एकदम अलग-अलग थी!

रगमहल से एक अस्फुट आवाज सुनाई दी। शायद वह सुनहर बालो वाली युवती अब होश म आ गई थी। उसके व सुनहरे बाल

म न दपण म दखा। मेरी यह विरूप कुरूप सूरत—शुक्राचाय के उ शाप स मैं क्षण भर म फिर स तरुण हो सकता था! किन्तु मेरे बुढापे को कौन ग्रहण करेगा? मेरे ही रक्त का तरुण

दासी क दरवाजे म खडे होकर कहे शब्द सुनाई दिए— देवी जी युवराज आपके दशन क लिए पधार रहे हैं।

उन शब्दो के पीछे पीछे दो तरुण महल म आते दिखाई दिए। म न झट स मुह फेर लिया। मेरी इस विरूप कुरूप सूरत को यदु ने देख लिया तो

किन्तु—किन्तु यदु मेरा बेटा था मेरे परिवार का था मेरे रक्त का था। अपना यौवन मुझे देकर मेरा बुढापा लेना उसके लिए सभव था।

मेरे कान रगमहल स आने वाली आवाज की ओर लगे थे। कौन बुदबुदा रहा था वहा? क्या वह सुनहरी परी जागकर कोई गीत गुनगुना रही थी? प्रीतम की अधीरता स प्रतीक्षा करनेवाली विरहिणी का गीत

किन्तु अब म उसक सामने उसका प्रीतम बनकर कसे खडा हो सकता हू?

यदु देवयानी से बात कर रहा था। श द मुझे भी सुनाई द रह थ। नगर प्रवेश क समय अपनी मा को वही न पाकर वह बचैन हो गया था। उसके अचानक अशोक वन जान का समाचार मिलत ही वह इधर भागता आया था।

मेरे शरीर का रोम रोम रगमहल की उस सुदरी का चिन्तन कर रहा था। इस क्षण तो मुझे यौवन की चाह थी। उस यौवन को उस सुन्दरी क सहवास सुख की कामना थी। एकदम मन म एक कल्पना कौंध गई। मैंने मुडकर देखा।

मेरा चेहरा देखत ही व दोना तरुण चौंक उठे। म ने शात भाव स यदु को पास बुलाया। उसके सामने आने पर म न कहा यदु मुझे पहिचाना? म हू तेरा पिता ययाति। अपने बाप स तुम्हे प्रेम है न?

है महाराज।'

मेरे लिए कोई भी त्याग करने को तुम तैयार हो?'

वह तो धमाद ही है महाराज—मातृदेवो भव पितृदेवो भव!'

देवयानी बीच ही म चीत्कार उठी यदु यदु

देवयानी अठारह वष से मुझ स बदला लेती रही थी। अब उसका प्रतिशोध लेने का स्वर्णिम अवसर मुझे मिला था। मेरी हालत तो भूखे शेर जसी हो गई थी।

कामुकता प्रतिशोध की लालसा, सारी सारी वासनाएं मन के भीतर से उमडती आ रही थी। अब शुक्राचार्य का डर नही रहा था। मेरी बुद्धि बस एक ही इच्छा के कारण बधिर सी हो गई थी कि अब इसी क्षण यदु का यौवन मुझे मिल जाए और देवयानी के सामने रंगमहल जाकर मैं उस युवती को अपने गले से लगाता हुआ बाहर ले आऊं!

मैंने यदु से कहा, अब से आगे राजा बने रहने की मेरी कोई इच्छा नही है। तुम्हें राज्याभिषेक कराने

जैसी पिताजी की आज्ञा।

"किन्तु यह अभिषेक तुमपर केवल मेरे पुत्र होने के नाते नही होगा। उसके लिए तुम्हें

देवयानी फिर बीच में चिल्लाई महाराज, महाराज—आप राक्षस हो!"

उसकी ओर कोई ध्यान न देते हुए मैंने यदु से कहा मेरे इस बुढापे को देख रहे हो न?"

जी।"

'यह मुझे एक अभिशाप में मिला है। राजपाट के बदले में इसे ले लेने वाले मेरे परिवार के मेरे रक्त के तरुण की खोज है मुझे! मेरी मृत्यु होते ही उसे अपना यौवन वापस मिल सकता है। शुक्राचार्य ने वैसा उ शाप दे रखा है। चाहो तो अपनी मां से इसकी सत्यता के विषय में पूछ सकते हो।

मेरे प्रथम शब्द सुनते ही यदु चौंक गया। चार कदम पीछे हट गया। फिर जल्दी जल्दी वह देवयानी के पास गया। उसने उसे कसकर सीने से लगा लिया। उसे सहलाती हुई देवयानी बोली यदु तुम्हारे पिता पागल हो गए है। तरुण होने का पागलपन उनपर सवार है। पागल लोग उनसे बातें करने पर और भी अधिक बौखलाते है। इसलिए चलो हम राजप्रासाद वापस चलते है। इन्हें इसी दर्पण में अपने सफेद बालो को सहलाते बठने दो!'

मुझे देवयानी पर बहुत क्रोध हो आया। किन्तु मैं लाचार था विवश था। यदु ने मेरी ओर दयनीय दृष्टि से देखा। उसकी नजर में इन्कार में साफ-साफ दिखाई दे रहा था! मेरी आशा समाप्त हो गई थी!

०

यदु के साथ आए उस तरुण की ओर देखकर देवयानी ने कहा, यदु तुमने अभी तक अपने इस मित्र का परिचय नही करवाया। हमारे घर की यह बेबसी किसी पराये को मालूम नहीं होनी चाहिए थी! किन्तु लगता है आज का दिन ही बडा अशुभ है। मेरे पिताजी नाराज होकर उल्टे बस वापस चले गए। मेरी यह ममकथा इस पराये तरुण के सामने

उस तरुण ने अत्यंत नम्रतापूर्वक देवयानी से कहा मां मैं कोई पराया नहीं हूं!'

तुमने यदु के प्राण बचाए है। बेटा तुम्हें मैं पराया कैसे मान सकती हू ? किन्तु अभी तुमने जो कुछ सुना वह तो ऐसा था कि घर की दीवारों तक को सुनाई नही देना चाहिए था।"

मा युवराज जिस बात से डरते है मैं वह करने को तैयार हू।"

मेरी आशा फिर जाग उठी। मैं उस तरुण के पास गया और पूछा क्या तुम मेरा बुढ़ापा लेने को तैयार हो ?"

खुशी से।

किन्तु— किन्तु—तुम उसे ले नही सकते। इसे तो मेरे परिवार का, मेरे अपने रक्त का ही कोई तरुण ले सकेगा।

मेरे शरीर के कण कण पर आपका ही अधिकार है महाराज ! मैं आपका बेटा हू।

इन शब्दो को सुनते ही देवयानी थरथर कापने लगी। उस युवक की ओर घूरकर देखते हुए बोली महाराज का एक ही बेटा है। राज्य पर उसीका अधिकार है !

मुझे राजपाट नही चाहिए ! मा मुझे पुत्र धर्म का पालन भर करना है। पिताजी की इच्छा पूरी करनी है। मैं महाराज का पुत्र हू। उनका बुढ़ापा ग्रहण करने के मेरे अधिकार को कोई अमान्य नही कर सकता।'

देवयानी उसकी ओर क्रोध से देखते हुए बोली तू—तू—तू—शर्मिष्ठा का लडका है ?

उसने उत्तर दिया हा मेरा नाम पुरु है।'

देवयानी से प्रतिशोध भजा लेने का यह अवसर हाथ से जाने न देने का मैंने निश्चय किया। रगमहल की शय्या पर हो रही चलबुलाहट मेरे लपट कानो को साफ सुनाई देने लगी। उद्दण्ड वासना से मेरा रोम रोम सुलग उठा।

उस जलती देह का प्रत्येक कण कह रहा था स्मरण रहे इतना बढिया प्रतिशोध फिर कभी नही ले सकोगे। तेरा यौवन तुझे वापस मिल रहा है। देवयानी के सभी दुष्ट सकल्प धूल मे मिल रहे हैं। प्रतिशोध का यह मौका छोडना मत।

मैंने पुरु की ओर देखा। वह अडिग खडा था। उसकी मुद्रा पर भय का कोई चिह्न नही था।

मेरे द्वारा नन्हा-सा देखा हुआ पुरु आज यौवन की देहली पर खडा सुडौल पुरुष हो गया था। भविष्य के बारे मे कितने ही सुख स्वप्न उसकी तरुण आखो के सामने तरते होगे। यह भी हो सकता है कि उसका मन किसी लडकी पर मोहित हुआ होगा। युद्ध से लौट आने के बाद इस पराक्रमी प्रियतम से विवाह करने की आशा मे शायद कोई युवती इसकी राह मे आखे बिछाए बैठी होगी। ऐसे पुरु से मैं यौवन की याचना कर रहा था। अपना बुढ़ापा उसे देने चला था। नही नही ! शैशव मे जिसके कुन्तलो को मैंने वात्सल्य से सहलाया था वही पुरु बूढा होकर

सिर पर सार मफन्द वाल लिए मेरे सामन खडा हुआ ता क्या मुझसे देखा जाएगा ?
मरा मन डगमगान लगा।

इन चद घड़ियों म घटी विलक्षण घटनाओ के कारण देवयानी का माथा भन्ना था। आप से बाहर होकर वह पुरु के पास गई और बाली तुम पुरु हो न ? सच्चे पुरुष हो न ? शर्मिष्ठा क बटे हो न ? फिर चुप क्या हो ? सुना कि तुम्हारी मा का इनम बडा प्रेम था। उसी मा क बेटे हो तुम। तुम्हारे मन म भी पित प्रेम का ज्वार आया होगा। फिर दर किस बात की है ? सोच म क्या पडे हो ? द दो, अपना यौवन इन्ह द दो। ल ला इनका बुढापा तुम ल लो।"

मेरे मन की समस्त वासनाएं मानो म चिल्ला चिल्लाकर कहने लगी, वह सुदर युवती रगमहल म तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। पिछल पद्रह दिनो स तुम उसीके लिए पागल बन बैठे थे। आज यह अमृत का प्याला तुम्हारे हाथ लगा है। क्या होठो स लगाए बिना ही तुम उस फक दोग ? यही करना था तो फिर अठारह वष पूव ही सन्यास क्यो नही ल लिया ? सोचो पागल सोचो। सौभाग्य स तुम्हे उ शाप मिल गया है। उसका उपयोग कर लो। दो चार वष पुरु तेरा बुढापा ल भी लेता है तो उसकी कौन सी बडी हानि होने वाली है ? उल्टे इसके बदल म उसे राजपाट मिलने वाला है। कुछ वष तक जी भरकर उपयोग ल लो। वासनाओ की सारी भूख मिटा लो और तब जाकर पुरु को उसका यौवन लौटा दो।

देवयानी द्वारा चिल्लाए जान के कारण या पता नही क्या पुरु छट स आगे बढा। मेरे चरणो पर अपना माथा रखकर बोला पिताजी अपने कुल के लिए राजकन्या होते हुए भी दासी बनी मा का मैं बेटा हू। मैं आपका बुढापा लेने को तयार हू। मेरे मुह स केवल दो ही शब्द निकल— ठीक है! तुरत ही मेरे ध्यान म उन दो शब्दो का अथ आ गया और मैंने आख मूद ली। कुछ क्षण बाद पुरु को आशीर्वाद देने के लिए मैंने आखें खोली। किन्तु उसे आशीर्वाद दने के लिए मेरा हाथ ऊपर उठ नही पा रहा था। मेरे सामने खडा हुआ पुरु एकदम जजर बूढा हो गया था।

o

इस चमत्कार को देखकर देवयानी हक्का-बक्का रह गई। यदु को लकर तुरत अपने महल म चली गई।

पुरु दपण के सामने जा खडा हुआ। उसने अपने रूप को निहारा। क्षण भर क लिए दोनो हाथो स अपना मुह ढक लिया। मेरी समझ म नही आ रहा था कि कहा इस अपने त्याग पर अब पछतावा तो नही हो रहा ! किन्तु तुरत शात भाव स वह मच पर जा बठा। यह देखकर मेरा मन कुछ शात हुआ।

अभी कुछ ही क्षण पूव मुझस अपने प्रतिबिंब की ओर देखा नही जा रहा था। और अब पुरु की ओर देखा नही जा रहा था। नगर छोडकर जाते समय

शर्मिष्ठा ने मन्त्रणा दिया था महाराज का वरदहस्त हमेशा पुरु के माथे पर रहे !' किन्तु आज मैंने उसके मस्तक पर वज्रपात किया था ! मन में विचार आया कि उसके पास जाकर उसे गले लगा लूं उसको सांत्वना दूं ! किन्तु यह विचार क्षण भर के लिए ही रहा ! मुझसे वह साहस नहीं हो रहा था। पाप भी कितना डरपोक होता है !

चार घडी में इधर की दुनिया उधर हो गई थी। इतने थोडे समय में क्या क्या विचित्र नहीं घट गया। समझ में नहीं आ रहा था कि जाग रहा हूं या कोई सपना देख रहा हूं ! मदिरा के कारण भी तरह-तरह के आभास होने लगते हैं ! यह भी उसी प्रकार का कोई भयंकर आभास था ? विचार के विवर्त में मेरी संवेदना डूबने लगी। मन में घुटन सी होने लगी।

वृद्ध पुरु के रूप में कठोर सत्य मेरी ओर घूरकर देख रहा था। मैं आंख फेर कर दूसरी ओर देखने लगी—दर्पण में मुझे अपना प्रतिबिंब दिखाई दिया। मैं पहले से भी अधिक तरुण दीखने लगा था। जब मैं इस उम्र का था तो मेरे मन में अलका के प्रति कितनी जबरदस्त आसक्ति पैदा हो गई थी ! किन्तु वह अतृप्त ही रह गई थी। अलका—उसके सुनहरे बाल—वह चौबीस वर्ष की अनबुझी प्यास—प्रलयाग्नि के समान एक ही एक वासना मेरे मन में लपलपाने लगी। मैं सारा संसार को भूल गया ! कदम रंगमहल की ओर मुड गए।

मैं भीतर आया। वह युवती मंच पर उठकर बैठ गई थी। इधर उधर आश्चर्य से देख रही थी। किसी तरह समझ नहीं पा रही थी कि वह यहां कब और कैसे आ गई ! उसने मेरी ओर देखा। वह हंसी। मुझे लगा मेरा यौवन चरितार्थ हो गया। मैं आगे बढा। उसकी मुद्रा पर भय की छाया उभर आई ! उठकर वह दूर कोने में जाकर खडी हो गई। उसके इस व्यवहार का अर्थ मेरी समझ में नहीं आया ! समझ लेने के लिए मुझे फुरसत भी नहीं थी। कब से मेरे मन की हालत आंधी-तूफान में लगातार उलट-पुलट होती रही नाव सी हो गई थी। मैं सारी बातों को भुला देना चाहता था। उन्हें भुलाने का एक ही साधन मुझे मालूम था। उस युवती का हाथ थामने के लिए मैं आगे बढा ही था कि बाहर के महल में किसी के सिसकने की आवाज सुनाई दी ! मेरा हाथ जहां का तहां पंगु बनकर रह गया।

पहले लगा कि शायद पुरु बाहर सिसक रहा होगा ! अपने अविचारपूर्वक किए त्याग पर अब उसे पछतावा हो रहा होगा ! किन्तु आने वाली सिसकियां किसी स्त्री की थी !

लगा, पुरु को बाहर के महल में छोडकर भीतर आने में मुझसे बडी भूल हो गई। उसे तो पहले ही किसी दूसरे स्थान पर भेज देना चाहिए था ! क्या इतनी जल्दी अनायास वन की दासियों को यहां जो कुछ हुआ सब मालूम पड गया होगा? बगल स्त्री की सिसकियां यहां सुनाई देने की सम्भावना नहीं लग रही थी।

मैं द्वार तक आ तक कर नहीं पा रहा था। बाहर की सिसकियां रुक ना

नाम नहीं ले रही थी। सिसकियाँ अब फफकने लगीं। अपने परम सुख के क्षण में इस तरह रंग में भंग मुझे कतई पसन्द नहीं था। मैं क्रोध से रंगमहल के बाहर आया।

मंच पर पुरु बुत बना बैठा था। उससे लिपटकर एक स्त्री रो रही थी, सिसक रही थी। उसका सारा शरीर हर सिसकी के साथ जोर-जोर से हिलता था, ऊपर नीचे फफकता था।

कोई दासी पुरु के साथ इतनी लागलपेट करे, इसपर मुझे बड़ा ताव हो आया। मैंने कदम आगे बढ़ाकर पुरु से कहा, "पुरु, अब तुम राजा हो गए हो! राजा को चाहिए कि अपनी प्रतिष्ठा और शान के खिलाफ कोई काम न करे। यह कौन दो कौड़ी की दासी तुम्हारे गले में..."

आगे के शब्द मेरे गले में अटक गए। मेरी आवाज़ सुनते ही उस स्त्री ने मुड़कर मेरी ओर देखा। उसे देखते ही मुझे लगा कि धरती फटकर ययाति को अपने पेट में समा ले तो अच्छा!

वह शर्मिष्ठा थी! पुरु की हालत देखकर वह फूट-फूटकर रो रही थी। मुझसे उसकी ओर देखा नहीं जा रहा था! उसकी सिसकियाँ सुनी नहीं जा रही थीं! मैं सिर झुकाए खड़ा रहा।

अठारह वर्ष पूर्व अशोक वन की सुरंग की सीढ़ियों पर खड़े होकर शर्मिष्ठा को विदा करते समय मैंने कहा था, "अब तुमसे भेंट कब और किस हालत में होगी, भगवान ही जाने!" वह भेंट आज होनी थी! इस हालत में होनी थी!

मेरी संवेदना बधिर होने लगी। मैंने आँखें मूँद लीं। जहाँ खड़ा था, वहीं पर मैं पथरा गया।

शर्मिष्ठा—मेरी लाडली शमा! मन बेताब होकर तड़पने लगा कि उसे जाकर गले से लगा लूँ। उसके आँसू पोंछ डालूँ। उसका दुःख हल्का करूँ। किन्तु उसका दुःख हल्का किया जाए भी तो कैसे? शावक के प्राण लेने वाला शिकारी हिरनी को समझाए तो कैसे? उसके मन का सन्ताप दे भी तो कैसे?

एकान्त में मैंने कितनी ही बार उससे कहा था, "शर्मिष्ठा और ययाति दो नहीं हैं।" किन्तु आज—आज मैं उसका वैरी बन गया था! उसने जीवन भर अन्तःकरण के फूलों से जिसकी पूजा की थी, उसीने आज उसे अग्निकुण्ड में फेंक दिया था!

शर्मिष्ठा के आँसू मेरे चरणों पर टपक रहे थे, किन्तु उनकी एक-एक बूँद मेरे कलेजे को जलाती जा रही थी! इस बात पर कि उसकी जमी दबी मुझ जैसे पिशाच के पैरों पड़ रही है, मुझे शरम लगने लगी। किन्तु उसे ऊपर उठाने के लिए भी उसके शरीर का स्पर्श करने की हिम्मत मुझमें नहीं रही थी!

उसने बीच ही में ऊपर देखा। उसकी आँखों में अनंत मृत्युओं की करुणा भर आई थी। थरथराते होंठों से उसने कहा, "महाराज, यह क्या हो गया?"

यह आकुल उद्गार निकला तो उसके मात हृदय से था किन्तु मुझे लगा मेरे विलासी अंध उन्मत्त और पापी जीवन नम को लक्ष्य करके ही उसने पूछा है महाराज यह क्या हो गया ? वाकई क्या हो गया था यह ?

हो गया था ? नहीं मैंने अपने हाथों कर लिया था ! पुरु का बुढ़ापा स्वर मैंने उसका यौवन जानबूझकर ही तो ले लिया था ! पूरी तरह विचार करने के बाद ! अपने लंपट मन की वासना की क्षणिक पूर्ति के लिए !

मैंने पितृधर्म को ठुकराया था। वात्सल्य को लथड़ा था मानवता को ठोकर मारी थी ! अनिरुद्ध वासना के हाथ का पलीता बन गया था मैं ! अपने क्षणिक सुख के लिए मैंने अपने पुत्र की बलि दे दी थी ! अठारह वर्ष मैं एक राक्षसी वासना का मन्दिर बाँधता रहा ! आज उस मन्दिर पर कितना भीषण कलश चढ़ा दिया था मैंने !

शर्मिष्ठा मरी थी। उसने मुझे निस्सीम निरपेक्ष प्रेम दिया था ! उसके एक आँसू के लिए अपना प्राण न्यौछावर करना मेरा कर्तव्य था। केवल कर्तव्य नहीं था। इस तरह के समर्पण में सुख के सागर भरे होते हैं। मैं सोचने लगा। शर्मिष्ठा को सुखी करना हो तो पुरु को उसका यौवन लौटाना होगा। क्षण का भी विलंब किए बिना लौटाना होगा ! किन्तु—किन्तु— उसे फिर से यौवन प्राप्त कराने के लिए मेरी मृत्यु के अलावा अन्य कोई मार्ग नहीं था।

मृत्यु—बचपन से ही मुझे कदम कदम पर डराते आया मेरा अदृश्य शत्रु ! हर बार जिसके भय से मैं शरीर सुख के अधीन होता रहा वह अज्ञात अनाम मृत्यु ! क्या इस अवसर पर उससे हँसते-हँसते लिपट जाऊँ ? आगे पीछे की कुछ भी न सोचते हुए आनंद से उसका आलिंगन कर लूँ ?

मैंने शर्मिष्ठा की ओर देखा। कितनी आशा से वह मेरी ओर देख रही थी। अठारह वर्ष पूर्व वनवास और अज्ञातवास जाते समय उसने जरा सा भी शिकवा नहीं किया था। देवयानी के क्रोध से मुझे बचाने के लिए ही उसने यह दिव्य त्याग किया था। है न ?

शर्मिष्ठा का प्रेम—माधव का प्रेम—कच का प्रेम—

मुझे भी क्या वैसा ही प्रेम नहीं करना चाहिए ?

आज तक सदा अदृश्य रहा अपने ही मन का एक कोना मुझे दिखाई देने लगा। उस कोने में एक मंद ज्योति जल रही थी। धीरे धीरे वह बड़ी होने लगी। उसके प्रकाश में मुझे अपना मार्ग साफ दिखाई देने लगा ? अपने लिए जीने की अपेक्षा दूसरों के लिए जीने में मरने में कहीं अधिक आनन्द है ! कितना अद्भुत और उदात्त सत्य था यह ! किन्तु मैं पहली बार आज ही उसे अनुभव कर रहा था !

शुक्राचार्य ने मेरा वार्धक्य रूप वस्त्र डाला था अब शर्मिष्ठा मेरे अन्तरंग में ग्लानि ला रही थी। आज तक कभी न देखा ययाति आज मेरे सामने खड़ा हो गया। मृत्यु के पथ पर पाँव रखकर वह रह रहा था इस संसार में जैसे ना ही बातें गई हैं। प्रीति और मृत्यु ! कैसा मित्र जोड़ा ! इस अंधकार में तुम्हारा साथ मैं

दूगा। डरो मत बिल्कुल डरो मत। मेरे हाथ में यह दीप है, देखा न ? क्या कहा यह शुक्र का तारा है ?' निपट बुद्धू हो तुम ! अरे, यह तो शर्मिष्ठा की प्रीति है !'

अब जाकर शर्मिष्ठा को स्पर्श करने की हिम्मत मुझमें आई। मैंने उसके दोनों हाथ धीरे से अपने हाथ में लिए और उसे उठाया। उसका माथा सहलाते हुए मैंने कहा शमा, कुछ भी और किसी बात की भी चिंता मत करना। भगवान की दया से सब कुछ ठीक हो जाएगा।'

उसने करुण स्वर में पूछा पुरु पहले जैसा हो जाएगा ?

मैंने हँसते हुए कहा, होगा—इसी क्षण होगा !

पनियाई आँखों से उसने कहा नहीं महाराज ! आप मुझे धोखा दे रहे हैं ! पुरु अब पहले जैसा नहीं होगा ! किसीने उसे भयंकर शाप दे दिया है !"

हाँ !

'किसने ? किसने दिया यह शाप मेरे लाड़ले को ? क्या शुक्राचार्य ने ? मेरे बच्चे ने युद्ध में प्राण बचा लिए किन्तु देवयानी को उसपर जरा भी दया नहीं आई। क्या हो गया यह महाराज ? यह क्या हो गया ?

उसके आँसू अपने हाथों से पोंछते हुए मैंने कहा, शांत हो जाओ शमा, शांत हो जाओ। तुम्हारा पुरु पहले जैसा हो जाएगा। उसे शाप शुक्राचार्य ने नहीं दिया। वह दिया है '

किसने—किस दुष्ट ने ?'

उस दुष्ट व्यक्ति का नाम है ययाति ! वह चौंक उठी। आश्चर्य से मेरी ओर देखने लगी। 'मैं—मैंने पितृ धर्म को भुला दिया ! मानवता को भुला दिया ! अभिशाप के कारण मुझे प्राप्त हुआ बुढ़ापा मैंने पुरु को दे दिया। उसका यौवन मैंने ले लिया। यह लंपट कामुक, अधम ययाति तुम्हारा अपराधी है। पुरु का अपराधी है !'

वह पागल की तरह मेरी ओर देखने लगी। मेरी बात का उसे विश्वास नहीं हो रहा था। अपने प्रति उसकी इस अपार श्रद्धा को देखकर मेरा दिल भर आया ! मुझे रोना आ गया ! वाकई, मानव कितना अच्छा है ! वह दूसरे पर कितना भरोसा करता है ! विश्वास, श्रद्धा, निष्ठा प्रीति भक्ति, सेवा के बल पर ही वह जाता है ! इन्हीं के बल पर वह मृत्यु का भी सामना हँसकर करता है ! किन्तु इन सभी भावनाओं का संबंध मनुष्य के शरीर से नहीं, उसकी आत्मा से है।

पिछले अठारह वर्षों में मैं अपनी इसी आत्मा को खो बैठा था। अपनी श्रद्धा के बल पर शर्मिष्ठा ने अपनी आत्मा को मुर्झाने से रखा था उसे विकसित किया था। अपनी खोई हुई आत्मा को फिर से खोज लेने के लिए मेरे सामने केवल एक ही मार्ग था।—और वह था जिस शरीर के क्षणिक सुख के लिए मैं पिशाच बना था उस शरीर का त्याग हँसते हँसते त्याग करना।—प्रीति जैसी ही उत्कटता मृत्यु का आलिंगन कर पुरु को उसका यौवन वापस दिलाना !

यह सुनते ही कि पुरु के लिए मुझे मृत्यु को स्वीकार करना पड़ेगा, शर्मिष्ठा असमंजस में पड़ गई। सिसकने लगी। अंत में उसने कहा, "महाराज, मैं माँ हूँ, वैसे ही पत्नी भी हूँ। मुझे अपनी दोनों आँखें चाहिए, महाराज! दोनों आँखें!"

उससे आगे बोला नहीं जा रहा था। उसका अपने प्रति इतना प्रेम देखकर मैं गद्गद हो गया। किंतु यह समय प्रेम का दान लेने का नहीं—बलि लिए हुए दान का पूरा-पूरा भुगतान करने का था।

मैंने शर्मिष्ठा से कहा, "रात बहुत हो चुकी है। कल सवेरे हम लोग ठीक तरह से सोच-विचार करेंगे। मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि हर हालत में तुम्हारा पुरु पहले जैसा अवश्य हो जाएगा। जाओ, उसके पास बैठो। इतने त्यागी पुत्र को तुमने जन्म दिया।

तुम सच्ची वीरमाता हो। जाओ, उसकी पीठ सहलाओ!"

शर्मिष्ठा के पीठ फेरते ही मैंने शुक्राचार्य का स्मरण किया। मैं मन-ही-मन कहने लगा, "उधार लिया यह यौवन मैं वापस करना चाहता हूँ। वह जिससे लिया, उसी को वापस प्राप्त हो। इस हेतु मैं मृत्यु को स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ।" यह मैंने दो बार कहा। तीसरी बार कहते ही—शर्मिष्ठा की पश्चात्कृति को देखते-देखते मैं उन शब्दों को मन-ही-मन कहने लगा। एकदम ऐसे लगा, सारा महल बच्चों के खिलौने की तरह चक्कर खाता हुआ तेज़ी के साथ गोल-गोल घूम रहा है। इसी आभास में सुनाई दिया—"कचदेव पधारे हैं।"

दूसरे ही क्षण मैं धड़ाम से नीचे गिर पड़ा।

०

कितने दिनों बाद मुझे होश आया, मालूम नहीं।

शायद शाम का समय था। कोई अत्यंत मधुर वाणी में कुछ कह रहा था। यह मंत्र-पाठ फिर रुक गया। एक आकृति धीरे-धीरे मेरे मंच के पास आई। उसने मेरे माथे पर भभूत लगा दी। मैंने गौर से देखा। वह कच था।

मैंने उससे बात करने की चेष्टा की, किंतु मेरे मुँह से शब्द नहीं निकल पा रहे थे। कच ने अपना अत्यंत स्नेहमय हाथ मेरे माथे पर रखा। इशारे से ही उसने कहा, "आराम से पड़े रहिए।" और उसने कुछ भी नहीं कहा। केवल हँस दिया। शायद उत्तर में मेरे होंठों पर भी मुस्कान मचल गई होगी। वह फिर हँसा। मुस्कान मानव की कितनी मधुर भाषा है!

मुझे फिर से जाग आई तब सवेरा हो चुका था। पूर्व की ओर की खिड़की से अरुणोदय दिखाई दे रहा था। मुझे लगा मैं विश्व-कल्याण की चिंता करने वाले ऋषियों द्वारा प्रवर्तित यज्ञकुंड की ज्वाला देख रहा हूँ।

आगे मन मैं पता रहा। किसी का श्लोक पठन प्रारम्भ हो गया। मैंने आँखें खोलकर देखा। कच पूर्व दिशा के अग्नि नारायण को प्रणाम कर रहा था। उसकी प्रार्थना मैं भली-भाँति सुन पा रहा था

हे सूयनारायण, तुम्हारा स्वागत है। वासना पर विजय पाने वाली आत्म शक्ति के तुम प्रतीक हो। तुमने अंधकार पर विजय पाई है। तुम विश्वात्मा हो, वैसे ही मानव के भावविश्व की भी आत्मा हो। तुम्हारा सारथी अपाहिज है फिर भी तुम अपने कर्तव्य में कभी नही चूकते। तुम्हारा प्रकाश गिरिगह्वरों की भांति हमारे मनगह्वरों को भी आलोकित करे। वहां भी खूंखार जानवर छिपे होते ही हैं! हे सहस्ररश्मि, तुम्हारा स्वागत है।'

सुबह शाम कच इसी तरह श्लोक पठन करता रहता। और समय भी वह मेरे कमरे में आने पर कोई न कोई श्लोक कहते हुए टहलता रहता। पता नहीं, वह इन श्लोकों को केवल आत्मरंजन के लिए कहता था या मुझे जैसे के कानों में डालने के लिए जानकर कहता था। जो भी हो, मुझे उसका यह पठन बहुत भाने लगा। मैं ऐसी अवस्था में रुग्णशय्या पर पड़ा था जहां से उठने की या बोलने की मुझे मनाही कर दी गई थी। किन्तु ये श्लोक मुझे उस शय्या से उठाकर एक निराली ही दुनिया में ले जाते थे। उस दुनिया के फूलों में कांटे नहीं होते थे, किन्तु पाषाणों में सुगंध अवश्य आती थी! कच के इस पठन के कितने ही श्लोक मेरे मन पर अंकित में हो गए हैं!

फूलों की सुगंध आंखों को दिखाई नहीं देती किन्तु नाक उसे अनुभव करती है। आत्मा भी उस सुगंध जैसी ही होती है।

हर तरह का उन्माद मृत्यु ही होता है! हमेशा की मृत्यु की अपेक्षा यह मृत्यु बहुत ही भयंकर होती है क्योंकि इसमें मनुष्य की आत्मा ही मृत हो जाती है।'

हे शिखर की ओर उड़ान भरते जाने वाले गरुड़, तुम जानते हो न परली तरफ कितनी गहरी खाई है? अंधे होकर क्षणभंगुर सुख के पीछे पड़ने वाले मनुष्य को बता दे वह खाई कितनी गहरी है और कैसी है। इतना अमृत उसे अवश्य लाकर दे।

'बुद्धि भावना और शरीर के त्रिवेणी संगम का नाम है मानवी जीवन। संगम की पवित्रता उसकी एक एक नदी में कैसे आ सकती है?'

हे पारधी सीता पटने तक दौड़ने वाले इस हिरन का दुःख तुम समझ लेना चाहते हो न? तो इस हिरन को शिकारी बनने दो। तुम्हारा धनुष-बाण उसके पास रहने दो। और तुम?—तुम हिरन बन जाओ।

'वायु विश्व का प्राण है। उसकी मंद लहरें हमेशा सबके मन को भाती रही है। किन्तु वही जब आंधी का रूप धारण कर लेता है तो सारा जगत उससे घृणा करने लगता है। प्रत्येक वासना की अवस्था भी ऐसी ही होती है।'

घर-गृहस्थी वाले स्त्री पुरुषो आप भी महान तपस्वी है। गृहस्थी ही आपका यज्ञ है। प्रीति वात्सल्य करुणा आपके ऋत्विज है। निरपेक्ष प्रेम के वाक्य आपके मंत्र हैं। सेवा त्याग भक्ति आपके गृहस्थ जीवन के यज्ञ की आहुतियां है।'

प्रेम करना सीखना चाहते हो न? तो नम्रता को गुरु करो। नम्र को गुरु करो। माता को गुरु कर लो।

उपभोग से वासना कभी तृप्त नहीं होती। उपभोग से वासना की भूख उसी तरह बढ़ती है जिस तरह आहुतियां पाकर अग्नि अधिक भभकती है! —इस तरह कितने श्लोक गिनाऊं? रुग्णशय्या पर बिताए दिनों में ये ही मेरे अभिन्न मित्र थे।

धीरे धीरे राजवैद्य ने मुझे थोड़ा बोलने की अनुमति दे दी। फिर मैं बिस्तर में ही उठकर बैठने लगा। इस बीच न केवल मेरा बल्कि देवयानी का भी पुनर्जन्म हो गया। वह काफी संयमी और सेवाशील बनी दिखाई दे रही थी।

यह चमत्कार—कच द्वारा किए गए जादू का परिणाम था या उस भयंकर रात को आई क्रांति थी।

उस रात मेरे बेहोश होकर धड़ाम से नीचे गिरने के बाद क्या क्या हुआ इसकी शृंखला मैं मन ही मन जोड़ने लगा। कच देवयानी शर्मिष्ठा पुरु यदु की बातों से मिलने वाले सूत्रों से अपने मन में वह कहानी गूंथने लगा—

उस रात शुक्राचार्य का स्मरण कर पुरु को उसका यौवन लौटा देने की प्रार्थना मैंने दो बार की थी। तीसरी बार उसका उच्चारण मैं करने लगा किन्तु वह पूरा नहीं हुई। 'कचदेव पधार रहे हैं' इन शब्दों के कारण यह प्रार्थना अधूरी रह गई। शरीर द्वारा किए गए अपथ्य और मन पर आई खींचातानी के तनाव के कारण मैं उसी तरह गश खाकर गिर पड़ा था।

कच ने भी तपस्या करके शुक्राचार्य के जैसी ही विद्या प्राप्त की थी। यही नहीं इस बात का कि शुक्राचार्य जैसा महाकोपी ऋषि किस क्षण शाप का अभिशाप दे बैठेगा कोई भरोसा न होने के कारण वैसा कृत्रिम बुढ़ापा दूर करने की सिद्धि भी उसने प्राप्त कर ली थी। उस सिद्धि के बल पर उसने क्षण भर में पुरु को उसका यौवन लौटा दिया था।

किन्तु तपस्वी उनकी तपस्या और उन्हें प्राप्त होने वाली विद्याओं के बारे में बातें करते समय कच अत्यंत बेचैन हो जाया करता था। बीच ही में वह एक दम स्तब्ध रह जाता। विचार में डूब जाता। और फिर कहने लगता— महाराज मनुष्य पशु नहीं होता। पशुओं की संस्कृति और सभ्यता की कोई कल्पना नहीं होती किन्तु संस्कृति ने मनुष्य को हमेशा बाहर से बदला है। उसका अन्तरंग आज भी वैसा ही अंधी जीवन प्रेरणाओं के पीछे भागते रहने वाले पशु के समान है! गुरु की निन्दा करना पाप है किन्तु सत्य छिपाना उससे भी पाप है। इसलिए शुक्राचार्य के बारे में कुछ कहना चाहता हूं। उनके जैसा महर्षि इतना वृद्ध हो जाने के बाद भी पद पद पर क्रोध का शिकार हो जाता है यह देखकर तो मनुष्य के भवितव्य के बारे में चिंता होने लगती है। अपने आपपर विजय पाने की शक्ति खो बैठा मनुष्य घोर तपस्या द्वारा बड़ी-बड़ी सिद्धियां प्राप्त कर भी ले, तब भी उन सिद्धियों का प्रयोग सबकी भलाई के लिए ही होगा इसका क्या भरोसा? इस बात की हामी कौन भर सकता है? शुक्राचार्य संजीवनी विद्या प्राप्त करते हैं, उसके बल पर राक्षस देवताओं का पराभव करते हैं फिर देवता पता या कच उस विद्या का

प्राप्त करता है और इस तरह दोनों पक्षों के सम्मर्शक्ति वाले होने पर युद्ध की स्थिति बराबर बनी रहती है । इस जीवन में भी क्या धरा है ? यह संसार क्या इसी तरह चलने वाला है ? नहीं । मानव समाज को सुखी बनाना हो तो मानव को अपने मन पर विजय प्राप्त करनी होगी ।

कच इस तरह बोलने लगता । मैं सुनता रहता । उसकी लगन मुझे व्याकुल कर देती । उसके प्रत्येक शब्द की सत्यता मुझे जंचती । किन्तु मैं समझ नहीं पाता उसका समाधान किस तरह करूं ।

मेरी बीमारी में मैं और वह दोनों एक दूसरे के बहुत करीब आ गए । तपस्या पूरी होते ही उसने मुझे याद किया । मेरे अधःपतन की बात सुनते ही वह इधर आने को चल पड़ा था । देवयानी का निमन्त्रण उसे राह में ही मिल गया था । उसमें यदु के राज्याभिषेक का समाचार पढ़कर वह अत्यन्त बेचैन हुआ था । नगर में प्रवेश करते ही उसे मालूम हुआ कि मैं अशोक वन में हूं । वह सीधे मेरे पास आ गया ।

ओफ ! क्या ही बिल्कुल ठीक समय पर वह पहुंचा । उसके आगमन के कारण मेरी मृत्यु टल गई । पुरु को उसका यौवन वापस मिल गया । और—और —एक महापाप से मुझे मुक्ति मिल गई ?

वह घुंघराले बालों वाली लड़की—

क्या अंतिम क्षण में तहखाने की उस अलका ने भगवान से प्रार्थना की होगी कि ययाति की सेवा करने की उसकी इच्छा अधूरी रह गई है ? ऐसा न होता तो अलका ने अपनी मौसी के यहां फिर से जन्म क्या लिया होता ? होनी उसे मेरी पुत्रवधू के रूप में हस्तिनापुर क्या ले आती ?

कच के समान शर्मिष्ठा भी ठीक मौके पर आ पहुंची । युद्ध के लिए गए पुरु का कुशल क्षेम मालूम हो इस हेतु वह हस्तिनापुर के पास ही एक देहात में आकर रह रही थी । पुरु से प्रेम करने वाली अलका भी उसके साथ थी । यह सोचकर कि यदु के साथ पुरु को भी शत्रुओं ने कैद कर लिया होगा, वह अन्यमनस्क हो गई थी । यदु के नगर प्रवेश का समाचार सुनकर उसने और अलका ने तड़के उठकर हस्तिनापुर आने का निश्चय किया था । किन्तु आधी रात जाग आने पर शर्मिष्ठा ने पाया कि अलका उसके पास नहीं है । उसका मन नाना शंका-कुशंकाओं से भर गया । उसने रात भर उस देहात में अलका को खोजा । किन्तु वह कहां चली गई पता न चला । उसका दुख दूना हो गया । बहुत ही दुखी मन से शाम को वह जैसे तैसे हस्तिनापुर आ पहुंची । यदु के नगर प्रवेश के समय उसके साथ उसने पुरु को भी देख लिया । वह हर्ष से फूली न समाई । यदु को रिहा करने वाले वीर के नाते लोग पुरु की जयजयकार कर रहे थे । यदु की अपेक्षा पुरु पर ही जनता की पुष्प वृष्टि अधिक हो रही थी । यह देखकर उसकी आंखें धन्य हो गई । किन्तु उसी क्षण यह सोचकर कि पुरु को किसी की नजर न लग जाए वह अकुला उठी । एक बार उसे आंखों में भरकर समा लेने की इच्छा से वह अपने साथ वालों को पीछे छोड़कर भीड़ में घुस गई । किन्तु वह बहुत आगे नहीं जा पाई । तभी यदु

और पुरु कहीं चल गए। सबत्र बड़ा कोलाहल मच गया। वह समझ नहीं पाई कि वहां नगर पर शत्रु न आक्रमण तो नहीं कर दिया? अंत में एक दूत ने उससे कहा कि दोनों अशोक वन में महारानी से मिलने गए हैं। वह डर गई। अठारह वर्ष पूर्व की वह सुनामी उसे याद आने लगी। पुरु ने यदु को अपना परिचय दे दिया हो तो? अपने पुत्र के प्राणों की रक्षा करने वाला वीर जानकर देवयानी उसे आशीर्वाद देगी या सौत का लड़का जानकर उससे बदला लेने लगी?

क्षण भर में उसकी चारों ओर फैली पूर्णिमा की चांदनी गायब हो गई। अठारह वर्ष पहले वाली वही मौत की रात फिर से उसके आसपास छा गई। उसकी समझ में नहीं आया कि पुरु की रक्षा के लिए कौन सा उपाय करे। वह पागल जैसी अशोक वन की ओर दौड़ पड़ी।

शर्मिष्ठा और कच दोनों का भाग्य एकदम ठीक समय पर वहां ले आया। इसीलिए मेरा और अधःपतन होने से रह गया। मेरी आत्मा का पुनर्जन्म हो हो गया। कितनी अदभुत बात हो गई थी यह। किन्तु—यति को देखकर मैंने अनुभव किया कि इस दुनिया में अदभुत से अदभुत कोई चीज है।

मैं बीमार हूं यह मालूम होते ही यति जानकर मुझसे मिलने आया। मैं उठकर उसका अभिवादन करने जा रहा था किन्तु उसने मुझे उठने नहीं दिया। स्वयं दौड़कर उसने मुझे कसकर गले लगा लिया। जंगल में उस दिन मिला कठोर और रूखा यति और आज का यह स्नेहमय यति—दोनों चित्रों में कितना परस्पर विरोध था। लगा हम दोनों भाइयों का यह मिलन देखने के लिए काश आज मां होती!

यति मुझसे विदा लेकर जाने लगा तब मैंने परिहास करते हुए उससे कहा 'अब तुम यहां से जा नहीं सकते।'

'क्यों?'

'इसलिए कि तुम मेरे बड़े भाई हो। यह राज्य तुम्हारा है। अब तुम्हें सिंहासन पर विराजमान होना होगा।'

उसने विहंसकर कहा 'सिंहासन की अपेक्षा मृगाजिन पर बैठने का आनन्द बहुत बड़ा होता है ययाति! एक बार अनुभव करके देखो!'

यति यह बात यों ही सहज भाव से कह गया किन्तु उसका एक एक शब्द मेरे मन में गहरा उतर गया। वहां अंकुरित हो गया। देखते ही देखते उसका फल में एक बड़ा सा वृक्ष बन गया।

जीवन में चरम आसक्ति के दलदल परत गिरे पर जाकर मैं लौटा था। अब विरक्ति को अनुभव करना क्रम प्राप्त ही था। मैंने वानप्रस्थी होने का निश्चय किया। कच ने मेरे निश्चय से सहमति प्रकट की और शर्मिष्ठा मेरे साथ आने को तैयार हो गई। इसमें कोई आश्चर्य नहीं था। मुझे आश्चर्य का सबसे बड़ा धक्का देवयानी ने दिया! उसने भी मेरे साथ वन में आने का अपना पक्का इरादा प्रकट कर दिया!

रोग शय्या पर मैं प्रथम बार ही होश म आया तभी से मेरे ध्यान म आ चुका था कि देवयानी मन म बदल गई है। इस बात पर मुझे बार बार आश्चर्य भी हो रहा था।

मैं होश म आने लगा था उसी रात की बात है। कुछ क्षणों के लिए मुझ अच्छी तरह से होश आया था। पहले तो क्षण भर के लिए आभास हुआ जस मैं बराबू घोड़े द्वारा पटका जाने के कारण बुरी तरह म आहत हो गया हू और अलका मेरे सिरहाने बैठी है। किन्तु दूसरे ही क्षण मैंने पहिचान लिया कि वह देवयानी है। हाथ म पखा लेकर वह मुझे हवा कर रही थी।

मैंने नीचे की ओर देखा। वहा शर्मिष्ठा मेरे पाव दबाते बठी थी।

उसी रात फिर कुछ क्षण मैं अच्छी तरह होश म आया। व दोनों आपस म धीरे धीरे कुनमुना रही थी। देवयानी शर्मिष्ठा से कह रही थी, "अब तुम पखा झलो मैं पर दबाती हू।"

शर्मिष्ठा ने पूछा "ऐसा क्यो ?"

देवयानी ने कहा, 'पैर दबाते दबाते तुम्हारे हाथ थक गए होग।'

शर्मिष्ठा ने हमकर प्रतिप्रश्न किया "पखा झलते झलते शायद हाथ नहीं थकते ?"

देवयानी ने हसकर उत्तर दिया "मेरा एक हाथ थका होगा तो तुम्हारे दोनों हाथ थके होग और दद भी कर रहे होगे। कल का लोगबाग कहगे देखो इस देवयानी को। सौत के साथ कितना बुरा व्यवहार कर रही है! मैं तुमसे बडी हू। मेरी बात तुम्हें माननी ही पडगी। उठो यह पखा ले लो।" फिर दोनों हसने लगी। दोनों की मुक्त हसी एक दूसरे म ऐसी घुलमिल गई। जस दो नदिया मिली हो।

पडे पडे काफी दिनों तक मैं सोचता रहा कि देवयानी म इतना परिवतन आखिर कस आ गया? बात साफ थी कि कच ने उसे उपदेश दिया होगा। किन्तु इस उपदेश स वह अपरिचित कहा थी? फिर क्यों वह इतनी बदल गई? क्या उस रात के भीषण अनुभव के कारण? या यह विश्वास हो जाने के कारण कि शुक्राचार्य की अपेक्षा कच ही अधिक ज्ञानी है?

आखिर कच से बात करते समय एक दिन मैंने यह विषय छेड ही दिया। देवयानी के इस पुनज म का कारण हमने हसते हसते उससे पूछा। यह देखते ही कि इस परिवतन का सारा श्रेय उसे द रहा हू कच ने कहा "आप भूल कर रहे हैं महाराज जिस बात के लिए इतने वष से प्रयास करता रहा, वह बात उस रात हो गई। किन्तु मेरे कारण नहीं पुरु के कारण।"

मैंने चकित होकर पूछा "वह कसे?"

"पुरु ने आपका बुढापा ले लिया तब आपने उसे अपना राज्य दे दिया था। किन्तु यौवन वापस मिलते ही पुरु दौडकर देवयानी के पास गया और उसके चरणों पर मस्तक रखकर बोला मा यदु मेरा बडा भाई है। पिताजी ने मुझे राज्य दिया तो है किन्तु मैं उसे लूगा नहीं। यदु का अपमान कर मैं सिंहासन पर नहीं

बढ़ूंगा। यदु का ही राजा बनना था। उसकी आज्ञा मैं सिर आंखों पर रखूंगा। तुम्हारे चरणों की सौगंध मां। शर्मिष्ठा माता के चरणों की सौगंध उठाकर कहता हूं, मैं तुम्हें चाहता हूं। मां के रूप में मुझे तुम्हारी ही चाह है भाई के रूप में यदु चाहिए। मुझे राज्य नहीं मां चाहिए भाई चाहिए। जो देवयानी इससे पहले कभी और किसी भी बात पर नहीं पिघली वही पुरु के इस त्याग और प्रेम से पिघलकर मोम हो गई। उस गले से लगाकर आंसुओं से उसका माथा नहलाते हुए उसने कहा पुरु आगे चलकर सिंहासन पर कौन बैठे इसका निर्णय तो महाराज करेंगे—प्रजा करेगी। किन्तु तुमने मुझे वह राज्य दिया है जिसपर इस संसार के तमाम राज्य वारे जा सकते हैं। तुम जैसे त्यागी और पराक्रमी पुत्र ने मुझे मां कहकर पुकारा है। पुरु इतना प्रेम करना तुझे किसने सिखाया? कोई बचपन में ही मुझे यह सिखा देता तो कितना अच्छा होता। अब मैं यह तुमसे सीखने वाली हूं। पिता का बुढ़ापा तुमने हंसते हंसते ले लिया। भाई के लिए सिंहासन का अपना अधिकार भी तुमने सहज छोड़ दिया। पुरु मुझे और कुछ भी नहीं चाहिए। प्रेम करने की अपनी यह शक्ति मुझे दे दो।

पुरु ने सिंहासन का अपना अधिकार छोड़ दिया था किन्तु सारी प्रजा उसे ही अपना राजा बनाना चाहती थी। युद्ध के पराभव के कारण लोकमानस से उसकी प्रतिमा ढह गई थी। उत्तर में दस्युओं के विद्रोह को समाप्त करना आवश्यक था। उसके लिए पराक्रमी राजा का ही सिंहासन पर होना जरूरी था। देवयानी ने भी प्रजा की यह इच्छा सहर्ष स्वीकार कर ली।

पुरु के राज्याभिषेक के दिन ही हम लोग वानप्रस्थ हो गए। अभिषेक समारोह समाप्त होते ही कच ने हम तीनों से प्रश्न किया आप लोगों में से किसी की कोई इच्छा रह गई है? देवयानी और शर्मिष्ठा दोनों ने तत्काल उत्तर दिया कुछ भी नहीं। किन्तु मैं स्तब्ध रहा। तब कच बोला महाराज

मैंने कहा अब से कोई मुझे महाराज कहकर न पुकारे। केवल ययाति ही कहकर पुकारे। हम दोनों समवयस्क मित्र हैं। अंगिरस ऋषि के आश्रम में हुए उस यज्ञ के समय से हम मित्र बने हैं। आज फिर हम बाल मित्र हो गए।'

कच ने हंसकर कहा ठीक है ययाति तुम्हारी कोई इच्छा रह गई है?'

हां। मेरी दो इच्छाएं अभी अतृप्त ही हैं।

कौन-सी दो इच्छाएं?

माधव की मां बूढ़ी हो गई है। चाहता हूं उसे भी साथ ले लूं। मेरी बहुत इच्छा है कि उसकी कुछ सेवा कर सकूं। और—और—और यह कि हम तीनों अपनी कहानी बिना कुछ भी छिपाए बिना किसी दुनिया को सुनाएं।'

राजा का पद प्राप्त कर पुरु हम लोगों का आशीर्वाद लेने के लिए आया। मैंने उसे आशीर्वाद दिया— तेरे नाम से ही यह वंश प्रसिद्ध हो। तेरे पराक्रम की तरह तेरा त्याग भी बना रहे।

और क्या महाराज?

अब मैं महाराज नहीं हू।"

और क्या पिताजी ? '

'अब मैं गृहस्थी वाला भी नहीं हू।"

'और क्या—'

सुख म, दु ख मे, हमेशा एक बात गाठ बाध लो। काम और धम महान पुरुषाथ है। बहुत ही प्रेरक पुरुषाथ है। जीवन के लिए अतीव पोषक पुरुषाथ हैं। किन्तु ये पुरुषाथ स्वच्छन्दता स भाग जात हैं। य पुरुषाथ कब अधे हो जाएग, कोई भरोसा नहीं! उनकी लगाम हमेशा धम के हाथ रहने दो

न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवधते।"

•••

मुद्रक मॉडर्न प्रिंटर्स नवीन शाहदरा दिल्ली 110032

1136